आनन्द रामायण एवं रामचरित मानस का

तुलनात्मक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध
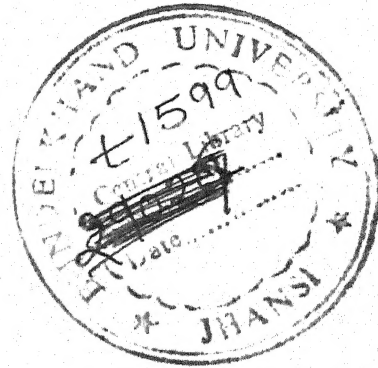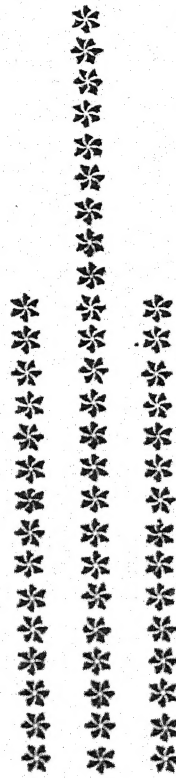
१९८९

शोध निर्देशक-
डा० विश्वम्भरदयाल अवस्थी
डी० लिट्०
अध्यक्ष-हिन्दी विभाग
अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज,
अतर्रा (बांदा)

अनुसन्धाता-
विनोद कुमार त्रिपाठी
एम०ए०,एम०एड०

गोस्वामी तुलसीदास का साहित्यिक अवदान अन्यतम है। भारतीय धर्म और दर्शन पर उनके धार्मिक और दार्शनिक विचारों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। आज प्रत्येक भारतीय बात-बात पर तुलसी की चौपाइयाँ उद्धृत करता है। तुलसी साहित्य की इस प्राणवत्ता का रहस्य यह है कि उन्होंने वेद और उपनिषदों के साथ ही संस्कृत वाङ्मय की सभी प्रसिद्ध रामायणों और काव्यों का अनुशीलन किया था और उनके कथानकों एवं सिद्धान्तों में समन्वय स्थापित कर अमृतमयी राम कथा का पल्लवन किया था। गोस्वामी जी के काव्य की अन्तरात्मा तक पहुँचने के लिए आवश्यक है कि संस्कृत की सभी प्रसिद्ध रामायणों के साथ राम चरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए मानस के वैशिष्ट्य का प्रतिपादन किया जाये।

हिन्दी के शोध जगत में वाल्मीकि रामायण अध्यात्म रामायण और भुशुण्डि रामायण के साथ रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन किया जा चुका है, किन्तु अभी तक आनन्द रामायण और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन नहीं हुआ है। आनन्द रामायण रचना-काल की दृष्टि से एक प्राचीन काव्य ग्रन्थ है। संस्कृत की अन्य सभी रामायणों में प्रतिपादित सम्पूर्ण कथा आनन्द रामायण के प्रथम काण्ड में वर्णित है। उसके शेष आठ काण्डों में राम कथा के ऐसे प्रसंगों और आख्यानों का उल्लेख किया गया है जिनका वाल्मीकि रामायण आदि में प्रायः अभाव है। इससे यह सिद्ध होता है कि आनन्द रामायण संस्कृत की एक महत्व पूर्ण मौलिक रामायण है। आदि कवि वाल्मीकि की रामायण में प्रतिपादित रामकथा के विशेषण के रूप में आनन्द रामायण की रचना हुई है। वाल्मीकि ने राम के व्यापक व्यक्तित्व को केन्द्रित

कर अपनी रामायण की रचना की थी। जब कि आनन्द रामायण-कार ने राम के साथ उनके समग्र परिवार का व्यक्तित्व उभारने का प्रयास किया है। मानसकार उक्त ग्रन्थों के प्रभाव से भावित है। "वाल्मीकि तुलसी भयो" की मान्य ध्वनि तो साहित्य जगत में सर्वत्र बहुश्रुत है किन्तु आनन्द रामायण से तुलसी का मानस कहाँ तक प्रभावित है दोनों कवियों के दृष्टिकोण रामत्व के सम्बन्ध में किन बिन्दुओं पर सम और पृथक् हैं तथा रचना कौशल, चरित्रांकन, भावाभिव्यंजन एवं सिद्धान्त निरूपण के संदर्भ में दोनों कवियों की स्तुत्य कृतियाँ साम्य और पार्थक्य को किस स्तर तक संवहन करती है, इस अध्ययन की विशेष आवश्यकता को ध्यान में रखकर इस शोध ग्रन्थ का प्रणयन हुआहै।

हिन्दी में रामकाव्य का मूल स्रोत संस्कृत के रामकाव्य हैं। तुलसी ने राम चरित मानस के प्रारम्भ में ही "नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि" के द्वारा इस तथ्य को स्वीकार किया है। अतः मानसकार की आत्मा तक पहुंचने के लिये संस्कृत काव्य ग्रन्थों के साथ राम चरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षित है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर ही प्रस्तुत शोध ग्रन्थ प्रस्तुत हो रहा है। इस शोध ग्रन्थ को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय में दोनों कवियों द्वारा निरूपित कथा शिल्प का विश्लेषण हुआ है। इस अध्याय में तुलसी द्वारा निरूपित रामत्व का चरमोत्कर्ष और आनन्द रामायणकार द्वारा अभीप्सित राम के समग्र कुटुम्बियों के व्यक्तिगत उत्कर्ष का लक्ष्य निरूपित हुआ है। राम चरित मानस के अन्तर्गत राम जन्म से लेकर रावण विजयोपरान्त राम के राज्याभिषेक तक की कथा का वर्णन है किन्तु आनन्द रामायणकार ने इस सम्पूर्ण कथा वस्तु को अपने "सारकाण्ड" नाम के एक काण्ड में ही कह डाला है। शोध-ग्रन्थ के इस अध्याय में राम चरित मानस के

प्रत्येक काण्ड की कथावस्तु प्रस्तुत की गयी है तथा आनन्द रामायण के सारकाण्ड में इस कथावस्तु का अन्तर्भाव भी चित्रित किया गया है। तत्पश्चात् दोनों ग्रन्थों की कथावस्तु के साम्य व वैषम्य पर विचार करते हुए तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। इसके बाद आनन्द रामायण के शेष आठ काण्डों की कथा वस्तु का भी वर्णन हुआ है। आनन्द रामायणकार ने यात्रा काण्ड नाम के द्वितीय काण्ड में भगवान राम से भारत वर्ष के समस्त तीर्थों का भ्रमण कराया है। याग काण्ड में कवि ने राम द्वारा अनेकानेक अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान कराया है। तृतीय काण्ड में ग्रन्थकार ने राम के विविध भोग विलासों का चित्रण किया है। इस काण्ड को कवि ने "विलास काण्ड" नाम दिया है। चतुर्थ काण्ड "जन्म काण्ड" है जिसमें कवि ने राम-लक्ष्मण आदि की अनेकानेक संततियों के जन्म का वर्णन किया है। पंचम काण्ड "विवाह काण्ड है जिसमें रामादि सभी भाइयों के पुत्रों के विवाह का वर्णन है।"राज्य काण्ड" नामक षष्ठ काण्ड में कवि ने भगवान राम व महारानी सीता की अलौकिक लीलाओं का चित्रण किया है। काण्ड के उत्तरार्द्ध में राम राज्य की विशेषताओं का सविस्तार वर्णन है। राम द्वारा लव-कुश आदि पुत्रों तथा भरत लक्ष्मण आदि भ्राताओं को जो राजनीतिक उपदेश दिया गया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। सप्तम काण्ड में श्री राम द्वारा अयोध्यावासियों को दिये गये अध्यात्म ज्ञान के सुन्दर उपदेश का चित्रण है। इस काण्ड का नाम "मनोहर काण्ड है। यह काण्ड श्री राम-पूजा के विविध अनुष्ठानों से परिपूर्ण है। अंतिम काण्ड में कवि ने श्री राम के वैकुण्ठारोहण की कथा प्रस्तुत की है। यह काण्ड "पूर्णकाण्ड" नाम से अभिहित है।

दोनों ही काव्य ग्रन्थों में श्री राम के महिमा मंडित चरित्र का चित्रण है। दोनों कवियों ने अपने अपने ढंग से रामत्व की महिमा को असीमता तक पहुँचाने का प्रयास किया है किन्तु दोनों के चित्रण में वैचारिक मतभेद है। आनन्द रामायणकार केवल राम ही नहीं अपितु राम के आगे उनके संतति समुदाय के चरित्र चित्रण

में भी अपने कथ्य को व्यक्त करते हैं। इस प्रकार उनके ग्रन्थ में कहीं-कहीं राम की महिमा गौण हो जाती है, किन्तु मानसकार का एकमात्र लक्ष्य "राम गुण गान" है। अतः कथानायक को तुलसी जिस ऊँचाई तक ले जा सके हैं, आनन्द रामायणकार उससे पीछे हैं।

द्वितीय अध्याय में दोनों काव्य-ग्रन्थों में आये हुए समस्त पात्रों के चरित्रगत गुण दोषों की मीमांसा तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत की गयी है। पुरुष पात्रों में मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम, भरत, लक्ष्मण, दशरथ, रावण, हनुमान, सुग्रीव, अंगद, विभीषण, मेघनाद आदि प्रमुख हैं। प्रधान स्त्री पात्रों में सीता, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, मंथरा, शूर्पणखा मंदोदरी, तारा आदि का चरित्र चित्रण किया गया है। इसके पश्चात् आनन्द रामायण के कुछ विशिष्ट पात्रों-लव, कुश, यूपकेतु, सुरकीर्ति, मूलकासुर, लवणासुर, मदनसुन्दरी, पुष्पवती आदि का चरित्र चित्रण वर्णित है।

राम चरित मानस में कथा से अधिक महत्व चरित्र का है। जहाँ कहीं भी तुलसी ने कथा में किसी प्रकार का परिवर्तन किया है वह चरित्र गत वैशिष्ट्य के लिए ही किया है। राम चरित मानस में आदर्श पिता, आदर्श माता, आदर्श भ्राता, आदर्श गृहिणी, आदर्श मित्र आदि सभी क्षेत्रों में अनुकरणीय चरित्र-प्रस्तुत हैं। तुलसी ने समस्त पात्रों को आदर्श की उच्चता पर स्थापित किया है। राम चरित मानस के समस्त चरित्र अपना निजी व्यक्तित्व लिये हुए हैं और अनूठी मौलिकता से युक्त हैं। सत् तथा असत् दोनों ही प्रवृत्तियों को प्रश्रय देने वाले व्यक्तित्व तुलसी की सफल लेखनी द्वारा प्रभावमय बन गये हैं। वे व्यक्तित्व अपने-अपने क्षेत्र में सीमा पर पहुँचे हुए प्रतीत होते हैं। असत् के ऊपर सत् की विजय का प्रतिपादन करके तुलसी ने चरित्र चित्रण द्वारा सत् का प्रबल समर्थन किया है। तुलसी और आनन्द रामायण कार ने अनेकानेक कथानकों को कथा के अन्तराल में समाहित तो अवश्य किया है किन्तु उनका कोई भी चरित्र अपने

प्रभाव की विशिष्ट छाप जन मानस पर छोड़ने में सक्षम नहीं है।

तृतीय अध्याय में दोनों काव्य ग्रन्थों में प्रकृति की सौन्दर्य निष्पत्ति का सम्यक विवेचन किया गया है। इस अध्याय में मानसकार और आनन्द रामायणकार के विभिन्न भावचित्रों को उभारने में प्रकृति के सहयोग तथा दोनों ग्रन्थों में प्रकृति की स्वच्छन्द उद्भूतियों का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। कवि-परम्परा के अनुसार प्रकृति-चित्रण आलम्बन और उद्दीपन दो रूपों में प्रस्तुत हुआ है। कतिपय कवियों ने लोक मानस में प्रसुप्त भावों को उद्दीप्त करने के लिये प्रकृति चित्रण का सहारा लिया है। रस विशेष को परिपक्व बनाने में यह प्रकृति चित्रण अत्यधिक सहायक सिद्ध हुआ है किन्तु ऐसे चित्रण में प्रकृति का रूप गौण हो जाता है। प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता लुप्त हो जाती है। अतः प्रकृति के मूर्धन्य चितेरों ने उद्दीपन के रूप में प्रकृति चित्रण न करके आलम्बन के रूप में प्रकृति की शोभा का निरूपण किया है। मानसकार ने प्रकृति के इन दोनों रूपों को अपने महाकाव्य में प्रतिष्ठित किया है। नैतिक मूल्यों की उपदेशिका के रूप में भी प्रकृति दोनों ग्रन्थों में प्रस्तुत हुई है। तुलसी द्वारा प्रकृति का अवलम्बन लेकर किये गये नीति कथन प्रेरणा की प्रबलतम शक्ति से सम्पन्न है। तुलसी ने अलंकार विधान में भी प्रकृति के विभिन्न अवयवों का सहयोग लिया है। प्रकृति का स्वतंत्र रूप में चित्रण दोनों काव्य ग्रन्थों में प्राप्त होता है। मानसकार की प्रवृत्ति प्रकृति से तादात्म्य करने में उतनी लीन नहीं प्रतीत होती है, जितनी वह अपने आराध्य की महिमा के वर्णन में लीन है। उनकी यह प्रवृत्ति भक्ति काल की सामान्य प्रवृत्ति है। महाकाव्य की परम्परा को निभाने के लिये ही उनकी भावना प्रकृति चित्रण में लीन हुई है। अन्यथा प्रकृति चित्रण कम मात्रा में हुआ है तथापि दोनों कवियों ने इस चित्रण से साहित्य के सुन्दरम् पक्ष को अत्यधिक रमणीक बनाने का स्तुत्य प्रयास किया है।

किस सीमा तक किस रूप में रमे है तथा उन्हें विभिन्न रसों की निष्पत्ति में किस सीमा तक सफलता मिली है, इस तथ्य का विवेचन ही इस अध्याय का वर्ण्य है। मनीषियों ने "रसो वै सः" कहकर रस को आनन्द स्वरूप ब्रह्म माना है। मानस के समस्त कार्य व्यापारों का प्रारम्भ व अंत रस में ही है। जीवन की सार्थकता के लिये रस की अनिवार्यता को नकारा नहीं जा सकता। तुलसी ने अपनी भावाभिव्यक्ति की अनूठी प्रतिभा के द्वारा मानस में सभी रसों का भावमग्न करने वाला योग केन्द्रीभूत कर दिया है। उनकी सरसता की गंभीरता की थाह पाना संभव नहीं है तथापि हर भावुक हृदय उसमें डूबने का इच्छुक रहता है। तुलसी ने राम चरित मानस में साहित्य के समस्त रसों का समायोजन किया है- जिसमें डूबकर प्रत्येक भावुक हृदय अपने को आनंद की सीमा पर अनुभव करता है। शोध ग्रन्थ में संयोग शृंगार, वियोग शृंगार, वीर, करुण, हास्य, रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, वात्सल्य, शान्त तथा भक्ति इत्यादि रसों की विभिन्न झाँकियाँ दोनों ही काव्य ग्रन्थों के आधार पर तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत की गयी है। तुलसी के काव्य में शृंगार का रस राजत्व कहीं भी अमर्यादित नहीं है। इसके विपरीत आनन्द रामायणकार ने रसराज की मर्यादा में स्थान-स्थान पर प्रश्न सूचक चिन्ह लगा दिये हैं। आनन्द रामायणकार के करुण रस में भी अंतःकरण को झकझोरने की वह शक्ति नहीं है जो तुलसी के करुण रस में है। मानस में हास्य तथा व्यंग्य के समस्त चित्र शिष्टता की सीमा के अंतर्गत हैं किन्तु आनन्द रामायणकार ने हास्य की दृष्टि में अनेक फूहड़ चित्र भी प्रस्तुत किये है। यद्यपि दोनों ग्रन्थों में सरसता का समुचित प्राविधान हुआ है किन्तु मानस के रसत्व में भाव को जिस उच्च सीमा पर प्रतिष्ठित किया गया है, आनन्द रामायणकार ने उस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है।

पंचम अध्याय काव्य शैली से सम्बन्धित है। इस अध्याय के अन्तर्गत

दोनों काव्य ग्रन्थों में प्रयुक्त अलंकारों तथा शब्द शक्तियों का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। संस्कृत की काव्य परम्परा से लेकर आधुनिक समय तक कवियों की यशस्विनी वाणी ने रमणीयता प्रतिपादन के महत् कार्य को सम्पन्न करने के लिये विभिन्न शब्दगत तथा अर्थगत अलंकारों का परिधान धारण किया है। तुलसी के काव्य में अलंकारों का प्रयोग अत्यन्त सटीक तथा स्वाभाविक रूप में हुआ है। राम चरित मानस में अलंकारों का प्रयोग भावोत्कर्ष, रूपोत्कर्ष, गुणोत्कर्ष तथा क्रियोत्कर्ष हेतु ही हुआ है। समग्र काव्य ग्रन्थ में कहीं भी अलंकारों के अनुपात प्रयोग द्वारा कविता-कामिनी को बोझिल नहीं बनाया गया है। इसके साथ ही शब्द की समस्त शक्तियाँ मानस में विद्यमान हैं। ये शब्द शक्तियाँ भाव के प्रभावोत्कर्ष में सहायक सिद्ध हुई हैं। आनन्द रामायण लौकिक संस्कृत के आदिकाल की रचना कही जा सकती है। अतः शब्द और अर्थगत सौन्दर्य की अभिवृद्धि हेतु आनन्द रामायणकार अपने युग की सीमाओं से आबद्ध प्रतीत होते हैं, तथापि आनन्द रामायण में तत्कालीन स्थिति के अनुसार शब्द और अर्थ के सौन्दर्य वर्धन हेतु विभिन्न अलंकारों का जो प्रयोग हुआ है वह सर्वथा स्तुत्य है। ग्रन्थ में शब्द शक्तियों का भी समुचित प्रयोग प्राप्त होता है। काव्य-ग्रन्थ के आदि कालीन होने के कारण इस क्षेत्र में वे परवर्ती कवियों से पीछे अवश्य हैं तथापि उनका शब्द शक्ति प्रयोग सर्वथा नगण्य नहीं है। आनन्द रामायण में सामान्यतः शब्द की अभिधा, लक्षणा व व्यंजना तीनों शक्तियों का प्रयोग हुआ है किन्तु अधिकतर प्रयोग अभिधा शक्ति के ही हैं। इसका कारण यह भी है कि कवि ने जो भी वर्णन किया है उसे वह सीधे उसी रूप में वर्णन करते हुए आगे बढ़ गया है। अतः वाच्यार्थ शब्दावली अपनी मौलिकता के साथ काव्य के अर्थ गौरव को प्रतिष्ठित करने में सफल हुई है। इस प्रकार दोनों काव्य ग्रन्थों में शब्दगत तथा अर्थगत सौन्दर्य सम्पन्न प्रयोग काव्य की रसात्मक अनुभूति को शक्तिमय बनाने में पूर्णरूपेण सफल हैं।

षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत दोनों काव्य ग्रन्थों में भक्ति के स्वरूप का विवेचन हुआ है। राम के ईश्वरत्व में दोनों कवियों की आस्था एवं निष्ठा का सम्यक विवेचन ही अध्याय का लक्ष्य है। परम सत्य के प्रति लोक मानस की समर्पण वृत्ति का नाम ही भक्ति है। राम चरित मानस तथा आनन्द रामायण दोनों ही भक्ति काव्य ग्रन्थ हैं। राम चरित मानस में निहित भक्ति भावना तुलसी को उत्कृष्ट भक्त कवि के रूप में प्रतिष्ठित करती है। गोस्वामी जी ने दास्य, सख्य, वात्सल्य आदि भक्ति के विभिन्न रूपों में से दास्य भक्ति को ही अपने काव्य में स्थान दिया है। वे राम के अनन्य भक्त हैं। उन्होंने रामत्व में एकाग्र होकर अपने राग तत्वों का समर्पण किया है। मानसकार ने अपने महाकाव्य में नवधा भक्ति भी प्रस्तुत की है। यह नवधा भक्ति रामत्व तक पहुंचने के लिये समस्त सत्व गुणीय सोपानों के संघ रूप में वर्णित हुई है। भक्ति की इन नौ विधाओं में तुलसी ने सत्संग, भगवत्कथा में अनुराग, गुरु भक्ति, प्रभु के गुणों का निष्कपट होकर गायन, भगवन्नाम जप, इन्द्रिय-दमन व अनेकानेक कर्मों से विरक्त होकर सज्जनों के धर्म का निर्वाह, समान भाव से समस्त विश्व में परम प्रभु का दर्शन, यथा लाभ संतोष व परदोष दर्शनोपेक्षा, सरल स्वभाव तथा सुख-दुःख में सम मनः स्थिति रखना आदि को स्थान दिया है। तुलसी के अनुसार सात्विक, वृत्तियों से अन्वित अंतःकरण में ही भक्ति-भाव की स्थिति संभव है। मानसकार ने हरि भक्तों की विशिष्ट महिमा को स्वीकार करते हुए उनके प्रति अपनी गहरी आस्था व्यक्त की है। भक्ति के विवेचन में उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि जितने भी सत्कार्य हैं वे सभी भक्ति भाव के ही रूप हैं। इस तरह उन्होंने भक्ति मार्ग को लोक कल्याण से पोषित कर मानस को लोक-कल्याण-साधक-ग्रन्थ बना दिया है।

आनन्द रामायणकार ने अपने गौरव ग्रन्थ में वैधी भक्ति को अधिक महत्व प्रदान किया है। भक्त अपनी समर्पण भावना को मूर्त

रूप में विभिन्न अर्चन विधियों के द्वारा सम्पुष्ट करता है। विधि-विधान से आराध्य के अर्चन तथा उसके प्रति समर्पण के साथ जीवन-यापन की पद्धति वैधी भक्ति के नाम से अभिहित है। आनन्द रामायण में इस भक्ति- पद्धति के विभिन्न चित्र प्राप्त होते हैं। इसके साथ ही ग्रन्थकार ने प्रेमा-भक्ति की भावपूर्ण व्यंजना भी की है। नवधा भक्ति का निरूपण आनन्द रामायण में कुछ भिन्न पद्धति से हुआ है। ग्रन्थकार ने श्रीमद् भागवत में वर्णित नवधा भक्ति के अनुसार ही प्रस्तुत प्रसंग का वर्णन किया है। कवि अपने आराध्य के प्रति तो निष्ठावान है ही, साथ ही उसने अपने आराध्य के प्रति रखे श्रद्धावनत समस्त महामहिम व्यक्तित्वों को भी अपनी भक्ति का आश्रय बनाया है। मूल रूप में उसकी यह भक्ति भावना अपने आराध्य को ही समर्पित हुई है।

इस प्रकार भक्ति विषयक अनेकानेक मान्यताओं के प्रति दोनों साहित्यकारों के विचारों में कतिपय विषमताएँ अवश्य हैं, किन्तु आराध्य राम के प्रति दोनों की निष्ठा और समर्पण भावना तुल्य है।

सप्तम अध्याय में ब्रह्म, जीव, माया, जगत तथा मोक्ष का विश्लेषण तुलनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। गोस्वामी जी ने विभिन्न दार्शनिक ग्रन्थों का दोहन करने के पश्चात् अपने काव्य-ग्रन्थों के माध्यम से अपना एक विशिष्ट दर्शन प्रस्तुत किया है। दार्शनिक विवेचन के क्षेत्र में आनन्द रामायण तथा रामचरित मानस में पर्याप्त समानता विद्यमान है। तत्व वेत्ताओं ने अखिल विश्व में व्याप्त, विश्व-नियन्ता, अनादि, अनन्त, अज, अकल, अगोचर तथा अनीह गुण-बोधक एवं परम ज्योति के पुंज को ब्रह्म कहा है। आनन्द रामायणकार व मानसकार दोनों ही कवियों ने भी राम को ब्रह्म की उपर्युक्त समस्त विशेषताओं से सम्पन्न माना है। ब्रह्म की विभिन्न लीलाओं का केन्द्र जीव है।

ब्रह्म ही लीला करने के लिए अगणित जीवों के रूप में व्यक्त हो जाता है। वस्तुतः ब्रह्म और जीव का पार्थक्य माया जन्य है। माया मुक्त जीव आत्म स्वरूप को जान लेता है तथा स्वयं ब्रह्म रूप हो जाता है। दोनों ग्रन्थकारों ने जगत् के अन्तराल में इन्द्रिय अनुभवगम्य समस्त विनाशी तत्वों को माया कहा है। परम सत्ता के प्रति अनास्था को प्रेरित करने वाली मेरे-तेरे की भावना माया के द्वारा ही उत्पन्न होती है। यह माया अत्यधिक बलवती है। शिव,ब्रह्मादि देवता भी इसका लोहा मानते हैं। दोनों ग्रन्थों में माया से मुक्ति के दो उपाय इंगित किये गये हैं- ज्ञान तथा भक्ति। ज्ञान मार्ग अत्यन्त दुरूह तथा भक्ति मार्ग अतीव सुगम तथा सर्वसुलभ है। निराकार वादियों ने जगत् को असत्य मानकर इससे विरक्त होने की प्रेरणा दी है किन्तु साकार वादियों ने जगत् को ब्रह्म की लीला भूमि के रूप में देखते हुए इसके प्रति अपनी आसक्ति रहित आस्था प्रकट की है। इसीलिए इन भक्तों ने मोक्ष की आकांक्षा न कर जन्म-जन्मान्तर में अपने प्रभु की भक्ति की याचना की है। दोनों काव्य ग्रन्थ जगत को मिथ्या एवं बन्धन का हेतु मानते हुए इसके प्रति अनासक्ति की स्थिति बनाये रखने की प्रेरणा देते हैं। मुक्तात्मा द्वारा ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त कर लेना ही मोक्ष है। मोक्ष की स्थिति में आत्मा सर्वज्ञ हो जाता है। उसे अन्य किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं होती। अतः संसार में पुनरागमन की उसकी कोई संभावना नहीं रहती। दोनों कवियों ने अपने ग्रन्थों में मोक्ष के लिये कर्म-संन्यास की आवश्यकता पर बल दियाहै। कर्म के संस्कारों का जो मल चित्त पर लग जाता है वह प्रवृत्तिमार्ग से नहीं छूटता। इस निवृत्ति के लिए आत्म-ज्ञान की आवश्यकता होती है। दोनों मनीषियों ने परमार्थ चिन्तन को मोक्ष का साधन बतलाया है तथा भक्ति को परम परमार्थ के रूप में स्वीकार कियाहै। इस प्रकार दोनों ही काव्य ग्रन्थों में भक्ति से मुक्ति की प्राप्ति बतलायी गयी है।

उपसंहार में उभय काव्य ग्रन्थों के विभिन्न तुलनात्मक विवेचनों

प्रस्तुत किये गये हैं।

इस शोध-साधना में अनेक विद्वानों के स्नेह और सौजन्य का प्रसाद प्राप्त हुआ है। आचार्य विद्या निवास मिश्र कुलपति काशी विद्यापीठ काशी, डा० शिवप्रसाद सिंह- पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष काशी विश्व विद्यालय, डा० मुंशी राम शर्मा "सोम"- पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, डी०ए०वी० कालेज कानपुर, डा० प्रेम नारायण शुक्ल- पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, डी०ए०वी० कालेज कानपुर डा० मोहन अवस्थी- आचार्य हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्व विद्यालय, डा० सरला शुक्ल- पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष लखनऊ विश्व विद्यालय, कुंवर अविनाश चंद्रसिंह- पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग मगध विश्वविद्यालय- डॉ० जगदीश गुप्त पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय —

इन समस्त आदरणीय विद्वानों का मैं हृदय से आभारी हूं। इनके ग्रन्थों तथा विचारों से मैं लाभान्वित हुआ हूं। मैं अपने निर्देशक डा० विश्वम्भर दयालु अवस्थी, डी०लिट०, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज अतर्रा, बांदा के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूं।

अतर्रा कालेज के प्रधानाचार्य डा० ब्रज नारायण द्विवेदी का भी मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूं जिन्होंने अनेक संदर्भ ग्रन्थों के अध्ययन की सुविधा प्रदान कर मेरी भ्रांति को शांति में परिणित कर दिया है।

दिनांक: — विनोद कुमार त्रिपाठी

आनन्द रामायण एवं रामचरित मानस का
तुलनात्मक अध्ययन

(विस्तृत रूपरेखा)

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन

प्रथम अध्याय: 17-93

कथा शिल्प

आनन्द रामायण और रामचरित मानस का कथा शिल्प।

साम्य और वैषम्य।

आनन्द रामायण के प्रथम काण्ड-सार काण्ड के 13 सर्गों में राम चरित मानस के सप्त काण्डों की कथा का अन्तर्भाव।

आनन्द रामायण के शेष 8 काण्डों-यात्रा काण्ड, याग काण्ड, विलास काण्ड, जन्म काण्ड, विवाह काण्ड, राज्य काण्ड, मनोहर काण्ड, पूर्ण काण्ड में रामकथा के प्रसिद्ध आख्यानों के अतिरिक्त आख्यानों का उल्लेख।

कथा प्रसंगों में साम्य और वैषम्य।

द्वितीय अध्याय: 95-199

चरित्र चित्रण

आनन्द रामायण और रामचरित मानस के पात्रों का चरित्र चित्रण, साम्य और वैषम्य।

राम चरित मानस के प्रमुख पात्रों-दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनुमान, रावण, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, सीता, मंदोदरी का चरित्र चित्रण।

आनन्द रामायण में उपर्युक्त पात्रों के अतिरिक्त निम्नांकित

पृष्ठ संख्या

[illegible]

राम चरित मानस में साध्या भक्ति और साधन भक्ति (नवधा भक्ति) का स्वरूप।

साम्य और वैषम्य।

आनन्द रामायण में साध्या भक्ति और साधन भक्ति (नवधा भक्ति) का स्वरूप। ~~475-539~~

साम्य और वैषम्य

सप्तम अध्याय:

<u>दार्शनिक-विवेचन</u> 475-539

राम चरित मानस में ब्रह्म, जीव, माया, जगत्, मोक्ष और मोक्ष के साधनों का प्रतिपादन।

आनन्द रामायण में ब्रह्म, जीव, माया, जगत, मोक्ष और मोक्ष के साधनों का प्रतिपादन।

साम्य और वैषम्य।

उपसंहार: 540-544

आनन्द रामायण और रामचरित मानस के तुलनात्मक अध्ययन के निष्कर्ष।

क- आनन्द रामायण और रामचरित मानस के कथा शिल्प संबंधी तुलनात्मक अध्ययन के निष्कर्ष

ख- आनन्द रामायण और रामचरित मानस के चरित्र चित्रण संबंधी तुलनात्मक अध्ययन के निष्कर्ष।

ग- आनन्द रामायण और रामचरित मानस के प्रकृति चित्रण संबंधी तुलनात्मक अध्ययन के निष्कर्ष।

घ- आनन्द रामायण और रामचरित मानस के रस विवेचन संबंधी तुलनात्मक अध्ययन के निष्कर्ष।

ङ- आनन्द रामायण और रामचरित मानस के काव्य शैली संबंधी तुलनात्मक अध्ययन के निष्कर्ष।

च- आनन्द रामायण और रामचरित मानस के भक्ति विवेचन संबंधी तुलनात्मक अध्ययन के निष्कर्ष।

छ- आनन्द रामायण और रामचरित मानस के दार्शनिक-विवेचन संबंधी तुलनात्मक अध्ययन के निष्कर्ष।

सहायक ग्रन्थ: पृ० 545-546

प्रथम अध्याय

(कथा- शिल्प)

प्रथम अध्याय

कथा- शिल्प

आनन्द रामायण और रामचरित मानस का कथा-शिल्प :

अनेक गौरव गाथाओं से गौरवान्वित महिमामयी भारत वसुन्धरा पर अनेकानेक कवि-रत्न उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने अपनी पावन लेखनी से मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम की धवल कीर्ति का गायन किया है। सभी ने अपने- अपने ढंग से परम प्रभु का गुण-गान किया है। फलतः अनेक रामायणों की सृष्टि संभव हो सकी है -

" नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा।।"

अध्यात्म-रामायण, अग्निवेश रामायण, भुशुण्डि रामायण, आनन्द रामायण, जैमिनी रामायण, ब्रह्म-रामायण, मंगल-रामायण ~~आदि अनेक राम-काव्य और~~ नारद रामायण, पुलस्त्य-रामायण, वशिष्ठ रामायण आदि अनेक राम-काव्य भावुक भक्तों के हृदय को आनंदित करते रहते हैं । अधिकांश रामायणकार भगवान राम के जन्म से अपनी कथावस्तु प्रारम्भ करते हैं तथा विभिन्न कथाओं को कहते हुए रावण विजय करा-कर उन्हें अयोध्या वापस लाकर राजगद्दी पर बैठा देते हैं । वहीं उनकी कथा समाप्त हो जाती है। किन्तु आनन्द रामायण कार ने ■■ ■■ इस सम्पूर्ण कथावस्तु को अपने " सारकाण्ड" नाम के एक काण्ड में ही कह डाला है । इसके बाद शेष आठ काण्डों में उन्होंने भगवान के ऐसे चरित्रों का वर्णन किया है, जिन चरित्रों तक अन्य कवियों की कल्पना भी नहीं पहुंच पायी ।

श्री मद् राम चरित मानस की कथा का मूलाधार वाल्मीकीय रामायण है। यद्यपि इसमें कथांश वही है परन्तु कथा के विस्तार में अन्य ग्रन्थों से भी सहायता ली गयी है। इसका संकेत महात्मा तुलसी ने मानस

के प्रारंभ में मंगलाचरण में दिया है ।[1]

दोनों ग्रन्थों की कथावस्तु का तुलनात्मक विवेचन करने से पूर्व उनका कथानक-क्रम जान लेना परम अनिवार्य है ।

मानस में बाल काण्ड की कथावस्तु :

मानस में ग्रन्थ का आरम्भ नमस्कारात्मक मंगलाचरण से हुआ है। तत्पश्चात् कवि संत तथा असंतों की वन्दना कर अपने पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कवियों कीभी वन्दना करता है। वन्दना-प्रकरण में देव, विप्र, संत, खल, कवि, वाल्मीकि, वेद, ब्रह्मा, शिव रामधाम, सीताराम रूप तथा श्री राम नाम सभी की विस्तृत वन्दना की गय है। वन्दना के पश्चात कवि ने अपनी दीनता प्रदर्शित की है जोकवि के अंतःकरण की पवित्रता तथा अहंकार-शून्यता की परिचायक है । तदुपरान्त कवि ने राम-गुण-वर्णन, नाम-कथा तथा चरित माहात्म्य का उल्लेख किया है ।

इतनी सुदृढ़ भूमिका के पश्चात गोस्वामी जी आलंकारिक रीति से मानस का प्रसंग प्रारंभ करते हैं । इस राम कथा के चार वाचक और श्रोता हैं जो राम विषयक जिज्ञासा एवं उसके समाधान से कथा का उद्घाटन करते हैं । तत्पश्चात मानस में राम-जन्म के अनेक कारणों का उल्लेख है । आसुरी अनैतिकताओं से आकुलित पृथ्वी का भार हरण करने के लिए राम अयोध्या नरेश दशरथ के घर में अवतरित होते हैं । राम की बाल-लीलाओं के मनोरम चित्रण के उपरान्त विश्वामित्र की यज्ञ-रक्षा का प्रसंग वर्णित है ।

---

1. नानापुराण निगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतो पि ।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ।।

रा.च.मा.-1 प्रारंभिक 7 वाँ श्लोक

इस प्रसंग में ताटिका वधिनी और सुबाहु आदि का वध तथा मारीच का क्षेपण वर्णित है। अहल्योद्धार के बाद विश्वामित्र राम लक्ष्मण को लेकर राजा जनक का धनुष यज्ञ देखने जाते हैं। यहीं पर पुष्प वाटिका निरीक्षण करते समय राम का सीता से प्रथम मिलन दर्शाया गया है। सीता स्वयंवर का चित्ताकर्षक चित्रण करने के पश्चात् धनुर्भंग वर्णित है। धनुर्भंग की घोर ध्वनि को सुनकर परशुराम जी आगमन तथा लक्ष्मण-परशुराम का ओजपूर्ण संवाद उल्लिखित है। तत्पश्चात विवाह-संस्कार तथा अयोध्या में सबके पुनरागमन के सुखद उत्सवों व समारोहों का वर्णन है। यहीं पर प्रथम सोपान की कथा विश्राम ले लेती है।

आनन्द रामायण के प्रथम काण्ड-सार काण्ड में मानस के बाल-काण्ड की कथा का अन्तर्भाव :

रामचरित मानस के प्रथम सोपान में जो कथा वर्णित है वह आनन्द रामायण के सारकाण्ड के प्रथम तीन सर्गों में ही समाहित है। आनन्द रामायण में सर्वप्रथम कवि ने एक श्लोक में श्री राम जी की वंदना की है तदुपरान्त उन्होंने ग्रन्थारम्भ से ही राम-कथा मंदाकिनी प्रवाहित कर दी है। भगवान शंकर से भगवती पार्वती श्री राम जी के आनन्द दायक कर्म तथा उनके जन्म आदि की कथा वर्णन करने के लिए प्रार्थना करतीं हैं। भगवान शंकर इस प्रार्थना को स्वीकार कर कथा प्रारंभ कर देते हैं। सार काण्ड के प्रथम सर्ग में सर्वप्रथम रघुवंश की संक्षिप्त वंशावली कहकर कवि ने महाराज दशरथ व कोशल नरेश की पुत्री कौशल्या के गांधर्व विवाह का वर्णन किया है। तत्पश्चात राजा दशरथ का सुमित्रा तथा कैकेयी के साथ विवाह कहकर देवासुर संग्राम की कथा का उल्लेख किया गया है। परम प्रतापी महाराज दशरथ देवताओं की सहायतार्थ देवासुर संग्राम में भाग लेते हैं तथा वीरांगना कैकेयी भी अपने वीर पति के साथ रथारूढ़ होकर युद्ध क्षेत्र में जाती है। महाराज दशरथ कैकेयी की वीरता से प्रभावित होकर उसे दो वरदान देने का प्रण करते

है। देवासुर संग्राम से सकुशल अयोध्या लौट आने की कथा के बाद कवि ने श्रवण कुमार के वध तथा उसके अंधे माता-पिता द्वारा दशरथ को शाप देने की कथा का उल्लेख किया है। तत्पश्चात् ऋष्यशृंग द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ के आयोजन की कथा कहकर कवि ने इस सर्ग की कथा को विश्राम दिया है।

द्वितीय सर्ग में राक्षसों के पापाचार से दुःखित पृथ्वी का दुःख दूर करने के लिए भगवान राम का अपने अंशों सहित दशरथ के घर में अवतार लेने की कथा का उल्लेख है। राम - लक्ष्मण - भरत - शत्रुघ्न की बाल लीला का मनोहर चित्रण करके कवि ने इस सर्ग की कथा को भी विश्राम दे दिया है।

तृतीय सर्ग में मुनि विश्वामित्र की यज्ञ- रक्षा करने के बाद राम व लक्ष्मण का विश्वामित्र जी के साथ जनकपुर प्रस्थान तथा मार्ग में अहल्योद्धार की कथा का उल्लेख है। धनुष यज्ञ में आये हुए विभिन्न महिपालों के धनु-कर्षण में असमर्थ हो जाने पर भी राम द्वारा शिव-धनुष के खण्डन तथा श्री सीताराम विवाह का रमणीय वर्णन करने के पश्चात कवि ने बारात के एक माह बाद अयोध्या वापस आने का उल्लेख किया है। मार्ग में राम परशुराम का साक्षात्कार उल्लिखित कर कवि ने परशुराम जी के गर्व को राम जी के श्री चरणों में समर्पित करवा दिया है। इसके बाद बारात का अयोध्या में पुनरागमन तथा विभिन्न उत्सवों व समारोहों का चित्रण कर आनन्द रामायणकार ने इस सर्ग की कथा को यति दे दी है।

<u>तुलनात्मक समीक्षा :</u>

दोनों ग्रन्थों में बालकाण्ड की कथावस्तु की रूपरेखा प्रस्तुत करने के बाद दोनों में साम्य एवं वैषम्य पर विचार कर लेना अत्यावश्यक है।

कथा का आरंभ किया क्योंकि स्वयं भरद्वाज ने भी "जाहि कहत त्रिपुरारि" कहकर शिव को राम का अनन्य भक्त माना है। यहीं नहीं स्वयं भगवान शंकर ने भी उस श्रुति परम्परा का निर्वाह करते हुए ही श्री पार्वती जी को राम-कथा-रस-पान कराया है।[1] इस प्रकार मानस में भी संवाद-परम्परा आदि से लेकर अंत तक बनी रहती है। इस दृष्टि से इन दोनों ग्रन्थों में साम्य स्थापित किया जा सकता है।

आनन्द रामायण के सारकाण्ड में जो कथा प्रथम सर्ग में वर्णित है उस कथा का मानस में अभाव है। इस सर्ग में कवि ने दशरथ कौशल्या विवाह का वर्णन कर रावण-वध की भूमिका अतीव रहस्यात्मक ढंग से प्रस्तुत की है। कवि ने देवासुर संग्राम का वर्णन कर महाराज दशरथ के पराक्रम व साहस का चित्रण किया है। रामचरित मानस में दशरथ के वीर पक्ष का सर्वथा अभाव है। मानस में केवल दशरथ के सत्य-प्रेम पर प्रकाश डाला गया है।

श्रृंग ऋषि द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ करवाने का प्रकरण रामायण एवं मानस दोनों में मिलता है। आनन्द रामायण में महाराज दशरथ गुरु वशिष्ठ से श्रवण कुमार की हत्या का हाल बताते हैं तथा उसके अंधे माता-पिता द्वारा दिये गए शाप का भी कथन करते हैं। कुछ दिनों बाद वशिष्ठ जी ने राजा की शोक-निवृत्ति तथा पुत्र प्राप्ति के लिए ऋष्यश्रृंग को बुलाकर सरयू किनारे यज्ञ करवाया।[2]

मानस में महाराज दशरथ अपने निपुत्री होने के दुःख को गुरु वशिष्ठ से निवेदित करते हैं। वशिष्ठ जी उन्हें सान्त्वना देते हैं

---

1. सुनु सुभ कथा भवानि, राम चरित मानस बिमल ।
   कहा भुसुंडि बखानि, सुना बिहग नायक गरुड़ ॥

   रा० च० मा० 1/120/

2. आ० रा० 1/1/95,96

धनुष-यज्ञ प्रसंग में भी दोनों ग्रन्थों में पर्याप्त वैषम्य है। भगवान शंकर का परम पुनीत आयुध अजगव राजा जनक के घर में किस तरह आया, इस कथानक का राम चरित मानस में अभाव है। आनन्द रामायण में शिव जी स्वयं इस कथानक को पार्वती जी से कहते हैं। उन्होंने बतलाया कि जब परशुराम ने मुझसे धनुर्विद्या प्राप्त की तब मैंने उनको अजगव धनुष दिया था। परशुराम ने उस धनुष से अपने शत्रु सहस्त्रार्जुन का वध किया। तत्पश्चात वे उस धनुष को राजा जनक के यहाँ रख आए। श्री जानकी जी उस धनुष को लकड़ी का घोड़ा बनाकर उस पर खेला करती थीं। इस व्यवहार से परशुराम जी सीता को लक्ष्मी समझने लगे थे तथा वह धनुष राजा को प्रतिज्ञार्थ दे दिया।[1]

आनन्द रामायण तथा राम चरित मानस दोनों ग्रन्थों के अनुसार देश देशान्तर के महिपाल सीता स्वयंवर में आये। लंकापति रावण तथा शोणित पुराधीश बाणासुर भी इस आयोजन में सम्मिलित हुए। मानस के अनुसार ये दोनों योद्धा धनुष के दर्शन मात्र करके वापस चले गए।[2] परन्तु आनन्द रामायण के अनुसार रावण ने धनुष के चढ़ाने में पूरी शक्ति का प्रयोग किया है। रावण ने अपनी उन्नीस भुजाओं से उस महान धनुष को संभाला तथा बीसवीं भुजा से जमीन पर लटकती हुई तांत को ज्यों ही ऊपर को उठाना चाहा त्यों ही वह धनुष उलट कर उसकी छाती पर गिर पड़ा। धनुष के ऊपर गिरते ही रावण धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा अपनी पूरी शक्ति लगाने पर भी वह धनुष को अपने ऊपर से न हटा सका। उसकी आँखें घूमने लगीं। यहाँ तक कि उसने अपने सुन्दर वस्त्रों में ही मल-मूत्र का त्याग कर दिया।[3]

---

1. आ. रा. - 1/3/59 व 60/
2. रावनु बानु महाभट भारे।
   देखि सरासन गवँहि सिधारे॥ रा.च. मा. 1/249/2
3. आ. रा. 1/3/81

रावण की इस प्राण घातक स्थिति को देखकर महर्षि विश्वामित्र जी ने राम को आदेश दिया कि राम उठो तथा धनुष को अपने हाथों में सज्जित करके रावण के प्राणों की रक्षा करो । राम ने गुरुआज्ञा का पालन करके शिव-धनुष का खण्डन कर दिया तथा रावण के प्राणों की रक्षा की ।

श्री राम जी को धनुर्भंग के लिए जाते हुए देखकर श्री सीता जी की मन:स्थिति का चित्रण दोनों ही ग्रन्थों में हुआ है। इस प्रसंग में भी दोनों ग्रन्थों में पर्याप्त भिन्नता है। मानस में इस अवसर पर श्री जानकी जी ने जो कुछ भी कहा है वह अमर्यादित नहीं है। वे श्री राम जी के सौन्दर्य को देखकर तथा अपने पिता द्वारा किए गये कठिन प्रण की स्मृति करके विक्षुब्ध हो उठती हैं । अपने इष्ट देवताओं से वे धनुष को भारहीन करने की प्रार्थना करती हैं। भगवान शंकर के प्रिय आयुध अजगव से स्वयं के भाव भीनी अभ्यर्थना करती हैं कि वह श्री राम के हाथों का स्पर्श प्राप्त करके अपने गुरुत्व को लघुत्व में बदल दें ।[1] यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि महाकवि तुलसी ने इस प्रसंग में सीता को एक आदर्श कन्या के रूप में चित्रित किया है। एक भी शब्द सीता के मुख से बाहर नहीं होने दिया है। कवि ने इस प्रकरण में जो भी लिखा है वह महामाया श्री जानकी जी के विचार जगत से संबंधित है। मर्यादा का विचार करके ही श्री सीता जी अपनी वाणी को मुख से बाहर नहीं होने देतीं।

---

1. निज जड़ता लोगन्ह पर डारी ।
   होहु हरुअ रघुपतिहिं निहारी ॥ — रा.च.मा. 1/257/7

2. गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी ।
   प्रगट न लाज निसा अवलोकी ॥ — रा.च.मा. 1/258/1

मानस में अयोध्याकाण्ड की कथा वस्तु :

महा कवि तुलसी मानस के द्वितीय सोपान अवध काण्ड की कथा का प्रारम्भ शिव राम तथा गुरु की वन्दना से करते हैं । अयोध्या के उत्तरोत्तर आनन्द एवं ऐश्वर्य वर्द्धन का उल्लेख कर तुलसी दशरथ की राम राज्याभिषेक की लालसा को व्यक्त करते हैं । अवध में आनन्दो-त्सव होते हैं। गुरु वशिष्ठ राम को संयम नियम आदि का उपदेश देते हैं। परन्तु इसी मध्य देवों से प्रेरित शारदा मन्थरा की बुद्धि परिवर्तित कर देती है। अवध के आनन्द प्रमोद का कारण जानते ही मन्थरा का हृदय जल उठता है और वह कैकेयी को उकसाने का प्रयास करती है। मंथरा के कुतर्कों से प्रभावित होकर कैकेयी कोपभवन चली जाती है। कुवेशधारिणी कैकेयी को देख दशरथ आशंकित हो उठते हैं तथा उसे प्रसन्न करने की चेष्टा करते हैं। दशरथ को वचनबद्ध कर कैकेयी दो वरदान मांगती है- भरत को राज्याभिषेक व राम को चौदह वर्ष का वनवास । दशरथ यह सुनते ही चेतना शून्य हो जाते हैं । सुमन्त्र दशरथ की इस दशा को देख-कर राम को बुलाने जाते हैं । राम अपनी सहर्ष स्वीकृति से दशरथ व कैकेयी को सन्तुष्ट करते हैं। समस्त अयोध्यावासी दुखित होकर कैकेयी की निन्दा करते हैं। विप्र- पत्नियाँ कैकेयी को प्रबोधित करने की चेष्टा [illegible] करती हैं ।परन्तु कैकेयी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

कौशल्या राम से यह दुखद संवाद सुनते ही व्याकुल हो उठती है लेकिन तुरन्त संभल ही राम को वन गमन का आदेश दे देती हैं। यहाँ पर राम वन के कष्टों को कहकर सीता को साथ में वन जाने से रोकते हैं पर उनकी अनन्य निष्ठा देखकर साथ चलने की अनुमति दे देते हैं । लक्ष्मण भी राम के साथ चलने का आग्रह करते हैं और अंततः राम की स्वीकृति प्राप्त कर के माता सुमित्रा से विदा लेते हैं । श्रीराम , लक्ष्मण व जानकी के अयोध्या छोड़ते ही समस्त पुरवासी प्रलाप करने लगते हैं। राम शृंगवेरपुर पहुंचते हैं। निषाद राम का स्वागत करता है

रात्रि में निषाद तथा लक्ष्मण की आध्यात्मिक चर्चा होती है। राम बहुत समझा बुझाकर सुमंत को अयोध्या के लिये विदा करते हैं । इधर केवट हठ पूर्वक श्री राम के चरणों को पखार ही उन्हें गंगा पार पहुंचाता है। अनुज तथा जानकी के सहित श्री राम जी प्रयाग राज पहुंचकर त्रिवेणी दर्शन करते हैं तथा भरद्वाजाश्रम पहुंचते हैं ।

वन-मार्ग में बटोही राम को देखकर अनेक ग्रामों के नर-नारी भाव-विभोर हो उठते हैं। तत्पश्चात वे श्री वाल्मीकि जी के आश्रम में पहुंचते हैं ।महर्षि राम के तात्त्विक स्वरूप का विवेचन करके उन्हें चित्रकूट गिरि में निवास करने की सलाह देते हैं । राम सुख पूर्वक चित्रकूट में निवास करने लगते हैं ।

इधर अयोध्या में सुमंत को अकेला लौटा हुआ देखकर विरह के कारण नृप दशरथ मरण दशा को प्राप्त हो जाते हैं । भरत को अपने ननिहाल से अयोध्या बुलवाया जाता है। कैकेयी उन्हें पूर्व समाचारों से अवगत कराती है। भरत घोर पश्चाताप करके कैकेयी की निन्दा करते हैं/पिता दशरथ की अन्त्येष्टि क्रियादि से निवृत्त होने के बाद वशिष्ठ जी भरत से राज्य -सत्ता संभालने का आग्रह करते हैं । भरत उसका प्रतिरोध करके चित्रकूट जाने का निश्चय करते हैं। समस्त पुरवासियों के साथ भरत चित्रकूट के लिए प्रस्थान करते हैं। शृंगवेरपुर में गुह ने भरत को राम का विरोधी मान कर मन में बैर ठान लिया परन्तु वास्तविकता को समझकर गुह एवं भरत का प्रेमपूर्ण मिलाप हुआ। भरत देवनदी गंगा को पार करके प्रयाग राज पहुंचे जहाँ भरद्वाज मुनि ने सभी का स्वागत किया।

भरतागमन देखकर राम का हृदय हर्ष- विषाद से युक्त हो गया। लक्ष्मण जी यह देखकर रुष्ट हो उठे किन्तु आकाशवाणी सुनकर उनका क्रोध शान्त हो गया। राम ने भी भरत के गुणों की चर्चा करके लक्ष्मण को शिक्षा दी। चित्रकूट में राम-भरत का आत्म विभोर करने वाला मिलन हुआ। वशिष्ठ एवं भरत संवाद होने के पश्चात भरत सभा में विनीत

वाणी से अपनी दीन पुकार कर उठे। राम व भरत का शील-स्नेह समन्वित वार्तालाप हुआ। इसी बीच राजा जनक का आगमन हुआ। जनक व वशिष्ठ जी की शांतिमयी वार्ता हुयी। सुनयना तथा कौशल्यादि का समागम हुआ। सभी ने भरत की प्रशंसा की। भरत ने बारम्बार राम से वापस अयोध्या आने की प्रार्थना की। राम ने भरत को पूर्णतः सन्तुष्ट करके अपनी चरण-पादुका देकर विदा किया। भरत द्वारा राम के राज्याभिषेक के लिये लाया हुआ जल एक कूप में डाल दिया गया जो "भरतकूप" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सभी ने अयोध्या की ओर प्रस्थान कर दिया। राजा जनक ने अवध राज्य की सुव्यवस्था करके जनक पुरी को प्रस्थान किया। पुरवासियों के सहित भरत नियम पूर्वक अपने कर्तव्य का निर्वाह करते हुए अयोध्या में निवास करने लगे। भरत की प्रशंसा एवं माहात्म्य द्वारा मानसकार ने अपने ग्रन्थ के इस सोपान का उपसंहार किया है।

आनन्द रामायण के सार काण्ड में मानस के अयोध्याकाण्ड की कथा का अन्तर्भाव :

आनंद रामायण में सारकाण्ड के छठें सर्ग में मानस के अयोध्या-काण्ड की कथावस्तु का संक्षिप्त समावेश है। देवर्षि नारद देवताओं का संदेश लेकर राम से कहते हैं कि वे प्रथम रावण का वध करें तत्पश्चात् राज्य सिंहासनारूढ़ हों। श्री राम व सीता का परस्पर वन गमन संबंधी परामर्श होता है। इधर राम के राज्याभिषेक की तैयारी प्रारम्भ होती है। नगर की अनुपम सजावट को देखकर तथा राम के राज-तिलक का प्रसंग सुनकर देव प्रेरित सरस्वती की माया से मोहित मंथरा कैकेयी के पास जाकर उसे उत्तेजित करती है तथा धरोहर स्वरूप रखे अपने दोनों वरदान माँगने के लिए प्रेरित करती है। कैकेयी अमंगल वेश बनाकर कोप भवन में प्रवेश करती है। महाराज दशरथ उसके पास पहुँचते हैं तथा वरदान की बात सुनकर खिन्न हो जाते हैं। श्री राम प्रातःकाल पिता जी के पास जाते हैं तथा उनको धैर्य दिलाते हैं। श्री सीता व

लक्ष्मण भी साथ में वन जाने के लिये तैयार हो जाते हैं। समस्त अयोध्या वासी उदासी वेश में श्री राम को देखकर व्याकुल हो जाते हैं। तब मुनि वामदेव नारद का आगमन, राम की प्रतिज्ञा, रावण का वध, तथा विष्णु का मनुष्य रूप धारण करना आदि वृत्तान्त सुनाकर सब को सान्त्वना प्रदान करते हैं। महाराज दशरथ मंत्री सुमंत्र को रथ लेकर राम के साथ वन भेजते हैं। शृंगवेर पुर तक सुमंत्र साथ में जाते हैं। वहाँ से राम विनम्र प्रार्थना करके उन्हें अयोध्या वापस लौटा देते हैं। श्री राम जी गंगा पार करके प्रयाग राज होते हुए चित्रकूट पहुंचते हैं तथा वहाँ एक मनोहर पर्णकुटी बनवाकर निवास करने लगते हैं। यहीं पर आनन्द रामायण कार ने इन्द्र पुत्र जयंत की कुटिलता के प्रसंग को भी रख दिया है। जयंत कौए का रूप रखकर सीता के चरण पर चोंच का प्रहार करके भागता है। राम-मंत्र प्रेरित सींक के बाण से त्रैलोक्य में कहीं भी उसकी रक्षा न हो सकी। नारद के मार्ग-दर्शन से वह पुनः राम की शरण में आया। श्रीराम ने उसकी एक आँख मात्र फोड़कर उसे जीवन दान दे दिया।

उधर सुमंत्र अवध पहुंचकर राजा दशरथ से सब वृत्तांत निवेदित किया। राम-विरह में नृप दशरथ ने अपने प्राण त्याग दिये। गुरु वशिष्ठ जी ने भरत व शत्रुघ्न को ननिहाल से बुलवाया। भरत ने आकर कैकेयी को अत्यधिक धिक्कारा तथा पिता की सभी उत्तर क्रियायें सम्पन्न कीं।

भरत श्री राम जी को वापस लाने के लिए चित्रकूट जाते हैं। मंत्रियों, माताओं तथा पुरवासियों के साथ भरत शृंगवेरपुर में निषाद का आतिथ्य स्वीकार करके प्रयागराज होते हुए चित्रकूट पहुँचे। राम से राज्य स्वीकार करने के लिए वे बारम्बार प्रार्थना करते हैं पर राम उसको अस्वीकार ही करते गये। तब भरत कुशासन पर बैठकर अनशन करने लगते हैं। श्री वशिष्ठ जी भरत को राम के अवतार व वन जाने के कारण के विषय में समझाते हैं। भरत श्री राम जी की चरण-पादुकायें लेकर इस शर्त पर वापस होते हैं कि यदि राम निश्चित समय पर नहीं लौटेंगे तो वे अग्नि में प्रवेश कर जायेंगे।

भरत अयोध्या में साक्षात ब्रह्म-मुनि की भाँति उदासीन जीवन बिताने लगे। राम भी चित्रकूट में मुनियों से सत्कार प्राप्त करके सानन्द रहने लगे। चित्रकूट में लोगों का विशेष आवागमन देखकर राम ने वह स्थान छोड़ दिया तथा अत्रि मुनि के आश्रम की ओर चल पड़े। मुनि पत्नी अनुसूया ने सीता को सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करके शुभाशीष प्रदान किया। यहाँ पर आनन्द रामायण कार ने इस सर्ग की कथा को विराम प्रदान किया है।

<u>तुलनात्मक समीक्षा</u> :

आनन्द रामायण व मानस में अयोध्या काण्ड के कथा-क्रम में कई स्थलों पर वैभिन्य के दर्शन होते हैं। आनन्द रामायण में देवर्षि नारद स्वयं आकर भगवान राम से कहते हैं कि आप राज्य सिंहासन को छोड़ कर प्रथम रावण का वध कीजिए।[1] मानस में इस तरह के किसी भी कथानक का उल्लेख नहीं है।

श्री राम जी नारद का संदेश श्री सीता जी को कहते हैं तथा उन्हें घर में ही रहकर अपने माता-पिता की सेवा करने को कहते हैं। श्री सीता जी हठ पूर्वक राम जी के साथ वन जाने का आग्रह करती हैं। इस प्रकरण में श्री जानकी जी ने साथ में वन जाने के दो कारण बताये हैं इनका मानस में अभाव है। प्रथम कारण वे इस प्रकार बतलाती हैं कि हे प्रभु! बाल्यावस्था में मेरी हस्त रेखा देखकर एक ब्राह्मण ने कहा था कि तुम अपने पति के साथ वनवास करोगी। अतः आप के साथ जाने से उस ब्राह्मण की बात सत्य हो जायेगी।[2] द्वितीय कारण बतलाती हुयी वे कहती हैं कि जब आप मेरे स्वयंवर में सभा के मध्य धनुष चढ़ाने के लिये चले थे तब मैंने देवताओं से यह प्रार्थना की थी कि यदि राम धनुष चढ़ा दें तो मैं चौदह वर्ष तक मुनि वृत्ति धारण करके

---

1. आ० रा० 1/6/3
2. आ० रा० 1/6/7 व 8

वन में विचरण करेंगी ।[1]

राम चरित मानस में उक्त प्रकरण में श्री सीता जी का पति-प्रेम ही प्रमुख कारण के रूप में आता है। श्री राम जी द्वारा उन्हें वन जाने के लिए मना किये जाने पर वे पति के प्रति अपना अनन्य प्रेम प्रकट करती हुई आदर्श पतिव्रता परायणा पत्नी की भूमिका प्रस्तुत करती हैं। प्राणनाथ श्री राम के वियोग में उन्हें संसार का ऐश्वर्य भोग रोग की तरह प्रतीत होता है, आभूषण भारस्वरूप प्रतीत होते हैं । किं बहुना, संसार की कोई भी वस्तु श्री राम जी के वियोग में उन्हें सुखद नहीं हो सकती है ।[2]

आनन्द रामायण में राम के राज्याभिषेक की तैयारी करने के पूर्व ही गुरु वशिष्ठ जी महाराज दशरथ तथा उनकी दो रानियों-कौशल्या व सुमित्रा से भविष्य में होने वाले सम्पूर्ण रहस्य का उद्घाटन कर देते हैं । वे स्पष्ट रूप से कह देते हैं कि कैकेयी के वर से राम सीता तथा लक्ष्मण रावण वध के लिए दण्डकारण्य को जायेंगे । आप अनभिज्ञ की तरह राज्याभिषेक के लिये सब सामग्री मंगवाइये तथा समस्त राजाओं को आमंत्रित कीजिये ।[3]

मानस के अनुसार इस प्रकार का कोई पूर्व समाचार महाराज दशरथ को प्राप्त नहीं होता है। महात्मा तुलसी ने इस रहस्य को पूर्वोद्घाटित नहीं किया इसका प्रमुख कारण यह है कि उन्हें पाठकों में आगे की कथा के प्रति जिज्ञासा का संचार करना था ।

आनन्द रामायण के अनुसार श्री राम व सीता तथा लक्ष्मण के साथ अयोध्यावासी वन नहीं जाते हैं । यद्यपि उन्हें इस प्रसंग को सुनकर अत्यधिक शोक होता है, परन्तु मुनि वामदेव उन लोगों को

---

1. आ.रा. 1/6/10
2. रा.च.मा. 2/64/5 व 6
3. आ.रा. 1/6/17 व 18

नारद का आगमन, राम की प्रतिज्ञा तथा रावण का वध आदि वृत्तान्त कहकर सान्त्वना प्रदान कर देते हैं ।[1]

राम चरित मानस में समस्त अयोध्यावासी भी राम के वियोग को सहन करने में असमर्थ होकर उनके साथ चल देते हैं। समस्त कौशलपुर वासियों को राम प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि बिना राम के अयोध्या में हमें तनिक भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता है। अतः वे देव दुर्लभ सुखद सदनों को त्याग कर राम के साथ चल पड़ते हैं ।[2]

आनन्द रामायण के अनुसार कैकेयी राम व सीता, लक्ष्मण तीनों को वल्कल वस्त्र पहिनाती है। राम वल्कल वस्त्र पहिनकर श्री सीता जी को वल्कल पहिनना सिखलाते हैं । इस हृदय विदारक दृश्य को देखकर गुरु वशिष्ठ जी क्रुद्ध होकर कैकेयी को धमकाते हुए कहते हैं कि अयि दुर्वृत्ते ! तूने केवल राम का वनवास माँगा है, सीता को वल्कल क्यों पहिनाती है ? गुरु वशिष्ठ जी सीता के लिए दिव्य वस्त्र मँगवाते हैं ।[3]

राम चरित मानस में कैकेयी केवल राम को ही वल्कल वस्त्र प्रदान करती है। श्री राम सीता व लक्ष्मण वन गमन से पूर्व महलों में कैकेयी से आशीर्वाद प्राप्त करने को जाते हैं । वहाँ पर महाराज दशरथ [illegible] भी ~~सी~~ सीता को देखकर उनका हृदय विदीर्ण होने लगता है और वे सीता को रोकने का प्रयास करते हैं । इसी समय कैकेयी वल्कल वसन राम के सम्मुख रखकर उन्हें शीघ्रातिशीघ्र वन भेजने के लिये तत्पर होती है ।[4]

आनन्द रामायण में चित्रकूट प्रसंग में श्री राम द्वारा कंद मूल फल तथा मृग मांस आदि से मुनियों के सत्कार करने का उल्लेख है ।[5] इस प्रसंग

- -

1. आ. रा. 1/6/ 63 व 64
2. रा.च.मा. 2/83/5,6,7
3. आ. रा. 1/6/ 67 व 68
4. रा.च.मा. 2/78/ 1 से 5 तक
5. आ. रा. 1/6/85

से पूर्व भी जब श्री सीता जी शृंगवेर पुर में सुरसरि गंगा की अर्चना करतीं हैं तब वे गंगा से प्रार्थना करती हुई कहती हैं कि मैं श्री राम व लक्ष्मण के साथ वन से सकुशल लौट कर आदर तथा श्रद्धा पूर्वक मांस-मदिरा आदि सामग्रियों से आपकी पूजा करूँगी।[1] इसका प्रमुख कारण रामायण काल में प्रचलित बलि- प्रथा है ।

गोस्वामी तुलसीदास भारतीय संस्कृति के संरक्षक एवं संवर्धक हैं। वे " परम धरम श्रुति विदित अहिंसा" के समर्थक हैं। अतः किसी भी पूजन व अनुष्ठान में वे बलि देने के पक्ष में नहीं हैं। मानस में भी सीता जी ने सुरसरि का सात्विक पूजन करके अपने प्राणेश्वर राम व देवर लक्ष्मण सहित सकुशल वापस लौटने की प्रार्थना की है ।[2]

चित्रकूट दरबार में कैकेयी की आत्म ग्लानि का दोनों ग्रन्थों में उल्लेख है । किन्तु आनन्द रामायण में कैकेयी अपनी भूल के लिए राम से क्षमा-याचना भी करती है। यहाँ उसके पश्चाताप की पराकाष्ठा प्रकट हो जाती है।[3] श्री राम जी कैकेयी को धैर्य दिलाते हुए सारे रहस्य का कथन करते हैं कि हे माँ मेरी इच्छा से ही सरस्वती ने मंथरा के वाक्य से तुमको मोहित कर दिया था। आप सुख पूर्वक अयोध्या जायें। मुझे आप पर कुछ भी क्रोध नहीं है ।

मानस में कैकेयी को आत्म ग्लानि तो अवश्य हुई किन्तु वह अपने कुकृत्य के लिये किसी के सामने क्षमा प्रार्थिनी नहीं बनी। चित्रकूट की पावन स्थली में अयोध्या तथा मिथिला की समाज के बीच कैकेयी के अंतःकरण में बहुत बड़ी ग्लानि होती है पर इस ग्लानि का प्रकटीकरण मानसकार ने कैकेयी के मुख से नहीं करवाया ।[4]

---

1. आ. रा. 1/6/78 व 79
2. रा.च. मा. 2/102/2 व 3
3. आ. रा. 1/6/ 112 व 113
4. गरइ गलानि कुटिल कैकेई । काहि कहै केहि दूषन देई ।। रा.च.मा. 2/272/1

उक्त भेदों के अतिरिक्त एक उल्लेखनीय भेद यह भी है कि आनन्द रामायण में भरत द्वारा राम को लौटाने के लिए कुशा के आसन पर बैठ कर अनशन करना वर्णित है।[1] तथा गुरु वशिष्ठ की वाणी सुनकर भरत का पादुकायें लेकर लौटने का भी चित्रण है।[2] परन्तु मानस में इन प्रसंगों का उल्लेख नहीं है जिसका कारण स्पष्ट है कि तुलसी अनन्य विनीत शिरोमणि भरत में सद्धर्मों का रूप ऐसे दर्शा करते थे साथ ही भक्त भरत के सम्मुख भगवान राम की वाणी से अधिक किसी के गुरु की भी वाणी का महत्व कदापि नहीं हो सकता है।

आनन्द रामायण में प्रस्तुत प्रसंग का केवल इति वृत्तात्मक कथन है। परन्तु मानस में अयोध्या काण्ड के उत्तरार्द्ध में भरत के उज्ज्वल चरित्र का निरूपण करना ही तुलसी का लक्ष्य रहा है। रामायण में भरत इधर नन्दि ग्राम में नियमित रूप से निवास करते हैं, उधर राम अत्रि के आश्रम में जाते हैं तथा वहाँ से राक्षसमय वन में प्रवेश करते हैं परन्तु मानस में भरत माहात्म्य पर ही काण्ड की समाप्ति हो जाती है -

मानस में अरण्य काण्ड की कथावस्तु :

मानस के तृतीय सोपान-अरण्य काण्ड में सर्वप्रथम भगवान शंकर की वन्दना करके वस्तु निर्देशात्मक मंगलाचरण के रूप में श्री राम जी की वन्दना की गई है। इसके पश्चात राम की संयोग श्रृंगार लीला वर्णित है। उसी समय इन्द्र पुत्र जयंत काक रूप धारण कर श्री सीता के चरण में चोंच मारता है। सभी लोकों में घूमने के बाद अंततः जयंत को दयानिधान राम के चरणों में ही शरण मिलती है।

तत्पश्चात राम अत्रि के आश्रम में जाते हैं। श्री अत्रि द्वारा उनकी

----

1. आ.रा. 1/6/103
2. आ. रा. 1/6/105 व 106
3. भरत चरित करि नेम तुलसी जे सादर सुनहिं । सीय राम पद प्रेम अवसि होइ भव रस बिरति ।। रा.च.मा. 2/326

लक्ष्मण भी सीता की कटूक्ति सुनकर राम के पास चले जाते हैं। इसी अवसर पर रावण सीता का हरण कर लेता है। विलाप करती हुई सीता की सुरक्षा हेतु जटायु रावण से युद्ध करता है। अंततः वह आहत होकर धराशायी हो जाता है। रावण सीता को अशोक वाटिका में ठहराकर अनेकों राक्षसियों का पहरा लगवा देता है।

इधर राम पर्णकुटी को शून्य देख विलाप करने लगते हैं। सीतान्वेषण में तत्पर राम व लक्ष्मण आगे ही पृथ्वी पर रुधिराप्लावित जटायु को देखते हैं जो "राम-चरण-चिन्ह-रेखा" का स्मरण कर रहा है। जटायु द्वारा रावण का कुकृत्य राम को ज्ञात होता है। जटायु को परम गति देकर राम कबन्ध राक्षस का संहार करते हुए शबरी के आश्रम में पधारते हैं। शबरी का आतिथ्य ग्रहण कर राम उनके समक्ष नवधा भक्ति के अमूल्य साधनों का उल्लेख करते हैं। शबरी योगाग्नि में अपने प्राणों की आहुति देकर राम पद लीन हो जाती है।

तत्पश्चात राम पुनः वियोगी की भाँति विलाप करने लगते हैं। समस्त प्रकृति उन्हें पीड़ित करने वाली प्रतीत होती है। फिर पंपा सरोवर का वर्णन है। यहीं पर राम के पास देवर्षि नारद का आगमन होता है। राम उनसे अपने दास-रक्षा प्रभाव माया रूपी नारी से दूर, सज्जनों के लक्षण आदि की चर्चा करते हैं और नारद ब्रह्म लोक चले जाते हैं यहीं पर अरण्य काण्ड की समाप्ति हो जाती है।

<u>आनन्द रामायण के सार काण्ड में मानस के अरण्य काण्ड की कथा का अंतर्भाव :-</u>

राम चरित मानस के अरण्य काण्ड की सम्पूर्ण कथा आनन्द रामायण में सार काण्ड के सप्तम सर्ग में उल्लिखित है। इस सर्ग की कथा राम के दण्डकारण्य में प्रवेश से प्रारम्भ होती है। मार्ग में विराध नाम के राक्षस को मारकर राम शरभंग मुनि के आश्रम में पहुंचते हैं। मुनि शरभंग को सद्गति देकर राम सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में पहुंचे।

तत्पश्चात राम कुम्भज ऋषि के छोटे भाई मार्कण्ड मुनि के आश्रम

में गए तथा मुनि का आतिथ्य ग्रहण करके अगस्त्य मुनि के आश्रम पहुँचे। अगस्त्य जी ने राम को दिव्य अस्त्र देकर विदा किया। अगस्त्य मुनि के कथनानुसार राम ने गोमती नदी के उत्तर किनारे पर स्थित पंचवटी की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में राम को उनके पिताजी महाराज दशरथ का श्रेष्ठ मित्र जटायु मिला। उसके संरक्षण करके राम पंचवटी में पर्णकुटी बनाकर रहने लगे।

रावण की बहिन शूर्पणखा का पुत्र साम्ब, जो उस वन में तपस्या कर रहा था, लक्ष्मण के द्वारा मारा जाता है। यह सुनकर शूर्पणखा राम सीता तथा लक्ष्मण को मारने के लिए छल करके मनोहर रूप धारण कर राम से अपने विवाह का प्रस्ताव रखती है। इस छल का परिणाम यह होता है कि उसे लक्ष्मण के द्वारा नाक, कान, होठ तथा कुचों से विहीन कर दिया जाता है। इस घटना से अपमानित होकर शूर्पणखा के भाई त्रिशिरा खर तथा दूषण राम से युद्ध करने आते हैं तथा एकाकी राम की सैन्य रिपुदल को जीतने में समर्थ होते हैं।

इधर राम के आदेशानुसार सीता स्वयं रूप से अग्निमें सत्व रूप से राम के वामांग में तथा छायामयी होकर पंचवटी में निवास करने लगती हैं। शूर्पणखा अब रावण से अपना हाल कहती है। रावण उसे समझाकर मामा मारीच के पास अपनी सहायता के लिए जाता है। मारीच उसे कल्याणकारी सलाह देता है पर वह स्वयं मारीच को ही मारने की धमकी देता है। मारीच अंततः राम की शरण में ही जाना श्रेष्ठ समझकर स्वर्ण-मृग बनकर पंचवटी के पास पहुंचता है। सीता इस मृग पर आकर्षित होकर श्री राम से उसकी खाल लाने की प्रार्थना करती हैं। श्री राम मृग-वध के लिए चल देते हैं। मृग के बहुत दूर पहुंचने पर राम ने उसे बाण मारा जिससे हाय लक्ष्मण कहता हुआ गिर पड़ा।

सीता इस आवाज को सुनकर लक्ष्मण को राम की सुरक्षा के

लिए तुरन्त जाने की आज्ञा देती है परन्तु लक्ष्मण के मना करने पर सीता अत्यधिक तीक्ष्ण,कटु तथा व्यंग्य बाणों से उन्हें आविद्ध कर चल देने के लिए विवश कर देती हैं।

इधर रावण सीता के पास परिव्राजक वेश में आता है। किन्तु लक्ष्मण-रेखा से भयभीत होकर वह सीता से रेखा के बाहर आकर भिक्षा देने के लिए कहता है। सीता के रेखा से बाहर आते ही वह यथार्थ रूप में प्रकट होकर सीता हरण करता है। मार्ग में सीता का क्रन्दन सुनकर जटायु रावण से युद्ध करता है और अंत में मारा जाता है। सीता बन्दरों की ओर अपने आभूषण फेंकती है। अंततः रावण उन्हें अशोक वाटिका में नियंत्रित कर देता है। ब्रह्मा के निर्देशानुसार इन्द्र सीता को वर्ष भर भूख मिटाकर संतुष्ट रखने वाला पायस प्रदान करता है।

इधर राम जब मारीच-वध से निवृत्त होकर लौटते हैं तब पर्णकुटी को शून्य देखकर करुण हृदय द्रावक विलाप करते हुए सीता की खोज करने लगते हैं। इसी अवसर पर सती-मोह प्रसंग भी वर्णित है। कुछ दूर चलकर घायल जटायु का मिलन होता है। जटायु रावण द्वारा सीता के हरण का वृतान्त कहता है। जटायु की अन्त्येष्टि क्रिया करके राम पुनः विरही होकर सीता को खोजने लगते हैं। ~~इसी बीच राम पुनः विरही होकर सीता को खोजने लगते हैं। इसी अवसर पर सती मोह प्रसंग भी वर्णित है। कुछ दूर चलकर घायल जटायु का मिलन होता है। जटायु की अंत्येष्टि क्रिया करके राम पुनः विरही होकर सीता को खोजने लगते हैं~~। इसी बीच राम कबन्ध राक्षस का भी मार्ग में वध करते हैं। कबन्ध अपने शाप की कथा सुनाकर तथा राम को शबरी के आश्रम पर जाने की सलाह देकर सानंद स्वर्ग सिधार जाता है।

शबरी राम व लक्ष्मण का पूजन - सत्कार करके सीतान्वेषण के लिए उन्हें ऋष्यमूक पर्वत पर रहने वाले सुग्रीव से मित्रता करने का परामर्श देती है तथा चितारोहण करके मुक्त हो बैकुण्ठ सिधारती है। तदनन्तर राम ऋष्यमूक पर्वत की ओर चलते हुए पम्पासरोवर पहुंचते हैं

तथा सुन्दर वन आकर एवं सरोवर का निर्माण कर पीकर विरहोद्दीपक हरीतिमा युक्त वनों में आगे बढ़ते हैं। यहीं पर इस सर्ग की कथा विश्राम लेती है।

तुलनात्मक समीक्षा :

उपर्युक्त तालिका द्वारा दोनों काव्य ग्रन्थों की कथावस्तु की अपेक्षा के ज्ञान के पश्चात उनमें साम्य एवं वैषम्य की ओर भी दृष्टि डालना अपेक्षित है।

इन्द्र पुत्र जयंत की कुटिलता कृपा प्रसंग में दोनों ग्रन्थों में पर्याप्त असमानता है। वाल्मीकि रामायण में जयंत की नीचता सीता की छाती में चोंच मारने तथा उन्हें अपने पंजों द्वारा भी कष्ट पहुँचाने की घटना द्वारा दर्शायी गयी है।[1] परन्तु अध्यात्म रामायण में सीता-चरण में चोंच मारने का प्रसंग वर्णित है जो कि आनन्द रामायण एवं मानस से साम्य रखता है।[2]

आनन्द रामायण में राक्षस विराध के वध का प्रसंग विस्तृत रूप से वर्णित है। राम से विराध का संवाद होता है। संवाद के बाद राम युद्ध में उसका वध कर देते हैं, पश्चात् विराध के शरीर से एक दिव्य पुरुष प्रगट होता है जो श्री राम जी से विराध के पूर्व जन्म की कथा बतलाता है।[3]

राम चरित मानस में तुलसी ने इस प्रसंग का संकेत मात्र किया है।[4]

---

1. वाल्मीकि रामायण 2/96/36-41
2. "ऐन्द्रिः काकस्तदागत्य नखैस्तुण्डेन चासकृत् । चरणाङ्गुष्ठमारक्तं विददारामिषाशया ॥ अध्यात्म रामा. 5/3/54
3. आ. रा. 1/7/15, 16, 17
4. रा.च.मा. 3/6/6, 7

आनन्द रामायण में महामुनि अगस्त्य अपने आश्रम पर पधारे हुए श्री राम व लक्ष्मण की विधिवत पूजा करते हैं। वे राम को महेन्द्र द्वारा प्रदत्त धनुष, अक्षय बाण वाले दो तूणीर तथा रत्नजटित तलवार प्रदान करते हैं।[1] मानस में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। श्री राम भी अगस्त्य मुनि का आतिथ्य ग्रहण कर उनसे राक्षसों के वध का उपाय पूछते हैं, परन्तु मुनि राम के परम ब्रह्म स्वरूप का विवेचन करते हुए अपनी लघुता प्रकट करते हैं।[2] अगस्त्य मुनि के निर्देशानुसार राम अनुज व प्रिया जानकी के साथ पंचवटी में निवास करने लगते हैं। प्रस्तुत तथ्य का उल्लेख दोनों ग्रन्थों में मिलता है।

आनन्द रामायण में पंचवटी में निवास काल के मध्य लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के पुत्र साम्ब के वध का उल्लेख है।[3] इस प्रसंग का राम चरित मानस में अभाव है। शूर्पणखा अपने पुत्र के वध का प्रतिशोध लेने के लिए ही छल से सुन्दर रूप धारण कर राम से विवाह का प्रस्ताव रखती है, ऐसा आनन्द रामायण में उल्लेख है, किन्तु मानस में केवल शूर्पणखा का राम व लक्ष्मण की रूप-माधुरी पर मोहित होना ही उसके द्वारा राम से वैवाहिक-प्रस्ताव के कारण के रूप में उल्लिखित है।[4]

आनन्द रामायण तथा मानस दोनों में शूर्पणखा को लक्ष्मण द्वारा दण्ड दिया गया है। आनन्द रामायण के अनुसार राम शूर्पणखा को विवाह के लिए लक्ष्मण के पास भेजते हैं। लक्ष्मण पुनः उसे प्रभु के पास भेजते हैं। वह क्रोधित होकर सीता को पकड़ने के लिए दौड़ती है। राम उसे रोककर छुरे के समान एक तीक्ष्ण बाण देकर कहते हैं कि इस बाण को देखते ही लक्ष्मण तुम्हारी इच्छा पूरी कर देगा। लक्ष्मण उस बाण से देख अपने अग्रज का अभिप्राय समझकर उसी बाण से शूर्पणखा को कान, नाक, होंठ तथा स्तनों से रहित कर देते हैं।[5]

---

1. आ.रा. 1/7/35 व 36
2. रा.च.मा. 3/12/4 व 5
3. आ. रा. 1/7/41 व 42
4. रा.च.मा. 3/16/4
5. आ. रा. 1/7/54 से 56

मानस में राम संकेत द्वारा ही लक्ष्मण को शूर्पणखा के नाक, कान काटने को कहते हैं।[1] तथा लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के केवल नाक व कान काटने का ही उल्लेख मिलता है।

आनन्द रामायण के अनुसार त्रिशिरा, खर तथा दूषण का वध राम ने जिस स्थान पर किया था, गोमती नदी के किनारे वह स्थान "त्रिकंटक" नाम से प्रसिद्ध था।[2] किन्तु मानस में इस स्थान का कोई उल्लेख नहीं है।

शूर्पणखा अपना सारा हाल रावण से कहती है। इस प्रसंग में भी दोनों ग्रन्थों में भिन्नता है। आनन्द रामायण में वह रावण से कहती है कि हे रावण स्त्रियों में रत्न जानकी को देखकर मैंने उसे तुम्हारे लिये लाने का निश्चय किया परन्तु इतने में ही तपस्वी बालक ने मेरी यह स्थिति कर दी।[3] रामचरित मानस में वह रावण को तीखी फटकार देती हुई नीति संबंधी लम्बा भाषण सुनाती है।[4]

मारीच द्वारा जीवन के अंतिम क्षणों में "हा लक्ष्मण" की पुकार सुनकर सीता श्री राम पर संकट की आशंका से हठात लक्ष्मण को मर्म वचन कहकर राम के पास जाने को विवश करती हैं। इस अवसर पर सीता द्वारा लक्ष्मण से कहे गये तीक्ष्ण व्यंग्य वाक्यों का विस्तृत उल्लेख है। वे कहती हैं कि लक्ष्मण, तुम भरत के कहने के अनुसार राम का मरण चाहते हो तथा मुझे भोगना चाहते हो।[5] परन्तु मानसकार की लेखिनी ने इन शब्दों को अंकित नहीं किया है, केवल संकेत मात्र किया है।[6] कारण स्पष्ट है कि तुलसी उच्चादर्श, मर्यादा एवं लज्जा के संस्थापक हैं। साध्वी सीता का आदर्श उनकी दृष्टि में बहुत ऊँचा है। उस आदर्श के साथ ये शब्द शोभा नहीं पाते।

---

1. रा.च.मा. 3/16/20
2. आ.रा. 1/7/65
3. आ.रा. 1/7/73, 74
4. रा.च.मा. 3/20/7 से 11
5. आ. रा. [illegible]

आनन्द रामायण में सीता को पर्णकुटी में अकेला छोड़ने से पूर्व लक्ष्मण द्वारा कुटिया के चारों ओर एक रेखा खींचने का उल्लेख है। चलते समय वे सीता से कहते हैं कि प्राण कण्ठ में आ जाने पर भी आप इस रेखा का उल्लंघन न करें।[1]

मानस में इस रेखा का कोई उल्लेख नहीं है। लक्ष्मण सीता की रक्षा का भार वन तथा दिशाओं के देवताओं को समर्पित कर राम के पास चल देते हैं।[2]

रावण के द्वारा अपहृत सीता आकाश मार्ग से विलाप करती हुई चली जा रही हैं। इस प्रसंग में आनन्द रामायण के अनुसार वे नीचे एक उन्नत पर्वत शिखर पर बैठे हुए वानरों को देख अपनी साड़ी से एक टुकड़े को फाड़कर उसमें अपने गहने बाँधकर वहीं गिरा देती हैं।[3]

मानस में उपर्युक्त वर्णन का अभाव है। केवल संक्षिप्त शैली का आश्रय लेकर तुलसी ने दो पंक्तियों में सबका समाहार कर दिया है।[4]

आनन्द रामायण में अशोक वाटिका में देवराज इन्द्र द्वारा सीता को वर्ष भर क्षुधा मिटाकर संतुष्ट रखने वाला पायस प्रदान करने का उल्लेख है।[5] मानस में इस प्रसंग का अभाव है।

भीषण वन पर्यटन में ही कबन्ध जैसे वीभत्स रूपधारी राक्षस ने अपने भुजा पाश में राम व लक्ष्मण को जकड़ लिया परन्तु दोनों क्रमशः उसकी दक्षिण एवं वाम भुजाओं को काट कर बन्धन से मुक्त हुए कबन्ध ने भी शाप से मुक्ति पायी। दोनों ग्रन्थों में शाप की कथा में मतभेद है।

---

1. आ.रा. 1/7/99 व 100
2. रा.च.मा. 3/27/6
3. आ.रा. 1/7/114 व 115
4. रा.च.मा. 3/28/24 व 25
5. आ. रा. 1/7/117 व 118

आनन्द रामायणमें अष्टा क्र द्वारा शाप देने का वृत्तान्त वर्णित है।[1] जब कि मानस में दुर्वासा का शाप वर्णित है।[2]

वाल्मीकि रामायण में स्थूल शिरा ऋषि द्वारा शाप देने की कथा का उल्लेख है।[3]

इस प्रसंग में अध्यात्म रामायण तथा आनन्द रामायण में समानता है। अध्यात्म रामायण में भी अष्टा क्र द्वारा शाप देने का उल्लेख है।[4]

मानस में राम परम भक्ता शबरी से नवधा भक्ति के अनुरूप साधनों का उल्लेख करते हैं।[5] किन्तु आनन्द रामायण में इस प्रसंग का कोई उल्लेख नहीं है। कारण यह है कि तुलसी ने शबरी का चित्रण अपनी भक्ति भावना से ही किया है।

पम्पा सरोवर का मनोरम वर्णन जैसा मानस में हुआ है उसका आनन्द रामायण में अभाव है। तत्पश्चात राम-नारद संवाद का भी आनन्द रामायण में अभाव है। यह संवाद वाल्मीकि रामायण में भी नहीं है। इस संवाद का आधार तुलसी ने " देवी भागवत को बनाया है[6] -

- -

1. आ. रा. 1/7/154
2. रा. च. मा. 3/32/7
3. वा. रा. 3/72/4 व 5
4. अ. रा. 3/71/5
5. रा. च. मा. 3/34 के 8 से 35 के 5 तक
6. " अकस्मात् तत्रायातान्नारदो भगवानृषिः ।
   रणन्महतीं वीणां स्वर ग्राम विभूषिताम् ॥"
   रा. टी. देवी भागवत, अ. का.
   पृष्ठ 89

इससे भी अधिक पूर्ण संवाद का प्रतिरूप हमें "महारामायण" में मिलता है।[1]

मानस में वर्णित सभी संवाद - राम नाम के अन्य समस्त नामों से अधिक होने के लिए नारद को वरदान,[2] दास की रक्षा करने का वर्णन[3] माया रूपिणी स्त्री का दुख देना,[4] राम कथित साधु-गुण,[5] नारद मुनि का ब्रह्मलोक गमन,[6] तुलसी द्वारा राम का भजन एवं सत्संग करने का आदेशादि[7] का आधार महा रामायण ही है।

अतः तुलसी के इस काण्ड का उपसंहार भी मौलिकमय ही है।[8]

इस प्रकार आनन्द रामायण में इस काण्ड की कथा अपने प्रवाह को अबाधित करती हुई बहती है जबकि मानस के अरण्यकाण्ड में तुलसी के उपदेशात्मक स्थल भी स्थान-स्थान पर हैं। यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो केवल 46 दोहों के इस काण्ड में तुलसी ने 16 स्थलों पर अपनी उपदेशात्मिका प्रवृत्ति का परिचय दिया है।

मानस में किष्किन्धा काण्ड की कथावस्तु :

गोस्वामी जी इस काण्ड को प्रारम्भ करने के पूर्व मंगलाचरण प्रस्तुत करते हैं। मंगलाचरण में रघुकुल श्रेष्ठ राम-लक्ष्मण का अभिनंदन कर श्री रामनामामृत का माहात्म्य वर्णन करते हुए मुक्तिदायिनी काशीपुरी एवं विश्वनाथ की महिमा का वर्णन करते हैं।

---

1. रा.टी. महारामायण, अ. का. पृ0 90, 91
2. मा. 3/42
3. मा. 3/42/से 5, 8 तक
4. मा. 3/43 से 3/44
5. 3/44/6 से 3/45/8
6. मा. 3/45 छंद
7. मा. 3/46/द्वितीय दोहा
8. मा. 3/46/प्रथम दोहा

मंगलाचरण के पश्चात राम व लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत पर पहुंचते हैं। बालि से आतंकित सुग्रीव उनका परिचय प्राप्त करने के लिए हनुमान को भेजता है। विप्र रूप धारण कर हनुमान ने उनका लौकिक एवं आध्यात्मिक परिचय पूछा। राम द्वारा अपना लौकिक परिचय प्रस्तुत करने पर ही हनुमान उनके आध्यात्मिक स्वरूप को समझकर वास्तविक वानर रूप में प्रभु के चरणों में लिपट गये। भक्त वत्सल प्रभु अपने करुणाश्रुओं से भक्त हनुमान का अभिषिंचन करने लगे।

कुछ क्षणों के पश्चात हनुमान दोनों भ्राताओं को अपने कंधों पर बैठाकर अपने स्वामी सुग्रीव के पास ले चले तथा वहाँ पर अग्नि को साक्षी कर राम एवं सुग्रीव में मैत्री स्थापित कर दी। लक्ष्मण ने पूर्व राम चरित अवगत कराया। सुग्रीव ने पूर्व सीता-विलाप का परिचय देते हुए राम को सीता का उत्तरीय लाकर दिया तथा उन्हें धैर्य बंधाया।

राम सुग्रीव से ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करने की जिज्ञासा प्रकट करते हैं। सुग्रीव ने बालि से बैर का समस्त वृत्तान्त राम से निवेदित किया तथा अपनी दयनीय दशा का दिग्दर्शन कराया। मित्र दुःख से राम संतप्त हो उठे तथा उन्होंने बालि वध करने की प्रतिज्ञा भी कर ली। यहीं पर राम ने सुमित्र एवं कुमित्र के लक्षणों की चर्चा की। सुग्रीव को इस बात पर विश्वास नहीं होता कि राम दुर्धर्ष बालि पर विजय प्राप्त कर लेंगे। राम ने उनके संदेह का निवारण दुंदुभि-अस्थि व ताल बिना किसी प्रयास के गिराकर कर दिया। सुग्रीव राम के प्रति प्रतीति, प्रीति तथा भक्ति से युक्त होकर विरक्त हो उठता है। वह सब कुछ त्यागकर प्रभु का भजन करना चाहता है। परन्तु राम तो बालि वध की प्रतिज्ञा कर चुके थे। वे इस मर्कट- वैराग्य को देख हँस पड़े। सुग्रीव को साथ लेकर बालि की ओर चले। राम से प्रेरित सुग्रीव की ललकार सुनकर बालि अपनी पत्नी तारा द्वारा वर्जित करने पर भी परम गति का विचार कर उन्मत्त होकर चल दिया। दोनों में द्वन्द्व युद्ध हुआ। सुग्रीव पराजित होकर भाग चला। राम ने दोनों को

एक रूप देखकर पुष्प की माला सुग्रीव के गले में डालकर उसे पुनः भेजा तथा उसे अंततः हताश देखकर एक वृक्ष की ओट से बालि के मर्मस्थल पर बाण मार दिया। बालि अचेत हो उठा। उठकर उसने प्रभु के अनुपम दर्शन किये पर वह प्रभु का छिपकर मारने का अपराध क्षमा न कर सका। वह इस संबंध में राम से प्रश्न करता है तथा राम उसका न्याय संगत समाधान भी करते हैं। बालि विनम्र हो उठता है। राम भी बालि के शीश पर अपना सुखद हस्त रखकर उसे अमर बना देने की इच्छा प्रगट करते हैं। परन्तु चतुर भक्त बालि ने यह न स्वीकार करके जन्म जन्मान्तर के लिए प्रभु की भक्ति माँग कर निर्वाण पद प्राप्त किया एवं अपने एक मात्र उत्तराधिकारी पुत्र अंगद को प्रभु की शरण में समर्पित कर दिया। तारा को दुखी देखकर राम अपने उपदेश से उसे माया रहित करके भक्ति की अधिकारिणी बना देते हैं।

बालि की अंत्येष्टि के पश्चात लक्ष्मण सुग्रीव का राज्याभिषेक तथा अंगद का यौवराज्याभिषेक करवा देते हैं।

प्रवर्षण पर्वत पर देव निर्मित गिरि गुहा में राम निवास करने लगे। वियोगी राम वहीं पर स्फटिक शिला पर बैठ वर्षा एवं शरद ऋतु का सुन्दर वर्णन करते हैं।

सुग्रीव को सीतान्वेषण में तत्पर न देखकर राम अपने मित्र सुग्रीव के लिये भी कह उठते हैं –

"जेहि सायक मारा मैं बाली ।
तेहि सर हतउँ मूढ़ कहँ काली ॥"

लक्ष्मण को भी क्रोधित देखकर शांति मूर्ति राम ने उन्हें सुग्रीव को भय दिखाकर लाने का आदेश दिया। परन्तु इससे पूर्व ही हनुमान की मंत्रणा से सुग्रीव ने दूतों को विभिन्न देशों में भेज दिया तथा एक पक्ष मात्र में लौटने की अवधि दे दी।

इधर रौद्र रूप में लक्ष्मण को देखकर अंगद ने तुरन्त अवसान प्राप्त कर लिया। सुग्रीव ने हनुमान के साथ तारा को भेजा। वे

तत्पश्चात सुग्रीव ने सीता द्वारा आकाश मार्ग से फेंके गये आभूषण राम के समक्ष प्रस्तुत किये। लक्ष्मण द्वारा सीता के पैर की नूपुर को पहिचान लेने पर राम प्रसन्न हुए। सुग्रीव को अपनी वीरता पर विश्वास दिलाने के लिए राम ने दुंदुभि- दैत्य की अस्थियों के ढेर को पैर के अंगूठे से 10 योजन दूर फेंक दिया। तथा गोलाकार सप्त-ताल वृक्षों का एक ही बाण से भेद कर दिया। आनन्द रामायणकार गोलाकार सप्त-ताल वृक्षों की कथा तथा इस संबंध में बालि को तक्षक द्वारा दिए शाप का भी यहीं उल्लेख कर देते हैं।

सुग्रीव राम से इन्द्र द्वारा प्रदत्त बालि की माला का वर्णन करते हैं जिसके कारण शत्रु युद्ध में बलहीन हो जाता है। राम द्वारा सप्त ताल वृक्षों के शाप से मुक्त किये गये तक्षक ने उनके ही आदेशानुसार बालि की उक्त माला का हरण कर लिया। तदन्तर सुग्रीव को बालि से युद्धार्थ भेजा। सुग्रीव युद्ध से पराजित होकर भागा। पुनः श्री राम ने उसे पहिचान के लिए सुमन-माल पहिनाकर बालि के पास भेजा। तारा के समझाने पर भी बालि अपनी सद्गति का विचार करके युद्ध के लिये आया। युद्ध करते समय ही राम ने एक वृक्ष की ओट से बाण मार कर बालि का वध कर दिया। तारा विविध- विलाप करने लगी। बालि समदर्शी राम से अपने वध का कारण पूछता है तथा राम उसका न्यायोचित समाधान करके उसे अगले जन्म में भी अपने द्वारा ही बाण मार कर वध करने का भविष्य बतलाते हैं। तदन्तर राम सुग्रीव द्वारा बालि की अन्त्येष्टि करवाते हैं तथा लक्ष्मण को भेजकर सुग्रीव का राज्याभिषेक एवं अंगद का यौवराज्याभिषेक करवाते हैं।

इधर राम प्रवर्षण गिरि गुहा में वर्षा ऋतु बिताते हैं। शरद ऋतु आ जाने पर भी सुग्रीव को सीतान्वेषण के प्रति उदासीन देखकर क्रोधित होकर वे लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजते हैं। हनुमान जी लक्ष्मण जी को शांत करके किष्किन्धा लाये। तारा ने मधुर वाक्यों से लक्ष्मण को शान्त किया।

सुग्रीव ने लक्ष्मण से विनम्र प्रार्थना करके विशाल वानर सेना को

सीतान्वेषण के लिए भेज दिया। उसने जाम्बवान, अंगद, हनुमान, नल, सुषेण तथा मैंद को एक मास की अवधि देकर सीतान्वेषण के लिये दक्षिण भेजा। राम ने अपनी कर मुद्रिका हनुमान को देकर अपना मंत्र भी दिया जिसका एक लाख जप कर के हनुमान ने लंका जाने की अतुल सामर्थ्य प्राप्त की। तदुपरान्त वे विभिन्न दिशाओं में चल दिये। पिपासा पीड़ित इन वीरों ने एक गुफा में प्रवेश किया जहाँ इन्हें स्वयं प्रभा नाम की तपस्विनी के दर्शन हुए। उसने अपनी सम्पूर्ण कहानी सुनाकर तपोबल से सभी योद्धाओं को समुद्र-तट पर पहुँचा दिया। वहाँ पर इनकी सम्पाती से भेंट हुई जिसने सीता को अपने दिव्य दृष्टि से अशोक वाटिका में स्थित देखकर सबको यह वृत्तान्त सुनाया तथा अपनी जीवन कथा का भी कथन किया।

समुद्र तट पर सभी वानरों ने सीता की सुधि लेकर आने में असमर्थता प्रकट की। तब जाम्बवान ने हनुमान को उनके पुरुषार्थ का स्मरण कराकर सीता सुधि लेने के लिये लंका जाने के लिये तैयार कर दिया।

इतनी कथा के बाद इस सर्ग के माहात्म्य का वर्णन कर कवि ने किष्किन्धा चरित्र का उपसंहार किया है।

तुलनात्मक समीक्षा :

आनन्द रामायण में हनुमान जी राम का केवल लौकिक परिचय प्राप्त करके उन्हें अपने कंधों पर बैठा कर सुग्रीव के पास ले जाते हैं। श्री राम जी भी विप्र रूप धारी हनुमान से उनका कोई परिचय नहीं पूछते। लक्ष्मण तो हनुमान जी से यहाँ तक स्पष्ट कह देते हैं कि हम शबरी के निर्देशानुसार सुग्रीव के साथ मित्रता स्थापित करने के लिये आये हैं।[1] परन्तु मानस में हनुमान जी राम का लौकिक तथा आध्यात्मिक दोनों तरह का परिचय प्राप्त करते हैं। राम अपना लौकिक परिचय बतलाकर

---

1. आ. रा. 1/8/8

विप्र वेश धारी हनुमान का भी परिचय पूछते हैं। हनुमान अपने प्रभु को पहिचान कर दिव्य भाव प्रगट कर शरणापन्न हो उठते हैं।[1]

सुग्रीव भगवान राम से अपनी बालि से हुई शत्रुता का कारण कहता है। इस प्रसंग का उल्लेख दोनों ही ग्रन्थों में है। किन्तु ऋष्यमूक पर्वत पर बालि के न आ सकने के शाप की कथा केवल आनन्द रामायण में वर्णित है। सुग्रीव राम से इस कथा का वर्णन करता है कि एक बार दुंदुभी नामक दैत्य भैंसे का रूप धारण कर बालि से युद्ध करने आया। बालि ने उसका वध करके उसके सिर को मातंग मुनि के आश्रम में फेंक दिया। ऋषि ने शाप देते हुए कहा कि हे बालि! मेरे पर्वत तथा आश्रम के पास तू आयेगा तो तुरन्त मर जायेगा।[2]

मानस में इस कथा का केवल सांकेतिक उल्लेख है।[3]

रामायण में सीता द्वारा आकाश-मार्ग से फेंके हुए आभूषण सुग्रीव श्री राम जी के सम्मुख प्रस्तुत करता है। राम उन्हें देखकर लक्ष्मण को भी पहिचानने के लिये देते हैं। लक्ष्मण केवल पैर की नूपुर को पहिचान कर निवेदन करते हैं कि प्रभु मैंने प्रणाम करते समय केवल माँ सीता के चरण देखे हैं, अन्य अंगों को मैंने नहीं अवलोका।[4]

मानस में सीता द्वारा आभूषण नहीं, केवल राम नाम कहकर एक पट फेंकने का उल्लेख है। सुग्रीव उसी पट को राम के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं और इस पट को देखकर राम विरहोद्दीपित होकर शोक करने लगते हैं।[5]

दोनों ही ग्रन्थों में राम अपने पराक्रम पर सुग्रीव को विश्वास

---

1. रा.च.मा. 4/1/4 व 5
2. आ. रा. 1/8/25 से 28
3. रा.च.मा. 4/5/13
4. आ. रा. 1/8/31 से 33
5. रा.च.मा. 4/4/6

दिखाने के लिए दुंदुभि दैत्य के अस्थि समूह को दूर फेंकते हैं तथा गोलाकार स्थित ताल वृक्षों का एक ही बाण से भेदन भी करते हैं।[1] किन्तु आनन्द रामायण में यह कथा विस्तृत रूप से वर्णित है तथा मानस में केवल सांकेतिक है।[2]

आनन्द रामायण में सुग्रीव बालि को इन्द्र द्वारा प्रदत्त माला का भी वर्णन राम से करता है जिसे देखकर शत्रु युद्ध में बलहीन हो जाता था। सर्वप्रथम यह माला कठोर तप करने पर ब्रह्मा को भगवान शंकर द्वारा प्राप्त हुई थी। ब्रह्मा ने वह माला अपने पुत्र इन्द्र को दी तथा इन्द्र ने प्रीति पूर्वक बालि को अर्पित कर दी।[3]

इस प्रसंग का मानस में अभाव है। मानस की मूलाधार-वाल्मीकीय रामायण में भी उक्त प्रसंग नहीं है।

आनन्द रामायण में राम उसी तरह से बालि की उक्त माला का हरण करवा लेते हैं जिसे उन्होंने ताल - वृक्षों का भेदन करके सुविधा प्रदान की थी। युद्ध के लिये भेजा गया सुग्रीव बालि से पराजित होकर आया। दूसरी बार राम ने पहिचान के लिए लक्ष्मण द्वारा सुग्रीव के कण्ठ में एक माला बंधवायी।[4] किन्तु मानस में यह माला स्वयं राम पहिनाते हैं।[5]

तारा द्वारा युद्ध क्षेत्र में जाने से मना करने पर भी बालि उसे समझाकर युद्धार्थ चल देता है। आनन्द रामायण में वह तारा को समझाता है कि राम के द्वारा मारे जाने पर मैं परमपद को प्राप्त करूँगा। तुम यहाँ सुख पूर्वक रहकर सुग्रीव की सेवा करना। सुग्रीव जब तुम्हारे साथ रति करेगा तभी मैं उसकी पत्नी रूमा के भोग से उऋण हो

---

1. आ. रा. 1/8/ 36 से 39
2. रा.च.मा. 4/6/12
3. आ. रा. 1/8/40 से 42
4. आ. रा. 1/8/50
5. रा.च. मा. 8/7/7

अंगा ।[1]

मानस में बालि राम के द्वारा मारे जाने पर केवल अपनी मुक्ति के रहस्य का उद्घाटन तारा से करता है ।[2]

आनन्द रामायण में राम बालि से अगले जन्म की कथा भी कह देते हैं कि द्वापर के अंत में भील होकर पूर्व जन्म का स्मरण करके प्रभास क्षेत्र में बाण से तुम मेरे पैर को छेदोगे। तब ही मेरे हाथ मर कर तू जन्मान्तर रहित शुभ गति को प्राप्त होगा ।[3]

मानस में उक्त प्रसंग का अभाव है। वाल्मीकीय तथा अध्यात्म रामायण में भी इसका उल्लेख नहीं है ।

सीतान्वेषण के लिये जाने को तैयार वानरों में हनुमान को बुलाकर राम अपने नाम से अंकित मुद्रिका सीता के अभिज्ञानार्थ देते हैं। यह प्रसंग दोनों ही ग्रन्थों में उल्लिखित है। किन्तु आनन्द रामायण में इसके साथ राम द्वारा हनुमान को अपना मंत्र प्रदान करने का भी उल्लेख है।[4] जिसका सहस्त्र बार जप कर के हनुमान लंका जाने की शक्ति प्राप्त करते हैं । यह प्रसंग मानस में नहीं है ।

विवर प्रवेश कर धर्मचारिणी स्वयं प्रभा का वृतान्त है। आनन्द रामायण में यह वर्णन विस्तृत है।[5] तथा मानस में इसका सांकेतिक उल्लेख है ।[6]

आनन्द रामायण के अनुसार स्वयं प्रभा हेमा की दासी थी। हेमा स्वर्ग लोक जाते समय सम्पूर्ण भावी वृतान्त स्वयं प्रभा से कह गयी थी कि त्रेता में तुम्हें राम के दर्शन होंगे तथा मोक्ष की प्राप्ति होगी ।

प्रस्तुत प्रसंग अध्यात्म रामायण से पर्याप्त साम्य रखता है ।[7]

---

1. आ० रा० 1/8/55 व 56
2. रा० च० मा० 4/7/66 से 68
3. आ० रा० 1/8/94 व 95
4. आ० रा० 1/8/103 से 106
5. रा० च० मा० 4/24/4
6. अ० रा० 4/6/ 43 से 56

सम्पाति-कथा में भी दोनों ग्रन्थों में पर्याप्त समानता है। अन्तर केवल इतना है कि आनन्द रामायण के अनुसार सूर्य के प्रचण्ड तेज से सम्पाती ने जटायु की रक्षा की।[1] अतः उसके तो पंख जल गये पर जटायु सकुशल पृथ्वी पर आकर गिर पड़ा। किन्तु मानस में सम्पाती द्वारा जटायु की रक्षा करने का प्रसंग नहीं है। जटायु सूर्य का तेज न सहकर वापस आ गया किन्तु सम्पाती अभिमानवश सूर्य के अधिक समीप पहुँच गया। अतः सूर्य के अति आतप से उसके पंख जल गये ।[2]

दोनों ही ग्रन्थों में किष्किन्धा चरित्र के श्रवण का माहात्म्य वर्णन करके कथा का उपसंहार किया गया है। आनन्द रामायण में भी तुलसी ने सर्व पाप विनाशक प्रभु राम के गुण ग्राम श्रवण करने का उपदेश दिया है ।[3]

<u>मानस में सुन्दर काण्ड की कथावस्तु :</u>

श्री राम जी व श्री हनुमान जी की वन्दना के पश्चात हनुमान के समुद्रोल्लंघन से कथा का आरम्भ होता है। समुद्र ने रामदूत का सत्कार करवाया। आगे सुरसा ने हनुमान के बल व बुद्धि की परीक्षा ली। तत्पश्चात् सिंहिका राक्षसी का वध करके हनुमान लंका में प्रविष्ट हुए । विभीषण से सीता का पता ज्ञात करके अशोक वाटिका में पहुंचकर सीता के दर्शन किये। हनुमान लघु रूप धारण कर तरु पल्लव में छिपे हुए सीता-रावण वार्तालाप सुनते रहे। सीता वध के लिये तैयार रावण को मन्दोदरी ने बहुत समझाया। रावण सीता को एक मास की अवधि देकर राक्षसियों को नियुक्त करके घर चला गया ।

सीता को सभी राक्षसियाँ भयभीत करने लगीं किन्तु राम परमभक्ता त्रिजटा ने सभी को अपना स्वप्न सुनाकर सचेत किया। त्रिजटा सीता को धैर्य बंधाकर घर चली गयी। इसी समय सीता को परम विरहा-

---

1. आ० रा० 1/8/115 व 116
2. रा० च० मा० 4/26/3 व 4
3. रा० च० मा० 4/30 (क)

दुख देखकर हनुमान ने मुद्रिका नीचे गिरा दी। उसे पाकर सीता हर्ष व विस्मय से युक्त हो उठीं परन्तु राम गुणगान द्वारा विश्वस्त होकर सीता ने हनुमान से पूर्ण वृत्तान्त सुना और हनुमान को आशीर्वाद प्रदान किया। हनुमान सीता से आज्ञा लेकर अशोक वन के फलों को खाने और वृक्षों को उखाड़ने लगे। वाटिका के रक्षकों द्वारा यह सुनकर रावण द्वारा प्रेषित अनेक राक्षसों तथा अक्षय कुमार का हनुमान ने वध कर दिया तत्पश्चात् मेघनाद से युद्ध हुआ परन्तु मर्यादापालन के दृष्टिकोण से अपने को ब्रह्मपाश में बंधवा लिया। हनुमान ने बन्धन स्थिति में भी रावण को दिव्य उपदेश देकर प्रबोधन किया परन्तु रावण ने उस पर ध्यान न देकर उनके अंग-भंग करने की आज्ञा दी ।

लंका-दहन कर व सीता के पुनः दर्शन करके उन्हें आश्वासन देकर हनुमान समुद्रोल्लंघन कर वापस आये। सभी वानरों के सहित मधुवन के फलों का भक्षण कर हनुमान ने राम से सीता की कुशल एवं संदेश निवेदित किया तथा कृतज्ञता रूप में राम भक्ति का वरदान प्राप्त किया ।

राम समुद्र-तट की ओर ससैन्य प्रस्थान कर देते हैं। उधर रावण को उसके मंत्रियों तथा विभीषण ने सीता लौटा देने की शिक्षा दी परन्तु उसे कोई परिवर्तन न हुआ अपितु उपेक्षित होकर विभीषण को लंका का परित्याग कर देना पड़ा। भक्त विभीषण ने इष्ट देव राम के चरणों के दर्शन किये प्रतीक रूप से लंका-राज्य भी प्राप्त किया। विभीषण से मंत्रणा पाकर राम समुद्र से मार्ग प्राप्त करने के लिये विनय करने लगे ।

उधर रावण ने शुक को गुप्त दूत के रूप में राम की सेना का पता लगाने के लिये भेजा। वानरों ने उसे प्रताड़ित करके छोड़ दिया तथा लक्ष्मण ने इसी के माध्यम से अपना संदेश भी रावण के पास भेज दिया। शुक ने भी रावण को समझाया परन्तु चरण-प्रहार पाकर वह भी राम के पास आकर शाप मुक्त हो गया ।

राम ने तीन दिन तक विनय करने के बाद भी समुद्र को मौन देखकर समुद्र पर प्रत्यंचा चढ़ा ली। तब भयभीत होकर समुद्र विप्र रूप

में नाना तरह के उपायन लेकर राम की सेवा में उपस्थित हुआ। राम ने समुद्र की प्रार्थना पर उसी बाण से उसके उत्तर तटवासी आभीरकों को मारकर उसकी पीड़ा दूर की। इस प्रकार समुद्र भी राम को नमस्कार करके अपने भवन को गया ।

<u>आनन्द रामायण के सार काण्ड में मानस के सुन्दर काण्ड की कथा का अंतर्भाव :</u>

आनन्द रामायण के सार काण्ड में नवम सर्ग तथा दशम सर्ग के 68 वें श्लोक तक की कथा में मानस के सुन्दर काण्ड की कथा समाहित है। हनुमान द्वारा समुद्रोल्लंघन तथा मार्ग में सुरसा के मिलन से नवम सर्ग की कथा प्रारंभ होती है। सुरसा द्वारा आयोजित बल व बुद्धि की परीक्षा में सफल होकर हनुमान आगे सिंहिका नाम की राक्षसी का वध करके रात्रि के समय लंका में प्रवेश करते हैं तथा उनका लंकिनी नाम की राक्षसी से साक्षात्कार होता है हनुमान सीतान्वेषण करते हुए लंका का परिक्रमण कर देते हैं । रावण के भवन में पहुंचने पर मंदोदरी को सीता के सदृश देखकर हनुमान घबरा जाते हैं परन्तु बाद में उनके भ्रम का निवारण भी स्वतः हो जाता है। इसी अवसर पर आनन्द रामा-यणकार ने मंदोदरी की उत्पत्ति की कथा का भी उल्लेख किया है। गोकर्ण तीर्थ का इतिहास भी यहीं उल्लिखित है ।

मय दानव भी अपनी कन्या मंदोदरी को रावण को समर्पित करके अपने भाई मय के साथ लंका में निवास करने लगा। "मय की मृत्यु रावण के हाथ है "- ब्रह्मा के इन वचनों को सत्य करने के लिये हनुमान ने मय के वस्त्रों को तथा गृह में रावण के पलंग पर फेंक दिया तथा रावण के वस्त्रों को विभीषण के पलंग पर फेंक दिया।

हनुमान अशोक वाटिका में सीता के दर्शन करके शिंशुपा वृक्ष पर बैठ जाते हैं। उसी समय रावण सीता के पास जाकर उन्हें विविध प्रलोभन देता है तथा सीता द्वारा उसे तीखी फटकार भी मिलती है । सीता से वाद् युद्ध में हारकर रावण उन्हें मारने को उद्यत होता है

किन्तु मंदोदरी उसे समझाकर रोक लेती है। चहुँरी राक्षसियों को सीता को डराने धमकाने के लिये नियुक्त करके रावण अपने भवन को प्रस्थान करता है। राम भक्ता त्रिजटा सीता को धैर्य तथा आश्वासन प्रदान कर अपने भवन चली जाती है। इसी अवसर पर हनुमान राम का वर्णन करके प्रकट हो जाते हैं तथा सीता के अभिज्ञानार्थ राम-प्रदत्त मुद्रिका प्रदान करते हैं। तत्पश्चात सीता से आदेश प्राप्त कर अशोक वाटिका में फल खाते हैं तथा वृक्षों को भी उखाड़-उखाड़ कर फेंकने लगते हैं। वाटिका के रक्षक समस्त हाल रावण से निवेदित करते हैं। रावण अनेकों सैनिकों को भेजता है किन्तु वीर हनुमान सभी का वध कर देते हैं। तत्पश्चात रावण के पुत्र अक्षय कुमार का भी वध करके वे मेघनाद से युद्ध करते हैं। ब्रह्म पाश की मर्यादा रखते हुए हनुमान उसमें बंधकर मेघनाद के साथ रावण के समक्ष पहुंचते हैं।

हनुमान निर्भीक होकर रावण को सदुपदेश देते हैं परन्तु रावण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता अपितु वह दैत्यों को हनुमान की पूंछ जलाने का आदेश देता है। हनुमान द्वारा लंका दहन होता है। लंका भस्म कर देने पर हनुमान सीता के भी जल जाने की बात सोचकर अत्यन्त दुखी होते हैं किन्तु आकाशवाणी सुनकर उनको धैर्य प्राप्त होता है। किन्तु हनुमान पुनः सीता के दर्शनार्थ जाते हैं तथा वहाँ कुछ सुवर्ण वेष्टित भूमि देखते हैं। इस सुवर्ण वेष्टित भूमि के कारण स्वयं आनन्द रामायणकार ने लंका का प्राचीन इतिहास, गजग्राह की कथा के प्रसंग में ग्राह के पूर्व जन्म की कथा गज-ग्राह का सहस्त्र वर्ष व्यापी युद्ध और भगवान द्वारा गज का उद्धार तथा गरुड़ का एक गज को लेकर भक्षण करने के लिये त्रिकूट पर्वत पर पहुँचने आदि की कथा का उल्लेख किया है।

सीता द्वारा प्रदत्त चूड़ामणि, मुद्रिका तथा ब्रह्मा द्वारा लिखित पत्र लेकर हनुमान वापस लौटते हैं। यहीं राम एक मुनि का रूप धारण कर हनुमान के गर्व का नाश करते हैं। ~~समुद्र के इस पार आकर हनुमान के गर्व का नाश करते हैं।~~ समुद्र के इस पार आकर हनुमान अंगद आदि के मिलकर किष्किन्धा की ओर प्रस्थान करते हैं। सुग्रीव के दूतों

को जाते हुए वे राम के पास पहुंचकर उन्हें सीता का संदेश सुनाते हैं। यहीं पर इस सर्ग की कथा समाप्त हो जाती है ।

दशम सर्ग का प्रारम्भ हनुमान द्वारा राम को लंका का स्वरूप बतलाने की कथा से होता है। विशाल सेना के साथ राम लंका की ओर प्रस्थान करते हैं। उधर लंका में रावण हनुमान के पराक्रम से भयभीत होकर राज सभा में परामर्श करता है । विभीषण के समझाने पर भी वह उसका तिरस्कार करता है। विभीषण राम की शरण में आ जाता है। राम तथा विभीषण में मैत्री स्थापित होती है। विभीषण की मंत्रणा से राम समुद्र से मार्ग मांगने के लिये विनय करते हैं। विनय न मानने पर राम कुपित होकर समुद्र पर आग्नेय बाण चलाने को उद्यत होते हैं । समुद्र विप्र रूप रखकर राम से सेतु बन्ध का उपाय बतलाता है। इस प्रकार इस सर्ग के 68 वें श्लोक तक की कथा पूर्ण होती है। राम चरित मानस के सुन्दर काण्ड की कथा का उपसंहार भी यहीं होता है ।

<u>तुलनात्मक समीक्षा :</u>

आनन्द रामायण में मैनाक पर्वत व हनुमान जी के बीच वार्तालाप का उल्लेख है।[1] समुद्र के आदेशानुसार मैनाक पर्वत जल के बीच में से उठकर हनुमान को विश्राम करने के लिए कहता है। वह अपनी प्राचीन कथा प्रस्तुत करते हुए कहता है कि पूर्व समय में पर्वतों का इन्द्र के साथ दारुण युद्ध हुआ था । उस समय राजा दशरथ ने मुझे छुड़ाया था। तब से मैं यहाँ आकर रहता हूं । मैं उनका प्रत्युपकार करने के लिये आपके सामने उपस्थित हुआ हूं । हनुमान विश्राम करना स्वीकार नहीं करते। तब वह उनके हाथ के स्पर्श को प्राप्त करके ही पवित्र हो जाने की आकांक्षा प्रकट करता है।

मानस में मैनाक पर्वत ने हनुमान से कुछ भी नहीं कहा। वह समुद्र के आदेशानुसार हनुमान को विश्राम देने के लिये केवल ऊपर आ गया। हनुमान अपने कर स्पर्श मात्र से उसे संतोष प्रदान कर आगे बढ़ गये। इसका कारण यह है कि तुलसी ने हनुमान को राम के अमोघ बाण की तरह छूट चलते से

- -

1. आ० रा० 1/9/ 8,9

जाते हुए चित्रित किया है।[1] अतः हनुमान को किसी से वार्तालाप करने का अवकाश कहाँ से प्राप्त हो सकता है ।

आनंद रामायण में लंकिनी नाम की राक्षसी ने हनुमान को अशोक वाटिका में स्थित सीता का पता बतलाया।[2] किन्तु मानस में हनुमान को सीता की स्थिति तथा निवास-स्थल का ज्ञान परम भागवत् विभीषण जी के द्वारा प्राप्त होता है ।[3]

हनुमान विभीषण संवाद तुलसी की मौलिक देन है। आनन्द रामायण तथा वाल्मीकीय रामायण में भी इस प्रसंग का अभाव है। भक्ति के दृष्टिकोण के साथ साथ प्रबन्ध दृष्टि से भी यह प्रसंग अत्यंत आवश्यक है। मानस पीयूष-कार ने इस प्रसंग की निम्नांकित संगत आलोचना की है -

" यह राजनीति निपुण भी था। यथा- " नीति विरोध न मारिय दूता" , " कहीं विभीषण नीति बखानी " तथा " अति नय निपुन न भाव अनीति " । अब सोचिये कि ऐसा राजाकांक्षी और राजनीतिज्ञ अर्थात स्वार्थी, बुद्धिमान और चतुर विभीषण भाई के प्रत्यक्ष शत्रु के शरण में अब भी पूर्व परिचय बिना एकाएक ही कैसे जा सकता है ? कुछ न कुछ पूर्व अनुसंधान के बिना ऐसी बात होना एकदम ही अस्वाभाविक दिखती है ।[4]

इसी अस्वाभाविकता का दोष निकाल देना ही मारुति-विभीषण संवाद का मुख्य प्रयोजन है। मेरी दृष्टि से तो यह संवाद विभीषण - शरणागति की प्रस्तावना ही है ।

आनन्द रामायण के अनुसार श्री हनुमान जी को रावण के महल में मन्दोदरी को सोता हुआ देखकर सीता की भ्रान्ति हो जाती है । परन्तु जब लक्षण के कथनानुसार वे सीता की मुखाकृति मिलाने लगे तो नहीं मिली ।[5] तब भी वे आश्चर्य चकित रह गये ।

---

1. रा.च.मा. 5/ मंगलाचरण/8
2. आ.रा. 1/9/21
3. रा.च.मा. 5/7/3,4,5
4. मानस पीयूष [illegible] पृष्ठ 74
5. आ.रा. 1/9/ 30,31

उपरोक्त वर्णन वाल्मीकि रामायण में भी प्राप्त होता है। किन्तु मानस में इसका अभाव है। इसका कारण यह है कि तुलसी ने महा माया जानकी को अप्रतिम सौन्दर्य से युक्त चित्रित किया है -

"सो अस युवति कहाँ कमनीया ।।"[1]

आनन्द रामायण में मय दानव के बंधु मय के बधका प्रसंग उल्लिखित है। मय का रावण के द्वारा बध कराने के लिये श्री हनुमान जी मय के वस्त्र को रावण के पलंग पर फेंक देते हैं तथा रावण के वस्त्र को विभीषण के पलंग पर फेंक देते हैं, प्रातः काल रावण ने अपनी शैया पर मय का कमर बन्द देखकर मंदोदरी को मारने के लिये तलवार उठायी। अन्य स्त्रियों द्वारा यह समझाने पर कि "स्त्री-हत्या नहीं करनी चाहिये" वह मंदोदरी को न मारकर मय के घर गया तथा सोते हुए वीर मय का तलवार से बध कर दिया ।[2]

उधर विभीषण भी प्रातः काल रावण का वस्त्र अपने पलंग पर देखता है तथा अपनी स्त्री सरमा को मारने दौड़ता है। अन्य स्त्रियाँ द्वारा स्त्री बध को महान पाप सुनकर वह रुक जाता है तथापि उस दिन से वह रावण से खिन्न रहने लगता है ।[3]

वाल्मीकीय रामायण तथा मानस में श्री हनुमान जी द्वारा किये हुए उक्त चरित्र का वर्णन नहीं है। तुलसी आभिजात्यपूर्ण हनुमान से ऐसे छल तथा कपट युक्त आचरण कैसे करवा सकते थे ।

आनन्द रामायण में अशोक वाटिका में प्रथम हनुमान जी का प्रकट होकर रामकथा सुनाना वर्णित है तदोपरान्त राम की मुद्रिका का सीता को अभिज्ञानार्थ प्रदान करना वर्णित है।[4] किन्तु मानस में प्रथम हनुमान जी द्वारा अशोक वृक्ष के ऊपर से मुद्रिका गिराना वर्णित है तथा बाद में प्रकट होना ।[5] वाल्मीकीय रामायण तथा हनुमन्नाटक आदि में हनुमान

---

1. रा.च.मा. 1/246/6
2. आ.रा. 1/9/141 से 143
3. आ.रा. 1/9/144 से 146
4. आ. रा. 1/9/113 , 114
5. रा.च.मा. 5/12 (सोरठा)

जी का प्रथम ही प्रगट होना तथा बहुत कुछ विश्वास हो जाने पर मुद्रिका देना वर्णित है। किन्तु तुलसी प्रथम मुद्रिका का गिरना कहते हैं। सीता द्वारा आकाश से अँगारे माँगने पर मुद्रिका का गिरना अत्यधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। अब यह मुद्रिका राम के हाथ से यहाँ कैसे आई ? इस संबंध के विचारों को शान्त करने के लिये श्री राम जी का चरित्र कहना भी अति उत्तम है। इससे सीता के समीप हनुमान जी का प्रगट होना भी अधिक सुगम हो गया। इस प्रकार उक्त वर्णन में तुलसी ने एक के बाद एक कड़ी को बड़े ही स्वाभाविक ढंग से पिरोया है।

आनन्द रामायण के अनुसार लंका-दहन करने के पश्चात् हनुमान सीता के भी भस्म हो जाने कीआशंका एवं विषाद प्रगट करते हैं। हनुमान आत्म ग्लानि से विक्षिप्त होकर आत्म-हत्या करने को उद्यत हो जाते हैं किन्तु उसी समय आकाशवाणी से उन्हें सीता के अक्षत होने का समाचार प्राप्त होता है तथा वे सीता के पुनः दर्शन प्राप्त करने के लिये उनके पास चल देते हैं।[1]

राम चरित मानस में इस प्रसंग का अभाव है। वाल्मीकीय रामायण में अवश्य यह कथा उल्लिखित हुई है।[2]

आनन्द रामायण में हनुमान जी अशोक वाटिका में सीता के प्रथम दर्शन करने के बाद ही उनसे राम के अभिज्ञानार्थ चूड़ामणि प्राप्त कर लेते हैं किन्तु मानस में लंका-दहन के बाद वे पुनः सीता के समीप जाकर अभिज्ञान माँगते हैं।[3] यद्यपि आनन्द रामायण में भी हनुमान लंका से वापस लौटते समय पुनः सीता के दर्शनार्थ जाते हैं किन्तु इसका कारण सीता से विदा लेना नहीं, केवल सीता को सकुशल देखने की इच्छा है। सीता इस विदाई बेला पर भी हनुमान के बिना माँगे ही राम के लिये कर मुद्रिका देकर उन्हें विदा करती हैं।[4] सीता से विदा लेकर हनुमान वापस होते हैं तथा समुद्र के किनारे वाले एक पर्वत पर पहुँचते हैं। [illegible]

---

1. आ. रा. 1/9/230 से 232
2. वा. रा. 5/55/6, 15
3. (क) रा. च. मा. 5/26 (ख) रा. च. मा. 5/26/1 व 2
4. आ. रा. 1/9/278

समय ब्रह्मा श्री राम के लिये एक पत्र लिखकर हनुमान को देते हैं जिसमें यह सब लिखा था जो हनुमान ने लंका में किया था।[1]

इस प्रसंग का वाल्मीकि रामायण तथा मानस में अभाव है।

आनन्द रामायण में लंका से लौटकर आते हुए हनुमान का मार्ग में राम द्वारा मुनि वेष धारण कर अहंकारापहरण करना भी उल्लिखित है। हनुमान ने मार्ग में एक मुनि से कुछ गर्व पूर्वक कहा कि हे मुने, मैं श्री राम का कार्य करके आ रहा हूं तथा आपके पास जल पीने की इच्छा से आया हूं। मुनि ने एक जलाशय की ओर संकेत किया। हनुमान जी चूड़ामणि, अंगूठी तथा पत्र मुनि के पास रख जल पीने गये। इधर किसी वानर ने अंगूठी उठाकर मुनि के कमण्डलु में डाल दी। हनुमान ने अंगूठी न देखकर मुनि से पूछा तब मुनि ने संकेत से कमण्डलु दिखाया। हनुमान को कमण्डलु में श्री राम की हजारों मुद्रिकाएं ~~दिखायीं~~ दृष्टिगोचर हुईं। हनुमान ने मुनि से पूछा कि आपके पास इतनी अंगूठियां कहां से आयीं तथा इनमें से मेरी मुद्रिका कौन सी है। मुनि ने कहा कि जब जब श्री राम की आज्ञा से हनुमान ने लंका जाकर सीता का पता लगाया है और अंगूठी मेरे सामने रखी है तब तब बन्दरों ने उसे मेरे कमण्डलु में गिरा दिया है। इनमें से तुम अपनी अंगूठी खोज लो। यह सुनकर श्री हनुमान जी का गर्व नष्ट हो गया। हनुमान मुनि को प्रणाम कर समुद्र-पार चलने लगे। अंगदादि के साथ वे राम के पास पहुंचे तथा राम के हाथ में उसी मुद्रिका को देखकर राम को परम ब्रह्म मानकर उन्हें नमस्कार किया।[2]

मानस में प्रस्तुत प्रसंग का अभाव है। वाल्मीकीय रामायण में भी इस कथा का उल्लेख नहीं है।

<u>मानस में लंकाकाण्ड की कथावस्तु :</u>

लंका काण्ड का प्रारंभ तुलसी ने श्री राम व श्री शंकर की वंदना

- -

1. आ. रा. 1/9/280 व 281
2. आ. रा. 1/9/284 से 296

ने किया है। सागर वचन सुनने के उपरान्त राम ने सेतु बंध की आज्ञा दी। वहीं सेतु तट पर अपने इष्ट देव श्री शंकर के लिंग की स्थापना कर उस का महत्व वर्णन किया। अपनी सेना के सहित राम सागरोल्लंघन कर सुबेल पर्वत पर आसीन हुये। उधर लंका में मंदोदरी ने रावण से युद्ध न करने के लिये प्रबल प्रार्थना की। रावण ने सभी मंत्रियों के साथ मंत्रणा की। सभी ने चाटुकारिता करते हुए रावण को युद्ध के लिये प्रोत्साहित किया किन्तु उसके पुत्र प्रहस्त ने उन मंत्रियों की मंत्रणा का घोर विरोध किया। लंका के शिखर पर स्थित रावण के मल्लस्थान पर राम ने अपना शर संधान किया तथा रावण को छत्र मुकुट आदि से रहित कर दिया। इस अद्भुत घटना पर भी मंदोदरी ने रावण को सचेत किया किन्तु वह भी निष्प्रयोजन सिद्ध हुआ राम ने युद्ध के पूर्व अंगद को दूत रूप में रावण के पास भेजकर सामनीति का प्रदर्शन किया किन्तु रावण पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अंगद - रावण संवाद में उग्रता ही रही। मंदोदरी ने पुनः रावण को सचेत किया अंगद के लौटने पर रामादल के योद्धा सिंहनाद कर युद्धाह्वान करने लगे। दोनों पक्ष युद्ध के लिये तैयार हो गये। लंका में घोर आर्त्तनाद हो उठा। अंगद तथा हनुमान ने विपक्ष की आधी सेना नष्ट कर डाली। इस परिस्थिति को देख रावण के मातामह माल्यवन्त ने रावण के प्रति राम के भगवत्स्वरूप का परिचय कराया। रावण ने उसका भी घोर अपमान किया। लक्ष्मण-मेघनाद का द्वन्द्व युद्ध प्रारम्भ हुआ। मेघनाद ने वीरघातिनी प्रबल शक्ति का प्रहार कर लक्ष्मण को मूर्च्छित कर दिया। सुषेण वैद्य के आदेश से हनुमान संजीवनी औषधि लेने द्रोणागिरि गये। मार्ग में अवरोध रूप कालनेमि का वध एवं मकरी का उद्धार कर भरत से भेंट कर पवन वेग से आये तथा लक्ष्मण के स्वस्थ होते ही सुषेण को लंका पहुँचाया।

रावण ने अपने भाई कुम्भकर्ण को जगाकर युद्ध में सहायता की कामना की। उसने भी रावण की निन्दा कर युद्ध क्षेत्र में प्रयाण किया। सुग्रीव ने अवसर पाते ही उसे नाक-कान विहीन कर दिया। घमासान युद्ध के पश्चात राम ने उसका वध कर दिया। तत्पश्चात् मेघनाद ने मायावी युद्ध पुनः प्रारम्भ कर दिया। उसने राम को भी नागपाश में आबद्ध कर

डाला। जाम्बवन्त ने लात मारते ही अपने त्रिशूल से मेघनाद को धराशायी कर दिया। इधर देवर्षि नारद द्वारा प्रेषित गरुड़ ने मायावी सर्पों के बंधन से राम को बंधन मुक्त कर दिया। अब मेघनाद ने युद्ध में विजय प्राप्त करने की इच्छा से यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। किन्तु लक्ष्मणादि ने उसका विध्वंस कर डाला। अंततः लक्ष्मण ने क्रोधान्वित होकर उसका वध कर डाला। पुत्र शोक से रावण का क्रोध उद्दीप्त हो उठा। वह युद्ध क्षेत्र में आकर लक्ष्मण से युद्ध करने लगा। रावण ने ब्रह्म-शक्ति का प्रयोग कर कर लक्ष्मण को मूर्छित कर दिया। रावण ने विजय यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। किन्तु अंगदादि वानरों ने उसका विध्वंस कर डाला। रावण ने पुनः रण-भूमि की ओर प्रयाण किया। इन्द्र द्वारा प्रेषित रथ पर आरूढ़ होकर राम ने रावण से द्वन्द्व युद्ध प्रारम्भ किया और अंततः उसे परमगति प्रदान की। रावण के अंतिम संस्कार के बाद विभीषण का राज्याभिषेक हुआ। हनुमान ने जानकी जी को राम विजय का समाचार सुनाया। श्री जानकी जी शिविकारूढ़ कराकर राम के पास लायी गयीं परन्तु राम को आशंकित देख उन्होंने अपनी शुद्धि का प्रमाण दिया। देवगणों ने आकर राम की स्तुति की। विभीषण ने सभी वानरों को वस्त्राभूषणों से संतुष्ट किया। पुष्पक विमान द्वारा राम ने अपने इष्ट मित्रों के साथ अयोध्या की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में सीता को अनेक युद्ध-स्थलों तथा विशिष्ट स्थानों का परिचय कराते हुये राम ने दूरस्थ अयोध्या के दर्शन किये। भरद्वाज जी के आश्रम पर पहुंचकर हनुमान को भरत का समाचार लाने के लिये अयोध्या भेजा।

<u>आनन्द रामायण के सार काण्ड में मानस के लंका काण्ड की कथा का अंतर्भाव :</u>

आनन्द रामायण के सार काण्ड में दशम सर्ग के उत्तरार्द्ध, एकादश सर्ग तथा द्वादश सर्ग के पूर्वार्द्ध तक की कथा में मानस के लंका काण्ड की कथा समाहित है। श्री राम ने समुद्र तट पर शिवलिंग स्थापित करने का निश्चय करके हनुमान को शिवलिंग लाने के लिये काशी भेजा है। हनुमान जी शिवलिंग को प्राप्त कर राम के पास चले। इस समय उनके मन में कुछ गर्व हुआ। राम ने हनुमान के अहंकारापनयन के लिये एक बालू का लिंग बनाकर स्थापित करदिया। हनुमान ने जब देखा

तो उन्हें क्रोध आया। उन्होंने श्री राम से कहा कि आप ने मुझे व्यर्थ में क्यों परेशान किया ? अब इस शिवलिंग का क्या होगा ? राम ने कहा कि आप यदि मेरे द्वारा स्थापित लिंग को पूंछ में लपेट कर उखाड़ लो तो मैं तुम्हारे द्वारा लाये गये शिवलिंग को वहाँ पुनः स्थापित कर दूं। हनुमान ने बहुत प्रयास किया परन्तु बालुका लिंग तनिक भी नहीं हिला। हनुमान की पूंछ टूट गयी तथा वे मूर्छित हो जमीन पर गिर पड़े। कुछ क्षण बाद हनुमान स्वस्थ हो गर्व रहित होकर राम की प्रार्थना करने लगे। श्री राम जी ने हनुमान जी द्वारा लाये गये शिवलिंग को भी अलग स्थापित करवा दिया।

राम की आज्ञानुसार नल ने सेतु रचना प्रारंभ की। नल को भी यहाँ अहंकार हो गया। राम ने इस गर्व को भी दूर किया। नल के द्वारा समुद्र पर डाली गयी शिलायें तैरती तो अवश्य थीं पर समुद्र की तरंगित लहरों से वे इधर-उधर खिसकने लगीं। नल खिन्न मन होकर राम के पास गये। राम ने उपाय बतलाया कि "एक शिला पर 'रा' तथा दूसरी पर 'म" लिख दो तो शिलायें जुड़ जायेंगी। नल ने वैसा ही कर सफलता प्राप्त की। समुद्र पार कर राम ने अंगद को दूत रूप में लंका भेजा परन्तु अंगद की बात का रावण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अंगद ने वापस आकर रामादल में रावण की दर्पोक्ति सुनाई। यह सुनकर सुग्रीव रावण के पास गये तथा उससे घोर मल्ल युद्ध करके उसे पराजित कर दिया।

रावण के मातामह माल्यवान ने भी उसे राम से युद्ध न करने के लिये सदुपदेश दिया परन्तु रावण की हठधर्मी टस से मस न हुई। युद्ध प्रारम्भ हो गया। रावण के पुत्र मेघनाद ने शक्ति का प्रयोग करके लक्ष्मण को मूर्छित कर दिया। रामाज्ञा से हनुमान ने द्रोणाचल से औषधि लाकर उनकी मूर्च्छा दूर की। रावण ने लक्ष्मण पर शक्ति का प्रहार करके उन्हें मूर्छित कर दिया। हनुमान पुनः औषधि लाने के लिये द्रोणाचल गये। मार्ग में कालनेमि तथा मगरी रूप धारिणी धान्यमाली नाम की अप्सरा का उद्धार कर हनुमान औषधि लेकर वापस आये। अयोध्या में हनुमान को

भरत के बाण प्रहार से मूर्च्छित होकर गिरना पड़ा। स्वस्थ होने के बाद हनुमान ने भरत को सभी वृतान्त सुनाया तथा लंका पहुँचे। औषधि पाकर सुषेण ने लक्ष्मण को भी स्वस्थ कर दिया।

रावण के परम मित्र ऐरावण तथा मैरावण युद्ध का समाचार सुन राम- लक्ष्मण को चुरा कर पाताल ले गये। श्री हनुमान जी इनकी खोज में पाताल पहुँचे तथा वहाँ पर मकरध्वज से भेंट हुई। मकरध्वज ने हनुमान जी को अपनी जन्म कथा सुनाकर उन्हें प्रणाम किया। तथा राम लक्ष्मण का पता बतला दिया। कामाक्षा देवी के मंदिर में प्रवेश कर के हनुमान ने राम व लक्ष्मण को ऐरावण तथा मैरावण की मृत्यु का भेद बताया। राम ने दोनों रक्षसों का वध कर दिया। हनुमान राम -लक्ष्मण को वापस ले आये।

अब रावण ने अपने भाई कुम्भकर्ण को जगाया। रावण की प्रेरणा से वह समरभूमि में गया तथा राम के द्वारा वह शरीर त्याग कर परम धाम को प्राप्त हुआ। विजयेच्छा से मेघनाद ने निकुम्भिला देवी के मंदिर में यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। लक्ष्मण तथा हनुमान ने उसका यज्ञ विध्वंस कर दिया। लक्ष्मण व मेघनाद के बीच घमासान युद्ध हुआ। लक्ष्मण ने अंततः मेघनाद का वध कर दिया। मेघनाद की पति परायणा पत्नी सुलोचना उसके साथ सती हो गयी। रावण पुत्र शोक से अत्यधिक दुखित हुआ। रावण अशोक वाटिका में राम का कटा हुआ नकली सिर लेकर सीता के पास पहुंचा पर त्रिजटा ने प्रथम ही यह रहस्य सीता को बतला दिया था। अतः सीता ने अपने सतीत्व की रक्षा करते हुए रावण को तीक्ष्ण फटकार दी। मंदोदरी ने रावण को बहुत समझाया पर उसके उपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ा राम-रावण युद्ध प्रारंभ हुआ। रावण ने राम के समक्ष नकली सीता काट डाली। त्रिजटा ने यह रहस्य बतला कर वानर दल को सान्त्वना दी। भीषण युद्ध होने के बाद राम ने रावण का वध कर दिया। सीता ने अग्नि परीक्षा देकर राम को अपनी शुद्धि का प्रमाण दिया। राम ने सीता को स्वीकार किया। त्रिजटा को वरदान देकर ससैन्य राम ने अयोध्या के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में राम सम्पाती से भेंटकर सीता को विविध दृश्य दिखलाते हुए अयोध्या की ओर चल पड़े।

तुलनात्मक समीक्षा :

आनन्द रामायण के अनुसार श्री राम जी ने शिव जी की स्थापना के लिये हनुमान जी को शिवलिंग लेने काशी भेजा। हनुमान जी के द्वारा उचित मुहूर्त में शिवलिंग न ला पाने के कारण श्री राम जी ने बालुकामय शिवलिंग ही स्थापित कर दिया। श्री हनुमान जी इस घटना से क्रोधित हो उठे। श्री राम जी ने उनके अहंकारापनयन के लिये उनसे कहा कि यदि तुम मेरे द्वारा स्थापित लिंग को उखाड़ दो तो मैं तुम्हारे द्वारा लाये हुए लिंग को स्थापित कर सकता हूं। हनुमान जी इस प्रयास में असफल रहे तथा गर्व छोड़कर श्री राम जी की प्रार्थना करने लगे।[1]

राम चरित मानस में इस घटना का उल्लेख नहीं है। मानस में तो राम ने सभी मुनियों को बुलाकर बालुकामय लिंग की ही स्थापित करवाया है।[2]

सेतुबंध- प्रसंग में दोनों ग्रन्थों का दृष्टिकोण एक है।[2-3] दोनों ग्रन्थों के अनुसार राम के लिये यह सेतु रचना साधारण घटना है। नल-नील को तो श्री राम जी ने केवल बधाई दी है।

आनन्द रामायण में लक्ष्मण, रावण द्वारा फेंकी गयी शक्ति से मूर्च्छित हुए हैं।[4] किन्तु मानस में मेघनाद की शक्ति द्वारा लक्ष्मण का मूर्च्छित होना उल्लिखित है। वाल्मीकि रामायण में भी आनन्द रामायण की भांति रावण लक्ष्मण संग्राम उल्लिखित है। तुलसी ने रावण लक्ष्मण की चोट न दिखाकर मेघनाद-लक्ष्मण की चोट चित्रित करके अपनी मौलिकता का परिचय दिया है क्योंकि यह चोट अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त तथा आकर्षक है।[5]

---

1. आ. रा. 1/10/136 से 138
2. मा. 6/1/5 व 6

2-3 आ. रा. 1/10/205 मा. 6/2/ 8 व 9

4. आ. रा. 1/11/38
5. रा. च. मा. 6/53/3 व 4

हनुमान जी द्वारा द्रोणाचल से संजीवनी बूटी लाने का प्रसंग दोनों ग्रन्थों में उल्लिखित है। मार्ग में राक्षस कालनेमि तथा मगरी वेष धारिणी धान्यमाली नाम की अप्सरा का उद्धार भी हनुमान जी द्वारा चित्रित किया गया है। आनन्द रामायण में धान्यमाली अप्सरा ने अपने पूर्व जन्म की कथा हनुमान जी से निवेदित करते हुए कहा है कि पूर्व काल में एक मुनि ने मुझे रति माँगी। किन्तु जब मैंने रति प्रदान नहीं की तब मुनि ने मुझे शापित करते हुए कहा कि तू मगरी हो जा तथा तेरा निस्तार मारुति से होगा ।[1]

मानस में इसका केवल सांकेतिक उल्लेख है ।[2]

आनन्द रामायण में ऐरावण तथा मैरावण द्वारा राम-लक्ष्मण के हरण करने का प्रसंग उल्लिखित है।[3] राम लक्ष्मण को खोजते हुए हनुमान पाताल पहुँचते हैं तथा हनुमान के सहयोग से राम द्वारा ऐरावण तथा मैरावण का वध हो जाता है ।

प्रस्तुत प्रसंग का उल्लेख मानस में नहीं है। वाल्मीकि रामायण में भी प्रस्तुत प्रसंग का अभाव है ।

आनन्द रामायण तथा मानस दोनों ग्रन्थों में कुम्भकर्ण के युद्ध करने से पूर्व विभीषण - कुम्भकर्ण मिलन चित्रित है। वाल्मीकि रामायण में इस प्रसंग का अभाव है। आनन्द रामायण में कुम्भकर्ण ने विभीषण से जो कुछ कहा है मानस में भी उसी का अनुवाद सा प्रतीत होता है ।[4-5]

---

1. आ॰ रा॰ 1/11/56
2. रा॰ च॰ मा॰ 6/56/1
3. आ॰ रा॰ 1/11/75 से 127
4. " सम्यक्कृतं त्वया वत्स मद्धेते मा स्थितो भव ।
   कुलक्षयोऽयः परोक्षा च जायते न यथा कुरु हि ॥
   आ॰ रा॰ 1/11/152
5. " बचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर।
   जाहु न निज पर सूझ मोहि भयउँ कालबस बीर॥
   मा॰ 6/64

मानस पीयूषकार इस मिलन का आधार इस प्रकार लिखते हैं:-

" लंका से श्री राम जी की शरण में आते समय विभीषण जी अपनी माता तथा बड़े भाई कुबेर से मिलकर आये थे। कुम्भकर्ण भी बड़े भाई हैं और राम विमुख नहीं है, अतएव उनसे मिलकर आशीर्वाद लेने आये।....... वास्तविक वृत्तान्त बताकर अपने को निरपराध सिद्ध करने तथा बंधु विरोधी होने के संदेह निवारणार्थ गुप्तचर जानकर मिलने गये।[1]

मेघनाद वध के बाद उसकी पत्नी सुलोचना के सती होने की कथा भी आनन्द रामायण में उल्लिखित है।[2] मानस में इस प्रसंग का अभाव है। वाल्मीकि रामायण में भी इस कथा का उल्लेख नहीं है।

आनन्द रामायण के अनुसार रावण ने मय दानव से राम का नकली मस्तक बनवाकर सीता को दिखाया तथा उन्हें राम के मारे जाने का संदेश दिया। परन्तु ब्रह्मा जी द्वारा पूर्व ही सीता को सम्पूर्ण रहस्य बता दिया गया था। अतः सीता ने रावण को लज्जित करते हुए कहा कि मैं राम के बाण से कटकर गिरे हुए तेरे ही सिर देखना चाहती हूं।[3]

इस प्रसंग का भी मानस में अभाव है।

दोनों ही ग्रन्थों में श्री राम जी को युद्ध क्षेत्र में विरथ देख इन्द्र द्वारा रथ तथा सारथी मातलि को भेजने का उल्लेख है। आनन्द रामायण में राम के विरथ होने की चिन्ता स्वयं इन्द्र को हुई किन्तु मानस में भक्त विभीषण एवं देव दोनों को। मानस में भक्त विभीषण की चिन्ता के निवारणार्थ श्री राम जी ने धर्म-रथ का उपदेश किया। यह रथ रूपक प्रसंग तुलसी की भक्ति महा एवं गीतोपदेश की छटा का दिग्दर्शक है।[4] इस प्रसंग का आनन्द रामायण में अभाव है। वाल्मीकि रामायण एवं अन्य रामायणों में भी प्रस्तुत उपदेश का चित्रण नहीं है।

---

1. रा.च. मा. पीयूष लंका काण्ड - पृष्ठ 342
2. आ. रा. 1/11/205 से 216
3. आ. रा. 1/11/220
4. रा.च.मा. 6/79/4 से 6/80 तक

आनन्द रामायण में मंदोदरी का रावण के साथ सती होना वर्णित है।[1] किन्तु मानस में यह उल्लेख नहीं मिलता है। मानस में केवल रावण पत्नियों द्वारा तर्पण का उल्लेख है ।[2]

दोनों ही काव्यों में सीता को पालकी से उतार कर पैदल लाया जाता है। आनन्द रामायण में राम ने उनसे अत्यन्त अपमान जनक शब्द भी कहे।[3] मानस में कुछ अपमान जनक शब्द केवल लोक दिखावे के लिये कहे गये हैं क्योंकि राम की नर-लीला का रहस्य तथा उस कारण सीता का अग्नि में निवास करना लोगों को अविदित था ।[4] दोनों ग्रन्थों में यह प्रसंग पूर्व संदर्भ से संबंधित है। यह सीता की परीक्षा न होकर अग्नि देव के पास से धरोहर की वापसी मात्र है ।

सभी देवताओं ने आकर राम की स्तुति की। राम के आदेश पर इन्द्र द्वारा कपि-भालुओं को पुनर्जीवित करने का उल्लेख भी दोनों ग्रन्थों में मिलता है। आनन्द रामायण के अनुसार श्री राम जी ने एक बन्दर को यमराज के यहाँ से भी वापस करा लिया ।[5] यह बन्दर अमृत वर्षा से जीवित नहीं हो सका था क्योंकि इसे कुम्भकर्ण खा गया था। इस घटना के द्वारा आनन्द रामायणकार ने राम के अलौकिक पराक्रम का संकेत दिया है ।

अमृत- वर्षा से कपि भालु ही क्यों जीवित हुए ? निशाचर क्यों जीवित नहीं हुए ? इसका कारण दोनों ग्रन्थों में पृथक-पृथक है। आनन्द रामायण के अनुसार कपि-भालुओं ने राक्षसों को पुनः ही जीवित हो जाने के डर से समुद्र में फेंक दिया था ।[6]

मानस में इसका आध्यात्मिक कारण दिया हुआ है। राम के द्वारा

- -

1. आ.रा. 1/11/285
2. रा.च.मा. 6/105
3. आ. रा. 1/12/5
4. रा.च.मा. 6/107/14 , मा. 6/108
5. आ. रा. 1/12/13 से 16
6. आ. रा. 1/12/ 15 व 16

मारे जाने पर निशाचर मोक्ष गति को प्राप्त हो गये। उनके मन रामाकार हो गये। जन्म तथा मरण से वे मुक्त हो चुके थे अतः अमृत वर्षा से भी वे जीवित न हो सके।

<u>मानस में उत्तर काण्ड की कथावस्तु :</u>

इस काण्ड की कथा का प्रारम्भ गोस्वामी जी ने भरत की आकुल प्रतीक्षा से किया है। विप्र वेश धारी हनुमान ने भरत को राम के अयोध्या आगमन की सूचना दी। राम का स्वागत समारोह बड़ी सज धज के साथ सम्पन्न किया गया। राम ने अनेक रूप बनाकर थोड़े ही समय में सबसे मिलकर सभी आगन्तुक महानुभावों को मज्जन आदि कराकर वस्त्राभूषणों से अलंकृत किया। तत्पश्चात राम राज्याभिषेक समारोह मनाया गया जिसमें त्रिलोक सम्मिलित हुए।

राम ने अपने साथ आये हुए वानरों एवं विभीषणादि को संतुष्ट कर विदा किया। अंगद व राम का इस अवसर पर जो संवाद हुआ उसमें तुलसी के भावुक हृदय की झलक स्पष्ट परिलक्षित है।

इस प्रकार राम राज्य का विवरण देते हुए कथा वस्तु का उपसंहार कर तुलसी ने अनेक संवादों की चर्चा की है। राम-सनकादि मिलन प्रसंग में सत्संग महिमा, राम-भरत वार्ता के अंतर्गत संत असन्त स्वभाव वर्णन, जन प्रकृति का विश्लेषण, पुरवासि गीता में राजा राम की इह लौकिक शिक्षा का उल्लेख है। वशिष्ठ राम संवाद में भक्ति की महत्ता वर्णित है।

तत्पश्चात पार्वती-शंकर संवाद में पार्वती जी राम कथा की परम्परा के अधिनायक काग भुशुण्डि जी के आख्यान के प्रति अपनी जिज्ञासा प्रकट करती हैं। श्री शिव जी गरुड़ भुशुण्डि संवाद का उल्लेख करते हैं। इस प्रकरण में काग भुशुण्डि द्वारा राम के अलौकिक रूप का अद्भुत दर्शन, उसमें अभीष्ट भक्ति की प्राप्ति, कागभुशुण्डि के पूर्व जन्मों के वृत्तान्त, कलिकाल-वर्णन, लोमश-भुशुण्डि सम्वाद ज्ञान-दीपक तथा भक्ति-चिन्तामणि का विवेचन मानस रोगों का विश्लेषण आदि सारगर्भित प्रसंग है।

- -

राम-कथा का माहात्म्य वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने प्रभु से अविरल भक्ति की याचना की है। इस प्रकार गोस्वामी जी ने " राम चरित मानस" की कथा को समाप्ति प्रदान की है ।

<u>आनन्द रामायण के सारकाण्ड में मानस के उत्तर काण्ड की कथा का अन्तर्भाव :</u>

आनन्द रामायण के सार काण्ड में द्वादश तथा त्रयोदश सर्ग की कथा में मानस के उत्तर काण्ड की कथा समाहित है। चौदह वर्ष की अवधि समाप्त हो जाने पर भरत अत्यधिक दुखी होते हैं तथा सरयू किनारे चिता में कूदने को तैयार हो जाते हैं । इसी समय हनुमान जी विप्र वेश धारण कर भरत को राम के आगमन का संदेश देते हैं। राम के राज्याभिषेक की तैयारियाँ होने लगती हैं। राम व भरत का भाव-पूर्ण मिलन होता है। राम अनेक रूपों में बहुत ही अल्प समय में सब से मिलते हैं। श्री राम जी का राज्याभिषेक सम्पादित हो जाने पर भगवान शिव अयोध्या आकर उनकी स्तुति करते हैं। सभी देवता राम को अपने उपहार समर्पित कर स्तुति करते हैं। राज्याभिषेक के उत्सव में स्वर्ग से महाराज दशरथ का आगमनहोता है तथा वे राम को राज्य सिंहासनासीन देखकर अत्यधिक प्रसन्न होते हैं। श्री राम जी द्वारा ब्राह्मणों, मित्रों तथा परिवार के लोगों को विभिन्न उपहार भेंट किये जाते हैं । श्री हनुमन्त लाल जी श्री राम जी से विविध वरदान प्राप्त करते हैं। माँ जानकी द्वारा भी उन्हें हरेक स्थान पर सभी योग्य पदार्थ उपलब्ध होने का वरदान प्राप्त हो जाता है ।

तत्पश्चात पुष्पक विमान, सुग्रीव, विभीषण आदि की विदाई हुई। श्री हनुमान जी भी तपस्या के लिये हिमालय चले गये। इस सर्ग के अंत में आनन्द रामायणकार ने राम के रूप-पक्ष का सुन्दर रूपक प्रस्तुत करके उसकी समाप्ति का उल्लेख किया है ।

त्रयोदश सर्ग में मेघनाद की जीवन कथा का उल्लेख कर कवि ने

रावण-कुम्भकर्ण आदि की जन्म कथा का वर्णन किया है। तत्पश्चात माता की आज्ञा से रावण का शिवलिंग लेने कैलाश जाना तथा वहाँ अपने मस्तक काट-कर शिव जी को प्रसन्न कर वरदान पाने का वर्णन है। इसके बाद रावण, कुम्भकर्ण तथा विभीषण की तपश्चर्या तथा ब्रह्मा द्वारा उन्हें वरदान प्राप्ति का उल्लेख है। रावण को कुबेर पुत्र नलकूबर के शाप की कथा के बाद मेघ-नाद द्वारा इन्द्र को जीतने की कथा का उल्लेख है। इसके बाद रावण की बालि से पराजय तथा बालि की कांख में रहना, बालि से परास्त होना तथा राजा अनरण्य द्वारा उसे दिये गये शाप का उल्लेख है। इसके साथ ही रावण की श्वेतद्वीप यात्रा तथा वहाँ स्त्रियों द्वारा उसको पीटे जाने की कथा भी चित्रित है।

रावण की जीवन कहानी के बाद बालि-सुग्रीव की जन्म कथा तथा ब्रह्मा द्वारा बालि को किष्किन्धा का राज्य देने का वृत्तान्त वर्णित है। तत्पश्चात् हनुमान की जन्म कथा, बाल्यावस्था में उनके द्वारा सूर्य को निगलना तथा उन पर इन्द्र द्वारा वज्र-प्रहार का प्रसंग उल्लिखित है। इस पर पवन देवता के कोप का वर्णन करके हनुमान को ब्रह्मा जी द्वारा दिये गये वरदान का उल्लेख है। हनुमान की कपि स्वभावानुकूल शैतानी पर मुनियों ने शाप दिया कि जब तुम अपने पुरुषार्थ को सुनोगे तब ही तुम्हें अपना पौरुष याद आयेगा। इस कथा के बाद कवि ने राम राज्य के सुख का वर्णन करके सार काण्ड की कथा को विश्राम दे दिया है।

<u>तुलनात्मक समीक्षा :</u>

अवधि के समाप्त प्राय होने पर भरत की विरह दशा का चित्रण दोनों ग्रन्थों में है। आनन्द रामायण में यह चित्रण अधिक विस्तृत है किन्तु मानस में इसका सांकेतिक वर्णन है।

आनन्द रामायण के अनुसार भरत चौदह वर्ष बीत जाने पर भी राम के न लौटने के कारण अग्नि में प्रवेश करने की तैयारी करने लगते हैं।[1]

---

1. आ. रा. 1/12/65-66

यहाँ तक कि वे सरयू किनारे पहुँच कर स्नान आदि से निवृत्त होकर चिता का निर्माण करवाते हैं तथा अग्नि की सात प्रदक्षिणा करके श्री राम का ध्यान करते हैं। इसके बाद वे उत्तराभिमुख बैठे होकर मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगे।[1] इसी समय हनुमान जी द्वारा उन्हें राम के आगमन का सुखद संदेश प्राप्त होता है।

मानस में भरत को अटल विश्वास है कि राम अवश्य लौटेंगे। अतः वे विरह में दुःखित तो अवश्य हैं किन्तु आत्म-दाह का कोई ऐसा प्रयास उनके द्वारा नहीं किया गया। भरत को प्रभु राम के मृदुल स्वभाव पर भरोसा है कि वे उनके अवगुणों को भुलाकर अवश्य पधारेंगे।[2] इन्हीं विचारों में निमग्न भरत लाल जी को विप्र वेष धारी हनुमान राम के प्रत्यागमन का संदेश देकर धैर्य धारण कराते हैं।[3]

श्री राम जी द्वारा अमित रूप बनाकर एक ही समय में सभी अयोध्यावासियों से मिलने का उल्लेख दोनों ग्रन्थों में प्राप्त होता है।[4-5] इस कृत्य को परम प्रभु राम का कौतुक कहा गया है।

राम चरित मानस में केवल राम के राज्याभिषेक का वर्णन है किन्तु आनन्द रामायण में इस के साथ लक्ष्मण के यौवराज्य का भी वर्णन है।[6] अध्यात्म रामायण में भी लक्ष्मण को युवराज पद देने का वर्णन मिलता है।[7] वाल्मीकि रामायण में युवराज पद पर भरत को प्रतिष्ठित किया गया है।[8]

---

1. आ० रा० 1/12/ 74 व 75
2. रा० च० मा० 7/ प्रारंभिक छठीं व 7वीं चौपाइयाँ
3. रा० च० मा० 7/1(क)
4. आ० रा० 1/12/84 व 85   5. रा० च० मा० 7/5/4 व 5
6. आ० रा० 1/12/169
7. अ० रा० 6/16/26
8. वा० रा० 6/131/90

सभी सखाओं की विदाई के प्रसंग में आनन्द रामायण के अनुसार हनुमान का तप करने हिमालय जाना उल्लिखित है।[1] परन्तु मानस में वे सुग्रीव की आज्ञा से राम की सेवा के लिये रुक जाते हैं।[2] वाल्मीकि रामायण में हनुमान की भी सबके साथ विदाई हो गयी है।[3]

अंगद की विदाई मानस में विशेष मार्मिक है। वह भी हनुमान के समान राम की सेवा में रुक जाना चाहते थे।[4] इस प्रकार तुलसी की भक्ति भावना ने ~~हनुमान~~ ये लघु प्रसंग राम चरित के उपसंहार में जोड़ दिये हैं।

आनन्द रामायण में विदाई देते पर श्री राम व श्री जानकी जी ने हनुमान को विभिन्न वरदान प्रदान किये हैं जिनका उल्लेख मानस में नहीं है। श्री हनुमान जी ने राम से यह माँगा है कि लोक में जहाँ कहीं भी आपकी पवित्र कथा हो वहाँ जाने में मेरी अप्रतिहत गति हो।[5] श्री जानकी जी ने मारुति से कहा कि तुम जहाँ कहीं रहोगे वहाँ पर तुमको सभी भोग्य पदार्थ प्राप्त हो जाया करेंगे। तुम्हारा नाम स्मरण करने से ही भूत-प्रेत तथा पिशाच आदि दूर भाग जायेंगे।[6]

आनन्द रामायण के सार काण्ड में द्वादश सर्ग के अंत में कवि ने राम के रण यज्ञ का जो रूपक प्रस्तुत किया है वह राम-कथा के अन्य किसी भी ग्रन्थ में मिलना असंभव है।

आनन्द रामायण में सारकाण्ड के त्रयोदश सर्ग में रावण चरित, हनुमच्चरित तथा बालि सुग्रीव की जन्म कथा के प्रसंग वर्णित हैं। इन प्रसंगों का समावेश मानस के उत्तर काण्ड में नहीं किया गया है। रावण

---

1. आ० रा० 1/12/166
2. रा०च०मा० 7/18/9
3. वा० रा० 6/131/84
4. रा०च०मा० 7/17/2 व 3
5. आ० रा० 1/12/143
6. आ० रा० 1/12/149

चरित मानस के बालकाण्ड में है। अन्य प्रसंग मानस के विभिन्न काण्डों में संकेत रूप से समाविष्ट हुए हैं।

रावण, कुम्भकर्ण तथा विभीषण आदि के जन्म की कथा आनन्द रामायण में सारकाण्ड के त्रयोदश सर्ग में विस्तार पूर्वक वर्णित है जबकि मानस में इसका संकेत मात्र बालकाण्ड में किया गया है।[1]

इसके स्थान पर मानस में रावण के पूर्व जन्म की कथा प्रतापभानु चरित के रूप में विस्तार पूर्वक कही गयी है।[2] मानस में रावण पूर्व जन्म के संस्कार लेकर नवीन जन्म धारण करता है और उसका अवतार भी होता है।

" कहेसि बहुरि रावन अवतारा ।

/7/63/8

आनन्द रामायण में रावण चरित के बाद बालि सुग्रीव का जन्म वृत्तान्त भी वर्णित है।[3] यद्यपि दोनों ग्रन्थों में बालि-सुग्रीव की कथा राम - सुग्रीव संवाद में दी गयी है। मानसकार ने उसके विषय में अन्यत्र कुछ नहीं कहा है।

आनन्द रामायण में उपरोक्त क्रम में ही हनुमान की जन्म कथा, उनका सूर्य को निगलना, इन्द्र द्वारा उन पर वज्र प्रहार, ब्रह्मा द्वारा उनको वरदान प्राप्ति तथा मुनियों द्वारा उनको अपने बल को भूल जाने के शाप की कथा का भी उल्लेख है।[4] तुलसी ने हनुमान के राम भक्ति, बल, बुद्धि तथा ब्रह्मचर्य आदि गुणों का [illegible] पूर्वक वर्णन किया है किन्तु उनके जन्म आदि के विषय में अत्यन्त साधारण संकेत मात्र किया है। हनुमान के चरित्र का अधिक विस्तार उन्होंने

---

1. रा.च.मा. 1/176
2. रा.च.मा. 2/153–175
3. आ.रा. 1/13/141 से 151
4. आ. रा. 1/13/155 से 179

" हनुमान- बाहुक" में किया है ।

इस प्रकार तुलसी ने मानस के उत्तर काण्ड की रचना स्वतंत्र रूप से ही की है ।

<u>आनन्द रामायण के सार काण्ड के अतिरिक्त शेष आठ काण्डों का कथा शिल्प :</u>

<u>यात्रा काण्ड -</u>

एक बार श्री सीता जी के आग्रह से श्री राम जी ने गंगा-यात्रा की तैयारी की। गंगा तट पर पहुंच कर कौशल्या आदि माताओं तथा सुहागिन स्त्रियों एवं बहुसंख्यक ब्राह्मणों के साथ सीता ने गंगा पूजन किया। श्री राम जी वहाँ नौ दिन पर्यन्त रहे। इसी बीच कुम्भोदर नाम के मुनि वहाँ आये। मुनि बिना भोजन किये ही लौटने लगे। दूसरों के पूंछने पर उन्होंने भोजन न करने का कारण बताया कि राम ने ब्राह्मण हत्या की है। इसके प्रायश्चित में उन्होंने तीर्थ सेवन तथा यज्ञ भी नहीं किया। अतः उनका अन्न मैं नहीं खा सकता हूं । मुनि ने यह बात जन- कल्याण के लिये कही थी ताकि सबको राम का दर्शन सुलभ हो सके ।

राम तीर्थ यात्रा के लिये तैयार हुये। उनके आदेशानुसार पुष्पक विमान दस योजन विस्तृत तथा सौ खण्ड का ऊँचा हो गया । राम सदल-बल प्रयाग पहुंचे। प्रयाग से काशी पहुंचकर उन्होंने वहाँ एक वर्ष तक निवास करके विभिन्न लोकोपकारी कार्य किये। इस प्रकार पूर्व देश के तीर्थों की यात्रा करने के बाद राम ने दक्षिण-भारत की तीर्थ यात्रा की। सेतार्, में राम को कन्या कुमारी से भेंट हुई जो राम को पति रूप में चाहती थी। राम ने उसे वरदान दिया कि अगले जन्म में तू जाम्बवान के यहाँ उत्पन्न होकर जाम्बवती नाम से विख्यात होगी। तब कृष्ण अवतार में तुझे वरण करूँगा। तत्पश्चात राम ने रंगनाथ की यात्रा सम्पन्न की ।

इसके बाद राम ने पश्चिमी प्रदेश के तीर्थों की यात्रा प्रारम्भ

की। उन्होंने अगस्त्य तथा सुतीक्ष्ण मुनियों के आश्रम की यात्रा की। तत्पश्चात् राम ने पुष्कर तीर्थ की यात्रा सम्पन्न की। राम के पुष्पक विमान पर ही नित्य करोड़ों ब्राह्मणों के भोजन का प्रबन्ध होता था।

अब श्री राम ने उत्तर भारत की तीर्थ यात्रा प्रारम्भ की। बद्री नारायण तथा केदारनाथ की यात्रा करते हुए वे हिमाद्रि पर गये। वहाँ पर उन्होंने मान सरोवर के दर्शन किये। गंगा तथा सरयू के उद्गम स्थान के दर्शन करते हुए वे कैलाश पर्वत पर पहुँचे। वहाँ पर श्री शिव जी ने राम का पूजन करके कहा कि हे प्रभु। आपके नाभिकमल से ब्रह्मा पैदा हुए तथा ब्रह्मा से मैं पैदा हुआ। रोदन करने के कारण मेरा नाम रूद्र पड़ा। आपकी आज्ञानुसार प्रलयकाल में मैं तीनों लोकों का संहार करता हूँ। तब क्या यह पाप आपको नहीं लगता, जो अब आप रावण वध के ब्रह्म हत्या रूपी लोकापवाद के भय से तीर्थ यात्रा करने निकले हैं। हे प्रभो! मैं समझ गया कि आप यह सब लोक शिक्षा के लिये क्रीड़ा मात्र कर रहे हैं। श्री राम ने वहाँ पर ब्रह्मा जी व शिव जी को एक मास बाद अपने द्वारा आयोजित भावी यज्ञ की सूचना दी। तत्पश्चात् महाकालेश्वर तथा नैमिषारण्य की यात्रा सम्पन्न करते हुये वे अयोध्या लौटे।

याग काण्ड :

एक दिन सभा में श्री राम जी ने गुरु वशिष्ठ जी से कहा कि हे देव, मैं तीर्थ यात्रा के बाद अश्वमेध यज्ञ भी करना चाहता हूँ। यज्ञ के लिये जो आवश्यक वस्तुएँ हैं, कृपया आप लक्ष्मण को बतला दीजिए। श्री वशिष्ठ जी ने यज्ञार्थ आवश्यक सामग्री के लिये लक्ष्मण से कहा। श्याम कर्ण अश्व छोड़ा गया। यज्ञ में ब्रह्मा के स्थान पर स्वयं ब्रह्मा जी नियुक्त हुये। मुनि विश्वामित्र जी होता बने। अनेक ऋषि सपरिवार यज्ञ में सम्मिलित हुये। राम ने लक्ष्मण को आदेश दिया कि चाण्डाल से लेकर प्रत्येक प्राणी का ध्यान रखा जाय। किसी को कोई कष्ट न मिलने पाये।

श्याम कर्ण अश्व के पीछे श्री शत्रुघ्न व सुमंत आदि सेना के सहित चले।

छः मास में अनेकानेक देशों का पर्यटन करके राम अब अयोध्या लौटा। यज्ञ में कुम्भोदर मुनि का भी आगमन हुआ इनके आगमन पर सभी राजा दुखित हुए क्योंकि सबने इन्हें राम का विरोधी समझा। कुम्भोदर मुनि ने राम को प्रणाम करके कहा कि प्रभु आप पर दोष कौन लगा सकता है ? आप तो स्वतः तीर्थ स्वरूप हैं। आपको तीर्थों से क्या प्रयोजन ? मैंने तो आपको तीर्थाटन करने को इसलिये कहा कि आपसे लोक में शिक्षा मिलेगी। लोग ये समझेंगे कि जब राम ने दोष क्षय के लिये तीर्थाटन किया तो हमें भी करना चाहिये। इस प्रकार के वाक्यों से मुनि ने राम को प्रसन्न किया ।

श्याम कर्ण घोड़े को आमंत्रित करके ब्राह्मणों ने उसका वध किया। राम ने बड़ी ही संयमित दिनचर्या के साथ यज्ञ सम्पन्न किया। अश्व मेध की फल प्राप्ति के लिये अवभृथ स्नान के लिये वशिष्ठ जी ने राम से कहा। सरयू में राम तीर्थ पर अवभृथ स्नान सम्पन्न हुआ। स्नान के बाद राम ने विविध दानादि से मुनियों तथा ब्राह्मणों को संतुष्ट किया। वशिष्ठ जी को दक्षिणा में वे कामधेनु भी देने लगे। वशिष्ठ जी ने कहा कि आप इसे न देकर हमें सीता दान में दीजिए। राम ने वैसा ही कर दिया। सभी लोग अवाक रह गये। वशिष्ठ जी बोले सीते मेरे पीछे बैठो मैं तुम्हें पुत्री मानता हूं । दुःखातिरेक से सीता रोने लगीं। तत्पश्चात् राम ने कहा कि हे गुरुदेव सुरभी गाय को भी आप ले लें क्योंकि मैंने आपको देने के लिये ही इसे मंगाया था। वशिष्ठ जी ने प्रसन्न होकर कहा कि राम आप सीता के बराबर स्वर्ण तौल कर हमें दे दें तथा सीता को वापस ले लें। इसके साथ ही आज से कभी आप कामधेनु, चिन्तामणि, सीता, कौस्तुभरत्न, पुष्पकविमान, अयोध्यापुरी व अपना राज्य ये सात वस्तुयें किसी को न देंगे। यदि ये दी गयी तो आप मेरे आज्ञा भंग जन्य दोष से अत्यन्त दुखी होंगे। राम ने यह स्वीकार कर लिया तथा आठ बार स्वर्ण से तौल सीता को वापस लिया।

सब को सन्तुष्ट करके राम ने यज्ञ की समाप्ति की। इस अवसर पर श्री शिव जी ने राम से माँगा कि सब महीनों में पौष का मास उत्तम होगा।

छः माह में अनेकानेक देशों का पर्यटन करके वह अश्व अयोध्या लौटा। यज्ञ में कुम्भोदर मुनि का भी आगमन हुआ इनके आगमन पर सभी राजा दुखित हुए क्योंकि सबने इन्हें राम का विरोधी समझा। कुम्भोदर मुनि ने राम को प्रणाम करके कहा कि प्रभु आप पर दोष कौन लगा सकता है ? आप तो स्वतः तीर्थ स्वरूप हैं। आपको तीर्थों से क्या प्रयोजन ? मैंने तो आपको तीर्थाटन करने को इसलिये कहा कि आपसे लोक में शिक्षा मिलेगी। लोग ये समझेंगे कि जब राम ने दोष क्षय के लिये तीर्थाटन किया तो हमें भी करना चाहिये। इस प्रकार के वाक्यों से मुनि ने राम को प्रसन्न किया ।

श्याम कर्ण घोड़े को अभिमंत्रित करके ब्राह्मणों ने उसका वध किया। राम ने बड़ी ही संयमित दिनचर्या के साथ यज्ञ सम्पन्न किया। अश्व मेध की फल प्राप्ति के लिये अवभृथ स्नान के लिये वशिष्ठ जी ने राम से कहा। सरयू में राम तीर्थ पर अवभृथ स्नान सम्पन्न हुआ। स्नान के बाद राम ने विविध दानादि से मुनियों तथा ब्राह्मणों को संतुष्ट किया। वशिष्ठ जी को दक्षिणा में वे कामधेनु भी देने लगे। वशिष्ठ जी ने कहा कि आप इसे न देकर हमें सीता दान में दीजिये। राम ने ऐसा ही कर दिया। सभी लोग अवाक रह गये। वशिष्ठ जी बोले सीते मेरे पीछे बैठो मैं तुम्हें पुत्री मानता हूं । दुःखातिरेक से सीता रोने लगीं। तत्पश्चात् राम ने कहा कि हे गुरुदेव सुरभी गाय को भी आप ले लें क्योंकि मैंने आपको देने के लिये ही इसे मंगाया था। वशिष्ठ जी ने प्रसन्न होकर कहा कि राम आप सीता के बराबर स्वर्ण तौल कर हमें दे दें तथा सीता को वापस ले लें। इसके साथ ही आज से कभी आप कामधेनु, चिन्तामणि, सीता, कौस्तुभमणिरत्न, पुष्पकविमान, अयोध्यापुरी व अपना राज्य ये सात वस्तुयें किसी को न देंगे। यदि ये दी गयीं तो आप मेरे आज्ञा भंग जन्य दोष से अत्यन्त दुखी होंगे। राम ने यह स्वीकार कर लिया तथा आठ बार स्वर्ण से तौल सीता को वापस लिया।

सब को सन्तुष्ट करके राम ने यज्ञ की समाप्ति की। इस अवसर पर श्री शिव जी ने राम से माँगा कि सब महीनों में चैत्र का माह उत्तम होगा।

अयोध्या सर्वाधिक पुण्यदायी होगी। अन्य जगह किया हुआ पुण्य कार्य 60 वर्ष में फलदायक होता है किन्तु यहाँ किया हुआ पुण्य एक ही दिन में फलदायक होगा। जो फल माघ में प्रयाग स्नान का, कार्तिक में काशी में पंच गंगा पर स्नान करने का, वैशाख में द्वारिका में चक्रतीर्थ पर स्नान का होता है वही फल राम नवमी पर अयोध्या में राम तीर्थ पर स्नान करने का होगा। इसी समय पर सभी देवताओं के सहित आप सदैव यहाँ आते रहें। राम ने "एवमस्तु" कह दिया। राम ने सबका विसर्जन किया। सभी देवताओं ने राम को उपहार दिये।

इस प्रकार राम हर दूसरे वर्ष अश्वमेध करते थे। राम ने दसवें अश्वमेध में श्री वशिष्ठ जी की आज्ञानुसार अपनी सारी सम्पत्ति ब्राह्मणों को दान में दे दी।

<u>विलास काण्ड :</u>

प्रस्तुत काण्ड में आनन्द रामायण कार ने श्री राम के विविध भोग विलासों का चित्रण किया है। इस काण्ड में संयोग शृंगार की अत्युत्तम पुष्टि हुई है। कवि ने श्री राम की द्वारा जानकी के समक्ष ही उनका सौन्दर्य वर्णन करवाया है। काण्ड के तीसरे सर्ग में राम ने सीता को कुछ आध्यात्मिक उपदेश भी दिया है। 15 श्लोकों में राम ने आत्मा, तत्व, माया आदि का वर्णन सीता से किया है। काण्ड के पंचम सर्ग में राम तथा सीता की एकान्त जल-क्रीड़ा का चित्रण है। इस वर्णन में कवि ने अमर्यादित होकर अश्लीलता का समावेश कर दिया है।

एक बार महर्षि व्यास जी रामनवमी के स्नानार्थ अयोध्या आये। राम ने उनका स्वागत सत्कार कर उन्हें प्रसन्न किया। व्यास जी राम के एक पत्नी व्रत से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने राम को आशीर्वाद देते हुए कहा कि हे राजन जो आप इस जन्म में एक पत्नी व्रत का पालन कर रहे हैं, इसके फल में दूसरे जन्म में आप बहुत सी स्त्रियाँ पायेंगे।

इस काण्ड में कवि ने एक विचित्र घटना का समायोजन किया है।

एक बार अर्द्ध रात्रि में समस्त देवांगनायें कामाभिभूत होकर राम के समीप आयीं। राम ने अपने को एक नारि व्रतधारी बतलाते हुए उन्हें वापस जाने को कहा। यह सुनकर वे समस्त देवांगनायें क्षण मात्र में मूर्छित हो गयीं। यह देखकर विह्वल मनस्क श्री राम जी ने उनको संतोष देतेहुए कहा कि द्वापर में मैं कृष्ण रूप से ब्रज में जन्म लूंगा। उस समय समस्त देवता मेरे आशीर्वाद से गोप होंगे। तुम सब उन गोपालों की गोपियां होओगी। उस समय मैं तुम्हारी समस्त कामनायें पूर्ण करूंगा। यह सुनकर समस्त देवांगनायें किंचित सन्तुष्ट होकर अपने-अपने स्थान को लौट गयीं।

प्रस्तुत काण्ड में कवि ने पिंगला नाम की वेश्या के कारण सीता का राम पर कोप करना भी वर्णित किया है। एक बार पिंगला वेश्या काम बाण से व्याकुल होकर राम व सीता के शयन-कक्ष में पहुंची। उसने राम को सुबह से जगाया किन्तु वह अपनी इस भूल पर पश्चाताप करती हुई राम से क्षमा याचना करने लगी। उसके भाव को समझकर राम ने कहा कि जिस समय कृष्ण रूप धारी मैं ब्रज से मथुरा जाऊंगा तथा कंस को मार कर उस पुरी में ठहरूंगा तब हे पिंगले तुम कुब्जा के रूप में मेरी सेवा करोगी। राम ने पिंगला को विदाकर सीता को जगाया तथा उसका सारा हाल कह सुनाया। सीता ने राम के एक पत्नी व्रत पर आशंका व्यक्त करते हुए अत्यधिक क्रोध प्रकट किया। राम के बहुत समझाने पर भी उनका क्रोध शान्त न हुआ तथा आत्म हत्या करने के लिये सरयू की ओर चल दीं। अंत में सीता को विश्वास दिलाने के लिये उसने ही समय वशिष्ठ जी को बुलाया गया। राम ने उन्हें सारा वृतान्त सुनाया तथा उनके चरणों की शपथ लेकर अपनी पतिव्रता प्रमाणित की। तब सीता को संतोष हुआ। प्रातः सीता ने पिंगला को बुलवाया तथा उसको यह शाप दिया कि इस अपराध के कारण अगले जन्म में तेरे शरीर में तीन कूबर होंगे और तुझसे सभी घृणा करेंगे। तब पिंगला ने अनेक तरह से सीता की प्रार्थना की। तब सीता ने उसे संतुष्ट करते हुए कहा कि तेरा उद्धार कृष्ण के द्वारा होगा।

इस प्रकार प्रस्तुत काण्ड में कवि ने राम के द्वारा सीता को प्रसन्न रखने के लिये विविध कौतुक सम्पन्न कराये हैं।

जन्म काण्ड:

प्रस्तुत काण्ड में कवि ने राम द्वारा सीता के परित्याग, वाल्मीकि आश्रम में सीता द्वारा लव-कुश को जन्म देना, लव-कुश की वीरता, राम का सीता को पुन: स्वीकार करना तथा भरत, लक्ष्मण शत्रुघ्न द्वारा उत्पन्न दो- दो पुत्रों की कथा का वर्णन किया है।

सीता के गर्भवती होने के आठवें माह में ही राम जी ने उनसे कहा कि मैं लोकापवाद के भय से तुम्हें कुछ समय के लिये त्याग देना चाहता हूं। 5 वर्ष बाद हम तुम्हें पुन: वापस ले आयेंगे। अत: तुम सत्व गुणी होकर मेरे वाम भाग में प्रविष्ट हो जाओ तथा रजो गुणी रूप से मुझसे व्यक्त होना ।

एक बार विजय नामक गुप्तचर ने राम से उनकीजनता के गुप्त विचार बतलाते हुए कहा कि हे प्रभु ! कुछ लोग आपसे रावण को मार कर सीता को वापस लाने से असंतुष्ट हैं। उन्हें आपके धर्मनीति पालक होने में संदेह हो रहा है। राम ने तुरन्त लक्ष्मण को बुलाकर सीता को वाल्मीकि आश्रम में छोड़ आने के लिये कहा। साथ ही लक्ष्मण को लौटते समय सीता की एक भुजा काटकर लाने का भीआदेश दिया ।

इधर कैकेयी ने भी एक षड़यंत्र रचा। उसने सीता से दीवार पर रावण का चित्र बनाने को कहा। सीता ने कहा कि जब रावण ने पंचवटी में मेरा हरण किया था। तब मैंने केवल उसके दाहिने पैर का अंगूठा ही देखा था। सीता दीवार पर उस अंगूठे का चित्र बनाकर महलों को चली गयीं । कैकेयी ने रावण का पूरा चित्र बना दिया। राम कैकेयी के महल पर पहुंचे और चित्र देखकर चित्र निर्माता का नाम पूंछा। कैकेयी ने कहा- राम यह चित्र सीता ने बनाया है। जहाँ जिसका मन लगा रहता है उसे बार - बार उसी की याद आती है। राम ने कैकेयी से अपनी सीता त्याग की योजना बतलायी तथा जिस हाथ से उसने रावण का चित्र बनाया है उसे काट कर ले आने की बात भी व्यक्त कर दी। कैकेयी ने यह सब अपने पुत्र भरत के राज्य के लिये ही किया था ।

लक्ष्मण ने सीता को रथ में बैठा कर वाल्मीकि आश्रम की ओर प्रस्थान किया। गंगा तट पर उन्होंने सारा वृत्तान्त सीता से कह सुनाया। सीता की भुजा काटने में असमर्थ होकर लक्ष्मण आत्म हत्या के लिये उद्यत होते हैं। तब विश्वकर्मा ने प्रगट होकर सीता की बनावटी कटी हुई भुजा देकर लक्ष्मण को विदा किया। सीता ने वाल्मीकि आश्रम पर पहुँचकर कुश को जन्म दिया। एक बार सीता वाल्मीकि की अनुपस्थिति में कुश को लेकर तमसा स्नान को चली गयीं। वाल्मीकि ने सीता के शाप से अपने तपो बल से कुश के समान ही एक पुत्र बना दिया। सीता ने इस पुत्र को भी कुश की तरह पाला - पोसा। वाल्मीकि जी ने इस बालक को एक दिव्य लव के द्वारा उत्पन्न किया था अतः इसका नाम लव रखा गया ।

इधर रामने 100 वें अश्व मेध के लिये घोड़ा अभिमंत्रित करके छोड़ा। लव-कुश ने आश्रम में अश्व बाँध लिया। तत्पश्चात् राम की सेना के साथ लव-कुश का घोर संग्राम हुआ। लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न आदि भी इन बालकों को जीत न सके। राम के साथ कुश का तुमुल युद्ध हुआ। इस युद्ध में यह रहस्य था कि राम के बाण कुश के मस्तक पर गिरते तथा कुश द्वारा छोड़े गये बाण राम के चरणों में गिरते थे। यह कौतुक देख राम ने अपने मंत्रीको वाल्मीकि जी के पास इन वीर बालक का परिचय प्राप्त करने के लिये भेजा। ऋषि ने कहा कि कल ये बालक राम की सभा में रामायण गान करने पहुँचेंगे। तब सब हाल विदित हो जायेगा। बालकों ने दूसरे दिन राम की सभा में जन्म-काण्ड का गायन किया। यह सुनकर राम ने लक्ष्मण विभीषण तथा अंगद आदि को सीता को सभा में लाने के लिये भेजा। महर्षि वाल्मीकि के साथ सीता आयीं। वाल्मीकि ने सभा में राम से कहा कि मैं विधाता का दसवाँ पुत्र हूँ । यदि सीता पापाचारिणी होती तो मैं उसके हाथ का जल भी नहीं पी सकता था। तब राम को विश्वास हुआ। सीता पृथ्वी में समाहित होने लगीं तब राम ने पृथ्वी से प्रार्थना की। पृथ्वी के न मानने पर राम ने अपना क्रोध भी प्रकट किया। जिससे प्रलय का सा दृश्य उपस्थित हो गया। पृथ्वी "त्राहि-त्राहि" कहती हुई काँपने लगी और

उसने अपने हाथों सीता को राम के हाथों में समर्पित कर दिया। अब राम का 100 वाँ अश्वमेध पूर्ण हुआ।

काण्ड के अंतिम सर्ग में कवि ने लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न के भी दो-दो पुत्रों के जन्म का उल्लेख किया है। इन बालकों का यज्ञोपवीत संस्कार करवा कर कवि ने इस काण्ड की कथा को विराम दे दिया है।

विवाह काण्ड :

प्रस्तुत काण्ड में कवि ने राम आदि सभी भाइयों के पुत्रों के विवाह का वर्णन किया है। राजा सुरि कीर्ति की दो कन्याओं के स्वयंवर में आमन्त्रित होकर राम अपने कुमारों के साथ वहाँ पहुँचे। चम्पिका नाम की राज कन्या ने कुश को तथा सुमति नाम की राज कन्या ने लव को वर माला पहिना दी। तत्पश्चात वैदिक रीति से दोनों कुमारों का विवाह सम्पन्न हुआ तथा सभी लोग सानन्द अयोध्या वापस लौटे।

एक बार राम समस्त परिवार के तथा पुरवासियों के सहित वन भ्रमण को गये। दण्डकारण्य में अगस्त्य ऋषि के आश्रम पर ठहरे। रात्रि में उन्हें नृत्य गान सुनाई दिया। राम ने मुनि से इस ध्वनि के विषय में पूछा। मुनि ने कहा कि राम यहाँ 5 गंधर्व कन्यायें तथा सात नाग कन्यायें नित्य जल क्रीड़ा करने सरोवर में आया करती थीं। उसी सरोवर पर तपस्या करते हुए एक तपस्वी ने उन्हें यहाँ आने के लिये कई बार मना किया। जब वे न मानीं तब ऋषि ने जल देवियों के द्वारा उन बारहों कन्याओं का हरण करवा दिया। ऋषि तो अपनी तपस्या पूर्ण करके स्वर्ग को गये और वे कन्यायें अब भी सरोवर में जल देवियों के पास हैं, यहाँ यह उन्हीं के नृत्य - गान की ध्वनि आ रही है। राम ने यह समाचार सुनकर उन कन्याओं को जल देवियों के बंधे से छुड़ाने के लिये धनुष-बाण उठाया। धनुष की टंकार सुनकर जल देवियाँ भयभीत हो गयी तथा उन कन्याओं को राम के पास छोड़ गयी। जल देवियाँ राम की स्तुति करके अपने स्थान को

चली गयीं। यह समाचार सुन कर वे गन्धर्व तथा नाग राम के पास आये तथा उन्होंने अपनी कन्याओं का विवाह उनके कुमारों से करने का प्रस्ताव रखा। राम इन गंधर्वों तथा नागों को अयोध्या आने की आज्ञा देकर वापस लौटे। राम ने उन कन्याओं को तब तक वशिष्ठ जी के यहाँ रखा। तत्पश्चात वे गंधर्व तथा नाग अयोध्या पहुँचे तथा सभी कन्याओं का विवाहोत्सव सम्पन्न कर के अपने स्थानों को चले गये ।

इन विवाहों के अतिरिक्त कवि ने कांची पुरी के राजा कम्बु-कण्ठ की कन्या मदन सुन्दरी तथा शत्रुघ्न तनय यूपकेतु के विवाह का भी उल्लेख किया है। कम्बुकण्ठ ने अपनी कन्या के स्वयंवर में सभी राजाओं को आमंत्रित किया किन्तु राम के पास निमंत्रण नहीं भेजा। सभी महिपाल कांची पुरी पहुँचे। इधर नारद जी ने कन्या मदन सुन्दरी को राम की पतोहू बनने के लिये आसक्त कर दिया तथा वे उसको आश्वासन देकर अयोध्या की ओर चल पड़े । इसी समय यूपकेतु थोड़ी सी सेना के साथ वनों को देखते हुए नर्मदा तट पर पहुँचे। वहाँ पर इनकी नारद जी से भेंट हुई। नारद ने इन्हें समस्त वृत्तान्त बताया । यूपकेतु ने राम से द्वेषबुद्धि रखने वाले महिपालों से युद्ध करने के लिये तत्काल कांचीपुरी को प्रस्थान कर दिया। नारद जी ने अयोध्या आकर राम से समस्त हाल बतला दिया। यूपकेतु ने कांचीपुरी पहुँचकर समस्त महिपालों को मोहनास्त्र से मोहित कर मदन सुन्दरी का वरण कर लिया। कान्तीपुरी के बाहर निकल कर वे एक स्थान पर रुक गये। यूपकेतु ने सभी राजाओं से युद्ध करने की इच्छा मदन सुन्दरी से व्यक्त की। मदन सुन्दरी के मना करने पर भी वे न माने तथा अपने मोहनास्त्र का संवरण कर लिया। जब सभी राजाओं ने स्त्रियों से यह सुना कि शत्रुघ्न तनय यूपकेतु ने मदन सुन्दरी का हरण कर लिया है तो वे अपनी सेना लेकर युद्ध के लिये चल पड़े। यूपकेतु का सभी राजाओं से घोर संग्राम हुआ। सभी महिपालों को परास्त देखकर राजा कम्बुकण्ठ स्वयं युद्ध के लिये आये। बहुत देर तक युद्ध होने के बाद यूपकेतु ने कम्बुकण्ठ को अपने रथ की ध्वजा में बाँध दिया तथा खड्ग उठाकर उसे मारने के लिये उद्यत हो गये। मदन-सुन्दरी ने प्रार्थना करके अपने पिता को बचा लिया ।

इधर राम ने शत्रुघ्न को लव-कुश आदि वीर बालकों तथा सेना के साथ सुमेतु की सहायतार्थ कांचीपुरी भेजा। मार्ग में सुमेतु का भी शत्रुघ्न जी से साक्षात्कार हुआ। शत्रुघ्न ने कम्बुकण्ठ को अपना सम्बन्धी जानकर छुड़ा दिया। कम्बुकण्ठ ने शत्रुघ्न जी से सब हाल सविस्तार निवेदित कर दिया। शत्रुघ्न के सहित वे पुनः कांचीपुरी लौट के गये। शत्रुघ्न तथा कम्बुकण्ठ ने अपने दूतों को श्री राम जी के पास उनको लाने के लिये भेजा। ससैन्य राम कांचीपुरी पहुँचे तथा वहाँ पर सुमेतु का वैदिक रीति से विवाह हुआ। भगवान की स्तुति करके नारद ब्रह्मलोक चले गये।

काण्ड के अंतिम सर्ग में कवि ने राम के अनेकानेक पौत्र पौत्रियों के जन्म की कथा कहकर विवाह काण्ड के श्रवण के फल का कथन किया है। यहाँ पर इस काण्ड की कथा विश्राम पाती है ।

राज्य काण्ड :

आनन्द रामायण कार ने राज्य काण्ड को दो भागों में विभक्त किया है। राज्य काण्ड[पूर्वार्द्ध] में 12 सर्ग तथा राज्य काण्ड[उत्तरार्द्ध] में भी 12 सर्ग हैं। इस प्रकार राज्य काण्ड में कुल 24 सर्ग हैं। राज्य काण्ड के दोनों भागों का कथा- शिल्प यहाँ पृथक्-पृथक् प्रस्तुत किया जा रहा है -

[क] पूर्वार्द्ध :

एक समय दुर्वासा ऋषि अपने शिष्यों सहित राम के पास गये तथा बोले कि आज हमारा एक हजार वर्ष का उपवास व्रत पूरा हुआ है। आप एक मुहूर्त में ही हम सबको भोजन दीजिये। भोजन मणि,कामधेनु तथा अग्नि की सहायता से तैयार नहीं किया जाना चाहिये। दूसरे आप शिव पूजन के लिये हमें ऐसा पुष्प दें जो संसार में आज तक किसी ने देखा न हो। राम ने "बहुत अच्छा" कहकर उन्हें स्नान के लिये भेज दिया। इधर राम ने अपने बाण में पत्र बाँधकर इन्द्र के पास भेजा जिसके अनुसार इन्द्र कल्प वृक्ष तथा पारिजात लेकर अयोध्या आ गये। दुर्वासा सहित उनके

साठ हजार शिष्यों का राम ने आतिथ्य किया। सुतीक्ष्ण जी राम की नाना प्रकार से स्तुति करके शिष्यों सहित अपने आश्रम को चले गये। राम ने इन्द्रादिक देवताओं से कहा कि अब आप लोग कल्प वृक्ष तथा पारिजात को लेकर अपने लोक को जायें। देव गुरु बृहस्पति ने कहा कि हे प्रभु जब तक आप भूमण्डल में रहेंगे तब तक कल्पवृक्ष तथा पारिजात ये दोनों भी इस अयोध्या में ही रहेंगे जब आप अपने बैकुण्ठ लोक को जाने लगेंगे तब ये भी आपके साथ चले जायेंगे। ऐसा कहकर सभी देवों के सहित वे अपने लोक को चले गये ।

प्रस्तुत काण्ड में कवि ने सीता द्वारा कुम्भकर्ण के पुत्र मूलकासुर के वध का भी चित्रण किया है। एक बार श्री विभीषण जी अयोध्या आये तथा श्री राम जी से बोले कि हे प्रभु ! कुम्भकर्ण का पुत्र मूलकासुर मुझे बहुत कष्ट दे रहा है। मूल नक्षत्र में पैदा होने से कुम्भकर्ण ने इसे जंगल में छुड़वा दिया था। वहाँ पर मधु मक्खियों ने उसके मुंह में मधु की एक-एक बूंद डालकर उसकी रक्षा की। अब उसने हमें परास्त कर के लंका पर अधिकार कर लिया है। यह सुनकर राम अपनी सेना के सहित मूलक से युद्ध करने चले। लंका में सात दिन तक दोनों सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ । मूलकासुर ने राम की सारी सेना को परास्त कर दिया। तब क्रुद्ध ने मूलकासुर को अपने बाणों द्वारा लंका के बाजार में फेंक दिया। अब मूलक उत्तम शस्त्र प्राप्त करने की इच्छा से एक कन्दरा में मायावी यज्ञ करने लगा। इसी बीच ब्रह्मा जी ने राम के पास आकर उन्हें सारा रहस्य बतला दिया। वे बोले कि हे राम ! मैंने मूलक को यह वरदान दे दिया है कि तुम किसी वीर से नहीं मरोगे। यह किसी स्त्री के द्वारा ही मारा जा सकता है। यह सुनकर एक ऋषि ने शाप दे दिया जब एक बार शोकाकुल होकर मूलक ने एक ब्राह्मण मण्डली के समक्ष कहा कि चंडी सीता के कारण ही मेरे कुल का नाशहुआ है।यह सुनकर एक ऋषि ने शाप दे दिया कि अरे दुष्ट वही सीता तुझे भी शीघ्र ही मारेगी। मूलक ने शाप सुनकर उस ऋषि को तुरन्त मार डाला। यह कहकर ब्रह्मा जी अपने लोक को चले गये। श्री राम ने गरुड़ जी तथा हनुमान जी को सीता के लाने के लिये अयोध्या भेजा। सीता को लेकर वे शीघ्र ही लंका लौटे। राम ने सीता को शस्त्र शिक्षा दी। तामसी

रूप रखकर सीता युद्धार्थ चल पड़ी।

इधर वानरों ने मूलक को हवन क्रिया से विचलित कर दिया। वह भी युद्ध क्षेत्र में आया। घमासान युद्ध होने के बाद सीता ने मूलक के प्राण हर लिये। ब्रह्मा आदि देवताओं ने सीता की स्तुति की। हनुमान ने संजीवनी बूटी लाकर अपनी सेना के समस्त वीरों को पुनर्जीवित कर दिया। विभीषण श्री राम तथा श्री जानकी को साथ लेकर लंका गये। सीता ने राम जी को अशोक वाटिका की सारी जगहें दिखायीं। सीता ने त्रिजटा का हाथ विभीषण पत्नी सरमा को सौंप दिया। विभीषण द्वारा भली भाँति सम्मानित होकर राम ससैन्य अयोध्या लौटे।

काण्ड के सप्तम, अष्टम तथा नवम सर्ग में कवि ने राम की दिग्विजय का वर्णन किया है। समस्त द्वीपों पर विजय प्राप्त करके राम ने वहाँ पर अपने भाइयों तथा पुत्रों की नियुक्ति कर दी। इस काण्ड में कवि ने राम की एक अलौकिक लीला का भी वर्णन करते हुए लिखा है कि राम के राज्य में किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी। एक बार सात शव राम के पास आये। राम ने उन सातों शवों को जीवित कर दिया।

इस प्रकार कवि ने प्रस्तुत काण्ड में राम के द्वारा विविध कौतुकों को सम्पन्न करवाया है।

(ख) उत्तरार्द्ध :

राज्य काण्ड के उत्तरार्द्ध में कवि ने राम राज्य की विशेषताओं का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। राम द्वारा लव-कुश आदि पुत्रों तथा भरत, लक्ष्मण आदि भ्राताओं को जो राजनीतिक उपदेश दिया गया है वह अत्यन्त दुर्लभ है। ~~और~~ तत्पश्चात कवि ने कुश की पुत्री हेमा के स्वयंवर का वर्णन किया है। हेमा के अपहर्ता अवन्ति नरेश उग्रबाहु का पुत्र चित्रांगद के साथ कुश का युद्ध होता है। अंत में कुश विजयी होते हैं। राम प्रसन्न होकर लव तथा कुश को एक अगस्त्य प्रदत्त कंकण देते हैं। लव अगस्त्य ऋषि से इस कंकण की प्राप्ति के विषय में पूछते हैं तथा मुनि उन्हें अपने उत्तर द्वारा संतुष्ट करते हैं। इसी

संदर्भ में अगस्त्य द्वारा दण्डकारण्य की कथा भी प्रस्तुत की जाती है। ऋषि ने इक्ष्वाकुवंशी राजा दण्डक का भृगु की कन्या के साथ बलात्कार तथा राजा को भृगु के शाप की कथा बतलाकर दण्डक वन के पवित्र होने तक की कथा सविस्तार वर्णन कर दी।

प्रस्तुत काण्ड में कवि ने दो घटनायें ऐसी प्रस्तुत की हैं जो राम की अलौकिकता की परिचायक हैं। एक बार महर्षि वाल्मीकि तथा मुनि विश्वामित्र जी ने साथ-साथ यज्ञ करवाया। दोनों ऋषियों ने राम को आमंत्रित किया। इस अवसर पर राम ने अपनी सारी सेना सहित दो रूप धारण किये तथा दोनों यज्ञों में वे सम्मिलित हुए।

दूसरी घटना यह है कि मंत्री सुमंत्र अपनी आयु के ९ दिन शेष रहते हुए भी स्वर्ग सिधार गये। राम को जब यह समाचार मिला तो वह गरुड़ पर आसीन होकर सुमंत्र को यमराज के यहाँ से वापस लेने चल दिये। मार्ग में ही उन्होंने पाशबद्ध सुमंत्र को ले जाते हुए कुछ दूतों को देखा। राम ने उन यमदूतों को ताड़ना देकर शिव रूप धारी सुमंत्र को छुड़ा दिया। यमदूतों ने राम से कहा कि हे प्रभु सुमंत्र का जन्म अपूर्व प्रकार से हुआ था। पहिले माता की योनि से इसके दोनों हाथ तथा मुख बाहर निकल आया था। तदन्तर दसवें दिन धीरे-धीरे इसके और अंग निकले थे। पंडितों ने अच्छे मंत्रों से इसकी रक्षा की थी अतः इसका नाम सुमंत्र पड़ा था। अतः जिस दिन से इसका मुख तथा हाथ बाहर आये उस दिन से आज तक इसकी आयु पूरी हो चुकी है। राम ने उनसे कहा कि इनका जन्म दिन वह है जब ये माता के गर्भ से पूर्णतः बाहर आये। इस तरह राम ने यमानुचरों को वापस कर दिया। यमराज यह समाचार सुनकर बहुत क्रोधित हुआ। उसने राम से युद्ध करने के लिये सभी देवताओं से सलाह की। सब ने उसे युद्ध के लिये मना किया किन्तु यमराज ने कुपित होकर अयोध्या पर चढ़ाई कर दी । लव तथा यमराज में भयंकर युद्ध हुआ। लव के ब्रह्मास्त्र की मार से यमराज घबरा गये। तत्पश्चात गुरुदेव ने आकर लव को समझाया तथा वे यम को लेकर राम से क्षमा मँगवाने गये। यम ने भी राम जी को

प्रणाम किया। श्री राम जी ने यम से कहा कि जब तक मैं पृथ्वी पर शासन करता रहूँ तब तक किसी की अकाल मृत्यु नहीं होगी। यम ने श्री राम जी की आज्ञा स्वीकार कर ली तथा अपने लोक को प्रस्थान किया। इसके पश्चात दसवें दिन सुमंत्र ने अपनी सभी स्त्रियों के साथ राम को प्रणाम किया व अपने प्राणों को त्याग कर वे विमान पर बैठ दिव्य लोक को गये ।

<u>मनोहर काण्ड :</u>

मनोहर काण्ड में श्री राम द्वारा अयोध्यावासियों को अध्यात्म ज्ञान के सुन्दर उपदेश का चित्रण है। श्री राम जी ने कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी को भी अलग रूप में आत्म ज्ञान का उपदेश दिया है। तत्पश्चात कवि ने राम की मानसी पूजा की विधि बतलाकर सद्गुरु के लक्षणों पर प्रकाश डाला है।

समग्र रूप में मनोहर काण्ड विविध अनुष्ठानों से परिपूर्ण है। राम नवमी व्रत की विधि, व्रत के उद्यापन की विधि तथा व्रत का फल बतलाकर आनन्द रामायणकार ने एक नया राम नाम लेखन तथा उसके पूजन एवं उद्यापन की विधि का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त इस काण्ड में वेदादिकों की फल श्रुति, राम की त्रिकालीन पूजा, वैशाख मास की महिमा वैशाख-स्नान का माहात्म्य तथा विभिन्न कवच एवं स्तोत्रों का भी चित्रण है।

काण्ड के अंत में कवि ने अर्जुन के कपि ध्वज नाम पड़ने की कथा का वर्णन किया है। श्री राम जी ने हनुमान जी को त्रेता में वरदान दिया था कि द्वापर के अंत में मैं तुम्हें कृष्ण रूप से दर्शन दूंगा। अतः सेतुबंध रामेश्वर के धनुष्कोटि तीर्थ पर कवि ने अर्जुन व हनुमान के सम्वाद का चित्रण करके वहीं पर दोनों को श्री कृष्ण का दर्शन लाभ प्राप्त करने की घटना का उल्लेख किया है। अर्जुन व हनुमान दोनों का गर्व नष्ट हो गया। यहीं पर कवि ने मनोहर काण्ड की कथा को विराम दे दिया है ।

<u>पूर्ण काण्ड :</u>

पूर्ण काण्ड में राम के वैकुण्ठारोहण की कथा का वर्णन है। एक

बाद हस्तिनापुर से सुमन्त का दूत यह समाचार लाया कि सोमवंशी राजा नल आदि ने हस्तिनापुर को चारों ओर से घेर लिया है। रामने महर्षि वाल्मीकि को बुलाकर चंद्रवंशी राजाओं का इतिहास सुना। राम ने सोमवंशियों से युद्ध करने के लिये प्रस्थान किया। राम ने सप्तद्वीप पति के पद पर भरत को अभिषिक्त करना चाहा किन्तु भरत ने जब इस पद को अस्वीकृत कर दिया तब राम ने इस पद पर कुश का अभिषेक कर दिया।

सभी सैन्य सामन्त राजाओं के साथ राम हस्तिनापुर पहुँचे। सोमवंशियों के साथ राम का छः मास तक भीषण युद्ध हुआ। अंत में कुश ने सोमवंशियों पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करने की तैयारी की। इस अवसर पर ब्रह्मा ने कुश को रोका तथा कहा कि मैं इन सोमवंशियों को वरदान दे चुका हूँ कि द्वापर तक तुम संग्राम भूमि में किसी से पराजित नहीं होगे। कुश ने ब्रह्मा जी को श्री राम के पास जाकर यह निवेदन करने को कहा ब्रह्मा ने सोम वंशी नरेशों को साथ लेकर श्री राम जी से क्षमा याचना करवायी। श्री राम जी ने कुश को मना करने के लिये ब्रह्मा जी को श्री वाल्मीकि जी के पास भेजा। वाल्मीकि के परामर्श के अनुसार सोमवंशी राजाओं की स्त्रियों ने सीता के पास जाकर अपने पतियों के प्राणों की भीख माँगी। श्री सीता जी ने कुश को युद्ध करने से मना कर दिया।

ब्रह्मा ने श्री राम जी से वैकुण्ठधाम पधारने की प्रार्थना की। राम ने स्वीकृति दे दी। सोमवंशी राजा पत्नियों सहित ब्रह्मा के साथ स्वर्ग को गये। हस्तिनापुर का राज्य अजमीढ़ को दे दिया गया। राम को परमधाम जाने के लिये उद्यत देखकर सुषेण, सुग्रीव, विभीषण आदि ने भी साथ चलने का आग्रह किया किन्तु राम ने सभी को संतुष्ट करके उनकी स्थान-स्थान पर नियुक्ति कर दी। कुश को अयोध्या भेज दिया गया। इधर राम ने वानरों से कहा कि तुम सब ने मेरे साथ बहुत कष्ट उठाया। द्वापर में तुम सब गोप होओगे। उस समय मैं तुम्हारे साथ भोजन तथा विविध प्रकार की क्रीड़ायें करूँगा। इसके बाद राम ने लक्ष्मण से कहा कि तुमने दण्डक वन में मेरी सेवा करते हुए बहुत कष्ट उठाया है। अब तुम मेरे ज्येष्ठ भ्राता होओगे और मैं स्वयं तुम्हारी सेवा करूँगा। तत्पश्चात

वाल्मीकि के समक्ष राम ने माण्डवी, उर्मिला तथा श्रुतकीर्ति को अगले दिन अपने अपने पति के शरीर के साथ जलकर स्वर्ग लोक चले जाने के लिये आदेश दिया। आज्ञा स्वीकार करके सभी अपने-अपने निवास स्थान के चले गये ।

दूसरे दिन प्रातः काल हस्तिनापुर के समीप गंगा तट पर राम ने वैकुण्ठारोहण किया। राम व सीता ने विष्णु व लक्ष्मी का स्वरूप धारण कर लिया। लक्ष्मण शेष भगवान के स्वरूपमें परिवर्तित हो गये। भरत व शत्रुघ्न क्रमशः शंख तथा चक्र के रूप में प्रभु के साथ हो लिये। सभी परिजन प्रभु के दर्शन से पवित्र होने के कारण ब्रह्मलोक से भी ऊपर सान्तानिक लोक में निवास करने लगे ।

राम के पूर्व कथनानुसार हस्तिनापुर के राजा अजमीढ़ ने राम के वैकुण्ठारोहण का समाचार अयोध्या जाकर कुश से निवेदित किया तथा कुश को सांत्वना प्रदान की।

काण्ड के अंत में कवि ने कुश के बाद सूर्यवंश के वर्णन में 61 राजाओं का उल्लेख किया है। काण्ड के अंतिम सर्ग में "आनन्द रामायण" की फल श्रुति, अनुष्ठान विधि तथा इसकी पारायण विधि का उल्लेख करके आनन्द रामायणकार ने अपने इस महान ग्रन्थ का उपसंहार कर दिया है।

कथा प्रसंगों में साम्य व वैषम्य :

राम चरित मानस तथा आनंद रामायण दोनों ही राम भक्ति काव्य हैं। इस दृष्टि से दोनों ही कथाकारों का अभिप्राय राम के महिमा मंडित चरित्र का चित्रण है। दोनों ने अपने अपने ढंग से रामत्व की महिमा को असीमता तक पहुंचानेका प्रयास किया है, किन्तु दोनों के चित्रण में वैचारिक मतभेद है। आनन्द रामायणकार केवल राम ही नहीं अपितु राम के आगे उनके संतति समुदाय के चरित्र चित्रण में भी अपने लक्ष्य को व्यक्त करते हैं। इस प्रकार उनके ग्रन्थ में कहीं-कहीं राम की महिमा गौण हो जाती है, किन्तु मानसकार का एकमात्र लक्ष्य राम गुणगान है। उन्होंने जिन अन्य पात्रों को उभारा है, वे भी रामत्व के आगे सर्वभाव से समर्पित हैं। अतः कथानायक की तुलना जिस महत्व तक से जा सके हैं

आनन्द रामायणकार उसके पीछे हैं ।

आनन्द रामायण के सात काण्ड में ही मानस की कथावस्तु का अन्तर्भाव है। कतिपय कथा प्रसंगों में वैषम्य भी दृष्टिगत होता है। इस संबंध में कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

1. आनन्द रामायण में वर्णित दशरथ कौशल्या विवाह, श्री शिव धनुष के जनक पुर में से प्राप्त होने की कथा, सीता स्वयंवर में रावण द्वारा अजगव चढ़ाने का प्रयास आदि कथा प्रसंगों का मानस के बालकाण्ड की कथावस्तु में अभाव है ।

2. श्री राम वन गमन प्रसंग में देवर्षि नारद का प्रेरक रूप में चित्रण चित्रकूट में कैकेयी द्वारा श्री राम से अपने अपराध के लिये विनम्र क्षमा याचना तथा भरत को वापस अयोध्या भेजने के लिए श्री राम द्वारा कुशासन पर बैठ कर अनशन करना इत्यादि प्रसंगों का मानस के अयोध्या काण्ड की कथा वस्तु में अभाव है ।

3. आनन्द रामायण में विराध वध प्रसंग का विस्तृत वर्णन है किन्तु मानस में इसका संकेत मात्र हुआ है ।

4. आनन्द रामायण में बालि को इन्द्र द्वारा प्रदत्त उस मालाका वर्णन है जिसे देखने मात्र से शत्रु युद्ध में बलहीन हो जाता था, जब कि मानस में ऐसे किसी कथा प्रसंग का उल्लेख नहीं है ।

5. हनुमान-विभीषण संवाद मानसकार की मौलिक देन है। आनन्द रामायण में प्रस्तुत कथा प्रसंग का अभाव है ।

6. सेतुबंध में शिवलिंग स्थापन प्रसंग भी पर्याप्त वैषम्य से युक्त है। आनन्द रामायणकार ने हनुमान द्वारा काशी से शिवलिंग लाने का वर्णन किया है किन्तु मानस में ऐसा कोई वर्णन प्राप्त नहीं होता है। "लक्ष्मण शक्ति" प्रसंग में आनन्द रामायण कार ने रावण द्वारा लक्ष्मण को ब्रह्म शक्ति मारने का चित्रण किया है किन्तु तुलसी ने मेघनाद तथा लक्ष्मण की चोट का चित्रण किया है ।

7. सती – सुलोचना तथा अहिरावण-वध कथा प्रसंगों का चित्रण केवल आनन्द रामायण में ही प्राप्त होता है। मानस की कथावस्तु में इनका अभाव है।

8. सारकाण्ड के पश्चात शेष आठ काण्डों में आनन्द रामायणकार ने जिन मनोरम कथा प्रसंगों का वर्णन किया है उनका मानस में सर्वथा अभाव है। इन भाव पूर्ण कथा प्रसंगों का चित्रण आनन्द रामायणकार की उर्वर कल्पना शक्ति का परिचायक है ।

इस प्रकार दोनों काव्य ग्रन्थों के कथा प्रसंगों में पर्याप्त वैषम्य है। दोनों के कथा-शिल्प पर सम्यक विचार के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि दोनों काव्य-ग्रन्थ श्री राम के लोक पावन चरित्र से अभिभूत हैं। इतना अन्तर अवश्य है कि मानसकार ने समस्त कथा को राम के महत्व से मण्डित किया है जबकि आनन्द रामायण कार ने विविध कथाओं का समायोजन करके कथाओं की विविधता को ही महत्व प्रदान किया है। यदि चरित्र नायक राम के महत्व को दृष्टिगत रखा जाय तो तुलसी का काव्य स्तुत्य है किन्तु यदि कथाओं की विविधता को महत्व दिया जाय तो आनन्द रामायण का शिल्प महत्व पूर्ण है ।

–×–×–×–×– समाप्त –×–×–×–×–

×××××

द्वितीय अध्याय

[चरित्र-चित्रण]

-=-=-=-=-=-=-

चरित्र-चित्रण

जीवन की ज्वलन्त ज्योति का हेतु चरित्र होता है। यही एक ऐसी कसौटी है जिस पर जीवन का कंचन अपनी शालीनता को प्रमाणित कर पाता है। चरित्र के अंतर्गत अंतःकरण के सभी कार्य व्यापार एवं तद् के प्रति निष्ठा पूर्ण आचरण आते हैं।

राम चरित मानस में कथा से अधिक महत्व चरित्र का है। जहाँ कहीं भी तुलसी ने कथा में किसी प्रकार का परिवर्तन किया है। वह चरित्र के लिये ही किया है। आदर्श पिता, आदर्श माता, आदर्श भ्राता, आदर्श गृहिणी, आदर्श मित्र आदि सभी क्षेत्रों में अनुकरणीय चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय जी के अनुसार -

" मानस मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम की मर्यादाशीलता से मर्यादित है, पति प्राणा विदेह नंदिनी के प्रसिद्ध ~~प्रति~~ पति व्रत प्रसंग से प्रतिष्ठा प्राप्त है, भारत भूषण महाप्राण भरत की भक्ति से महा प्राणित है और तेजस्विता मूर्ति सुमित्रा सुवन की चरितावली तेजस्विता से तेज पुंज कलेवर है। उसमें सत्यव्रत महाराज दशरथ जैसे आदर्श पिता का, नितान्त सरल हृदया औदार्यमयी कौशल्या जैसी आदर्श माता का आत्मोत्सर्ग प्रवणता सुमित्रा देवी जैसी आदर्श सपत्नी का लोकोत्तर प्रेम परायणा पूजनीया जनकजा जैसी आदर्श पत्नी का, आत्म त्याग मंत्र के प्रसिद्ध देवता भरत और सुमित्राकुमार जैसे आदर्श भ्राता का तथा सेवा व्रत कठोर, धर्म के कर्मठ व्यक्ति पवन कुमार जैसे आदर्श सेवा का उदात्त चरित्र बड़ी ही ज्वलन्त भाषा में बहुत ही निपुणता के साथ वर्णित है।"

आनन्द रामायण के अनेक पात्र मानस में दिखायी नहीं पड़ते इसके साथ ही कुछ नवीन पात्र भी दृष्टिगोचर होते हैं। आनन्द रामायण कार ने चरित्र चित्रण की अपेक्षा कथा शिल्प को अधिक महत्व ---

1. तुलसी ग्रन्थावली, द्वितीय खंड। पृष्ठ -1। ।

लिया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में दो प्रवृत्तियाँ विशेष रूप से दिखाई देती है। प्रथम तो चमत्कारिता की प्रवृत्ति तथा द्वितीय अलौकिकता की प्रवृत्ति। पहिली का सम्बन्ध मुख्यतः कथा या घटना तत्व से है तथा दूसरी का सम्बन्ध आदर्शवाद या चरित्र-तत्व से है। इनमें प्रथम प्रवृत्ति प्रधान है तथा द्वितीय गौण।

राम चरित मानस में चरित्र चित्रण की उत्कृष्टता को स्वीकार करते हुए डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है-

" चरित्र चित्रण में तुलसी दास की तुलना संसार के गिने चुने कवियों के साथ ही की जा सकती है।"[1]

भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में पड़कर मन की क्या दशा होती है, इसको तुलसी भली भाँति जानते थे। इसी से उनका चरित्र-चित्रण सफल एवं दोष रहित हुआ है। मानस में प्रायः सभी प्रकार के चरित्र -चित्रण में उन्होंने सफलता प्राप्त की है।

दोनों ग्रन्थों के प्रमुख पात्रों के चारित्रिक का तुलनात्मक विवेचन निम्नवत है-

<u>प्रधान पुरूष पात्र :</u>

<u>मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम-</u>

गोस्वामी तुलसी दास ने दार्शनिकों द्वारा निरूपित परब्रह्म की मानवीय व्याख्या श्री राम के रूप में की है। मानस में राम के चरित्र का विश्लेषण ही उनका प्रधान लक्ष्य रहा है। अन्य सभी पात्र राम के आधीन चित्रित हुए हैं। उनके चरित्र की परिभाषा भी राम से उनके सम्बन्ध के आधार पर ही की गई है। तुलसी के राम एक साथ ही पर-ब्रह्म, दाशरथी, ईश्वर व विष्णु हैं।[2]

---

1. हिन्दी साहित्य। पृ०- 237।
2. वन्दे हं तमशेष कारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥ रा.च.मा. 1/मंगलाचरण/6 वाँ श्लोक

सभी आदर्श गुणों का राम में पूर्ण विकास हुआ है। मातृ पितृ भक्ति, एक पत्नी व्रत, भ्रातृ प्रेम, सख्य प्रेम, शरणागत वत्सलता, कृतज्ञता, प्रजारंजकता आदि समस्त गुणों से वे युक्त हैं।

माता कैकेयी के द्वारा कठोर व्यवहार किया जाने पर भी उनके प्रति श्री राम का व्यवहार सदा भक्ति व सम्मान से पूर्ण ही रहा। चित्रकूट दरबार प्रसंग में राम सर्वप्रथम माता कैकेयी को प्रणाम करते हैं तत्पश्चात अन्य माताओं को।[1]

इसी प्रकार पितृ भक्ति का भी अद्वितीय आदर्श श्री राम ने प्रस्तुत किया है। पिताज्ञा का पालन करने के लिये उनके मन में अतीव उत्साह तथा साहस था। अपने वन-गमन का समाचार सुनकर भी वे महाराज दशरथ से कह देते हैं।[2]

तुलसी के राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। उन्होंने यह चरितार्थ कर दिखाया कि जिस प्रकार स्त्री के लिये पतिव्रत धर्म का विधान है, उसी तरह पुरुष के लिये भी एक पत्नीव्रत परमावश्यक है। स्त्री पुरुष का सम्बन्ध भोगने के लिये नहीं अपितु धर्माचरण के लिये है। वे अदम्य आत्म बल के साथ कहते हैं।[3]

श्री राम का भ्रातृ प्रेम भी अतुलनीय था। गुरु वशिष्ठ से अपने राज्याभिषेक का सन्देश तथा उसके लिये तैयार होने का आदेश पाकर

---

1. "प्रथम राम भेंटी कैकेयी । सरल सुभायँ भगति मति भेईं ॥" रा० च० मा० 2/243/7
2. "मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिअ तात । आयसु देइअ हरषि हियँ कहि पुलके प्रभु गात ॥" रा० च० मा० 2/45
3. "मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी ॥"
रा० च० मा० 1/230/6

वे विचार करने लगते हैं कि इस राज्याभिषेक के अधिकारी मेरे अन्य भाई क्यों नहीं हैं। यह हमारे सूर्यवंश की अनुचित परम्परा है।[1]

अपने मित्रों के साथ भी श्री राम ने अनुपमेय प्रेम का व्यवहार किया है। मित्र सुग्रीव का दुख सुनकर वे द्रवित हो उठते हैं। बालि त्रास से आकुल सुग्रीव को आश्वस्त करते हुए वे कहते हैं-[2]

शरणागत वत्सलता का जो आदर्श श्री राम ने प्रस्तुत किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। रावण से अपमानित होकर विभीषण भगवान राम की शरण में आता है। सुग्रीव राक्षस-स्वभाव का वर्णन कर श्री राम को सावधान करते हैं, इस अवसर पर श्री राम का कथन भक्तों के हृदय-सागर में आनन्द की लहरें उत्पन्न कर देता है-[3]

अपार शक्ति सम्पन्न होते हुए भी अपने आश्रित जनों के प्रेम की वृद्धि के लिये उनकी साधारण सेवा को भी बहुत से बहुत बढ़ा देकर श्री राम ने अपनी कृतज्ञता प्रकट की है। कुल पूज्य वशिष्ठ जी से वानर-भालुओं का परिचय देते हुए वे कहते हैं -[4]

---

1. " करन बेध उपबीत बियाहा ।
   संग-संग सब भये उछाहा ।।
   बिमल बंस यह अनुचित एकू ।
   बंधु बिहाइ बड़ेहिं अभिषेकू ।। — रा.च.मा 23/9/6 व 7

2. " सखा सोच त्यागहु बल मोरें ।
   सब बिधि घटब काज मैं तोरें।। — रा.च.मा 4/6/10

3. " सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि ।
   ते नर पावँर पापमय तिन्हहिं बिलोकत हानि ।।
   — रा.च.मा. 5/43

4. " ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे।
   भये समर सागर कहँ बेरे ।। — रा.च.मा. 2/7/7

श्री राम में प्रजा को हर तरह से प्रसन्न रखने का आदर्श गुण था। वे अपनी प्रजा का पुत्र से भी बढ़ कर वात्सल्य प्रेम से पालनकरते थे। सदा उनके हित में रहते थे। यही कारण था कि अयोध्यावासियों का उन पर अपार प्रेम था। उनकी मान्यता थी कि जिस राजा के राज्य में प्रजा दुखित होती है वह राजा नरकगामी होता है -[1]

तुलसी के राम पतित पावन हैं। भक्त में अभिमान उसके पतन का मूल होता है। राम अपने भक्त का कल्याण सोच सर्वप्रथम इस विनाश के मूल को ही समाप्त करते हैं। राम ने नारद, जयंत, समुद्र, गरुड़, काक-भुशुण्डि सबका गर्वापहार करके उन्हें भी पतित से पावन ही नहीं अपितु पतित पावन की सी श्रेणी पर स्थित कर दिया।

राम के इस पतित पावन स्वरूप की शोभा उनकी क्षमा शीलता से और भी अधिक बढ़ जाती है। वे पतितपावन हैं परन्तु इस महान उपकार काम तो उन्हें अभिमान है और न ही भक्त के पूर्व कृत कर्मों के प्रति कोई उपेक्षा भाव -[2]

आनन्द रामायण कार ने श्री राम को अपरिमित पराक्रम से युक्त चित्रित किया है। जनकपुर से वापस लौटते समय दुष्ट राजाओं के द्वारा घिर जाने पर महाराज दशरथ चिन्तातुर हो जाते हैं। इस अवसर पर राम अपने पिता दशरथ को धैर्य दिलाते हुए कहते हैं -[3]

---

1. जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी ।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी ।। रा.च.मा. 2/70/6

2. "जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली ।
फिरि सुकण्ठ सोइ कीन्ह कुचाली ।। रा.च.मा. 1/28/6व7
सोइ करतूति बिभीषन केरी ।
सपनेहुं सो न राम हिय हेरी ।।

3. "तात राजन्य कर्तव्या चिन्ता नात्र मयि स्थिता।
क्षणादेव वधिष्यामि पश्य त्वं कौतुकं मम ।।

आ.रा. 1/4/24 व 25

महर्षि दुर्वासा के आतिथ्य के लिये राम द्वारा स्वर्ग से कल्प वृक्ष तथा पारिजात को पृथ्वी पर लाने की कथा भी राम के अलौकिक पराक्रम का परिचय देती है। श्री राम अपने बाण की नोक में पत्र बांध कर इन्द्र के पास भेजते हैं कि तुम शीघ्र ही पारिजात व कल्पवृक्ष यहाँ भेज दो। कहीं रावण का विनाश करने वाले मेरे बाणों की प्रतीक्षा न करने लगना -[1]

आनन्द रामायण में श्री राम जी ने एक पत्नी व्रत का उत्तम आदर्श प्रस्तुत किया है। उनके एक पत्नी व्रत की अनेक बार परीक्षा भी हुई किन्तु राम इस परीक्षा में पूर्ण रूपेण सफल सिद्ध हुए। राज्य काण्ड के पूर्वार्द्ध में आयी हुई 100 देवांगनाओं से राम की वार्ता दिखाकर ग्रन्थकार ने राम के एक नारिव्रत के आदर्श को प्रस्तुत किया है। काम बाण से पीड़ित ललनाओं को समझाते हुए श्री राम जी ने कहा -[2]

श्री राम जी एक सच्चे प्रजा-पालक राजा हैं। प्रजा उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय है। प्रजा के मुख से अपनी कटु आलोचना सुनकर भी उन्होंने प्रजा को दंडित नहीं किया अपितु इस असत्य आलोचना को सुनकर उन्होंने अपनी परम पुनीत प्राणप्रिय भार्या जानकी को वनवास दे दिया। कौन चक्रवर्ती सम्राट अपनी ऐसी कटु आलोचना अपनी प्रजा के ही मुख से सुन सकेगा -[3]

आनन्द रामायण के राम मानस के राम की तरह मर्यादा पुरुषोत्तम नहीं है। आनन्द रामायण कार ने विलास काण्ड के पंचम सर्ग में राम व सीता के जल-विहार का वर्णन किया है। यह वर्णन अत्यधिक अश्लील हो गया है। इस वर्णन से यह सिद्ध हो जाता है कि ग्रन्थकार की श्रीराम व जानकी जी के प्रति पूज्य बुद्धि नहीं है।

---

1. "अतः शीघ्रं कल्पवृक्ष पारिजातौ महेन्द्र भो।
प्रेषयस्व क्षमाम्यां त्वया विलम्बेन सादरात्॥ आ.रा.6/2/30,31
मा रावण शिरश्छेत्तुः प्रतीक्षां त्वमिषोः कुरु।
2. "अद्यप्रभृति वाक्यं हि शृणुध्वं प्रमदोत्तमाः। आ.रा.7/4/38
एक पत्नीव्रतं मे हि सा मातृतुल्याः स्त्रियो मम्॥
3. "रजकः प्राह नोऽरक्षत् सो हि रामो न मैथिलीम्।
रावणस्य गृहे स्पष्टं स्थितामंगीचकार यः॥ आ.रा.5/3/29

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि जिस पूर्णता की सीमा तक मानस में श्री राम का चरित्र चित्रांकित किया गया है आनन्द रामायणकार उस सीमा का स्पर्श भी नहीं कर सके हैं। मानस में श्री राम के चरित्र की समीक्षा करते हुए पं० राम किंकर उपाध्याय लिखते हैं-[1]

भरत-

मानस में भरत के चरित्र को राम से भी अधिक उन्नत चित्रित किया गया है। मानव की सात्त्विक प्रवृत्ति का चरम आदर्श तुलसी ने भरत के रूप में प्रस्तुत किया है। मानस के भरत साधु शिरोमणि, आदर्श स्वामिभक्त, महात्मा, निःस्पृह और भक्ति प्रधान कर्मयोगी हैं। वे धर्म तथा नीति के सच्चे पारखी और प्रेम तथा विनय की साकार प्रतिमा हैं। वैराग्य, तप, क्षमा वात्सल्य, धीरता, गंभीरता तथा अमानिता आदि गुणों का उनमें विलक्षण विकास हुआ है।

भरत चित्रांकन के प्रमुख स्थल हैं- कैकय देश से लौटने पर भरत की दशा, चित्रकूट प्रसंग अवध में निवास स्थिति तथा राम के अयोध्या लौटने पर उनका अन्तिम रूप।

राम वन- गमन से महाराज दशरथ की मृत्यु हो जाने के बाद भरत को ननिहाल से बुलवाया गया। इधर पूर्वनिमित्त अनिष्टकारी दुःस्वप्न देखने लगे।[2] अनिष्ट की आशंका से उनका हृदय भयभीत हो उठा। इससे भरत के निष्कपट हृदय का परिचय प्राप्त होता है। अयोध्या वापस आने पर भी भरत को माता कैकेयी द्वारा राम वनवास का समस्त हाल विदित हो जाता है। भरत का हृदय शोक संतप्त होकर विदीर्ण हो उठता है। उनके क्षुब्ध हृदय से कैकेयी के प्रति कठोर शब्द भी निकल पड़ते हैं -[3]

-- --------- ----------------

1. श्री राम न केवल समुद्र पर सेतु के निर्माता हैं अपितु वे समाज रूपी समुद्र पर भी अपने चरित्र का सेतु बनाकर सभी व्यक्तियों के पार होने की समस्या का समाधान कर देते हैं। आज जब परस्पर विभेद, विघटन और दूरी की समस्या से समाज संत्रस्त है उस समय इस सेतु की सबसे अधिक आवश्यकता है। "मानस प्रवचन "पृ०36" प्रकाशक-बिरला अकादमी, कलकत्ता-पं० राम[illegible]
2. रा.च.मा. 2/156/6 व 7
3. बर माँगत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा॥ रा.च.मा. 2/161/2

(2083)

गोस्वामी तुलसी दास ने मानस में किसी भी पात्र को अमर्यादित नहीं होने दिया। प्रस्तुत प्रसंग में भी भरत जी ने कैकेयी को जो कुछ भी कहा है वह पूर्णतः मर्यादित है। भरत अपने अन्दर की ग्लानि में ही घुटते रहते हैं किन्तु कैकेयी से कुछ नहीं कहते। वे कैकेयी को केवल इतना ही कह कर अपने विक्षुब्ध हृदय के उद्गार प्रकट कर देते हैं –[1]

जब कि वाल्मीकि ने भरत को इस अवसर पर अमर्यादित भी चित्रित कर दिया है। भरत कैकेयी को "काल रात्रि"[2] कह कर उपेक्षा भाव प्रकट करते हैं। किन्तु तुलसी के भरत केवल यह कहकर पश्चाताप करते ही रह जाते हैं –[3]

भरत को उतना स्नेह कैकेयी से नहीं प्राप्त हुआ जितना विमाता कौशल्या से। कौशल्या के सामने अपने को निष्कलंक सिद्ध करने के लिये भरत नाना प्रकार की शपथ ग्रहण करते हैं किन्तु सरल हृदया कौशल्या के हृदय में भरत के प्रति कभी कोई आशंका उठी ही नहीं। अम्बा कौशल्या यह कहते हुए भरत को हृदय से लगा लेती हैं कि जो भी राम वनवास में तुम्हारी सम्मति पर विश्वास रखेगा वह स्वप्न में भी सद्गति नहीं प्राप्त कर सकता –[4]

भरत- राज्य को अस्वीकृत करके प्रभु राम को वापस लाने के लिये चित्रकूट चल देते हैं। पुरजन एवं परिजनों सहित भरत को ससैन्य देखकर राम के अनन्य सखा गुह ने उन्हें आशंका की दृष्टि से देखा। किन्तु जब गुह ने भरत

---

1. जो हसि सो हसि मुहं मसि लाई। आँखि ओट उठि बैठहिं जाई।। रा. च. मा. 2/161/8
2. वा. रा. 2/73/4
3. जननी तू जननी भई विधि सन कछु न बसाई। रा. च. मा 2/161
4. मत तुम्हार यह जो जग कहहीं। सो सपनेहुं सुख सुगति न लहहीं।। रा. च. मा. 2/168/4

भावना एवं शालीनता के ही दर्शन होते हैं। प्रस्तुत स्थल में भरत का आर्त-भक्त - रूप ही सामने आता है। पावन तपस्थली चित्रकूट की यह सभा तर्क या बुद्धि प्रधान न होकर भाव प्रधान है। भरत अपने स्वामी को संकोच में नहीं डालना चाहते। उनकी यह मान्यता है कि जो सेवक अपने स्वामी को संकोच में डालकर अपना हित चाहता है उसकी बुद्धि निम्न स्तर की है। अतः वे अंत में श्री राम जी की आज्ञा को ही सर्वोपरि मानकर कहते हैं -[1]

भरत भक्ति भावना की साक्षात प्रति मूर्ति हैं। वे राम-प्रेम में पूर्ण रूपेण भावमग्न दर्शित होते हैं। भरत के इस रूप ने जड़ तथा चेतन दोनों को प्रेम-मग्न कर दिया है। देवता भी भरत की इस अकथनीय स्थिति को देखकर पुष्प वर्षा करने लगते हैं।[2]

श्री राम का भी भरत पर असीम स्नेह है। चित्रकूट दरबार प्रसंग में स्वयं राम श्री वशिष्ठ जी से भरत की प्रशंसा करते हुए कहते हैं-[3]

इतना ही नहीं वे भरत के विचारों में ही बह जाते हैं। वे स्पष्ट कह देते हैं कि अब मैं वही करूंगा जो भरत कहेंगे -[4]

---

1. अग्या सम न सुसाहिब सेवा ।
   सो प्रसाद जन पावै देवा ।। रा.च.मा. 2/300/4,5
   अस कहि प्रेम बिबस भये भारी।
   पुलक शरीर बिलोचन बारी ।।
2. रा.च.मा. 2/237/5,6
3. नाथ सपथ पितु चरन दुहाई । रा.च.मा. 2/258/4
   भयउ न भुअन भरत सम भाई ।।
4. भरतु कहहिं सोई किये भलाई । रा.च.मा. 2/258/8
   अस कहि राम रहे अरगाई।।

अपने प्रभु राम का ऐसा स्नेह देखकर गुरुआज्ञा पाकर भरत सभा में कुछ कहने के लिये खड़े हो जाते हैं। परन्तु आत्म ग्लानि वश भरत के मुख से वाणी नहीं निकलती अपितु प्रेमाश्रु धारा प्रवाहित हो उठती है। भरत अपनी बात कहने को तैयार हुए थे पर उन्हें बाल्यावस्था का भ्रातृ-स्नेह स्मरण हो आता है और वे ग्लानि से व्यथित हो उठते हैं।

इस स्थल की आलोचना करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं-[1]

" भरत की यह आत्म ग्लानि अपने सम्बन्ध में लोक की बुरी धारणा के अनुमान मात्र से हुई थी। लोग प्रायः कहा करते हैं कि अपना मन शुद्ध है तो संसार के कहने से क्या होता है ? यह बात केवल साधना की एकांतिक दृष्टि से ठीक है, लोक संग्रह की दृष्टि से नहीं। आत्म पक्ष और लोक पक्ष दोनों का समन्वय राम चरित मानस का लक्ष्य है।[1]"

इस प्रकार तुलसी ने भरत के चरित्र में सरलता, पवित्रता और निर्मलता आदि आदर्श गुणों का चरमोत्कर्ष चित्रित किया है। भरत का त्याग , संयम, व्रत, नियम सभी सराहनीय एवं अनुकरणीय है।

आनन्द रामायण कार ने भी भरत को राम भक्त शिरोमणि तथा त्याग, धैर्य, वीरता, सरलता एवं सौम्यता आदि गुणों के आदर्श रूप में चित्रित किया है। आनन्द रामायण के भरत सर्व पापहर्ता तथा राम भक्ति प्रदाता भी हैं -[2]

आनन्द रामायण कार ने भरत को क्षमाशीलता की उस श्रेणी पर स्थित नहीं कर पाया जिस पर गोस्वामी तुलसी ने स्थित कर दिया है। मानस में राम वन गमन का समाचार सुनकर शत्रुघ्न मंथरा को पीटते हैं,

- -

1. " गोस्वामी तुलसी दास" - आचार्य शुक्ल | पृष्ठ- 104|

2. " सर्व पाप हरं पुण्यं कृतं श्री राम भक्तिदम् ।
कैकेयी तनयं सदा रघुवरन्यस्तेक्षणं ....।।
आ. रा. 8/15/26

किन्तु दया निधान भरत उसे छुड़ा देते हैं। आनन्द रामायण में भरत भी शत्रुघ्न के साथ मंथरा को पीटते हैं।[1]

भरत त्याग भावना की उच्च सीमा पर स्थित हैं। माताओं, मंत्रियों तथा पुरवासियों के बारम्बार अनुरोध करने पर भी वे राज्य सिंहासन को स्वीकार नहीं करते। अपितु वे सभी को साथ लेकर राम को वापस लाने के लिये वन को चल देते हैं।[2]

चित्रकूट में पहुंचकर भरत श्री राम जी से वापस अयोध्या लौट चलने का अनुरोध करते हैं पर राम इसे अस्वीकार कर देते हैं। राम की दृढ़ता देखकर भरत हताश हो गये। यहाँ भरत दूसरा साधन अपनाते हैं-हठधर्मिता का। वे कुशासन पर बैठ कर उपवास करने लगे।[3]

भरत के चरित्र में इस हठधर्मिता का समायोजन मानसकार ने कहीं भी नहीं किया। तुलसी के भरत तो रामाज्ञा को ही सर्वोपरि मानने वाले हैं। मानस में राम भरत को समझा बुझा कर संतुष्ट कर देते हैं। किन्तु आनन्द रामायण में राम भरत को संतुष्ट करने में असमर्थ सिद्ध हुए हैं। राम गुरु वशिष्ठ से प्रार्थना करते हैं कि भरत को समझा-बुझाकर संतुष्ट कर दें। तब गुरु वशिष्ठ ने भरत को समझाया कि राम विष्णु स्वरूप हैं तथा पृथ्वी का भार हरण करने के लिये अवतरित हुए हैं। वे देवताओं के अनुरोध से रावणादि को मारने जा रहे हैं। अतः तुम्हारी हठधर्मिता सर्वथा अनुचित है।[4]

भरत अयोध्या लौटने के लिये तैयार हो जाते हैं पर राज्य कार्य करने के लिये अपनी आधार स्वरूपा राम की चरण पादुकाओं की याचना करते

---

1. मंथरां ताडयामास शत्रुघ्नो पुनः पुनः । आ० रा० 1/6/96
2. ततो मंत्रिजनैः सार्धं मातृभिः पुरवासिभिः ।
   परिवर्तयितुं रामं ययौ स भरतस्तदा ॥
   आ० रा० 1/6/97
3. राज्यार्थं रामभ्रातापि नैच्छद्यत पुनः पुनः।
   कुशोपवेशनं तत्र दर्भेषु भरतस्तदा ॥ आ० रा० 1/6/102
4. आ० रा० 1/6/105

वे कहते हैं कि मैं नित्य इनकी सेवा-पूजा करके आपकी प्रतीक्षा करता हुआ आपके नाम से ही राज्य करूँगा।[1] राम ने भरत की विनम्र याचना को स्वीकार कर लिया। भरत उन रत्न विभूषित पादुकाओं को लेकर मस्तक पर लगाते हैं तथा अपने आप को कृतकृत्य समझते हैं। अवधि समाप्त होने पर भरत की दशा का अत्यन्त मार्मिक चित्रण आनन्द रामायण में हुआ है। अवधि की समाप्ति पर राम के न लौटने से भरत अग्नि दाह की तैयारी करने लगते हैं वे शत्रुघ्न से कहते हैं कि मेरी समझ में ऐसा आ रहा है कि रावण ने युद्ध में राम लक्ष्मण को मार डाला है। अब मैं तो अग्नि प्रवेश कर रहा हूं किन्तु तुम सहयोगी राजाओं के साथ लंका जाकर रावण का वध कर के जनक नंदिनी को छुड़ा लाना।[2]

इस दृष्टि से मानस के भरत में विभिन्न समालोचकों ने त्रुटि दर्शन किया है। उनका कथन है कि लक्ष्मण शक्ति के समय हनुमान से ऐसा दुःखद समाचार सुनकर भी भरत टस से मस नहीं हुए। यह कैसी विचित्र बात है? उक्त दुःखद वृत्तान्त सुनकर भी वे केवल इतना ही कहकर चुप हो जाते हैं-

"अहह दैव मैं कत जग जायेउं।
प्रभु के एकउ काज न आयउं।।

किन्तु आनन्द रामायण के भरत जनक नंदिनी को लंका से छुड़ाने के लिये विभिन्न राजाओं को आमंत्रित करते हैं तथा शत्रुघ्न को ससैन्य लंका जाने के लिये आदेशित करते हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भरत की राम भक्ति समस्त इतिहास में अद्वितीय है। भरत के संबंध में निम्नलिखित कथन अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है-[3]

"भरत के चरित्र से स्वार्थ/त्याग, विनय, सहिष्णुता, गंभीरता, सरलता, क्षमा, वैराग्य और स्वाभिमान आदि सभी गुणों की शिक्षा ली जा सकती है। भक्ति युक्त निष्काम भाव से गृहस्थ में रहते हुए प्रजापालन करने का ऐसा सुन्दर उदाहरण अन्यत्र मिलना कठिन है।

---

1. आ.रा. 1/6/106   2. आ.रा. 1/12/68-69

लक्ष्मण-परशुराम सम्वाद में भी लक्ष्मण के निर्भीक चरित्र का दिग्दर्शन होता है। लक्ष्मण द्वारा परशुराम जी के लिये अनेक व्यंग्य किये गये हैं, किन्तु साथ ही श्री राम का संकेत पाते ही वे मौन धारण कर संकुचित हो जाते हैं। प्रस्तुत प्रसंग में लक्ष्मण अत्यधिक वाचाल बनकर अपने स्वामी की गंभीरता की सुरक्षा करते हैं। परिणाम यह होता है कि महान क्रोधी परशुराम ने भी जिन्होंने लक्ष्मण को " देखा खोट खोट नृप ढोटा" कहकर संबोधित किया था, अब " क्षमा मंदिर" विशेषण से विभूषित किया-[1]

लक्ष्मण श्री राम को अपना सर्वस्व समझते हैं। श्री राम-वन- गमन का समाचार पाते ही वे आकुल हो उठते हैं। श्री राम का विरह उनके लिये असह्य है। श्री लक्ष्मण जी का हृदय कम्पित हो उठता है, नेत्र सजल हो जाते हैं। वे आतुर होकर प्रभु राम के पद-पद्मों को पकड़ लेते हैं -[2]

वनवास काल में लक्ष्मण ने सेवाव्रत का एक अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया है। यह उनके लिये स्वाभाविक भी है। कारण कि लक्ष्मण ने तो राम के लिये अपने शरीर को भी तुच्छतम समझ कर सर्वस्व त्याग दिया। श्री राम के साथ चलने के लिये वे करबद्ध होकर प्रभु से भाव-भीनी प्रार्थना करते हैं। इस अवसर पर लक्ष्मण के त्याग का जो मूल्यांकन स्वयं राम जी के द्वारा हुआ वह स्तुत्य है-[3]

---

1. अनुचित कहेउँ बहुत अज्ञाता ।
   छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता ।। — रा.च.मा. 1/284/6

2. समाचार जब लछिमन पाये ।
   ब्याकुल बिलख बदन उठि धाये ।।
   कंप पुलक तन नयन सनीरा ।
   गहे चरन अति प्रेम अधीरा ।। — रा.च.मा. 2/69 1,2

3. राम बिलोकि बंधु कर जोरें।
   देह गेह सब सन तृन तोरे ।। — रा.च.मा. 2/69/6

लक्ष्मण अलौकिक मंत्र शक्ति से सम्पन्न हैं। इस मंत्र शक्ति से ही वे पर्णकुटी के चारों ओर एक रेखा खींच कर पंचवटी में सीता को अकेला छोड़कर राम की सहायतार्थ जाते हैं। इस रेखा में इतनी प्रबल शक्ति है कि रावण भी उसका उल्लंघन करके कुटिया में प्रवेश नहीं कर सका–[1]

रावण तथा मेघनाद उन्हें मूर्छित अवस्था में भी नहीं उठा पाते क्योंकि वे समस्त जगत के आधार हैं। उनकी क्रोधाग्नि एक क्षण में चौदह भुवनों को जला सकती है।[2]

किन्तु लक्ष्मण को शेषावतार के अतिरिक्त "जीव" भी कहा गया है–[3] तथा इससे लक्ष्मण के चरित्र चित्रण में तुलसी ने दार्शनिक जटिलता नहीं आने दी

इस प्रकार लक्ष्मण के चरित्र में भ्रातृ भक्ति एवं उग्र स्वभाव दो विशेषताएं उत्कृष्ट रूप में चित्रित हुई है। श्री राम के प्रति महती अनन्यता के कारण उनका चरित्र इतना आकर्षक हो गया है कि उनकी उग्रता भी मोहक हो गयी है। महान मानस मर्मज्ञ श्री मोरारी बापू के अनुसार –[4]

" राम चरित्र बिना लक्ष्मण के नहीं बन सकता। राम जी की कीर्ति का झण्डा संसार में लहराया पर उसमें लक्ष्मण जी का त्याग, कुर्बानी एवं समर्पण दंड बने।"

- -

1. रामानुज लघु रेख खंचाई ।
   सोउ नहिं नाघेउ अस मनुसाई ।। रा.च.मा 6/

2. मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ ।
   जगदाधार सेष किमि उठै चले खिसिआइ ।। रा.च.मा. 6/54

3. ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू।
   x x x x
   ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।

4. "रामायण प्रवचन" मानस प्रकाशन– मानस मंदिर नई दिल्ली–5
   पृष्ठ–16

आनन्द रामायणकार ने भी लक्ष्मण को श्री राम के अनन्य [illegible] रूप में चित्रित किया है। मनोहर काण्ड में कवि ने लक्ष्मण जी की वन्दना करते हुए उन्हें श्री रघुनाथ जी के चरणारविन्दों को देखने के लिये सदैव उत्सुक तथा अपने हाथ से श्री राम जी के सिर पर छत्र को धारण करने वाले, सर्वदा श्री जानकी जी की आज्ञा का पालन करने में तत्पर बतलाया है।[1]

लक्ष्मण को आनन्द रामायणकार ने शेषावतार के रूप में स्वीकार किया है। लक्ष्मण सौम्य रूपधारी होने के साथ साथ अनन्त रूपधारी भी है। इस तथ्य का उद्घाटन कवि ने लक्ष्मण कवच प्रस्तुत करते समय किया है।[2]

लक्ष्मण त्याग व तपस्या की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। अपने स्वामी की सेवार्थ उन्होंने निद्रा, भोजन तथा स्त्री का चौदह वर्ष पर्यन्त त्याग कर दिया आनन्द रामायणकार ने उन्हें जितेन्द्रिय कहकर अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित किये हैं

लक्ष्मण परम रूपवान तथा तेजवान व्यक्तित्व से युक्त है। आनन्द रामायणकार ने उन्हें विष्णु के सदृश रूप सम्पन्न कहकर अपनी रक्षार्थ उनसे प्रार्थना की है।[4]

---

1. सौमित्रिं रघुनायकस्य चरणद्वन्द्वेक्षणं श्यामलं ।
   बिभ्रन्तं स्वकरेण रामशिरसि छत्रं विचित्रं परम् ।। आ.रा. 8/15/1
   x x x x x
   तं वन्दे कमलेक्षणं जनकजा-वाक्ये सदा तत्परम् ।।

2. सौम्यरूपः पातु नित्यानन्तः पातु मे शिरान । आ.रा. 8/15/11

3. कुक्षिं पातुजितेन्द्रो मे ।
   मध्यः पातु जितेन्द्रियः ।। आ.रा. 8/15/13

4. ऊरू पातु विष्णुरूपः ।
   सुखोदयपदु करुणी ।। आ.रा. 8/15/15

आनन्द रामायण में लक्ष्मण को अलौकिक मंत्र शक्ति सम्पन्न चित्रित किया गया है। पंचवटी में सीता को अकेला छोड़कर जब वे राम की सुधि लेने के लिये गहन जंगल के लिये प्रस्थान करते हैं, वे अपने धनुष से कुटिया के चारों ओर रेखा खींचकर सीता से कहते हैं कि हे माता, यह रेखा दुष्टों के लिये दुर्लंघनीय तथा महान भय उत्पन्न करने वाली होगी। प्राणों के कण्ठगत हो जाने पर भी आप इस रेखा का उल्लंघन नहींकरना।[1]

महान योद्धा लक्ष्मण युद्ध क्षेत्र में विभिन्न अस्त्रों से युक्त चित्रित हुए हैं। मेघनाद द्वारा युद्ध में विजय प्राप्ति के लिये निकुम्भिला देवी के सम्मुख यज्ञ का अनुष्ठान किया जाता है। लक्ष्मण इस स्थान पर ससैन्य पहुँचे। उन्होंने गारुडास्त्र से सर्पों तथा पर्वतास्त्र से दाँत वाले सिंह आदि जन्तुओं को समाप्त किया। वे मेघास्त्र से अग्नि को शान्त करते हैं तथा वायव्यास्त्र से जल को सुखा देते हैं।[2]

लक्ष्मण रामाज्ञा का पालन अनुचित उचित का विचार त्याग कर करते हैं। जन्म काण्ड में सीता परित्याग के प्रसंग में कवि ने लक्ष्मण के चरित्र के इस पक्ष पर प्रकाश डाला है। यद्यपि लक्ष्मण सीता को वनवास देने के पक्ष में नहीं हैं तथापि उनके लिये रामाज्ञा शिरोधार्य है। नीरव वन में सीता को अकेला छोड़कर वे सजल नेत्रों तथा गद्गद कण्ठ से सीता से क्षमा याचना करते हैं।

- -

1. त्वद्रक्षार्थं दुष्टानां दुर्विलंघ्यां महत्तमाम् ।
   मा त्वमुल्लंघयस्वेमां प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥
   आ. रा. 1/7/99

2. गारुडास्त्रेण सर्पांश्च पर्वतास्त्रेण दंष्ट्रिणः ।
   अग्निं शान्तं चकारोत्पार्जन्यास्त्रेण लक्ष्मणः ॥
   × × × × × ×
   जलं संशोषयामास वायव्यास्त्रेण लक्ष्मणः

   आ. रा. 1/11/181 व 182

तथा उन्हें वाल्मीकि आश्रम में पहुँचने की सलाह देकर वापस लौटते हैं।[1]

लक्ष्मण को प्रभु राम ने आज्ञा दी थी कि लौटते समय सीता की एक भुजा भी काटकर लेते आना। किन्तु जिस सीता ने उन्हें माता का दुलार प्रदान किया है तथा जो सीता लंका में उनके समक्ष ही अग्नि परीक्षा देकर अपनी निष्कलंकता को प्रमाणित कर चुकी है उनके साथ वे ऐसा क्रूर व्यवहार कैसे कर सकते हैं। इस अवसर पर वे किंकर्तव्यविमूढ़ होकर आत्म हत्या करने का निश्चय कर बैठते हैं।[2]

लक्ष्मण के परम पावन आचरण पर ब्रह्मा प्रसन्न होकर विश्वकर्मा के रूप में आये तथा उन्हें सीता की कृत्रिम किन्तु वैसी ही भुजा देकर एवं सान्त्वना प्रदान करके अंतर्धान हो गये।[3]

इस प्रकार दोनों ही ग्रन्थों में लक्ष्मण दास्य भक्ति के आदर्श का यावज्जीवन पालन करते हैं। दोनों ही ग्रन्थों ने उन्हें मूर्तिमान वैराग्य के रूप में चित्रित किया है। कर्तव्यनिष्ठा का ऐसा उत्तम आदर्श अन्यत्र मिलना असम्भव है।

---

1. निवेश्य गत्वा स प्राह सानुनेत्रः सगद्गदः ।
   लोकापवादभीत्या त्वां त्यक्तवान राघवो वन ॥
   दोषो न कश्चिदस्मिन् नार्तामतः आसपदं मुनेः ।
   आ॰रा॰ 5/3/77व78
2. अधुना निजं विवाम्यत्र रामायात्यं न दर्शये ।
   एवं निश्चित्य सौमित्रिश्चिताः कर्तुं मनो दधे ॥
   आ॰रा॰ 5/4/6
3. सीतालंकार सहितं तस्याश्चिह्नविभूषितम् ।
   ददौ लक्ष्मण हस्तेतं स्वयमंतर्दधे क्षणात् ॥
   आ॰रा॰ 5/4/13

दशरथ:

चक्रवर्ती सम्राट दशरथ का चरित्र मानसकार ने मुख्यतः तीन प्रवृत्तियों पर आधारित कर दिया है- स्त्री-प्रेम, पुत्र-प्रेम तथा सत्य-प्रेम। ये तीन प्रवृत्तियाँ तमोगुण, रजोगुण और सतोगुण की प्रतिनिधि कही जा सकती हैं। दशरथ के कैकेयी प्रेम में तमोगुण का आभास मिलता है। कैकेयी के प्रति महाराज दशरथ के हृदय में अत्यधिक प्रेम है। कुछ आलोचकों ने तो दशरथ को स्त्रैण कहकर उपेक्षा प्रदर्शित की है। कैकेयी को कोप भवन में सुनकर वे काँप उठते हैं। देवराज इन्द्र को भी युद्ध स्थल में सहायता देने वाले महाराज दशरथ के पैर आगे नहीं बढ़ पाते।[1]

कोपभवन में शृंगार विहीना परम कुपिता कैकेयी के प्रति कहे गये शब्द दशरथ के सीमातीत स्त्री प्रेम को प्रकट कर देते हैं। कैकेयी के कहने पर वह परम रंक को भी नरेश बनाने तथा किसी भी नरेश को उसके राज्य से निष्कासित करने के लिये तैयार हैं। यहाँ तक कि कैकेयी का शत्रु यदि देवता भी हो तो भी उसे मार डालने के लिए प्रस्तुत हैं। उनका मन कैकेयी-मुख-चन्द्र का चकोर है।[2]

- -

1. सुरपति बसै बाहंबल जाके ।
   नरपति सकल रहहिं रुख ताके ॥
   सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई । रा. च. मा. 2/24/ 2, 3
   देखहु काम प्रताप बड़ाई ॥

2. कहु केहि रंकहिं करौं नरेसू ।
   कहु केहि नृपहिं निकासौं देसू ॥
   सकउँ तोर अरि अमरउ मारी । रा. च. मा. 2/25/2, 3, 4
   काह कीट बपुरे नर नारी ॥
   जानसि मोर सुभाउ बरोरू ।
   मन तव आनन चंदचकोरू ॥

राम के प्रति उनके प्रेम में रजोगुण का आभास होता है। वे राम को अन्य तीन पुत्रों की अपेक्षा अधिक प्रेम करते हैं। महर्षि विश्वामित्र द्वारा राम व लक्ष्मण को मांगने पर वे इस तथ्य को स्पष्ट रूप से कह देते हैं कि राम उन्हें सर्वाधिक प्रिय हैं –[1]

कैकेयी द्वारा राम को चौदह वर्ष का वनवास मांगने पर उनका हृदय विदीर्ण हो जाता है। वे राम को घर रखने के लिए अनुनय का प्रयोग करते हैं। वे कैकेयी से अपने राम-प्रेम की प्रगाढ़ता को निवेदित करते हुए कहते हैं कि मेरा जीवन राम-वियोग का सहन नहीं कर सकता –[2]

उन्हें भरत के राज्याभिषेक पर कोई आपत्ति नहीं है वे प्रसन्नता से यह शुभकार्य सम्पन्न कराना चाहते हैं, किन्तु राम को वनवास देना उन्हें सर्वथा अनुचित लगता है। वे कैकेयी से कहते हैं कि तुम क्रोध को त्याग कर मंगल साज सजाओ। कुछ दिन बाद भरत ही युवराज होंगे, किन्तु तुमने जो दूसरा वर मांगा है उसका मुझे महान दुःख है।[3]

महाराज दशरथ का सत्यप्रेम तो विशुद्ध सतोगुण है। उनके इस सत्य प्रेम का अखिल मानव समुदाय के लिए महत्व है। दशरथ का चरित्र सत्य से रच

---

1. सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं ।
   राम देत नहिं बनइ गोसाईं ॥ रा.च.मा. 1/207/5

2. जिये मीन बरु बारि बिहीना ।
   मनि बिनु फनिकु जिये दुख दीना ॥
   कहहुँ सुभाउ न छल मन माहीं ।
   जीवन मोर राम बिनु नाहीं ॥ रा.च.मा. 2/32/1,2

3. रिस परिहरु अब मंगल साजू ।
   कछु दिन गए भरत जुबराजू ॥
   एकहिं बात मोहि दुख लागा ।
   बर दूसर असमंजस मागा ॥ रा.च.मा. 2/31/3,4

तथा रज से सत् की ओर बढ़ता हुआ दिखलाई पड़ता है। यह भी आदर्श चरित्र की विशेषता है। कैकेयी से अधिक उन्हें राम प्रिय थे। अतः राम के लिए उन्होंने कैकेयी को सदैव के लिए परित्याग कर दिया। राम से अधिक उन्हें सत्य प्रिय था। अतः सत्य के लिए उन्होंने राम का परित्याग कर दिया।[1]

महाराज दशरथ सत्य को ही समस्त उत्तम सुकृतों की जड़ मानते हैं। वे कैकेयी से अपने सत्य-प्रेम को प्रकट करते हुए कहते हैं कि रघुवंशियों ने तो सदैव ही प्राण-प्रण से सत्य की रक्षा की है। असत्य को वे सबसे बड़ा पाप मानते हैं तथा सत्य को समस्त पुण्यों का फल स्वीकार करते हैं।[2]

इस प्रकार उन्होंने अपना बलिदान राम के लिए नहीं, अपितु सत्य के लिए किया है। वे चाहते तो राम को रोक सकते थे, परन्तु इससे सत्य की रक्षा न हो पाती। उन्होंने राम को नहीं रोका। अपने प्राणों को त्याग-कर सत्य की रक्षा की - यही उनका आदर्श है।

आनन्द रामायण में भी महाराज दशरथ को परम वीर, सत्यप्रेमी तथा उत्कृष्ट पुत्र प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है। उनकी वीरता देवासुर-संग्राम में स्पष्टतः दिखायी देती है। युद्ध प्रारम्भ होने पर यह आकाशवाणी होती है कि जिस पक्ष में अयोध्यापति राजा दशरथ होंगे, उसी पक्ष की विजय

- -

1. राखेउ राम सत्य मोहिं त्यागी ।
   तनु परिहरेउ प्रेम पन लागी ॥
   रा.च.मा. 2/263/6

2. रघुकुल रीति सदा चलि आई ।
   प्राण जाहिं बरु वचन न जाई ॥
   नहिं असत्य सम पातक पुंजा ।
   गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥
   सत्य मूल सब सुकृत सुहाए ।
   वेद पुरान विदित मनु गाए ॥

   रा.च.मा. 2/27/4,5,6

होगी। इस आकाशवाणी को सुनकर पवन देवता महाराज दशरथ से युद्ध में सम्मिलित होने की प्रार्थना करते हैं। तदनुसार चक्रवर्ती सम्राट दशरथ दानवों से घोर युद्ध कर विजयी होते हैं।[1]

महाराज दशरथ धनुर्विद्या में परम प्रवीण हैं। उनमें बाण-वर्षण द्वारा नदी के प्रवाह को भी रोक देने की क्षमता विद्यमान है।[2]

वे शब्द वेधी बाण विद्या में भी दक्ष हैं। सरयू से जल भरते हुए वैश्य पुत्र श्रवण का वध उनकी शब्द वेधी कला का प्रमाण है। श्रवण ने जैसे ही अपना घड़ा सरयू में डुबोया, वैसे ही उससे हाथी के शब्द जैसी ध्वनि हुई। महाराज दशरथ ने हाथी के भ्रम से ही शब्द वेधी बाण मारकर श्रवण को आहत कर दिया।[3]

महाराज दशरथ यशस्वी हैं। उनकी कीर्ति सर्वत्र फैली हुई है। महामुनि मुद्गल के आश्रम में पहुंचने पर महर्षि द्वारा इनका अपूर्व सत्कार किया जाता है। मुनि पत्नी सुमति द्वारा भी सभी राजरानियों का सत्कार हुआ। इतने बड़े यशस्वी सम्राट में विनयशीलता भी कूट-कूट कर भरी हुयी है। अपने पुत्रों तथा पत्नियों सहित दशरथ महामुनि को साष्टांग प्रणाम कर अपनी त्रुटियों

---

1. तत्र बाणसहस्रौघैः यत्रायोद्धयापरिमहान् ।
   जयस्तत्र न तदेहस्तां श्रुत्वा पवनो ब्रवीत् ।।
   प्रार्थयामास नृपतिं गत्वा युद्धाय सादरम् ।
   ततो गत्वा दशरथश्चकार कदनं महत् ।। आ.रा. 1/1/76,77

2. एकदा सा निशायां तु मृगयायां महावने।
   चकार वारिरुन्ध्य धावधीदुन्नवरान बहून ।। आ.रा. 1/1/86,87

3. गत्वा जले स्वयं कुंभं न्युब्जं तस्थौ ऽधोमुखम् ।
   x x x x x आ.रा. 1/1/90,91
   वेधं राजा द्विपं मत्वा विव्याध स पतीस्वना ।।

की क्षमा-याचना करते हैं।[1]

महाराज दशरथ परम भागवत हैं। वे अपने पुत्र राम के तत्त्व-स्वरूप को भली-भाँति पहचानते हैं। वे राम को साक्षात् विष्णु समझते हैं। वे एकान्त में श्री राम के सम्मुख अपनी इस भक्ति भावना को विनम्रता पूर्वक निवेदित भी कर देते हैं। वे कहते हैं कि हे राम ! तुम साक्षात नारायण हो। तुमने मेरे घर में केवल अवतार लिया है। ऐसा ज्ञानी ही कहते हैं। मैं तुम्हारी माया से मोहित हूं। मुझे ज्ञानोपदेश देकर मेरे अज्ञान को दूर कर दो। स्त्री-पुत्र तथा गृह आदि में अनुरक्त मेरी बुद्धि कभी शांति तथा सुख का अनुभव नहीं करती।[2]

श्री राम द्वारा सदुपदेश सुनकर दशरथ के मन से मायाकृत मोह दूर हो गया। वे दृढ़ भक्ति भाव से श्री राम के चरणों की वंदना भी करने लगते हैं।[3]

श्री राम में उनका अनन्य प्रेम है। कैकेयी द्वारा राम को वनवास तथा भरत को राज्याभिषेक माँगने पर वे मूर्च्छित हो कर गिर जाते हैं। राम का क्षण मात्र वियोग भी उन्हें असह्य है।[4]

- -

1. प्रार्थयन्तं समुत्थाप्य पूजयामास सादरम् ।
   × × × × ×
   सुमत्या पूजिताः सर्वा राजदारा विशेषतः ॥ अ.रा. 1/6/65,67
   × × × × ×
   मदापराधं राजा क्षमतां तत्त्वया मुने ॥

2. राम नारायणस्त्वंहि भूभार हरणाय च । अ.रा. 1/5/103,105
   × × × × ×
   दारापत्यादि गेहेषु स्थिता नैवोपशाम्यति ॥

3. सद्भाव परिपूर्णस्तु रोमांचितवपुर्धरः ।
   प्रणनाम राघवस्य चरणौ दृढभावतः ॥ अ.रा. 1/5/120-121

4. रामाय दण्डकारण्यं चीवराज्यं सुताय च ।
   वराभ्यां याचितो राज्ञा हेतुवत्या मूर्च्छितो भवत: ॥

   अ.रा. 1/6/49

श्री राम के वन को जाने पर उन्होंने अपना जीवन भी त्याग दिया। सुमंत्र द्वारा सभी हाल सुनकर दशरथ ने हा राघव ! हा राघव ! कह कर शरीर छोड़ दिया। यह उनके उत्कृष्ट पुत्र-प्रेम का आदर्श है।[1]

इस प्रकार दशरथ के चरित्र-चित्रण में मानस तथा आनन्द रामायण में कोई मत भेद नहीं है। दशरथ के चरित्र की एक ही सर्वसम्मत परिभाषा दी जा सकती है कि वह एक दुःखान्त जीवन-कथा है जिसका नायक सम्वेदना का पात्र है क्योंकि वह अपनी त्रुटियों से अनवगत है। इस रूप में दोनों ही काव्यों में दशरथ का चरित्र एक ही विषादमय प्रभाव उत्पन्न करता है।

पं० श्री राम किंकर उपाध्याय ने महाराज दशरथ के चरित्र को समर्पण का प्रेरणा स्रोत कहा है -[2]

" महाराज श्री दशरथ ने मन रूपी दर्पण में विवेक रूपी दृष्टि से आत्म निरीक्षण कर अपनी कमी खोज ली। इस तरह चक्रवर्ती सम्राट के अंतः करण में अपने अन्तर्जीवन की कमी को देखकर समर्पण का संकल्प जागृत हुआ।"

<u>रावण :</u>

मानस में रावण को एक प्रवृत्ति-प्रमुख चरित्र के रूप में उपस्थित किया गया है। इसमें हमें वस्तुवादिता, प्रत्यक्षवादिता, आशावादिता तथा निश्चय-वादिता आदि गुणों के दर्शन होते हैं। तुलसी ने रावण को विरोधात्मक प्रतिनायक के रूप में चित्रित किया है। उन्होंने उसे भी बल पूर्वक राम का भक्त बनाकर उसको मुक्ति करा दी है।

- -

1. [illegible] स सुमंत्रो ऽपि पुरीं गत्वा नृप"वृत्त" न्यवेदयत् ।
   सो ऽपि राजा राघवेति अनन्त्यं जीवितं जहौ ।।
   आ. रा. 1/6/91

2. "मानस-प्रवचन" (पृष्ठ-42) (चतुर्थ पुष्प)
   प्रकाशक-बिरला अकादमी, कलकत्ता ।

विभीषण की दृष्टि होने के कारण तुलसी ने रावण को [illegible] हीन रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने उसके सौन्दर्य के किसी अंग का उल्लेख तक नहीं किया है। मानस में रावण के मुकुट आदि का वर्णन अवश्य हुआ है किन्तु यह वर्णन उसके अपमान के प्रसंग की भूमिका के रूप में है। रावण के लिए तुलसी की समस्त उपमायें उनकी साम्प्रदायिक मनोवृत्ति अर्थात् घृणा और तिरस्कार को व्यक्त करती हैं। राम दूत अंगद जब रावण के दरबार में पहुँचता है तब तुलसी ने रावण का सौन्दर्य चित्रण इसी मनोवृत्ति के अनुसार ही प्रस्तुत किया है।

6 रावण के चरित्र में तुलसी ने मुख्य रूप से दो मनोविकारों पर प्रकाश डाला है- कामुकता तथा अहंकार। उन्होंने उसकी बहुदर्शित कामुकता का चित्रण करते हुए कहा है कि रावण ने देवता, यक्ष, गन्धर्व, मनुष्य, किन्नर और नाग कन्याओं तथा बहुत सी सुन्दर स्त्रियों को अपने बाहुबल से जीतकर वरण कर लिया।[2]

अभिमान तो रावण के स्वभाव में सन्निहित है। वह महान हठी है। मारीच, शुक, विभीषण, माल्यवंत तथा कुम्भकर्ण के परामर्शों एवं अपनी भार्या मन्दोदरी द्वारा बार-बार की गयी प्रार्थनाओं पर वह किंचित भी ध्यान

- -

1. अंगद दीख दसानन बैसे। ।
   सहित प्रान कज्जल गिरि जैसे ।।
   भुजा बिटप सिर सृंग समाना ।
   रोमावली लता जनु नाना ।। रा.च.मा. 6/18/4,5,6
   मुख नासिका नयन अरु काना ।
   गिरि कंदरा खोह अनुमाना ।।

2. देव जच्छ गन्धर्व नर, किन्नर नाग कुमारि ।
   जीति बरीं निज बाहुबल बहु सुन्दर बर नारि ।।

   रा.च.मा.1/182 (ख)

नहीं देता है। मानस में अनेक स्थलों पर तुलसी ने उसके अभिमान की ओर संकेत किया है -[1]

तुलसी ने रावण-दिग्विजय प्रसंग में रावण की अपरिमित शक्ति का वर्णन किया है -[2]

किन्तु बाद में तुलसी ने रावण की इस शक्ति का पर्याप्त उपहास भी किया है। उसके विचार से उसकी कामुकता ने उसकी समस्त शक्ति क्षीण कर दी थी। रण क्षेत्र में नल-नील उसके सिरों पर उछल कूद मचाते हैं।[3]

अंगद उसका पैर पकड़कर पृथ्वी पर गिरा देते हैं-[4]

हनुमान उसे मुक्का मार कर मूर्छित कर देते हैं तथा जाम्बवान लात मार कर रथ से नीचे गिरा देते हैं।[5]

- -

1\. (क) सेन बिलोकि सहज अभिमानी।
बोला बचन क्रोध मद सानी॥ — रा.च.मा. 1/180/4

(ख) बोला बिहँसि महा अभिमानी।
मिला हमहिं कपि गुर बड़ ग्यानी॥ — रा.च.मा. 5/23/2

2\. चलत दसानन डोलति अवनी।
गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी॥ — रा.च.मा. 1/181/5 से 1/182
× × × ×
भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र॥

3\. तब नल नील सिरन्हि चढ़ि गयऊ।
नखन्हि लिलार बिदारत भयऊ॥ — रा.च.मा. 6/97/6

4\. देखि बिकल सुर अंगद धायो।
कूदि चरन गहि भूमि गिरायो॥ — रा.च.मा. 6/96/8

5\. (क) मुरछा गै बहोरि सो जागा। कपि बल बिपुल सराहन लागा॥
(ख) उर लात घात प्रचंड लागत, बिकल रथ ते महि गिरा।
(क) रा.च.मा. 6/83/3 (ख) रा.च.मा. 6/97 छन्द

जिसे उसने लात से मारा था वही विभीषण उसे गदा के प्रहार से धराशायी कर देता है।[1]

वह हनुमान की पूँछ पकड़कर पटकना चाहता है किन्तु वे उसे लेकर आकाश में ही उड़ जाते हैं।[2]

इस प्रकार इन स्थितियों को लगातार लाने से तुलसी ने रावण का वीरत्व सर्वथा समाप्त सा कर दिया है। वस्तुतः उनका लक्ष्य भी यही था। वे रावण की वीरता प्रदर्शित नहीं करना चाहते वरन् उसकी दीनता दिखाकर भगवान राम की उदारता ही प्रदर्शित करना चाहते हैं। वे स्वयं उसकी पत्नी मंदोदरी के मुख से उसकी मृत्यु को न्यायोचित कहलाते हुए ऐसे पापमय जीवन का अंत करने के लिए राम की प्रशंसा करवाते हैं।[3]

गोस्वामी जी ने राम के देवत्व की स्थापना करते हुए रावण द्वारा सीताहरण कार्य में एक आध्यात्मिक अभिप्राय की संकल्पना की है। उनके अनुसार रावण को राम के अवतार का पता था। वह यह भली-भाँति जानता था कि रावण के तमोगुणी शरीर से मोक्ष प्राप्ति के लिए कोई भी साधन असंभव है। अतः उसके समक्ष राम के हाथों से प्राण-त्याग करने के अतिरिक्त दूसरा कोई मुक्ति का मार्ग नहीं था। अतः राम के हाथों से प्राण त्याग करने के प्रयोजन से ही उसने उनकी भार्या का हरण एवं युद्ध किया।[4]

---

1. उर माझ गदा प्रहार घोर, कठोर लागत महि पर्यो।
   रा.च.मा. 6/93/छन्द
2. गहेसि पूँछ कपि सहित उड़ाना। पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना।
   रा.च.मा. 6/94/5
3. अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन। रा.च.मा.
   जोगि बृन्द दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान॥ 6/104
4. सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥
   तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥
   होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा॥
   रा.च.मा. 3/22/3,4,5

अंततः उसने अपने लक्ष्य में सफलता प्राप्त करते हुए सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर ली।

इस प्रकार तुलसी ने रावण को एक विशेष श्रेणी का भक्त बनाकर मुक्ति प्रदान कर देने में चरित्र-चित्रण की सफलता पायी है।

आनन्द रामायणकार ने रावण को महान वीर तथा एक ऐतिहासिक पुरुष के रूप में लिया है। वह एक महान जाति तथा प्रदेश का शासक था। उसका संगठन सुदृढ़ और विशाल था। वह ज्योतिष शास्त्र का प्रकाण्ड पंडित था। श्री ब्रह्मा जी तथा श्री शिव जी को उसने अपनी घोर तपश्चर्या से प्रसन्न कर लिया था। श्री ब्रह्मा जी से उसने इस तथ्य का ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि साक्षात् जनार्दन भगवान अवतार लेकर उसका संहार करेंगे तथा यह अवतार अयोध्या नरेश दशरथ के यहाँ होगा।[1]

किन्तु रावण का समग्र चरित्र पुरुषार्थवादी है, भाग्यवादी नहीं। ब्रह्मा जी के वचनों को सुनकर भी वह अपनी मृत्यु के कारण को नष्ट करने का प्रयास करता है। वह अपनी सेना लेकर कौशल्या का हरण करता है। वह अपनी सेना लेकर कौशल्या का हरण करता है तथा अयोध्या में आकर घोर संग्राम करके महाराज दशरथ को पराजित कर देता है-[2]

यद्यपि वह दैव विधान पर विजय प्राप्त नहीं कर पाता, दशरथ तथा कौशल्या का पाणिग्रहण संस्कार हो ही जाता है- तथापि वह अपने कर्तव्य से चूकता नहीं है।

आनन्द रामायण में भी रावण के चरित्र में अभिमान तथा हठ-धर्मिता का योग दर्शित होता है। सीता-स्वयंवर में पहुंचकर वह भी जनक

---

1. तद्रावण वचः श्रुत्वा कथयामास तं विधिः।
   कौसल्यायां दशरथाद्रामः साक्षाज्जनार्दनः।।
   वधूयां पुत्र रूपेण त्वया सा निहनिष्यति ।।
   आ॰रा॰ 1/1/37 व 38

2. अयोध्यां सत्वरं गत्वा राक्षसैः परिवेष्टितः ।
   नौकास्थां तं दशरथं जित्वा युद्धे मुदान्वितः : ।।
   आ॰रा॰ 1/1/41

भी वे अपनी वीरता का स्वतः गान करता है तथा शिव-धनुष को उठाने का प्रयास करता है।[1]

अपने महान बाहुबल के गर्व से गर्वित रावण अत्यन्त कठोर शिव धनुष को तृण तुल्य कहकर संबोधित करता है।[2]

किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में ग्रन्थकार ने रावण के बल का अत्यधिक कटु उपहास किया है। रावण ने जैसे ही धनुष को उठाकर चढ़ाना चाहा वैसे ही वह धनुष पलट कर उसके वक्षस्थल पर गिर पड़ा। परिणामतः वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसका मुकुट दूर गिर गया तथा उसकी आँखें घूमने लगीं। अत्यधिक प्रयत्न करने पर भी वह उस धनुष को अपने ऊपर से हटा नहीं सका।[3]

रावण अपने बल तथा वैभव के प्रति अत्यधिक अभिमानी है। वह राम-दूत हनुमान जी से अपने बल तथा पराक्रम की लम्बी गाथा स्वयं सुनाने लगता है। उसने ब्रह्मा जी को पंचांगपाठक बना दिया है। सूर्य को प्रतिहारी, चन्द्रमा को छत्रधारी, वरुण को जल भरने वाला, पवन को झाड़ू लगाने वाला अग्नि को धोबी, इन्द्र को माली, यमराज को द्वारपाल देवांगनाओं को दासियाँ तथा षष्ठी देवी कात्यायनी को उसने बच्चों को खिलाने वाली धाय बना रखा है। उसने अपने पौरुष से कैलाश को हिला दिया है तथा धनपति कुबेर पर भी विजय प्राप्त कर ली है।[4]

---

1. येन वै निर्जिता देवास्त्रैलोक्यं स्ववशे कृतं । आ.रा.
   आन्दोलितो कुशाभिर्हि कैलासो येन वै मया ।। 1/3/69
2. तस्य मे कमका च एवं धनुं पार्थिव तेजसि । आ.रा.
   क्षुद्रं धिग्मति किंचिदस्मिन् लघुवाये तृणोपमे ।। 1/3/70
3. तदा प्रणतिर्थ वालीप्रावणस्य समर्पिते । आ.रा.
   अतीव प्रयत्नात नाताश्चक्यो विनिर्गतो ।। 1/3/79
4. पंचांगपाठकस्थाने यस्य ब्रह्मा कृतो मया ।

   × × × × ×

   आन्दोलितश्च कैलासः कुबेरो पि विनिर्जितः ।।

   आ.रा. 1/9/ 169 से 173

वह अपने निश्चय के प्रति कठोर आग्रही है। अपने अनुज विभीषण के द्वारा कुछ तथ्य विरोधी वक्तव्य को भी वह अपने प्रतिकूल ही समझता है। राम को परम ब्रह्म कहने वाले विभीषण को वह बंधु रूप में अपना शत्रु समझता है।[1]

आनन्द रामायणकार ने रावण को युद्ध की समस्त नीतियों में दक्ष चित्रित किया है। अपने प्रतिद्वन्दी राम को अनेक प्रकार से धोखे में डालकर उससे विजय प्राप्त करना चाहता है। अपने मामा मारीच से वह स्वर्ण मृग बनने के लिए निवेदन करता है तथा उसे राम को अत्यधिक दूर वन प्रान्त में ले जाकर "हा लक्ष्मण" कहकर पुकारने की सलाह भी देता है। इस छद्म नीति का प्रयोग करके वह सीता हरण करने में सफल सिद्ध होता है।[2]

युद्ध काल में वह सीता को भ्रमित करने के लिए मय दानव से राम का कृत्रिम मस्तक बनवाकर अशोक वाटिका में जाता है तथा सीता को वह मस्तक दिखाकर राम के मारे जाने का समाचार निवेदित करता है।[3]

रण-क्षेत्र में राम की सेना को हतोत्साहित करने के लिए वह मय दानव द्वारा कृत्रिम सीता बनवाकर वानरों के सम्मुख ही अपने रथ पर रखकर काट डालता है जिससे समस्त वानर-भालु सेना में हा हा कार होने लगता है।[4]

- -

1. धन्द्रुवेण xxxxxxxx मधुरत्वं यातो भास्कर तेजसः । आ० रा० 1/10/38

2. श्रुत्वा त्वां मृगरूपं च रामस्त्वामनुयास्यति ।
स्वं शब्दं कुरु रामस्य लक्ष्मणेति च धास्यति ।। आ० रा० 1/7/84,85
तावत्तां जानकीं वेगात्स्वलंकां त्वामानयाम्यहम् ।।

3. ततः कृत्वा रामशिरः कृत्रिमं मयहस्ततः । आ० रा० 1/11/220
ययौ सीतां दर्शयितुं रावणो शोककाननम् ।।

4. विधाय कृत्रिमां सीतां रथेन स दशाननः ।
पश्यतां वानराणां च स्वरथे तां चकर्त वै ।। आ० रा० 1/11/248

आनन्द रामायणकार ने भी तुलसी की भाँति रावण को मुमुक्षु सिद्ध किया है। उसने सीता का हरण केवल मुक्ति प्राप्त करने के लिए ही किया है। वह अपनी भार्या मन्दोदरी से इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहता है कि हे प्रिये ! राम साक्षात् विष्णु तथा सीता साक्षात् लक्ष्मी है। राम के द्वारा मरने के लिए ही मैं सीता को यहाँ लाया हूं। इस मार्ग से ही मैं परम पद प्राप्त कर सकूंगा।[1]

इस प्रकार रावण के प्रति दोनों ही ग्रन्थों में ~~श्रद्धा~~ अश्रद्धा व्यक्त हुई है किन्तु मानस में रावण का तिरस्कार अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। आनन्द रामायणकार का रावण एक असाधारण दुष्कर्मा है। उसके पास भी महत्ता के प्रेरक मानसिक तथा बौद्धिक गुण हैं किन्तु वह उनका सदुपयोग नहीं कर सका है।

<u>हनुमान:</u>

गोस्वामी जी ने मानस में हनुमान को महान बल तथा बुद्धि से युक्त एवं दास्य भक्ति की मूर्ति के रूप में उपस्थित किया है। वे सर्वत्र अपने स्वामी राम के स्वार्थहीन तथा कर्तव्य परायण सेवक के रूप में उपस्थित हुए हैं। वे अनेक साहसिक कार्यों के कर्ता हैं। सागर-लंघन, अशोक वन-विध्वंस, लंका-दहन, द्रोणाचल आनयन जैसे अद्भुत और महान कार्यों का श्रेय उन्हें प्राप्त है। तुलसी ने उन्हें अतुलित बल का भण्डार कहकर उनकी वंदना की है।[2]

लंकिनी नाम की राक्षसी उनके मुष्टिका प्रहार मात्र से रक्त-वमन करने लगती है।[3]

लंका से राजवैद्य सुषेण को वे उसके घर सहित उठाकर रामादल में ले आते हैं।[4]

----

1. रामो विष्णुश्च या सीता चानायि प्राप्तुकामके। आ.रामायण 1/11/243,244
x x x x x
रामहस्तान्मृतो देही गच्छामि परमं पदम् ॥

2. "अतुलित बल धामं स्वर्णशैलाभ देहं .... ।" रा.च.मा./5/श्लोक/3।

3. मुठिका एक महाकपि हनी। रुधिर बमत धरनी ढनमनी॥ रा.च.मा.5/3/4

4. धरि लघु रूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता॥ रा.च.मा.6/54/9

मूर्छित लक्ष्मण को वे दो बार रण स्थल से उठाकर लाते हैं जब कि इस कार्य में रावण तथा मेघनाद भी असफल रहे थे।[1]

वे मेघनाद जैसे विशाल योद्धा वैद्य को बिना प्रयास ही लंका में रख आते हैं।[2]

हनुमान अपने लांगूल में लपेटकर साधारण राक्षसों को ही नहीं, रावण को भी पटक देते हैं।[3]

हनुमान में अद्भुत शरीर बल के साथ उत्कृष्ट बुद्धि बल का भी संयोग है। मानसकार ने उन्हें अतुलित बलधाम के साथ ही सकलगुण निधान कहकर उनकी स्तुति की है। वे प्रत्युत्पन्नमति, दूरदर्शी तथा वाक्पटु हैं। राम-लक्ष्मण से अपनी प्रथम भेंट में वे अपने प्रभु को पहिचान लेते हैं।[4]

सीतान्वेषण के लिए प्रस्थित हनुमान के बल तथा बुद्धि की परीक्षार्थ देवताओं ने नाग-माता सुरसा को भेजा। हनुमान इस परीक्षा में अत्यधिक सफल सिद्ध होते हैं। सुरसा उन्हें "बल बुद्धि निधान कहकर आशीर्वाद देती है।[5]

---

1. (क) तब लगि लै आयउ हनुमाना। अनुज देखि प्रभु अति दुख माना।
   (ख) अस कहि लछिमन कहुँ कपि ल्यायो। देखि दसानन बिसमय पायो॥
   (क) रा.च.मा. 6/54/6 (ख) रा.च.मा. 6/83/5

2. बिनु प्रयास हनुमान उठायो। लंका द्वार राखि पुनि आयो॥
   रा.च.मा. 6/76/1

3. गहेसि पूँछ कपि सहित उड़ाना। पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना॥
   रा०च०मा० 6/94/5

4. प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना।
   सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥
   रा.च.मा. 4/1/5

5. राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
   आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान॥
   रा.च.मा. 5/2

अशोक वाटिका में भी जानकी जी भी उनकी वाग्मिता पर प्रसन्न होकर उनके बुद्धि-बल की प्रशंसा करती हैं।[1]

सुबेल शैल पर चन्द्रोदय-वर्णन प्रसंग में हनुमान की बौद्धिक वाग्मिता तथा एक अनन्य भक्त की कल्पना शक्ति प्रकट हो जाती है। चन्द्रमा की श्यामता में वे अपने प्रभु का ही दर्शन कर रहे हैं।[2]

हनुमान में अपने इस प्रबल पराक्रम तथा बुद्धिमत्ता का किंचित् मात्र भी अभिमान नहीं है। वे अपने बल को विस्मृत कर बैठते हैं। समुद्र लंघन से पूर्व उन्हें अपने बल का स्मरण ही नहीं था। मंत्री जाम्बवान के द्वारा उन्हें उनके बल का स्मरण कराया जाता है तब वे लंका जाने को तैयार होते हैं।[3]

मानस में हनुमान की कपि स्वभावानुकूल चंचलता का चित्रण हुआ है किन्तु राम भक्त की मर्यादा की दृष्टि से यह चंचलता अत्यन्त संयत रूप में है। अशोक वाटिका विध्वंस के लिए वे रावण के समक्ष अपने जातीय स्वभाव को ही कारण के रूप में प्रस्तुत करते हैं।[4]

---

1. देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकी जाहु । रा.च.मा. 5/17
   रघुपति चरन हृदय धरि तात मधुर फल खाहु
2. कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास । रा.च.मा. 6/12
   तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास
3. कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेउ बलवाना।।
   पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना।।

   x x x

   राम काज लगि तव अवतारा । सुनतहिं भयउ पर्बताकारा ।।

   रा.च.मा. 4/29/3 से 6 तक
4. खायउँ फल प्रभु लागी भूखा ।
   कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा।।

   रा.च.मा. 5/21/3

मानसकार ने हनुमान को राम के आदर्श सेवक के रूप में चित्रित किया है। उनकी यह आदर्श सेवा दास्य भक्ति के चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुई है। वे राम के साथ अयोध्या लौटकर वहीं राम की सेवा में रुक जाते हैं। वानर राज सुग्रीव भी अपने इस सुयोग्य सचिव को राम सेवा के लिए सहर्ष स्वीकृति दे देते हैं।[1]

इस प्रकार वे आजीवन राम की सेवा में तत्पर रहते हैं। इस सेवा के फलस्वरूप उन्हें विशेषाधिकार युक्त आदर्श भक्त का आसन मिला है। उनका समस्त व्यक्तित्व राम के साथ एकाकार है। इसीलिए तुलसी ने भी उन्हें "खल बन पावक ज्ञान घन" कहकर उनकी वंदना की है।[2]

आनन्द रामायण में हनुमान का चरित्र चित्रांकन एक राजनीति पटु मंत्री तथा आदर्श दूत के रूप में मुख्य रूप से हुआ है। अहिरावण वध प्रसंग में आनन्द रामायणकार ने उनके इस रूप का विशद विवेचन किया है। अहिरावण द्वारा राम और लक्ष्मण का बलिदान देवी के सम्मुख निश्चित कर दिए जाने पर वे कुछ क्षण पूर्व ही त्रसरेणु के समान छोटा रूप धारण कर देवालय में प्रविष्ट हो जाते हैं। देवी के स्वर में ही अपना वक्तव्य देकर वे अहिरावण तथा उसकी प्रजा को भ्रम में डालकर राम व लक्ष्मण की रक्षा कर लेते हैं।[3]

---

1. पुन्य पुंज तुम्ह पवन कुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा॥
   रा.च.मा. 7/18/9

2. बन्दउँ पवन कुमार खल बन पावक ग्यान घन ।
   जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥
   रा.च.मा. 1/17

3. ततः सः मारुतिर्भूत्वा त्रसरेणुसमरूपधृक् ।
   देवालये प्रविश्याथ [illegible] ततः ॥

   x x x x

   भक्षयामि निशायेन सोऽहमद्य नात्रैव संशयः ।
   तद्देव्या वचनं श्रुत्वा कुर्वते आरत्या निर्भरां मुदा॥

   आ.रा. 1/11/93 से 98 तक

हनुमान की परीक्षार्थ देवताओं द्वारा प्रेषित नाग-माता सुरसा का आख्यान आनन्द रामायण में है। सुरसा के सम्मुख हनुमान का वक्तव्य उन्हें एक निःस्वार्थ सेवक के पद पर प्रतिष्ठित करता है। हनुमान के समक्ष अपने प्रभु राम का कार्य ही प्रमुख है। येन केन प्रकारेण अपने इष्ट के कार्य का संपादन ही, उनके जीवन की सफलता है। सुरसा उनके बल तथा बुद्धि को समझकर उनकी स्तुति करने लगती है।[1]

समुद्र मार्ग में उनको विश्राम देने हेतु मैनाक पर्वत प्रस्तुत होता है, किन्तु वे उस पर तनिक भी विश्राम नहीं करते। श्री राम जी के कार्य में रत रहने में ही उन्हें परम विश्राम का अनुभव होता है। राम कार्य में वे कभी श्रम का अनुभव नहीं करते, यह उनकी आदर्श स्वामिभक्ति तथा कर्तव्य निष्ठा का परिचायक है।[2]

हनुमान के शरीर बल तथा पराक्रम का चित्रण आनन्द रामायण में पर्याप्त रूप में हुआ है। उनके लांगूल के पराक्रम का संकेत देते हुए ग्रन्थकार ने उनकी पूंछ को वानर सेना के चारों ओर दुर्गम परिख के रूप में दर्शाया है। अहिरावण के दूत इस लांगूल के परिख को पार नहीं कर पाते वे आकाश मार्ग से वानर-दल में प्रवेश करते हैं।[3]

हनुमान के अपरिमित बल के वर्णन में आनन्द रामायण कार ने हनुमान द्वारा अर्जुन के शरसेतु भंजन का आख्यान भी प्रस्तुत किया है। ग्रन्थकार ने उनको अजर तथा अमर कहकर द्वापर युग के इस वृत्तान्त का वर्णन किया है। सेतुबन्ध रामेश्वर के धनुष्कोटि तीर्थ पर हनुमान तथा अर्जुन की भेंट हुई। धनुर्विद्या के मानी अर्जुन ने समुद्र पर बाणों का सेतु बना दिया। हनुमान ने इस विशाल सेतु को अपने पादांगुष्ठ भार से ही डुबो दिया।[4]

---

1. ज्ञात्वा सा पि बलं तस्य स्तुत्वा तं प्रययौ दिवम्। आ.रा. 1/9/5
2. तदा तं हनुमानाह रामकार्ये मे श्रमः । आ.रा.4/9/10-11
   विश्रामः स्वामिकार्ये च न करोम्यद्य संभ्रमम्।।
3. ददर्शपुच्छो पुच्छस्य परिखं हि हनुमतः । आ.रा. 1/11/76
4. बाणौघेन विस्तीर्णं सागरस्योपरि स्थितम् । आ.रा.8/18/22-23
   तं सेतुं मारुतिः कृत्स्नमर्जुनाद्रे पुच्छ भारतः ।।
   अदर्शयत्तदा सर्वं ज्ञानात्मैव नीतवान् ।।

ग्रन्थकार ने कतिपय स्थलों पर हनुमान में अभिमान का भाव भी चित्रित किया है किन्तु इस अभिमान का अपहार भी स्वयं प्रभु राम द्वारा किसी न किसी रूप से कर दिया गया है। सीतान्वेषण कर लौटते हुए उनके अन्दर गर्वांकुर पैदा होता है, किन्तु प्रभु राम द्वारा मुनि रूप धारण कर अपने भक्त का यह गर्वांकुर अतिशीघ्र नष्ट कर दिया जाता है। मुनि वेषधारी प्रभु राम उन्हें इस तथ्य से अवगत कराते हैं कि हर कल्प में यह चरित्र होता है। अनेक हनुमान अब तक सीता का अन्वेषण कर चुके हैं। यह जानकर हनुमान का गर्व दूर हो जाता है।[1]

सेतुबंध में शिवलिंग स्थापन के प्रसंग में भी यही तथ्य प्रकट है। हनुमान को शिवलिंग के लाने हेतु काशी भेजा जाता है। वहाँ से दो शिव-लिंग प्राप्त करके उनके मन में कुछ गर्व होता है। अन्तर्यामी प्रभु राम इस तथ्य को समझकर बालू का शिवलिंग स्थापित कर देते हैं क्योंकि प्रतिष्ठा का मुहूर्त बीता जा रहा था। हनुमान इस कृत्य पर अपना अपमान समझकर खेद प्रकट करते हैं। तब उनके गर्वनाश हेतु राम यह शर्त रखते हैं कि यदि हनुमान अपनी लांगूल लपेट कर बालुका निर्मित शिवलिंग को उखाड़ दें तो उनके द्वारा लाए हुए विश्वेश्वर लिंग को यहाँ पुनः स्थापित कर दिया जायेगा। हनुमान ने बहुत प्रयास किया किन्तु वे असफल ही रहे। सहसा उनकी पूंछ टूट गयी तथा मूर्छित हो गिर गये। कुछ क्षण बाद हनुमान जी स्वस्थ हो गर्व का त्याग कर प्रभु की प्रार्थना करने लगते हैं।[2]

---

1. चिन्तयामास मनसि मारुतिः कातरः पुरा ।
   समानीतास्मि सीतायाः प्रवृत्तिश्च मयाद्य वै ।
   इति निश्चित्य मनसि गतगर्वस्तदा कपिः ।।

   आ० रा० 1/9/296-97

2. त्रुटितं तत्कपेः पुच्छं पपात भुवि मूर्छितः ।
   x x x x
   स्वार्थं श्रुत्वा मारुतिः स गतगर्वस्तदाभवत् ।।

   आ० रा० 1/10/138-39

हनुमान की स्वार्थहीन सेवा, भक्ति का एक सेव अर्जित कर लिया है। आनन्द रामायणकार ने अपने ग्रन्थ के मनोहर काण्ड में हनुमत्कवच लिखकर उन्हें अपनी श्रद्धा-भक्ति समर्पित की है। वे स्वयं हनुमान के भक्त बन गये हैं।[1]

इस प्रकार दोनों ही ग्रन्थों में हनुमान का चरित्र चित्रांकन अपरिमित बल तथा बुद्धि से युक्त आदर्श दूत एवं दास्य भक्ति के मूर्तिमान व्यक्तित्व के रूप में हुआ है।

मानस मर्मज्ञ पं० श्री राम किंकर उपाध्याय जी हनुमान जी के चरित्र की समीक्षा करते हुए लिखते हैं -[2]

" हनुमान जी का चरित्र वास्तव में निरहंकारता का मूर्तिमान स्वरूप है। वे प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर के आश्रम में ले जाना चाहते हैं। उन्हें अपना बल विस्मृत हो जाता था, किन्तु यह कोई शाप नहीं बल्कि वरदान है। प्रत्येक अहंकारी को अपना गुण याद रहता है और निरहंकारी को अपनी कोई विशेषता याद नहीं रहती।"

सुग्रीवः

मानस में सुग्रीव का चरित्र एक विशिष्ट काम युक्त भोगी वानर के रूप में चित्रित किया गया है। सुग्रीव में बल, बुद्धि तथा वीरता आदि कोई विशेष गुण नहीं है। वे सीतान्वेषण तथा रावण-वध में राम के मुख्य सहायक अवश्य हैं। तुलसी ने सुग्रीव को दीन रूप में प्रस्तुत किया है, किन्तु यह दैन्य शरणागत भक्तों का दैन्य नहीं अपितु इसमें अतुल राज्य व पत्नी को पुनः प्राप्त करने के स्वार्थ की भावना निहित है।

सुग्रीव की विलासिता उस समय स्पष्ट हो जाती है जब वे राज्य व स्त्री को पुनः प्राप्त करके प्रमादवश राम के कार्य को भुलाकर रावती

- -

1. आ.रा. 8/13
2. रा.च.मा. / मानस -मंथन [द्वितीय रत्न]
   प्रकाशक-तुलसी तत्वानुसंधान केन्द्र, कानपुर।

सुखों में निमग्न हो जाते हैं। उन्हें अपना कर्तव्य भी विस्मृत हो जाता है। श्री राम द्वारा उनके इस कार्य की भर्त्सना की जाती है तथा उन्हें लक्ष्मण का कोप भाजन भी बनना पड़ता है। तारा तथा हनुमान के सहयोग से वे अपनी भूल का अनुभव कर अपने कर्तव्य पथ पर प्रवृत्त होते हैं।[1]

अपनी इस दुर्बलता को वे अपने ही मुख से प्रभु राम के समक्ष निवेदित करते हैं जिसमें उनकी विषय सुख भोगी प्रवृत्ति प्रस्तुत होती है-[2]

सुग्रीव में विषय लोलुपता अन्य भीरुता के भी दर्शन होते हैं। राम तथा लक्ष्मण को दूर से ही आते देखकर वे हनुमान को उनका परिचय प्राप्त करने के लिए भेजते हैं तथा पर्वत छोड़कर भागने की इच्छा भी प्रकट करते हैं। इस प्रकार वे एक भगोड़े तथा कायर व्यक्ति की भूमिका प्रस्तुत करते हैं।[3]

मानस में कतिपय स्थलों पर सुग्रीव के शासकीय प्रभाव की ओर संकेत किया गया है किन्तु वह अत्यल्प रूप में है। वे अपने समस्त योद्धाओं को इस राजाज्ञा के साथ सीतान्वेषण के लिए प्रेषित करते हैं कि जो भी वीर एक मास की अवधि में बिना सीता की खोज किए वापस आयेगा उसका वध कर दिया जायेगा।[4]

---

1. सुनि सुग्रीव परम भय माना। विषय मोर हरि लीन्हेउ ग्याना।।
   रा॰च॰मा॰ 4/18/3
2. विषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पाँवर पसु कपि अति कामी।।
   रा॰च॰मा॰ 4/20/3
3. पठवा बालि होइ मन मैला।
   भागौं तुरत तजौं यह सैला ।। रा॰च॰मा॰ 4/1/5
4. अवधि मेटि जो बिनु सुधि पायें।
   आवइ बनिहि सो मोहि मरायें।। रा॰च॰मा॰ 4/21/8

इस आदेश से समस्त वीर अत्यधिक आतंकित हो जाते हैं। वे सीतान्वेषण किए बिना वापस लौटना ही नहीं चाहते।[1]

युद्ध में वानरराज की वीरता का कोई विशेष चित्रण मानस में नहीं हुआ। कुम्भकर्ण के नाक-कान काट कर भाग आने तथा अपनी सेना के साथ रावण पर वृक्ष व पर्वतों का प्रहार करने जैसी कतिपय घटनाओं के अतिरिक्त उनकी वीरता का प्रसंग नहीं मिलता है।[2]

वस्तुतः रूप में सुग्रीव मानस का एक व्यक्तित्व शून्य पात्र है। सुग्रीव का चरित्र राम के चरित्र को प्रकाशित करने की भूमिका मात्र है। मानसकार ने प्रस्तावना में ही यह स्पष्ट कर दिया है कि श्री राम ने "भक्त वत्सलता" वश ही सुग्रीव को अपनी शरण प्रदान की है, अन्यथा वह तो बालि की कोटि का ही अपराधी था।[3]

इस प्रकार मानस के सुग्रीव में न तो कोई ऐसी बड़ी बुराई है और न भलाई ही। आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने सुग्रीव के चरित्र की समीक्षा करते हुए इस तथ्य को स्वीकार किया है-[4]

- -

1. हम सीता कै सुधि लीन्हें बिना ।
   नहिं जैहैं जुबराज प्रबीना ।। — रा० च० मा० 4/25/9

2. (क) काटेसि दसन नासिका काना ।
   गरजि अकास चलेउ तेहिं जाना ।। — रा० च० मा० 6/65/6

   (ख) बिटप महीधर करहिं प्रहारा — रा० च० मा० 6/97/4

3. जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली
   फिरि सुकण्ठ सोइ कीन्ह कुचाली — रा० च० मा० 1/28/6,7,8
   x x x x
   ते भरतहिं भेंटत सनमाने। राजसभा रघुवीर बखाने ।।

4. न उनकी भलाई ही किसी हद तक पहुँची हुयी दिखायी देती है न बुराई ही ।"
   आचार्य रामचंद्र शुक्ल- "गोस्वामी तुलसीदास" पृ0-143

अंगदः

राम चरित मानस में संकल्प की दृढ़ता भक्तिभाव की अक्षुण्णता, कर्त्तव्य के प्रति आस्था, आराध्य के प्रति समर्पण की प्रवृत्ति तथा सद् व असद् की पूर्ण विवेक बुद्धि इत्यादि गुण यदि किसी चरित्र में एक साथ देखने को मिलते हैं तो वह चरित्र है- दृढ़व्रती युवराज अंगद का। इस उदात्त चरित्र में उक्त सभी गुणों का श्रेष्ठ योग चित्रित हुआ है।

अंगद जी में अपने आराध्य के प्रति गहरी निष्ठा विद्यमान है। अपने पिता बालि के द्वारा वे श्री राम जी को अनन्य दास के रूप में ही समर्पित किये गये हैं।[1]

श्री राम जी के चरणों में उनकी निष्काम भक्ति है। मानसकार ने उन्हें हनुमान की ही भाँति भाग्यशाली कहकर सम्बोधित किया है क्योंकि इन्हें श्री अंगद जी को प्रभु पदारविन्दों की सेवा का अवसर बहुतायत में प्राप्त हुआ है। सुबेल गिरि पर चन्द्रोदय वर्णन प्रसंग में श्री हनुमान जी व श्री अंगद जी ही प्रभु के चरणों की सेवा कर रहे हैं।[2]

लंकापति रावण को वे अपने आराध्य की महत्ता का उपदेश देते हुए कहते हैं कि श्री शिव, ब्रह्मा तथा समस्त देव मुनिवृन्द भी प्रभु श्री राम जी के श्री चरणों की सेवा के आकांक्षी हैं।[3]

श्री अंगद जी में भाव प्रवणता की अतिशयता भी प्रशंसनीय है। मानस में श्री राम राज्याभिषेक के बाद अंगद जी का भक्ति प्लावित व मार्मिक चित्र प्रस्तुत हुआ है। अपने सर्वस्व श्री राम जी से वे वियुक्त

---

1. गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिए।
   रा.च.मा. 4/9/छंद(2)
2. बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चापत बिधि नाना।।
   रा०च०मा० 7/10/7
3. सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई।।
   रा.च.मा. 7/21/1

होना ही नहीं चाहते। वे श्री राम जी को बालि द्वारा अपने समर्पण का स्मरण दिलाकर सर्वदा ही उनका सामीप्य लाभ चाहते हैं।[1]

अंगद की इस भाव प्रवणता ने अपने प्रभु के नेत्रों को भी सजल कर दिया है। श्री राम जी उसे अपनी उरमाल तथा विविध वस्त्राभूषण पहिनाकर व अनेक प्रकार से समझा बुझा कर विदाई करते हैं।[2]

अंगद के चरित्र की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता है निर्भीकता। रावण जैसे परम प्रतापी तथा देवपरितापी राजा के दरबार में उनका निश्शंक भाव से पदार्पण उनके भय शून्य हृदय का परिचायक है। वे रावण के दरबार में उसी भाँति प्रविष्ट होते हैं जैसे मतवाले हाथियों के बीच में एक सिंह प्रवेश करता है।[3]

दशानन जैसे महान आतंकवादी सम्राट को भी वे दाँतों में तिनका तथा गले कुल्हाड़ी रख कर श्री राम जी की शरण में जाने का उपदेश देते हैं।[4]

---

1. मरती बेर नाथ मोहिं बाली। गयउ तुम्हारेहिं कोंछें घाली।।

   x x x

   मोरे तुम प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जल जाता।।

   x x x

   नीच टहल गृह कै सब करिहउँ। पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ।।

   रा.च.मा. 7/17/2 से 8 तक

2. निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ।
   बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ।।

   रा.च.मा. 7/18(ख)

3. जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ।
   राम प्रताप सुमिरि मन बैठ सभाँ सिर नाइ।।

   रा.च.मा. 6/18

4. दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी।।

   रा.च.मा. 6/9/7

रावण की सभा में अपने प्रभु श्री राम की निन्दा सुनकर श्री अंगद जी के द्वारा परम क्रोधित होकर अपने दोनों भुजदण्डों को पृथ्वी पर पटकने मात्र से ही पृथ्वी में कम्पन पैदा हो गया।[1]

अंगद की इस निर्भीकता में वीरता का विशाल योग है। लंका में प्रवेश करते ही वे रावण के एक पुत्र को भूमि पर पटककर उसका प्राणान्त कर देते हैं।2

लंका दुर्ग के विध्वंस में तत्पर अंगद तथा हनुमान की वीरता से संतुष्ट होकर श्री राम जी स्वयं ही उनकी प्रशंसा करने लगते हैं। ये दोनों योद्धा लंका दुर्ग पर समुद्र मंथन में तत्पर युगल मन्दराचलवत् शोभित होते हैं। अपने बाहुबल से शत्रुदल को मस्त कर वे अपने प्रभु के श्री चरणों के दर्शन करते हैं। उनकी वीरता से प्रभु श्री राम जी भी परम संतुष्ट हैं।[3]

श्री अंगद जी के चरित्र का महत्वपूर्ण पक्ष उनकी आत्म विश्वास की दृढ़ता भी है। उन्हें अपने प्रभु के प्रताप तथा अपनी शक्ति पर पूर्ण विश्वास है। रावण की सभा में उनका पदारोपण तथा किसी योद्धा द्वारा पैर को टालने मात्र से श्री राम जी की पराजय स्वीकार करने का प्रण उनके दृढ़ आत्म विश्वास का परिचायक है।[4]

---

1. दुहु भुजदण्ड तमकि महि मारी।। रा.च.मा. 6/31/ 3,4

   × × × ×

   डोलत धरनि सभासद खसे।।

2. गहि पद पटकेउ भूमि भवाँई। रा.च.मा. 6/17/5

3. भुज बल रिपु दल दलमलि देखि दिवस कर अंत।
   कूदे जुगल विगत श्रम आए जहँ भगवंत ।।
   रा.च.मा. 6/45

4. जौं मम चरन सकसि सठ टारी।
   फिरहिं राम सीता मैं हारी ।।
   रा.च.मा. 6/33/9

अपने दृढ़ आत्म बल से ही वे समस्त सभा को, मेघनाद तथा रावण तक को हतप्रभ कर देते हैं। रावण के चार मुकुटों के रूप में रावण की राजनीति के चारों तत्व छीनकर वे प्रभु श्री राम जी के पास पहुंचा देते हैं।

इस प्रकार गोस्वामी तुलसी दास जी ने अपने भावुक भक्त हृदय की छाप अंगद के चरित्र पर छोड़ दी है। उन्होंने अंगद को महानवीर, तथा श्री रामजी की महती कृपा प्राप्त भाव प्रवण भक्त के रूप में चित्रित किया है।

आनन्द रामायण कार ने अंगद को श्री राम जी के अनन्य भक्त, महान साहसी तथा प्रबल पराक्रमी के रूप में चित्रित किया है। लंकापति रावण को हितोपदेश देने पर उसका भक्त रूप प्रकट हो जाता है। वह अपने प्रभु श्री राम को परम ब्रह्म जानता है। महान ज्ञानी भी उसके इष्ट श्री राम के श्री चरणों का आश्रय चाहते हैं। अंगद का यह वक्तव्य उसके भक्त हृदय की भावुक झांकी प्रस्तुत करता है।[1]

युवराज अंगद का हृदय अदम्य साहस से ओतप्रोत है। रावण जैसे दिग्विजयी योद्धा के समक्ष वह उसे अनेक कटूक्तियों द्वारा लज्जित करता है। रावण के दरबार में उसकी यह निर्भीकता उसके साहसी व्यक्तित्व का परिचय देती है। वह रावण को बलिपाश में विघूर्णित शिशुमारांगुष्ठ से आन्ध्र वैताल द्वारा पीड़ित एवं कार्तवीर्य का क्रीडामृग इत्यादि सम्बोधनों से सम्बोधित करके अपमानित करता है।[2]

---

1. रामं नारायणं विद्धि विशीर्ण रावण राघवे।
   यत्पाद योगमाश्रित्य ज्ञानिनो भवसागरम्।।
   तरिष्यन्ति महाबुद्धे हतो रामो न मानुषः।। — आ.रा. 1/10/223,224

2. बालान्धमयं योद्धं से बलिकारा विघूर्णित ।
   शिशुमारांगुष्ठ मारन्ध्र वैताल पीड़ित ।
   सहस्त्रार्जुनवीरास्य संक्रीडन मृग ।
   श्वेत द्वीपस्थ प्रमदा करताडित सम्मुख ।
   x x x
   पर्कोपरिसंलग्नपुच्छ दशिताम्बर ।। — आ.रा. 1/10 229 से 233 तक

अंगद के इस अप्रतिम साहस में प्रशंसनीय वीरता का भी सुन्दर योग है। राक्षस राज रावण की सभा में सहस्त्रों राक्षस हाथ में शस्त्र लेकर अंगद पर झपटते हैं किन्तु वे सब अंगद द्वारा मुष्टि प्रहार मात्र से धराशायी कर दिए जाते हैं। अधिक क्या, रावण के हाथ पैर भी अंगद की पूंछ द्वारा बांध लिए जाते हैं।[1]

लंका से श्री राम जी के पास वापस लौटते समय रावण का महल भी अंगद जी के सिर पर स्थित होकर साथ चला आता है। और उन्हें इस भार का अनुभव भी नहीं हो पाता।[2]

श्री रामाज्ञा से अंगद उस राज प्रासाद को पुनः लंका में पूर्ववत रख आते हैं।[3]

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने अंगद के चरित्र में भक्ति, बल तथा साहस का सुन्दर सम्मिश्रण प्रस्तुत किया है।

विभीषण:

विषमताओं से आवृत्त, अपनी धर्मनिष्ठा एवं सत्प्रवृत्ति को सुरक्षित रखते हुए अपने जीवन क्रम को विवेक के सम्बल से गति की शक्ति देता हुआ तथा आराध्य के प्रति अपनी समर्पण भावना, सद्ग्राहकता, निर्भीकता एवं उदारता को आत्मसात करने वाला चरित्र है। अतः प्रवर विभीषण का। इस महान चरित्र में हमें भक्ति प्रवणता, धार्मिक निष्ठा विवेकशीलता, सद्ग्राहकता, निडरता एवं उदारता आदि सद्गुणों के दर्शन होते हैं।

---

1. मर्दयामास मुष्टिना तान्सर्वान् सहसान्ततः ।
   रावणमस्तकेषु लांगूलेन स्वकराभ्यां मुहुर्मुहुः । आ.रा. 1/10
   तच्छस्त्रपाणी पुच्छेन पूर्वं बद्ध्वा समविस्तरम् ॥ 235 – 236
2. ततस्वो नैव खेदेन धृतो प्रासाद मस्तके : । आ.रा. 1/10/237
3. प्रासादं पूर्ववत्स्थाप्य लंकायां स ययौ पुनः । आ.रा. 1/10/243

विभीषण जी में प्रभु श्री राम की निर्मल भक्ति विराजमान है। हनुमान जी से प्रथम साक्षात्कार होने पर उनका भक्त्युद्रेक अनुमानीय है। भगवत्कृपा प्राप्ति के लिए उनकी व्यग्रता उन्हें सच्चे भक्त के रूप में प्रतिष्ठित करती है। वे श्री हनुमान जी से अपनी ज्ञान, कर्म तथा उपासना की हीनता वर्णित करके श्री राम का अनुग्रह प्राप्त करने की आकांक्षा व्यक्त करते हैं।[1]

श्री राम जी के पावन दर्शन पाकर वे अपने भाग्य की प्रशंसा करते हैं। शिव, ब्रह्मादि से सेवित प्रभु चरणारविन्दों का युगल दर्शन श्री विभीषण जी की महानतम उपलब्धि है। उनका हृदय हर्षातिरेक से अतीव विह्वल हो उठता है।[2]

लंका के अधार्मिक वातावरण में भी उनकी गहरी धार्मिक निष्ठा सर्वथा स्तुत्य है। वे अपने आवास के समीप ही हरि मंदिर का निर्माण करवाये हुए हैं। उनका भवन श्री राम जी के धनुष-बाण इत्यादि आयुधों के चिन्हों से अंकित है। भवन के आस-पास नवीन तुलसी के वृन्द भी सुशोभित हो रहे हैं। ये समस्त प्रतीक श्री विभीषण जी की अटूट धार्मिक निष्ठा के प्रमाण हैं।[3]

---

1. तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा।।
   तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं।।

   रा. च. मा. 5/6/ 2व 3

2. अहोभाग्य मम अमित अति,
   राम कृपा सुख पुंज।
   देखेउँ नयन बिरंचि सिव,
   सेव्य जुगल पद कंज।।

   रा. च. मा. 5/47

3. रामायुध अंकित गृह, सोभा बरनि न जाई।
   नव तुलसिका बृन्द तहँ, देखि हरष कपि राई।।

   रा. च. मा. 5/5

श्री विभीषण जी में गंभीर विवेकशक्ति विद्यमान है। रावण द्वारा हनुमान को मृत्युदण्ड देने के लिए प्रस्तुत होने पर वे अपनी तीव्र विवेक शक्ति का प्रयोग करके हनुमान की रक्षा कर लेते हैं। वे रावण को सन्मंत्रणा देते हुए कहते हैं कि नीति के अनुसार दूत अवध्य होता है। अतः आप हनुमान को मृत्युदण्ड न देकर किसी अन्य दण्ड का विधान करें।[1]

विभीषण जी में एक सच्चे वैष्णव के अनुरूप ही न्यायप्रियता के दर्शन होते हैं। अन्याय के पथ पर प्रवृत्त अपने भाई से भी वे अलग हो जाते हैं। श्री मैथिलीशरण जी गुप्त द्वारा रचित "जयद्रथ वध" की प्रस्तुत पंक्ति विभीषण जी के चरित्र में पूर्णतः चरितार्थ होती है।—

"न्यायार्थ अपने बंधु को भी दण्ड देना धर्म है।" — प्रथम तो वे रावण को विविध प्रकार से अनुनय विनय कर सन्मार्ग अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं किन्तु जब उन्हें इस हितोपदेश का प्रतिफल रावण द्वारा पद-प्रहार के रूप में प्राप्त होता है तब वे सत्य स्वरूप सर्वसमर्थ श्री राम जी का आश्रय प्राप्त करने के लिए प्रस्थित हो जाते हैं।

---

1. नाइ सीस करि बिनय बहूता ।
   नीति बिरोध न मारिअ दूता ॥
   आन दण्ड कछु करिअ गोसाईं ।
   सबहीं कहा मंत्र भल भाई ॥

   रा.च.मा. 5/23/7 व 8

2. राम सत्य संकल्प प्रभु, ।
   सभा कालबस तोरि ॥
   मैं रघुबीर सरन अब, ।
   जाउँ देहु जनि खोरि ॥

   रा.च.मा. 5/41

इस प्रकार मानसकार ने विभीषण को महान धर्मात्मा तथा श्री राम के अनन्य भक्त के रूप में सम्मानित किया है। तुलसी के पवित्रात्मा विभीषण में राजनीति का नीति के साथ सामंजस्य करने की अद्भुत शक्ति है।

आनन्द रामायण में विभीषण जी श्री राम के महान उपासक, कुशाग्र-बुद्धि युक्त तथा कुशल नीतिज्ञ के रूप में चित्रित हुए हैं। सारकाण्ड में श्री विभीषण जी का परिचय ग्रन्थकार ने परम भागवत श्रीमान तथा राम-भक्ति परायण कहकर दिया है।[1]

श्री राम की अलौकिक शक्ति का वर्णन वे रावण तथा कुम्भकर्ण के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। वे रावण से स्पष्ट कह देते हैं कि रावण सेना का कोई भी वीर युद्ध में श्री राम के समक्ष नहीं ठहर सकता है। अपने बन्धु रावण को सन्मंत्रणा प्रदान करतेहुए वे कहते हैं कि तुम ससम्मान सीता को राम के समीप पहुँचा दो। अन्यथा भगवान शंकर तथा सुरेन्द्र की शरण में जाने पर भी तुम्हारी रक्षा असंभव है। यह उपदेश जहाँ एक ओर विभीषण की श्री राम में निर्मल भक्ति का दिग्दर्शन कराता है, वहीं दूसरी ओर उनके निर्भीक तथा साहसी व्यक्तित्व का भी सूचक है।[2]

विभीषण जी को श्री राम जी की बड़ी महती कृपा प्राप्त है। श्री राम जी ने विभीषण को अपना मित्र बनाकर अपनाया है तथा समुद्रतट से तुरन्त ही लंका के सम्राट के रूप में उनका अभिषेक करवा दिया है।[3]

---

1. महाभागवतः श्रीमान् रामभक्त्येकतत्परः ।आ० रा० 1/10/33
2. न कुम्भकर्णेन्द्रजितौ च राजंस्तथा महापार्श्व महोदरौ तौ।
   × × × × ×
   नोवेन्न रामेण विमोक्ष्यसे त्वं गुप्तः सुरेन्द्रैरपि शंकरेण ।।
   आ० रा० 1/10/35 व 36
3. कारयित्वा रघुश्रेष्ठस्तस्य मित्रं विभीषणम् ।
   लंकायामेव राज्यार्थं वानरैरभ्यषेचयत् ।।
   आ० रा० 1/10/42

श्री राम जी ने अनेक स्थलों पर विभीषण जी से मंत्रणा लेकर उनके बुद्धि-बल को भी महत्व प्रदान किया है।[1]

युद्ध-काल में श्री विभीषण जी द्वारा असुर सेना के योद्धाओं के संदर्भ में अनेक गोपनीय रहस्यों का उद्घाटन किया जाता है। श्री राम के विजयी होने में इन गुप्त भेदों के उद्घाटन की भूमिका अत्यधिक महत्व-पूर्ण है। मेघनाद द्वारा निकुम्भिला देवी के मठ पर तामसी यज्ञ के अनुष्ठान की सूचना तथा उस यज्ञ के विध्वंस की सलाह विभीषण जी द्वारा ही दी जाती है।[2]

रघुनाथ हेतु रावण द्वारा आयोजित असुर-यज्ञ के विध्वंस का संकेत भी विभीषण जी के द्वारा ही दिया जाता है।[3]

श्री राम द्वारा अनेक बार शिरोच्छेदन करने पर भी रावण मृत्यु को प्राप्त नहीं होता है। इस अवसर पर रावण के नाभिप्रदेश में स्थित अमृत का रहस्योद्घाटन भी श्री विभीषण जी के ही द्वारा किया जाता है। तब पावकास्त्र से उस अमृत का शोषण कर श्री राम जी रावण को जीतने में सफल होते हैं।[4]

राज्यकाण्ड के चतुर्थ सर्ग में कुम्भकर्ण के पुत्र मूलकासुर तथा श्री राम के बीच युद्ध-प्रसंग में मूलकासुर द्वारा विजय हेतु गिरि कन्दरा में आयोजित आभिचारिणी हवन क्रिया को विध्वंस करने की मंत्रणा भी श्री विभीषण जी के द्वारा ही प्रदान की जाती है।

---

1. रामः संमंत्रयामास तदै वशी विभुः स्वयम्। आ.रा. 1/10/50
2. आ.रा. 1/11/173 से 175 तक
3. आ.रा. 1/11/233 व 234
4. आ.रा. 1/11/278 व 279
5. आ.रा. 7/4/129 से 132 तक

मेघनाद :

मानसकार ने अनात्मक पक्ष के महान साहसी एवं पुरुषार्थी रावण-सुत मेघनाद के चरित्र में गर्व की प्रबलता, मायावी कृत्यों की प्रचुरता एवं अनैतिक राक्षसी प्रवृत्तियों के प्रति अंधास्था तथा इन्हीं कुप्रवृत्तियों के पोषण को समर्पित वीरता एवं कुटुम्ब वत्सलता का अत्यन्त विशद एवं कार्यसंगत चित्रण किया है। उसके चरित्र की उक्त संदर्भित विवेचना निम्नवत देखी जा सकती है-

मेघनाद में बल के प्रति अत्यधिक अभिमान है। अपने पिता रावण को धैर्य प्रदान करता हुआ वह अपने बल का स्वयं वर्णन करने लगता है।[1]

कुंभकर्ण का वध होने पर भी वह इसी प्रकार अपने बल का वर्णन करके शोक संतप्त पिता रावण को शांति प्रदान करता है।[2]

मेघनाद में मायावी शक्ति की अतिशयता भी मानसकार ने चित्रित की है। युद्ध क्षेत्र में उसके मायावी युद्ध से समस्त वानर भालु अत्यधिक भयभीत हो जाते हैं। कभी वह आकाश से अंगारों की वर्षा करने लगता है तो कभी पृथ्वी से अनेक जल धाराएँ प्रकट कर देता है। कभी वह रक्त, बाल, हड्डी तथा पत्थरों की वर्षा करता है तो कभी धूल की वर्षा करके घनघोर अंधकार उत्पन्न कर देता है।[3]

---

1. कौतुक प्रात देखिअहु मोरा । रा.च.मा. 6/48/6
   करिहउँ बहुत कहौं का थोरा ।।
2. देखेहु कालि मोरि मनुसाई ।
   अबहिं बहुत का करौं बड़ाई ।। रा.च.मा. 6/71/ 7 व 8
   इष्टदेव सैं बल रथ पायउँ ।
   सो बल तात न तोहि देखायउँ ।।
3. नभ चढ़ि बरष बिपुल अंगारा ।
   महि ते प्रगट होहिं जलधारा ।।
   × × ×
   बरिष धूरि कीन्हेसि अँधिआरा । रा.च.मा. 6/51/1 से 4 तक
   सूझ न आपन हाथ पसारा ।।

युद्ध क्षेत्र में वह मायामय रथ पर आरूढ़ होकर आकाश में पहुंचकर अट्टहास करता है जिससे समस्त वानर सेना में भय व्याप्त हो जाता है।[1]

मेघनाद में अनैतिक राक्षसी प्रवृत्तियों के पूर्ण अंशरूपता है। कुंभकर्ण तथा विभीषण इत्यादि ने तो रावण का विरोध भी प्रदर्शित किया है। तथा उसके अनीतिपूर्ण कार्य की निन्दा की है किन्तु मेघनाद ने कहीं भी रावण का विरोध नहीं किया है। वह रावण का अंधानुसारी तथा अनन्य सहायक है। मेघनाद ने अपनी अपरिमित शक्ति का प्रयोग इन्हीं प्रवृत्तियों के पोषण में किया है। उसकी मोहग्रस्त कुटुम्ब वत्सलता उसे सदैव अन्याय का ही पक्षधर बनाये रही है। किन्तु उसकी वीरता में कोई कमी नहीं है। वह युद्ध-प्रांगण में हनुमान्, अंगद, नल-नील, सुग्रीव विभीषण तथा लक्ष्मण इत्यादि को भी बाण वर्षा करके अर्धाहतकाय कर देता है। यहाँ तक कि श्री राम को भी वह नाग पाश में आबद्ध कर देता है।[2]

मानस में केवल मेघनाद ही एक ऐसा पात्र है जिसने आजीवन रावण की हठवादिता में सहयोग दिया है। रावण को तुलसी ने यत्र-तत्र भक्ति के रंग में भी रंग दिया है किन्तु मेघनाद के राक्षस-रक्त की उन्होंने आद्योपान्त रक्षा की है। मरते समय उसने राम और लक्ष्मण को पुकारा है, परन्तु यह भक्त का आर्तक्रन्दन नहीं, वरन् योद्धा की तीव्र ललकार है।[3]

---

1. "मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गयउ अकास।" रा.च.मा. 6/72

2. "मारुत सुत अंगद नल नीला।
   कीन्हेसि बिकल सकल बलसीला॥
   ×　　×　　×
   व्याल पास बस भये खरारी।
   स्वबस अनंत एक अबिकारी॥
   रा.च.मा. 6/72/8 से 11 तक

3. "रामानुज कहँ राम कहँ अस कहि छाँड़ेसि प्राना।"
   रा.च.मा. 6/76

आनन्द रामायणकार ने भी मेघनाद को महानवीर, रावण का अनन्य सहायक तथा अद्वितीय मायावी शक्ति से युक्त चित्रित किया है। यह अशोक वाटिका में महावीर श्री हनुमान जी को भी ब्रह्मपाश में आबद्ध कर रावण के पास ले आता है।[1]

रणांगण में वह सर्पास्त्र के प्रयोग द्वारा समस्त सेना तथा लक्ष्मण सहित श्री राम को व्याकुल कर देता है।[2]

मेघनाद की मायावी शक्ति का चित्रण भी आनन्द रामायण में प्रचुर मात्रा में हुआ है। युद्ध में वह अलक्षित होकर आकाश से ब्रह्मास्त्र द्वारा बाणों की वर्षा करने लगता है। इस मायावी युद्ध से एक क्षण के लिए श्री राम भी स्तब्ध रह जाते हैं।[3]

वह विजय प्राप्ति की कामना से निकुंभिला देवी के मठ में मायावी यज्ञ का भी अनुष्ठान करता है। यह यज्ञ मेघनाद की अनैतिक आसुरी प्रवृत्तियों के प्रति अंधास्था को प्रकट करता है।[3,4]

मेघनाद के मायावी युद्ध से हनुमान तथा विभीषण जैसे धैर्यशाली व्यक्ति तक भी आनन्द रामायणकार ने विलाप करते हुए चित्रित किए हैं।[5]

---

1. ब्रह्मास्त्रेणाथ बद्ध्वा समानयामास रावणम्। "आ० रा० 1/9/162
2. "सर्पास्त्राद्व्याकुलं रामं चकार सह वानरैः।" आ० रा० 1/11/8
3. सर्पास्त्र मुक्तो व्योम्नि ब्रह्मास्त्रेण समंततः ।

   ×   ×   ×

   क्षणं तूष्णीमुवासाथ रामः स बन्धु वानरैः ।

   आ० रा० 1/11/10 व 11
4. इत्युक्त्वा त्वरितं गत्वा मेघनादो निकुंभिलाम्।

   ×   ×   ×

   इत्थं चकार होमं स निमील्य नयने रहः ।।

   आ० रा० 1/11/165 से 173 तक
5. विलपन्तौ स्वतान्निकटे च वायुसुतादयौ।

   आ० रा० 1/11/13

मेघनाद ने यह अतुलित शक्ति घोर तपश्चर्या करके प्राप्त की है। बारह वर्ष पर्यंत नारि निद्रा तथा आहार का परित्याग करने वाला योद्धा ही मेघनाद का वध कर सकता है।[1]

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने मेघनाद को रावण का अनन्य सहायक तथा आज्ञानुकरणकर्ता के रूप में चित्रित किया है। उसने आगे न अनुचित-उचित का विचार किये बिना ही रावण को सहयोग प्रदान किया है। उसी अतुल्य पितृभक्ति के कारण ही रावण उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर सभा में मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ता है।[2]

प्रधान स्त्री पात्र :

सीता:

भक्ति भाव सम्पन्न महाकाव्य की नायिका के रूप में जिन गुणों की अवतारणा अपेक्षित होती हैं, भक्त हृदय तुलसी ने सीता के लोक कल्याणद अलौकिक चरित्र में उन सभी विशेषताओं का समावेश किया है। एक ओर अलौकिक सुन्दरता तो दूसरी ओर महानतम साधना एवं कठिनाइयों को सहने की अपरिमित शक्ति एक साथ उनके व्यक्तित्व में समाहित होकर उसे कविमनदर्शी बना देते हैं। कवि ने उनके अलौकिक व्यक्तित्व को अपने काव्य-ग्रन्थ में इस प्रकार निरूपित किया है कि पाठक की श्रद्धा को वह स्वयमेव अभिमंत्रित करने की सहज शक्ति से सम्पन्न हो गया है।

तुलसी ने सीता को अद्वितीय सौन्दर्य सम्पन्न तथा कुसुम-कोमल स्वरूप में प्रस्तुत किया है। तुलसी ने सीता की सुन्दरता के चित्रण में सरस्वती, पार्वती तथा रति आदि उपमानों को भी हेय ठहराया है।

---

1. यस्तु द्वादश वर्षाणि निद्रा हार विवर्जितः ।
तेनैव मृत्युर्निर्दिष्टो ब्रह्मणा स्य दुरात्मनः ।।
आ०रा० 1/11/176

2. पपात भुवि दुःखेन सभायां मूर्छितो भवि ।।
आ०रा० 1/11/201

उनके अनुसार परम रूप मय कच्छप पर आधारित छवि-सुधा-सागर का मन्थन शोभा रूपी रज्जु से युक्त शृंगार रूप मंदराचल के द्वारा स्वयं कामदेव करे। इस प्रकार उपलब्ध स्वरूप प्राप्त सौन्दर्य-लक्ष्मी को भी सीता की समता में लाने पर संकोच का अनुभव होता है।

सीता की सुकुमारता का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है-[1]

पर्यंक पृष्ठ, गोद तथा हिंडोले पर रहने वाली सीता अपने प्राणेश्वर श्री राम के साथ कुश-कंटकाकीर्ण वन- पथ पर बिना पदत्राण के विचरण करती हैं। वन के समस्त कष्ट उन्हें अपने पति देव के साथ रहने से नगण्य अनुभव होते हैं। तुलसी ने सीता के चरित्र में पात पतिपरायणता की पराकाष्ठा चित्रित की है। पति वियोग में उन्हें समस्त सांसारिक सम्बन्ध सूर्य से अधिक संतापदायक अनुभव होते हैं, समस्त सुख व ऐश्वर्य शोक- समाज के रूप में दिखाई देता है, भोग रोग सम तथा आभूषण भारवत्-प्रतीत होते हैं। प्राणवल्लभ श्री राम के बिना उन्हें जगत में कहीं कुछ भी सुखदायी प्रतीत नहीं होता है।[2]

मानसकार ने सीता में असीम साधना शक्ति का चित्रण किया है। राक्षसराज रावण की अशोक वाटिका में भयंकर रूपधारिणी अनेक राक्षसियों द्वारा त्रासित किये जाने पर भी वे श्री राम भक्ति में रत रहती हैं।[3]

---

1. पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा ।
   सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा ॥ — रा.च.मा. 1/58/5

2. जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते ।
   पिय बिनु तियहि तरनि हु ते ताते ॥ — रा.च.मा. 1/64/ 3 से 6 तक
   x x x
   प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं।
   मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥

3. कृस तनु सीस जटा एक बेनी। ॥
   रा.च.मा. 5/7/8

सीता के चरित्र की एक महत्वपूर्ण विशेषता है- उनका धैर्य तथा साहस। भयावह समय में भी वे धैर्य को नहीं छोड़ती हैं। रावण द्वारा अपहृत होने पर भी वे धैर्य धारण कर श्री राम-स्मरण करती रहती हैं। उन्हें विश्वास है कि श्री राम- बाण से समस्त निशिचरों का वध सुनिश्चित है। रावण को श्री राम बाण के प्रताप का स्मरण कराना उनके महान धैर्य तथा साहस का परिचायक है।[1]

रावण द्वारा पंचवटी में साधुवेष रखकर उनका अपहरण किया जाता है। रावण को वास्तविक रूप में देखकर तथा उसके कुख्यात नाम को सुनकर भी वे धैर्य धारण किये रहती हैं तथा महान साहस से सम्पन्न भारतीय ललना का प्रतिनिधित्व करती हुई राक्षसराज को तीखी फटकार देती हैं।[2]

अशोक वाटिका में रावण द्वारा प्रणय-निवेदन करने पर उसे शठ तथा निर्लज्ज कहकर अपमानित करना सीता के महानतम साहस सम्पन्न व्यक्तित्व का प्रमाण है।[3]

मानस कार ने सीता के चरित्र में - सेवा भावना तथा श्रम के प्रति निष्ठा का भी सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है। चित्रकूट आश्रम में तुलसी के अनेक सुन्दर वृक्षों को लगाकर उनकी सेवा करती हैं तथा वट वृक्ष के नीचे सुन्दर वेदिका का निर्माण करती हैं।[4]

अवध जैसे वैभवशाली राज्य की राजरानी होने पर भी वे अपने

---

1. अस मन समुझि कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बानकी।।
   रा.च.मा. 5/8/8
2. कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा। आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा।।
   जिमि हरि बधुहि छुद्र सस चाहा। भएसि कालबस निसिचर नाहा।।
   रा.च.मा.3/28/14 व 15
3. सठ सूने हरि आनेहि मोहि ।
   अधम निलज्ज लाज नहिं तोही ।। रा.च.मा. 5/8/9
4. तुलसी तरुवर विविध सुहाये।कहुँ कहुँ सिय कहुँ लखन लगाये ।।
   बट छाया बेदिका बनाई । सिय निज पानि सरोज सुहाई ।।
   रा.च.मा.2/236/7 व 8

हाथों से ही गृह परिचर्या करती हैं, यद्यपि उनके पास सेवा विधि में कुशल अनेक दास तथा दासियाँ हैं।[1]

मानसकार ने सीता के चरित्र में अनेक अलौकिक तत्वों का चित्रण करके अपनी श्रद्धा समर्पित की है। सीता को अष्ट सिद्धियों पर अधिकार है जिसका उपयोग वे अपने श्वसुर के साथ आये बरातियों के सत्कार के लिए करती हैं।[2]

वे अनेक वेष धारण करके चित्रकूट में आयी हुई सासों की सेवा करती हैं।[3]

सीता जगदीश्वर परब्रह्म राम की आद्या शक्ति हैं जो कृपाधाम के संकेत मात्र से जगत का सृजन, पालन एवं विनाश करती हैं।[4]

गोस्वामी जी ने अपने इस महाकाव्य के मंगलाचरण में भी सीता को उक्त तीनों शक्तियों से युक्त कहकर अपनी अटूट श्रद्धा समर्पित की है।[5]

आनन्द रामायणकार ने सीता को जहाँ एक ओर पतिपरायणा, वीरांगना, अद्वितीय साहस सम्पन्ना तथा महान धैर्यधारिणी के रूप में प्रस्तुत किया है वहीं उनमें कतिपय मानुषी दुर्बलताओं का भी समावेश कर दिया है।

---

1. जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी ।
   बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी ॥ रा.च.मा. 7/23/5-6
   निज कर गृह परिचरजा करई ।
   रामचंद्र आयसु अनुसरई ॥
2. सुमिरि हृदय सब सिद्धि बोलाईं ।
   भूप पहुनई करन पठाईं ॥ रा.च.मा. 1/305/8
3. सीय सासु प्रति बेष बनाई ।
   सादर करइ सरिस सेवकाई ॥ रा.च.मा. 2/251/2
4. श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीस माया जानकी।
   जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपा निधान की॥
   रा.च.मा. 2/125/छंद
5. उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
   सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥

आनन्द रामायणकार ने सीता को वीरांगना के रूप में युद्ध क्षेत्र में भी प्रस्तुत किया है। कुंभकर्ण के पुत्र मूलकासुर का संहार सीता के द्वारा ही किया जाता है। मूलकासुर राम-रावण युद्ध के समय लंका में अनुपस्थित होने के कारण जीवित रह गया था। श्री विभीषण जी के सिंहासनासीन होने पर उसने उन्हें अनेक तरह से प्रताड़ित किया। विभीषण जी ने अयोध्या आकर प्रस्तुत वृत्तान्त निवेदित किया तथा श्री सीता जी ने स्वयं जाकर मूलकासुर का वध किया। प्रस्तुत स्थल पर सीता का चण्डी रूप उनके वीरत्व की सुन्दर अभिव्यक्ति करता है।[1]

आनन्द रामायण में कतिपय स्थलों पर सीता के अलौकिक शक्ति सम्पन्न स्वरूप के भी दर्शन होते हैं। वाल्मीकि आश्रम से वापस लौटने पर सीता द्वारा अपने पातिव्रत धर्म की पवित्रता का प्रमाण प्रस्तुत किया जाता है। प्रस्तुत स्थल में उनके द्वारा भूमि से एक सुन्दर सिंहासन मांगा जाता है। भूमि स्वयं दिव्य रूप रखकर सीता को उस देदीप्यमान सिंहासन में आसीन कराकर अपने में समाहित करने के लिए प्रस्तुत होती है।[2]

सीता टूटे हुए तुलसीदल को अपनी अलौकिक शक्ति से पुनः तुलसी वृक्ष में उसी स्थान पर यथावत जोड़ देती हैं।[3]

---

1. मूलकासुर तां सीतां चंडीं मां विद्धि चंडिकाम् ।
 × × × आ॰ रा॰
 तस्यानुर्यं गमिष्यामि त्वां हत्वा च रणाजिरे ।। 7/6/6 से 8

2. एवं ब्रुवंत्याः सीतायाः प्रादुरासीन्महाद्भुतम् । आ॰ रा॰
 भूतलाद्दिव्य मत्यर्थं सिंहासन मनुत्तमम् ।। 5/8/49

3. एवं वदति जानक्यां यावत्ते पत्रं [illegible]
 प्राप्तं तीर्थं पूर्ववच्च तत्रस्तु [illegible] ।।

 आ॰ रा॰ 7/22/78 से 79

वनवास काल में सीता श्री रामाज्ञा से रजोरूप से अग्नि में, सत्वरूप से श्री राम के वामांग में तथा तमोमयी होकर पंचवटी में निवास करती हैं।[1]

आनन्द रामायणकार ने कई स्थानों पर सीता को सामान्य स्त्रीजनोचित दुर्बलताओं से युक्त चित्रित किया है। स्वर्ण मृग-वध धारी मारीचि के वध प्रसंग में वे सर्वथा निर्दोष सुमित्रा तनय लक्ष्मण को अनेक कटु वाक्यों द्वारा ताड़ित करती हैं। लक्ष्मण को षड्यंत्रकारी कहकर वे उसे अपने भोग का अभिलाषी सिद्ध करती हैं।[2]

पिंगला वेश्या द्वारा श्री राम की सेवा को देखकर वे अपने प्राणेश्वर पर भी वेश्यासक्त होने का दोषारोपण कर देती हैं। वे श्री राम के लिए अमर्यादित शब्दावली का भी प्रयोग कर देती हैं। श्री राम को वेश्यासक्त राजा के रूप में देखकर उनके हृदय में द्वेष उत्पन्न हो जाता है तथा वे आत्म हत्या करने तक को उद्यत् हो जाती हैं।[3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि आनन्द रामायण की अपेक्षा मानस में सीता का चरित्र अधिक उत्कृष्टता को प्राप्त हुआ है। मानस की सीता भारतीय परिवार या गृहस्थ जीवन का उच्चतम आदर्श प्रस्तुत करती हैं। मानस की सीता में जन मन को आकृष्ट करने की शक्ति आनन्दरामायण की सीता से अधिक है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि सीता विश्व साहित्य की सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य नायिका हैं। जन-मानस की श्रद्धा का उच्चतम आलंबन मानस की सीता में प्राप्त होता है।

---

1. सीते त्वं त्रिविधा भूत्वा रजोरूपा वसाग्नौ। आ॰रा॰ 1/7/
   वामांगे मे सत्वरूपा बल छाया तमोमयी ॥ 67½ से 68

2. भरत स्योपदेशेन भूमिं रामस्य वांछसि । आ॰रा॰
   अथवा मेऽभिलाषोऽस्ति तर्हि प्राणांस्त्यजाम्यहम्॥ 1/7/95

3. वेश्यायाः पृष्ठ संलग्नां सत्यांनाथ त्यजाम्यहम् ।
   × × ×
   भूतायाँ भपि कदाचिद् वेश्यासक्तस्य ते मोक्ष् ॥
   आ॰रा॰ 4/8/ 65 व 66

<u>कौशल्या:</u>

मानसकार ने कौशल्या को आदर्श माता के रूप में चित्रित किया है। उनके उदात्त चरित्र में हमें विचारशीलता, वात्सल्य भावना, सहिष्णुता तथा धर्मपरायणता आदि गुणों का सुन्दर समन्वय परिलक्षित होता है।

अपने प्राण प्रिय पुत्र राम के द्वारा वन गमन का समाचार सुनकर अम्बा कौशल्या का कारुण्य अत्यधिक हृदयद्रावक है, किन्तु उनके विवेक और सहनशीलता के सहयोग से वह कारुण्य मन को विक्षुब्ध न करके सहनशक्ति तथा कर्तव्य निष्ठा प्रदान करता है। वे अत्यधिक धैर्य के साथ राम के पिताज्ञापालन कार्य की प्रशंसा करती हैं।[1]

चित्रकूट में महाराज जनक की भार्या श्री सुनयना जी से हुए विचार-विनिमय में श्री कौशल्या जी के दृढ़ विवेक का सुन्दर परिचय प्राप्त होता है। प्रस्तुत स्थल पर वे कर्मफल विधान की महत्ता तथा संसार की स्वार्थपरता को स्पष्ट करते हुए भगवदेच्छा को सर्वोपरि सिद्ध करती हैं।[2]

अम्बा कौशल्या में वात्सल्य भावना भी अपनी पराकाष्ठा पर स्थित है। राम वन गमन के समाचार से अनभिज्ञ अम्बा कौशल्या जी राम को देखते ही पुत्र-स्नेह-सागर में निमग्न हो जाती हैं। वे राम

---

1. सरल सुभाउ राम महतारी ।
   बोली बचन धीर धरि भारी ।। रा.च.मा. 2/54/7 व 8
   तात जाउँ बलि कीन्हेउ नीका ।
   पितु आयसु सब धरमक टीका ।।

2. कौशल्या कह दोष न काहू ।
   करम विवश दुख सुख छति लाहू ।।

   ×   ×   ×

   भूपति जिअब मरब उर आनी ।
   सोचिय सखि लखि निज हित हानी ।।

   रा.च.मा. 2/281/ 3 से 7 तक

राज्याभिषेक के लिए अत्यधिक आतुर हैं। वे श्रीराम को यथाभिलषित सिंहासन जाने के लिए कहती हैं। वे श्री राम के राज्याभिषेक की शुभ लग्न को अपने पुण्य, शील और सुख की सीमा तथा जीवन के लाभ की पूर्णतम अवधि मानती हैं।[1]

पुत्रवधू सीता को तो वे नयन की पुतली की भाँति रखती हैं। अधिक क्या ; उन्होंने कभी भी सीता को दीपक की बत्ती हटाने जैसे छोटे-छोटे कार्यों के लिए भी अपने मुख से नहीं कहा है। वात्सल्य की यह असीम भावना अन्यत्र अप्राप्य है।[2]

मानस की कौशल्या में सहनशीलता भी अद्वितीय है। सपत्नी तथा सपत्नी-पुत्र के प्रति भी उनकी सौम्यता प्रशंसनीय है। वन गमन हेतु प्रस्तुत श्री राम से वे स्पष्ट कह देती हैं कि यदि पिता श्री दशरथ व माता कैकेयी दोनों ने वन जाने की आज्ञा दी है तो वन तुम्हारे लिए सैकड़ों अयोध्या के समान है।[3]

भरत के प्रति उनका स्नेह अभिनंदनीय है। ननिहाल से लौटे हुए भरत को देखते ही कृशकाय कौशल्या उठकर दौड़ पड़ती हैं। वे ऐसे सुख का अनुभव, भरत को हृदय लगाने में करती है, जैसे राम ही वन से लौटकर आ गये हों।[4]

---

1. कहहु तात जननी बलिहारी।
   कबहिं लगन मुद मंगलकारी ।। रा.च.मा. 2/51/7 व 8
   सुकृत सील सुख सीवँ सुहाई ।
   जनम लाभ कइ अवधि अघाई।।
2. मैं पुनि पुत्र बधू प्रिय पाई ।
   रूप रासि गुन सील सुहाई ।। रा.च.मा. 2/58/1 से 6तक
   x x x
   जिअन मूरि जिमि जोगवत रहऊँ।
   दीप बाति नहिं टारन कहऊँ ।।
3. जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। रा.च.मा. 2/55/2
   तौ कानन सत अवध समाना ।।
4. सरल सुभाय मायँ हियँ लाए ।
   अति हित मनहुँ राम फिरि आए।। रा.च.मा. 2/164/1

मानस में कौशल्या जी की पति परायणता का चित्रण भी अनुकरणीय है। चक्रवर्ती सम्राट दशरथ की वे सर्वाधिक सम्मान प्राप्त भार्या हैं। वे भी दशरथ जी को उनके अंतिम क्षणों में अपनी शीतल तथा मधुर वाणी से सान्त्वना प्रदान करती हैं। महाराज दशरथ पर उनकी यह वाणी तड़पती हुई मछली पर शीतल जल सा प्रभावकारी सिद्ध होती है।[1]

आनन्दरामायणकार ने कौशल्या को दिव्य आत्मज्ञान से युक्त चित्रित किया है। उन्हें सदैव महात्म्य स्मरण रहता है कि यह परब्रह्म ही बालक के रूप में मेरे यहाँ अवतरित हुआ है। कतिपय स्थलों पर वे प्रभु की माधुर्य लीला से विमोहित भी चित्रित हुई हैं। उनमें वात्सल्य भावना की प्रचुरता भी अपनी पराकाष्ठा पर प्रतिष्ठित है।

ग्रन्थकार ने कौशल्या का परिचय ~~देते हुए~~ कोसलनरेश की परम रूपवती कन्या के रूप में प्रस्तुत किया है।[2]

आनन्द रामायणकार ने कौशल्या के गांधर्व विवाह का चित्रण किया है। रावण द्वारा अपहृता कौशल्या धरोहर रूप में क्षार समुद्र वासी तिमिंगिल मत्स्य को दे दी जाती है। इधर रावण के आक्रमण से व्याकुल होकर महाराज दशरथ अपने मंत्री सुमंत्र सहित जल मार्ग से उसी द्वीप पर पहुँचते हैं जहाँ महाराज दशरथ तथा कौशल्या दोनों अपनी अपनी आत्म-कथा कहकर प्रसन्नता पूर्वक गांधर्व विवाह कर लेते हैं।[3]

---

1. नाथ समुझि मन करिय बिचारू।
   राम बियोग पयोधि अपारू ।।
   x x x
   जौं जिय धरिय बिनय पिय मोरी। रा.च.मा. 2/153/5
   रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी ।। से 8 तक

2. कोसलायां महापुण्यः कोसलाख्यो नृपो महान् । आ.रा. 1/1/
   तस्यासीद्दुहिता रम्या कौसल्या पति कामुका।। 32-33

3. तथा मुहूर्ते समये द्वीपे दशरथो नृपः । आ.रा. 1/1/52-53
   गान्धर्वविधिं विवाहं च चकार मुदिताननः।।

स्वयं परात्पर विष्णु कौशल्या के समक्ष सूतिगृह में प्रगट होते होते हैं किन्तु कौशल्या तो उस विराट को बालक रूप में ही देखना चाहती हैं। अतः वे पीताम्बरालंकृत चतुर्भुज रूपधारी विष्णु से बालभाव स्वीकार करने हेतु प्रार्थना करती हैं तथा उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर वह परात्पर प्रभु तेजस्वी बालक के रूप में परिवर्तित होजाता है।[1]

अम्बा कौशल्या का हृदय वात्सल्य का अगाध सागर है। कुलगुरु वशिष्ठ जी के द्वारा राम के राज्याभिषेक की सूचना सुनकर भी वे विघ्न-शांति हेतु मुनियों तथा ब्राह्मणों को साथ लेकर पूजाद्रव्यों तथा शांति-पाठों से देवी का पूजन करती हैं।[2]

पुत्र रूप में श्रीराम को प्राप्त कर के भी वे प्रभु के ऐश्वर्य को नहीं भूलती हैं। श्रीराम के प्रति अनेक स्थलों पर उन्होंने अपनी दृढ़-भक्ति समर्पित की है। वे श्री राम को परात्पर विष्णु जानकर उन्हें नमस्कार करती हैं तथा उनसे शुद्ध ज्ञान प्राप्ति हेतु उपदेश प्रदान करने के लिए प्रार्थना करती हैं।[3]

आनन्द रामायण की कौशल्या भी मानस की कौशल्या की भाँति दिव्य आत्मज्ञान से युक्त हैं। वे "अहं" संज्ञा को देह से सम्बन्धित मानती हैं, आत्मा से नहीं। अतः उनकी देह बुद्धि नष्ट हो चुकी है। वे काया को भोगों की आकांक्षिणी मानती हैं। ममता संनिहित सुख-दुख शरीर से ही संबंधित हैं, आत्मा से नहीं। इस प्रकार उनका आध्यात्मिक ज्ञान उच्च-

---

1. चतुर्भुजः पीतवासा मेघश्यामो महाद्युतिः । आ.रा. 1/2/4-5
   × × ×
   ततो जातस्तदा बालः ध्यानादुन्मयविमुक्तिकः ।।

2. श्रुत्वा पि कृत्वा श्री गुरोरात्यात्स्नेहसन्विती । आ.रा. 1/6/37 से 38 तक
   × × ×
   वसिष्ठानैः शांतिपाठैर्मुनिवृन्द समन्विती ।।

3. प्रणम्य नत्वा श्रीरामं ज्ञात्वा विष्णुं परात्परम् ।
   राम राम महाबाहो किंचिदुपदिशस्व माम् ।।

   आ.रा. 8/2/125

कोटि पर प्रतिष्ठित हुआ है।[1]

इस प्रकार दोनों ही ग्रन्थों में कौशल्या का चित्रण एक आदर्श माता के रूप में ही चित्रित हुआ है। पारिवारिक द्वेष और कलह की प्रशान्ति के लिए प्रयत्नशील अम्बा कौशल्या अधिक गंभीर, संयत और गौरवान्वित कुलश्रेष्ठा है। उनके दिव्य आत्म ज्ञान की झलक दोनों ही काव्यों में दर्शित हुयी है जो परात्पर विष्णु स्वरूप श्री राम की जननी के अनुरूप है।

कैकेयी:

मानस में कैकेयी के चरित्र में नारी प्रकृति का एक कुरूप पक्ष उपस्थित कियागया है, किन्तु तुलसी ने अपनी आदर्श भावना के कारण उसके प्रति उदारता भी प्रदर्शित की है। नाटककार ने कैकेयी को पुत्र-प्रेम, बुद्धि की अस्थिरता, लोलुपता तथा आत्मग्लानि इत्यादि लक्षणों से युक्त चित्रित किया है।

कैकेयी के समस्त कुकर्मों के मूल में उसका पुत्र भरत के प्रति असीम स्नेह ही है। अपने पुत्र को अयोध्या का चक्रवर्ती सम्राट बनाने के लिए ही उसने राम वन गमन हेतु महान षड्यन्त्र का विधान किया है। अपने इस कृत्य में सफल होकर जब वह कैकय प्रदेश से भरत के आगमन का समाचार प्राप्त करती है तब आरती सजाकर स सानन्द अपने प्रिय पुत्र को भेंटकर भवन में ले आती है।[2]

वह अपने षड्यंत्र की सफलता भरत के समक्ष प्रस्तुत करती है। ~~उसका~~ उसके इस वक्तव्य से प्रकट हो जाता है कि उसने यह कार्य भरत के प्रति अपार स्नेह के कारण ही किया है।[3]

---

1. अहं गच्छामि देहधारी भवता भवता न हि।
   × × × × अ० रा० 2/2/140 से 141
   सुखं दुःखं तु देहस्य न मे किंचिदुपस्थितम् ॥
2. सजि आरती मुदित उठि धाई। रा० च० मा० 2/158/3
   द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आई ॥
3. तात बात मैं सकल सँवारी। रा० च० मा० 2/159/1
   भै मंथरा सहाय बिचारी ॥

मानस की कैकेयी अस्थिर मति से युक्त है। पहिले तो उसके हृदय में राम के प्रति अगाध प्रेम है। वह मंथरा से अपने राम प्रेम को प्रकट करती हुए राम को प्राणों से भी अधिक प्रिय कहती है।[1]

किन्तु क्षण मात्र में ही उसकी बुद्धि परिवर्तित हो जाती है। दासी मंथरा के बहकावे में आकर उसके हृदय में कौशल्या के प्रति सौतिया डाह उत्पन्न हो जाता है। वह राम के राज्याभिषेक को दुःसह दुख अनुभव करने लगती है।[2]

जिस मंथरा को वह "घरफोरी" कहकर सम्बोधित कर रही थी, अब उसी की मंत्रणा पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को प्रस्तुत है।[3]

कैकेयी में राजमाता पद प्राप्त करने के लिए अत्यधिक लोलुपता है। यद्यपि उसे महाराज दशरथ का सर्वाधिक स्नेह प्राप्त है तथापि वह राज-माता नहीं बन सकती। इसी पद पर प्रतिष्ठित होने की लोलुपता के कारण ही वह मंथरा की कुमंत्रणा पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करती है।[4]

चित्रकूट में कैकेयी की आत्मग्लानि पाठक के अन्दर उसके प्रति सहानुभूति उत्पन्न करती है। यह आत्मग्लानि उसके समस्त कुकृत्य पर यवनिका डाल देती है तथा उसके समस्त अपराध क्षम्य अनुभव होने लगते हैं।[5]

---

1. प्रान ते अधिक रामु प्रिय मोरे। — रा.च.मा. 2/14/8
2. केहि अघ एकहिं बार मोहि, ।
देव दुसह दुख दीन्ह ।। — रा.च.मा. 2/20
3. परउँ कूप तुअ बचन पर, ।
सकउँ पूत पति त्याग ।। — रा.च.मा. 2/21
4. बकिहि सराहत मानि मराली । — रा.च.मा. 2/19/4
5. गरइ गलानि कुटिल कैकेई।
काहि कहै केहि दूषन देई।। — रा.च.मा. 2/272/1

वह अपने कुकृत्य पर पश्चाताप करती हुई पृथ्वी तथा आकाश की ओर देख रही है। वह अपना कलंकी जीवन समाप्त करना चाहती है। यह आत्मग्लानि कैकेयी के चरित्र में एक प्रशंसनीय गुण के रूप में विद्यमान है।[1]

इस तरह मानस में कैकेयी की अंतिम झलक अनुताप, आत्मग्लानि तथा घोर आंतरिक व्यथा से ओत प्रोत है। वह अपने पाप कर्म को स्वीकार करती है और उसकी यह स्वीकृति उसके पाप का मार्जन है।

आनन्द रामायण में कैकेयी के चरित्र की उक्त विशेषताओं के अतिरिक्त उसके वीरांगना रूप का भी चित्रण हुआ है। ग्रन्थकार ने कैकेयी के चरित्र की यथार्थमूलक भूमिका अधिक परिमाण में प्रस्तुत की है। सर्वत्र कैकेयी की असंतुलित वृत्ति पर ही प्रकाश डाला गया है।

आनन्द रामायण की कैकेयी केवल अंतःपुर की रानी नहीं वरन् संग्राम भूमि में भी वह महाराज दशरथ की अभिन्न संगिनी है। देवासुर संग्राम में वह महाराज दशरथ के साथ युद्ध के लिए जाती है। इस प्रसंग में अपने रथ-चक्र की धुरी को टूटते हुए देखकर वह अपने हाथ को धुरी की जगह पर लगा देती है।[2]

कैकेयी का अपने पुत्र भरत के प्रति असीम स्नेह है। वह अपने पुत्र भरत को राजा रूप में देखने के लिए अनेक तरह से षड्यंत्र करती है। राम वन गमन का वरदान मांगकर भी जब वह भरत को राजा रूप में नहीं देख पाती तब वह राम के राज्याभिषेक के पश्चात एक अन्य षड्यंत्र का सृजन करती है। यह षड्यंत्र सीतात्याग के लिए सबल भूमिका प्रस्तुत करता है। वह सीता से दीवार पर रावण का चित्र बनाने को कहती है किन्तु सीता द्वारा रावण के पैर का अंगूठा मात्र बनाया जाता है क्योंकि रावण की मुखाकृति

---

1. अवनि यमहिं याचति कैकेई । रा.च.मा. 2/251/6
   महि न बीचु बिधि मीचु न देई ।।
2. अक्षमस्ता निजं हस्तं [illegible] ।
   आ.रा. 1/1/80

इस प्रकार दोनों ही कवियों ने कैकेयी की स्थिति को निन्दनीय दिखाते हुए भी उसके प्रति सहानुभूति का परित्याग नहीं किया है। दोनों ग्रन्थों में मानव प्रकृति की दुर्बलताओं को उदार दृष्टि से देखा गया है तथा स्वाभाविकता को स्वीकार किया गया है। इतना अन्तर अवश्य है कि आनन्द रामायणकार ने मुख्य रूप से मानवीय प्रकृति की अनिश्चितता वृत्ति को ही प्रकट किया है जबकि तुलसी ने कैकेयी के इस अप्रत्याशित षड्यंत्र के मूल में दैवी प्रेरणा तथा कुचक्र को भी प्रदर्शित किया है।

<u>सुमित्रा:</u>

मानस में सुमित्रा का चरित्र अपनी विशुद्ध आध्यात्मिकता के कारण अत्यधिक प्रभावशाली बन गया है। वे वैष्णव भक्ति का पूर्ण आदर्श प्रस्तुत करती हैं। अपने पुत्र लक्ष्मण को वे अत्यधिक उत्साह के साथ राम व सीता के साथ वन भेजती हैं। वे विद्रोह तथा द्वेष से सर्वथा दूर रहती हुई बुद्धिमत्ता तथा नीतिमत्ता का आदर्श प्रस्तुत करती हैं। श्री राम के साथ वन जाने के लिए प्रस्तुत लक्ष्मण के प्रति उनका व्याख्यान राम के परमेश्वरत्व विषयक ज्ञान को अभिव्यक्त करता है। वे श्री राम को प्राणों से भी प्रिय, हृदय के जीवन तथा सभी के निःस्वार्थ सखा मानती हैं। उनके अनुसार संसार के समस्त सम्बन्ध श्री राम से सम्बन्धित होने पर ही मानने योग्य हैं।[1]

सुमित्रा भी संसार में उसी जननी के जीवन को सार्थक समझती हैं जिसका पुत्र राम भक्त हो। अपने पुत्र लक्ष्मण को श्री राम की भक्ति में तत्पर देखकर उनका हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। राम की सेवा के लिए कृत संकल्प पुत्र लक्ष्मण को वे बार बार बधाई देती हैं।[2]

---

1. रामु प्रान प्रिय जीवन जी के।
   स्वारथ रहित सखा सबही के।। रा.च.मा. 2/73/4 व 5
   पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते।
   सब मानिअहिं राम के नाते।।

2. भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ। रा.च.मा.2/74
   जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ।।

श्री राम पद रति को वे समस्त सुकृतों का फल मानती हैं। इस फल प्राप्ति के सफल साधक पुत्र लक्ष्मण को वे आध्यात्मिक साधना का सुन्दर उपदेश करती हैं। राग, रोष, ईर्ष्या, मद तथा मोह के वश में न होकर व समस्त विकारों को त्याग मनसा वाचा कर्मणा श्री राम की सेवा करने के लिए वे लक्ष्मण को शुभाशीष प्रदान कर विदा करती हैं।[1]

इसी प्रकार जब लक्ष्मण वन से वापस आते हैं तब वे इसी कारण उन्हें भेंटती हैं कि उन्होंने श्री राम चरणों की भक्ति प्राप्त कर ली है।[2]

कौशल्या के साथ सुमित्रा का विशेष सख्य भाव प्रकट होता है। राम के राज्याभिषेक का समाचार कैकेयी को बाद में किन्तु कौशल्या के साथ रहने वाली सुमित्रा को पहले ही मिल जाता है। वे मणियों के अनेक प्रकार के अत्यन्त सुन्दर चौक पूरती हुई दृष्टि गोचरित होती हैं।[3]

श्री राम वनगमन के अत्यधिक दुःसह दुख से सुमित्रा का हृदय विक्षुब्ध होजाता है। चित्रकूट दरबार में वे विधाता की भोली बुद्धि को बाल-बुद्धि कहकर अपने हृदय की व्यथा व्यक्त करती हैं।[4]

इस प्रकार मानस की सुमित्रा पूर्ण निर्विकार, स्थिति प्रज्ञ सन्यासिनी है। शांति, संयम, धैर्य, नीति तथा मितभाषण आदि उनके स्वाभाविक गुण हैं।

---

1. राग रोषु इरिषा मदु मोहू।
   जनि सपनेहुँ इन्हके बस होहू ।। — रा.च.मा. 2/74/5 से 8 तक
   × × ×
   जेहि न राम बन लहहि कलेसू।
   सुत सोइ करहु इहइ उपदेसू ।।
2. भेंटेउ तनय सुमित्रा राम चरन रति जानि। — रा.च.मा. 7/6
3. चौकें चारु सुमित्रा पूरी ।
   मनिमय बिबिध भाँति अति रूरी ।। — रा.च.मा. 2/7/3
4. सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा ।
   बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा ।।
   जो सृजि पालइ हरइ बहोरी ।
   बाल केलि सम बिधि मति भोरी ।। — रा.च.मा. 2/281/1-2

आनन्द रामायण में सुमित्रा का चरित्र अत्यन्त संक्षिप्त है। वह मगध नरेश की रूपवती कन्या है जिसे साथविवाह करके महाराज दशरथ ने अपनी दूसरी प्राण प्रिय भार्या बनाया है।[1]

आनन्द रामायणकार ने सुमित्रा को केवल एक पुत्र की ही जन्मदात्री चित्रित किया है जब कि मानस में वह लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न- दो पुत्रों की जननी है। आनन्द रामायण की सुमित्रा के समक्ष स्वयं शेष ही लक्ष्मण के रूप में बाल भाव से प्रगटहुए हैं।[2]

आनन्द रामायणकार ने सुमित्रा में एक दिव्य आध्यात्मिक चेतना का विकास किया है। वह श्री राम के प्रति अटूट श्रद्धा तथा भक्ति से युक्त है। वह श्री रामके प्रति श्रद्धावनत होकर उनसे शुभ ज्ञानोपदेश प्रदान करने के लिए प्रार्थना करती है।[3]

सुमित्रा को ग्रन्थकार ने परम वैष्णव सिद्ध किया है। वह अपने को परम ब्रह्म का ही अंश स्वीकार करती हैं। "मानस" में वर्णित "परवश जीव स्ववश भगवन्ता" सिद्धान्त का दर्शन हमें आनन्द रामायण की सुमित्रा में प्राप्त होता है । वह परात्पर विष्णु को स्वाधीन तथा अपने को विष्णु के अधीन स्वीकार करती हैं।[4]

इस प्रकार वह जीव को ईश्वर की एक कला मानती हैं। जीव ईश्वर

---

1. ततो राजा दशरथः सुमित्रां मगधेशजाम् ।
   विवाहेनापरां पत्नीं चकार दयितां प्रियाम् ॥ — आ. रा. 1/7/70

2. ततः सुमित्रा पुरतः शेषोऽभूद् बालरूप धृक्। — आ. रा. 1/2/6

3. सुमित्रा त्वेकदा रामं सीतयां रहसि स्थितम् ।
   x x x
   किंचित्ते प्रार्थयाम्यद्य किंचिदुपदिशस्व माम् ॥ — आ. रा. 8/2/102 व 103

4. स्वाधीनो ऽसि महाविष्णुस्त्वहं विष्णुवशा सदा। — आ. रा. 8/2/114

का अभिन्न अंश है। वे गंगा के प्रवाह में स्थित तथा सिंधु में स्थित गंगाजल की भाँति ही ईश्वर तथा जीव में अभेद दर्शन करती हैं।[1]

इस आत्म ज्ञान से युक्त सुमित्रा को ग्रन्थकार ने अंततः जीवन्मुक्त प्राणी के रूप में चित्रित किया है।[2]

इस प्रकार दोनों ही ग्रन्थों में सुमित्रा के चरित्र में विशुद्ध आदर्शात्व के दर्शन होते हैं। दोनों ही कवियों ने सुमित्रा के मस्तक पर वैष्णव तिलक सुशोभित किया है।माता, विमाता पत्नी तथा सपत्नी- प्रत्येक क्षेत्र में वह सम्राट दशरथ की सर्वश्रेष्ठ रानी है। अपने क्षेत्र में वह धर्म का उतना ही ऊँचा आदर्श प्रस्तुत करती हैं जितना कि स्वयं भगवान राम ने किया है। पं० श्री राम किंकर दास जी के शब्दों में -[3]

"मानस की सुमित्रा जी के समान माता का चरित्र अन्य किसी देश या भाषा में मिलना असंभव है। x x x

धन्य है इस भक्त जननी का अंतःकरण जो वज्र से भी कठोर तथा कुसुम से भी कोमल है।"

---

1. सिन्धौ मैं भेद भेदौ स्थित यथा गंगास्थो घटे।

   आ.रा. 8/2/115

2. जीवन्मुक्ता समभिन्न वै।।

   आ.रा. 8/2/116

3. "मानस-प्रवचन" (प्रथम पुष्प)

   प्रकाशक-बिरला अकादमी ऑफ आर्ट एण्ड कल्चर, कलकत्ता।

मंथरा:

मंथरा कैकेयी की परमविश्वास पात्र परिचारिका है जो अत्यधिक चतुर तथा स्वामिभक्त है। इस स्वामिभक्ति के कारण ही वह अपनी स्वामिनी कैकेयी के पुत्र भरत के लिए युवराज -पद लेने की सलाह देती है। मानसकार ने मंथरा को राम वनगमन के लिए आयोजित षड्यंत्र में देवताओं द्वारा प्रयुक्त एक यंत्र के रूप में चित्रित किया है।[1]

वह कैकेयी को उकसा कर दशरथ-परिवार की टूट-फूट में सक्रिय भूमिका प्रस्तुत करती है। मानसकार ने उसके इस व्यवहार में अत्यधिक नाटकीयता का समावेश किया है। उसकी उक्तियों में अभिनयोचित चांचल्य है। सपत्नी तथा सपत्नी-पुत्र के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न करने के लिए वह कौशल्या तथा श्री राम को [illegible] अतीव मनोवैज्ञानिक निपुणता के साथ कैकेयी के समक्ष प्रस्तुत करती है।[2]

इसका मनोवैज्ञानिक कारण प्रस्तुत करते हुए तुलसी ने स्पष्टतापूर्वक कथन किया है कि यह कार्य मंथरा जैसी शारीरिक विकृति युक्त निम्न वर्ग की कुटिल स्त्रियों के लिए स्वाभाविक सा है।[3]

मंथरा को उसके इस षड्यंत्र के लिए कुमार शत्रुघ्न द्वारा कठोर दण्ड भी दिया जाता है। शत्रुघ्न की लात से कूबड़ पर आघात तथा चोटी पकड़कर घसीटे जाने जैसे दण्ड की वह भागिनी बनती है।[4]

यद्यपि मानसकार ने भक्ति के आवेश में मंथरा की स्वामिभक्ति को ध्यान में न रखकर उसके लिए मंदमति, दुर्बुद्धि, कुजाति, कुटिल, पापिनी तथा

---

1. नाम मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि । रा.च.मा. 2/12
   अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।।
2. रामहिं छाँड़ि कुसल केहि आजू। जेहि जनेसु देइ जुबराजू।।
   भयउ कौसल-हिं बिधि अति दाहिन।देखत गरब रहत उर नाहिन।।
   रा.च.मा.2/13/2 व 3
3. काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि। रा.च.मा.2/14
   तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि।।
4. हुमगि लात तकि कूबर मारा।
   x x x रा.च.मा. 1/162/ 4 व 7
   लगे घसीटन धरि धरि झोंटी।।

अवध-साहसाली आदि विशेषणों का प्रयोग किया है तथापि उसके चरित्र की रक्षा का प्रयत्न भी मानस में दिखाई पड़ता है। मंथरा ने यह कार्य स्वाभाविक रूप में नहीं किया था वरन् सुरमाया के वशीभूत किया था[1] और इस प्रकार वह राम के अवतार के उद्देश्य में सहायक सिद्ध होती है।

मंथरा की भूमिका मानस की भाँति ही है। ग्रन्थकार ने अवतारवाद के अंतर्गत मंथरा के चरित्र की भी अलौकिक भूमि तैयार की है। गांधर्वी दुन्दुभी ने ही पृथ्वी की रक्षार्थ मन्थरा रूप में जन्म लेकर भगवान विष्णु के आदेशानुसार राम के राज्याभिषेक में विघ्न उपस्थित किया है। यह मंथरा ही द्वापर के अंत में कंस के यहाँ कुब्जा रूप में उत्पन्न हुई है।[2]

यह भी राम के राज्याभिषेक में विघ्न उत्पन्न करती है तथा कैकेयी को उकसा कर राम को वन भेजने का उपक्रम करती है। राम के राज्याभिषेक वृत्तान्त को सुनकर परम प्रसन्न कैकेयी को भयभीत करती हुई वह अपने वाक्-चातुर्य द्वारा उसके अन्दर कौशल्या के प्रति सौतिया डाह उत्पन्न करने में पूर्ण सफल होती है तथा अपनी स्वामिनी को पुत्र भरत के युवराज पद पर प्रतिष्ठित कराने की सलाह देकर स्वामिभक्ति प्रदर्शित करती है।[3]

मानस की भाँति ही प्रस्तुत षड्यंत्र के लिए मंथरा को शत्रुघ्न द्वारा दण्ड का विधान आनंद रामायण में भी वर्णित हुआ है।[4]

आनन्द रामायणकार ने भी मंथरा को देवताओं तथा सरस्वती द्वारा विमोहित चित्रित किया है अतः उसका यह अपराध क्षम्य अनुभव होता है।[5]

---

1. सुरमाया वश वैरिनिहिं, सुहृद जानि पतियानि।। रा.च.मा. 2/16
2. गंधर्वी दुंदुभीनाम्नी भूम्याः कार्यार्थसिद्धये।
   x x x आ.रा. 1/2/243
   पश्चात्पुनश्चपिदाती कुब्जा रूपं कंसं दिवे।।
3. मूढ़े कष्टं सर्वं पुत्रा सि हतभाग्या सि वैधव्यम्। आ.रा. 1/6/429,43
   x x x
   दासी भविष्यसि सर्वं सि अतो मद्वचनं कुरु।।
4. मंथरां ताडयामास शत्रुघ्नो पुनः पुनः। आ.रा. 1/6/96
5. वाण्या देववाक्यात्संमोहिता। आ.रा. 1/6/41

इतना ही नहीं मंथरा के इस षड्यंत्र में स्वयं श्री राम जी की इच्छा भी सम्मिलित है।[1]

इस प्रकार दोनों ही ग्रन्थों में मंथराकैकेयी की अत्यधिक स्वामिभक्त परिचारिका के रूप में चित्रित हुई है। उसने जो कुछ भी किया है, एक मात्र अपनी स्वामिनी के स्वार्थ को ध्यान में रखते हुए किया है। इसके अतिरिक्त अवतारवाद के अनुसार उसका कृत्य भगवान की लीला के एक अंग के रूप में प्रस्तुत हुआ है जिस कारण सरस्वती ने बुद्धि पलट कर उससे यह कार्य सम्पन्न कराया है।

<u>शूर्पणखा:</u>

महाकाव्य में कुछ पात्र ऐसे भी होते हैं जो किंचित काल के लिए आविर्भूत होकर सदा के लिए विलुप्त हो जाते हैं। विश्वामित्र, मंथरा व शूर्पणखा आदि ऐसे ही पात्र कहे जा सकते हैं। शूर्पणखा का परिचय देते हुए मानसकार ने उसे दुष्ट हृदया कहा है।[2]

शूर्पणखा काम जन्य दुर्बलता से युक्त है। वह राम तथा लक्ष्मण से प्रणय प्रस्ताव करती है। राक्षसी होने के कारण वह काम रूपा है। अतः सुन्दर स्वरूप बनाकर राम के पास पहुंचती हैं एवं असत्य भाषण करके उनसे अपने विवाह का प्रस्ताव प्रस्तुत करती है।[3]

राम तथा लक्ष्मण से उपेक्षित होकर वह सीता को खाने के लिए दौड़ती है। राम के संकेत से लक्ष्मण द्वारा उसके नाक, कान काटकर उसे दण्डित किया जाता है।[4]

शूर्पणखा के चरित्र की एकअन्य विशेषता उसकी राजनीति-पटुता भी है। खर-दूषण वध के बाद वह रावण की राजनीति की कटु आलोचना करती है तथा उसे राजनीतिक उपदेश प्रदान करती है।[5]

---

1. मोहिता सा चिरकैन श्री राघव सुरेच्छया। अ०रा० 1/6/46
2. सूपनखा रावन की बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी।।
   रा०च०मा० 3/16/3
3. तातें अब लगि रहिउँ कुंआरी। मन माना कछु तुम्हहि निहारी।।
   रा०च०मा० 3/16/10
4. लछिमन अति लाघवँ सो नाक कान बिनु कीन्हि।
   ताके कर रावन कहुँ मनहुँ चुनौती दीन्हि।। रा०च०मा० 3/17
5. करसि पान सोवसि दिनु राती। रा०च०मा० 3/20/7 से 3/21 तक

आनन्द रामायण में भी शूर्पणखा एक ही स्थल पर कार्य करती है। वह अपने पुत्र साम्ब के संहारक श्री रामको मारने की इच्छा से ही उनसे प्रणय का कपट पूर्ण प्रस्ताव रखती है। राम को देखकर वह पुत्र शोक से व्यथित हो उठती है।[1]

ग्रन्थकार ने शूर्पणखा से स्पष्ट शब्दों में प्रणय प्रस्ताव रखवाकर उसे निर्लज्जता की पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया है।[2]

मानस में लक्ष्मण द्वारा आत्म रक्षा तथा दण्ड के विचार से शूर्पणखा के नाक,कान काटने का वर्णन है किन्तु आनन्द रामायणकार ने लक्ष्मण के राम प्रदत्त बाण द्वारा उसके नाक,कान तथा स्तन काटने का चित्रण प्रस्तुत किया है।[3]

शूर्पणखा की राजनीति पटुता का भी चित्रण कवि ने विशिष्ट रूप में किया है। राम तथा लक्ष्मण द्वारा अपमानित तथा विरूपित होकर वह रावण के दरबार में पहुंचती है तथा उसकी राजनीति की कटु आलोचना करती है।[4]

रावण के द्वारा समस्त वृत्तान्त पूंछने पर वह असत्य भाषण द्वारा उसे युद्धार्थ उत्तेजित करती है। वह रावण की कामुकता से अवगत है अतः उसके समक्ष सीता की अप्रतिम सुन्दरता का वर्णन करती है। स्त्री रत्न स्वरूपा उस सीता को रावण के लिए लाने में ही उसको अपमानित तथा

---

1. तत्स्मरन्ती पुत्रदुःखं राक्षसी काम रूपिणी।
   x x x
   कापटयुक्ता श्री रामं सानुज हन्तुमुद्यता।। आ०रा० 1/7/44 से 46
2. ततः सा राघवं प्राह भव भर्ताद्य प्रभो । आ०रा० 1/7/49
3. स शरीरात्मणीं गत्वा घ्राणकर्णौऽच्छिनत्तदा । आ०रा० 1/7/55
4. धिक त्वां राक्षसराजानं वृत्तं पापैर्न वीक्षित यः । आ०रा० 1/7/70

चित्रित किया गया है- ऐसा रावण के समक्ष निवेदन करके वह अपनी कुशल मनोवैज्ञानिक कूटनीति का प्रस्तुतीकरण करती है।[1]

रावण में सीता के प्रति आकर्षण उत्पन्न कर वह उसे फटकारती हुई कहती है कि यदि तुममें पौरुष है तो सीता का अपहरण कर, अन्यथा विधवा स्त्री की तरह नीचा मुख करके बैठा रह।[2]

इस प्रकार दोनों ही काव्यों में शूर्पणखा की दो विशेषताएँ सामने लाई गयी हैं। प्रथम तो वह स्वैरिणी स्त्रियों की प्रतिनिधि है तथा दूसरे वह कुशल राजनीति विज्ञ है। दोनों कवियों का शूर्पणखा के प्रति अनादर भाव है अतः दोनों काव्यों में वह अत्यन्त उपहासास्पद स्थिति में रखी गयी है। किन्तु राम-रावण युद्ध का द्वार खोलने के लिए शूर्पणखा आवश्यक थी। अतः वह क्षणिक सी पात्री होकर भी प्रभावशालिनी है।

मंदोदरी:

रामचरित मानस में मंदोदरी उपदेश युक्त सम्भाषण प्रदान करने वाली धर्म परायणा नारी है। वह अपने पति रावण को राम के प्रति आत्म समर्पण और भक्ति का उपदेश देती है। यद्यपि उसका संक्षिप्त परिचय बाल काण्ड में ही प्राप्त होजाता है।[3]

तथा उसकी चारित्रिक विशेषतायें प्रथम बार सुन्दर काण्ड में ही सामने आती है। मानस में वह पाँच बार अपने पति को उपदेश देती हुई चित्रित हुई है। पहली बार वह अशोक वाटिका में सीता का वध करने के लिए उद्यत रावण को नीति वचन के द्वारा शांत करती है।[4]

---

1. स्त्रीरत्नं जानकीं दृष्ट्वा मया चित्ते विचिन्तितम्,
   रावणार्थं विनिक्षयामि पर्युं तां सत्पुरोगता। अ.रा. 1/7/73
2. नीचैर्मुखोऽवतिष्ठस्व यथा स्त्री गतभर्तृका। अ.रा. 1/7/76
3. मय तनया मंदोदरि नामा। परम सुन्दरी नारि ललामा।।
   सोई मय दीन्ह रावनहिं आनी। होइहि जातुधानपति जानी।।
   रा.च.मा. 1/177/ 2 व 3
4. सुनत वचन पुनि मारन धावा।
   मय तनया कहि नीति बुझावा।। रा.च.मा. 5/9/7

आनन्द रामायणकार ने मंदोदरी को निष्पक्षता के साथ प्रस्तुत किया है। उसने मंदोदरी को सौन्दर्य में सीता के समकक्ष रखकर एक सच्चे कलाकार की उदार दृष्टि दिखायी है। सीतान्वेषण में तत्पर श्री हनुमान जी लंका के राजप्रासाद मंदोदरी को शयन करते हुए देखकर उसे सीता के तुल्य समझकर आश्चर्य चकित रह जाते हैं। शत्रु-पत्नी के भी प्रस्तुतीकरण में कवि की यह न्यायपूर्ण व उदार दृष्टि प्रशंसनीय है।[1]

आनन्द रामायण की मंदोदरी अपने पति की नैतिक प्रहरी है। उसके पत्नीत्व का यह पक्ष प्रशंसनीय है। अशोक वाटिका में सीता-वध के लिए उद्यत अपने पति रावण को समझा बुझा कर वह शांत करती है।[2]

ग्रन्थकार ने मंदोदरी को परम विवेकमयी चित्रित किया है। सीता-जन्म की पूर्व भूमिका में मंदोदरी की दिव्य विवेक शक्ति का आभास मिल जाता है। राजा पद्माक्ष के नगर में स्थित हवन कुण्ड से रावण द्वारा दिव्य पाँच रत्न एक पेटिका में बन्द कर लाये गये। लंका आने पर उस पेटिका में एक सुन्दर कन्या प्रकट हुई। इस कन्या के सम्बन्ध में मंदोदरी की भविष्यवाणी उसके अलौकिक ज्ञान की परिचायिका है। उसने रावण को स्पष्ट शब्दों में अवगत कराया कि यह दुष्टा राक्षस कुल विध्वंसकारिणी है। तथा इससे तुम्हारी मृत्यु होगी। अतः इसे लंका से अविलम्ब हटा दिया जाय।[3]

---

1. दृष्ट्वा मंदोदरीं तत्र सीतेयमिति शंकितः ।

   ×   ×   ×

   तथापि सीतासदृशीं दृष्ट्वा व्यस्मयतात्मजः ॥

   आ० रा० 1/9/30 व 31

2. मा कुरुष्व मतिं वधस्य व्यर्थां कुमतिं कुशाम् ।

   आ० रा० 1/9/85

3. इयं कृत्या प्रकटा च कुलविध्वंसकारिणी ।

   ×   ×   ×

   त्याजनीया च लंकायान्निष्कास्यैव रावण॥

   आ० रा० 1/3/234 से 236 तक

मंदोदरी अनेक दूतों को बुलाकर पेटिका सहित उस कन्या को वनान्तर में भूमिगत करने का आदेश देती है। उस कन्या के भविष्य विभेदों की ओर संकेत करती हुई वह स्पष्ट उद्घोषणा करती है कि जो व्यक्ति गृहस्थाश्रमी होते हुए भी जितेन्द्रिय व समदर्शी होगा उसी के घर में वह कुमारिका वृद्धि को प्राप्त होकर चिरकाल तक स्थायी रहेगी।[1]

इस प्रकार दिव्य ज्ञानवती मंदोदरी अपने पति के कल्याणार्थ निरन्तर सतर्क रहती है।

आनन्द रामायण की मंदोदरी अपने पति की मृत्यु के पश्चात मानस की मंदोदरी की भांति भक्ति प्रवाह में आकर संतोष सा व्यक्त नहीं करती है। ग्रन्थकार की कवि सुलभ सहृदयता ने उसके आदर्श पत्नीत्व को सुरक्षित रखा है। मंदोदरी को अपने पति की वीरता पर गर्व है। रामचरित मानस तथा वाल्मीकि रामायण की भांति आनन्द रामायण की मंदोदरी निःसहाय विधवा कीभांति चित्रित नहीं हुई अपितु वह अपने पति के साथ ही अपना पांचभौतिक शरीर छोड़कर सानन्द सती हो जाती है।[2]

इस प्रकार दोनों काव्यग्रन्थों में मंदोदरी परम विवेकमयी तथा पति-परायणा नारी के रूप में चित्रित हुई है। इतना अन्तर अवश्य है कि तुलसी ने अपनी राम भक्ति विषयक भावना के अनुसार शत्रुपत्नी के मुख से भी शत्रु की प्रशंसा कराकर नायक के उत्कर्ष को बढ़ाया है जबकि आनन्द रामायण कार ने मंदोदरी के सौन्दर्य, ऐश्वर्य, सेवानिष्ठता व पति परायणता का वर्णन पूर्ण निष्पक्षता तथा उदारता के साथ प्रस्तुत किया है।

---

1. गृहस्थाश्रम युतो यस्तथा च जितेन्द्रियः ।
   × × ×
   तस्य गेहे चिरं कालं स्थास्यतीयं न संशयः ॥ — आ० रा० 1/3/241/ व 242
2. तदा मंदोदरी भर्त्रा सह देहं विसृज्य सा।
   ययौ वैकुण्ठ भवनं रावणेन सुतान्विता ॥ — आ० रा० 1/11/85

तारा:

दोनों ही काव्य ग्रन्थों में तारा के चरित्र का प्रकाशन अत्यधिक संक्षिप्त तथा सीमित रूप में हुआ है। वह वानर राज बालि की परम विवेकशीला व राजनीति कुशला अर्द्धांगिनी है। वह राम की शक्ति तथा सत्ता को पहिचानती है। अपने पति बालि को सुग्रीव से युद्ध करने के लिए रोकती है क्यों-कि उसे विदित हो गया है कि राम व लक्ष्मण सुग्रीव के सहायक हैं। युद्ध के लिए प्रस्तुत अपने पति बालि को वह प्रीतिपूर्ण करुण वचनों से रोकती है तथा राम व लक्ष्मण के अपरिमित बल का वर्णन करती है।[1]

आनन्द रामायण में भी तारा अपने पति बालि से राम की शरण में जाने तथा सुग्रीव को युवराज पद प्रदान करने का विनम्र आग्रह करती है। उसे राज कुमार अंगद द्वारा राम-सुग्रीव मित्रता का समाचार प्राप्त हो जाता है। वह राम को साक्षात नारायण समझतीहै।[2]

पति के वध पर तारा अनेक प्रकार से विलाप करती है। दोनों ही काव्य ग्रन्थों में प्रस्तुत विलाप का उल्लेख मात्र हुआ है। वाल्मीकि रामायण में तारा के विलाप का अत्यन्त मार्मिक चित्रण हुआ है किन्तु मानस तथा आनंद रामायण में इसका संकेत मात्र हुआ है।[3]

मानसकार ने मंदोदरी की भांति तारा को भी राम भक्ति से ओत प्रोत दर्शित किया है। श्री राम के उपदेश द्वारा उसका मोह जनित शोक दूर हो जाता है। दिव्य ज्ञान उत्पन्न होने पर वह श्री राम पदाब्ज भक्ति

---

1. सुनु पति जिन्हहिं मिलेउ सुग्रीवा। ते दौ बंधु तेज बल सींवा ।।
   कोसलेस सुत लछिमन रामा । कालहु जीति सकहिं संग्रामा ।।

   रा०च०मा० 4/6/8 व 9

2. श्रुत्वांगद वाक्येन यथा रामः समागतः।
   × × × आ०रा० 1/8/52 व 53
   यौवराज्यपदं देहि तस्मै मे वचनं कुरु ।।

3. (क) नाना विधि बिलाप कर तारा। छूटे केस न देह संभारा ।।
   (ख) ततस्तारा समागत्य सुग्रीव बालिनं प्रति ।

   (क) रा०च०मा० 4/10/2

की याचना करती है।[1]

तारा राजनीति कुशल महिला है। वह पति वध के पश्चात पुत्र सहित सुग्रीव की पूर्ण अधीनता स्वीकार कर लेती है जिससे कि अंगद को यौवराज्य प्राप्त हो जाता है। वह अत्यधिक वाक्पटु तथा मधुर-भाषिणी है। जब वह क्रुद्ध लक्ष्मण के सामने आती है तो उनका क्रोध शान्त हो जाता है। तारा की विनयशीलता तथा बुद्धि-कौशल लक्ष्मण पर अपना अभीष्ट प्रभाव छोड़ती है।[2]

आनन्द रामायण में वह लक्ष्मण को "देवर" सम्बोधन से संबोधित करके सुग्रीव की वस्तुस्थिति से उन्हें अवगत कराती है तथा विनम्र शब्दावली द्वारा लक्ष्मण के क्रोध को शान्त करती है।[3]

इस प्रकार दोनों ही काव्य ग्रन्थों में यद्यपि तारा का चरित्र चित्रण अत्यन्त संक्षिप्त तथा सीमित है तथापि वह परम विवेकमयी, राजनीति कुशल तथा अतीव वाक्पटु व मृदुभाषिणी नारी का सुन्दर आदर्श प्रस्तुत करती है।

---

1. उपजा ज्ञान चरन तब लागी ।
   लीन्हेसि परम भगति बर मागी ।।

   रा.च.मा. 4/10/4

2. तारा सहित जाइ हनुमाना।
   × × ×
   चरन पखारि पलँग बैठाए ।।

   रा.च.मा. 4/19/ 4 व 5

3. लक्ष्मणं सांत्वयामास वचोभिर्मधुरैर्मितैः ।
   × × ×
   ततो लक्ष्मण हस्तं सा धृत्वा राजगृहं ययौ ।।

   आ.रा. 1/8/ 82 व 83

आनन्द रामायण में उपर्युक्त पात्रों के अतिरिक्त निम्नांकित विशेष पात्रों का चरित्र – चित्रण :

लव:

वीर धर्म का पालन कर्तव्य की सीमा है। आनन्द रामायणकार ने रामात्मज लव तथा कुश में वीरत्व की चरम सीमा का अंकन किया है। बाल्यावस्था में वीरत्व के ऐसे प्रमाण अन्यत्र अनुपलब्ध है। इन कुमार युगलों में लव वस्तुतः दीपक की लव के समान ही देदीप्यमान एवं उसी प्रकार प्रतिद्वन्दी को भस्मसात करने की शक्ति से सम्पन्न है। उसके निर्मल चरित्र में शिष्यत्व की शालीनता, मातृभक्ति एवं वीरत्व की गरिमा कूट-कूट कर भरी है।

महर्षि वाल्मीकि के द्वारा दोनों राजकुमार शस्त्र तथा शास्त्र विद्या में पूर्ण पारंगत कर दिये गये हैं। बाल्यावस्था में ही महर्षि ने इन्हें गायन तथा वादन की संगीत कला में भी निपुण बना दिया है। इन युगल सुकुमारों द्वारा राम चरित का संगीतमय गायन सुनकर मुनिमण्डली आत्म सुधि विस्मृत हो जाती थी। समस्त मुनिवृन्द एक स्वर से इस अद्वितीय तथा अभूतपूर्व गायन व वादन की प्रशंसा करने लगते हैं।[1]

लव में मातृ भक्ति की पराकाष्ठा है। पाँच वर्ष की अवस्था में ही वे माँ सीता द्वारा कृत अनुष्ठान में पूजन हेतु अयोध्या-सरोवर से बल पूर्वक कमल पुष्प लाने का हठपूर्ण दावा करते हैं। अम्बा सीता द्वारा लव के बल पर संदेह व्यक्त किये जाने पर इस वीर बालक का ओजस्वी वक्तव्य उसके अदम्य साहस का परिचायक है। लव ने निर्भीकता पूर्वक माँ को आश्वासन देते हुए कहा कि मैं आपके पवित्र स्तनों के दुग्ध तथा महर्षि

---

1. गानश्रीपीयूषगीत वाद्य गरिमा माधुरी गायिष च ।

आ॰ रा॰ 5/4/83

वाल्मीकि द्वारा सिखायी गयी शस्त्र विद्या के प्रभाव से राम को भी नहीं डरता हूं ।[1]

अयोध्या के उपवन में स्थित सरोवर से कमल पुष्प लाने में पंचवर्षीय बालक लव का रामदूतों के साथ घनघोर युद्ध होता है। लव ने अपने बाणों से चौदह दूतों को उठाकर फेंक दिया जो मूर्छित होकर राम की यज्ञशाला में जा गिरे ।[2]

राजकुमार लव द्वारा श्री राम का यज्ञीय अश्व बांध लिया जाता है। अश्व को छुड़ाने में शत्रुघ्न के साथ लव का वीरता पूर्ण युद्ध होता है। लव द्वारा वायव्य मंत्र से अभिमंत्रित तृण के फेंकने मात्र से भयंकर तूफान चलने लगा तथा ससैन्य शत्रुघ्न आकाश में भ्रमरवत् उड़ने लगे।[3]

यह समाचार सुनकर श्री राम द्वारा बहुत विशाल सेना शत्रुघ्न की सहायतार्थ भेजी गयी, किन्तु वीर बालक लव का अदम्य साहस पर्वत की भाँति अडिग रहा। उसने मेघवत् गर्जन करते हुए गर्व पूर्वक कहा कि मैं सीता क्रोधानल को बुझाने वाला मेघ हूं ।[4]

इतना ही नहीं, लव ने अपने मोहनास्त्र से समस्त प्रतिद्वन्द्वी सेना को मूर्छित कर दिया तथा सुमंत्र व भरत को अपनी कांख में दबा लिया। हाथों से हनुमान तथा सुग्रीव को पकड़कर उस वीर बालक ने माता सीता के समक्ष अपने युद्ध का परिणाम निवेदित किया।[5]

---

1. अस्त्र रथतत्त्वाज्ञानेन वाल्मीकेः शस्त्र विद्यया ।
   तथाशीर्भिर्मुनिवराणां रामस्यापि भयं न मे ।। — आ॰रा॰ 5/6 ।।18-19
2. चतुर्दश रामदूता लव मार्गण ताडिता ।
   निपेतुर्मूर्च्छिताः सर्वे रामाग्रे जाह्नवी तटे।। — आ॰रा॰ 5/6/42-43
3. शत्रुघ्नेनापि सैन्यैः भ्रमरवद्भ्रमरोपमम् । — आ॰रा॰ 5/7/50
4. सीताक्रोधानलं हर्तुं मां मेघं वित्थ भो जनाः। — आ॰रा॰ 5/7/61।
5. मोहयामास सकलान् मोहनास्त्रं विमुच्य च ।
   x x x
   सुग्रीव प्रमुदा धृत्वा सीतायै तान् प्रदर्शयत्।। — आ॰रा॰ 5/7/63-65 तक

इन्द्रजीत विजेता लक्ष्मण के शस्त्र भी युद्धक्षेत्र में लव के समक्ष निस्तेज तथा असफल सिद्ध होते हैं। यह देखकर लक्ष्मण भी व्याकुलचित्त हो उठते हैं।[1]

इस प्रकार लव में वीरता का चरमोत्कर्ष विद्यमान है।

लव का पालन-पोषण मुनि मण्डली में हुआ है अतः उनमें मुनिजनोचित संतोषवृत्ति भी विद्यमान है। श्री राम द्वारा लव के रामायण गायन पर प्रसन्न होकर दस सहस्र स्वर्ण मुद्राएं प्रदान करने का आदेश दिया जाता है किन्तु लव यह पुरस्कार स्वीकार न करके अपने त्यागमय तपोनिष्ठ जीवन का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। लव ने विनम्रता पूर्वक श्री राम से कहा कि - राजन् ! अरण्य में फल-मूल पर जीवन यापन करने वाले हम वनवासियों के लिये इस सुवर्ण राशि का क्या उपयोग है।[2]

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने रामात्मज लव को त्याग, तपस्या तथा वीरत्व की साकार प्रतिमूर्ति के रूप में चित्रित किया है।

कुशः—

अपने अनुज राजकुमार लव की भाँति कुश भी वीरता और शालीनता के साकार रूप हैं। वे सर्वत्र अपने अनुज के अनुष्ठान में सहयोग देकर भ्रातृत्व का सफल निर्वाह करते हैं। कुश में गुरु भक्ति तथा मातृभक्ति भी उच्चतम सीमा पर प्रतिष्ठित है। आनन्द रामायणकार ने इन दोनों बालकों के चरित्र चित्रण में अपने इष्ट राम के गुरुत्व व महत्व को इन दोनों आत्मजों में भी प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयास किया है।

---

1. लव देहे स्वशस्त्राणि भवन्ति विफलानिहि ।
आ॰रा॰ 5/7/87

2. राजन् हेम्ना किमेतेन हार्यां वै वन्य भोजिनां ।
आ॰रा॰ 5/7/42

चिन्तातुर हो उठता है। रामादि समस्त भ्राता विह्वल हो उठते हैं। सब लोग भोजनादि त्यागकर उन्हें खोजने की तैयारी करने लगते हैं।[1]

राजकुमार धूमकेतु शस्त्र विद्या में परम प्रवीण हैं। मदन सुन्दरी के स्वयंवर में सभा-भवन में पहुँचकर वे मोहनास्त्र के प्रयोग द्वारा समस्त सभा को मूर्छित कर देते हैं तथा मदन सुन्दरी की नवरत्नमयी वरमाला उनके गले में शोभित होने लगती है।[2]

कवि ने धूमकेतु को सच्चे वीर के आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है। रथ में मदनसुन्दरी को लेकर अयोध्या की ओर प्रस्थित होने पर कम्बुकण्ठ तथा अन्य राजाओं ने उनका पीछा किया। राजकुमार ने मार्ग में रथ रोक कर मदन सुन्दरी द्वारा मना करने पर भी उन समस्त राजाओं से अकेले युद्ध करके वीरत्व का उत्कृष्ट परिचय दिया। अपने वायव्यास्त्र का प्रयोग करके धूमकेतु ने समस्त प्रतिपक्षी राजाओं को रथ-वाहन तथा सेना के सहित उड़ाकर दूर फेंक दिया। यह दृश्य धूमकेतु के उत्कृष्ट युद्ध कौशल को प्रमाणित करता है।[3]

युद्ध के लिए प्रस्तुत राजा कम्बुकण्ठ के भी समस्त बाण, धनुष, सारथी, ध्वजा, कवच तथा मुकुटादि धूमकेतु के बाणों द्वारा छिन्न-भिन्न कर डाले जाते हैं। धूमकेतु ने अपने प्रबल पौरुष के द्वारा कम्बुकण्ठ को

---

1. एवमत्यौपिहारान् दैवेन तच्छोधार्थं समुद्यताः। आ०रा०6/8/46

2. मोहनास्त्रं विमुच्याथ मोहयामास तां सभाम्।
   x x x
   मुमोच मालां तत्कण्ठे नवरत्नमयीं शुभाम् ॥

   आ०रा० 6/54 से 57

3. " वायव्यास्त्रेण तान्सर्वानुद्धूय दूरं क्षिप्तवान्
   प्रतिपक्षनृपान् सैन्यैर्नागाश्ववाहन संयुतान्॥"

   आ०रा० 6/8/68

है। श्री राम को वे अमित दहेज देकर संतुष्ट करती हैं। उनके इस दहेज से उनका अतुलित वैभव प्रकट होता है। श्री राम को वे अनेक अलंकरण, वस्त्र, गायें तथा अगणित दास-दासियाँ प्रदान कर अनेक तरह से उनका पूजन सत्कार करती हैं।[1]

विशेष उत्सवों पर वर्ष में अनेक बार वे श्री राम को उनके अंतः पुर सहित सादर आमंत्रित करती हैं। ग्रन्थकार ने वर्ष के सोलह विशेष पर्वों पर श्री राम द्वारा श्रुतिकीर्ति के आमन्त्रण पर पहुँचने का वर्णन किया है।[2]

समय-समय पर महाराज श्रुतिकीर्ति अंगूरादि विविध प्रकार के फलों से भरी हुयी पिटारियाँ भी उपहार रूप में श्री राम जी के पास भेजती रहती हैं।[3]

इस प्रकार आनन्द रामायण कार ने पूर्व देशाधिपति महाराज श्रुतिकीर्ति के चरित्र में उन समस्त गुणों का सम्यक समावेश किया है जो अयोध्या सम्राट श्री राम के साथ सामय सम्बन्ध के लिए अत्यावश्यक हैं।

---

1. नानालंकार वासांसि गा दासीः विविधांस्तथा ।
   ददौ ताभ्यां श्रुतिकीर्ति वेषां संख्या न विद्यते ।।
   आ. रा. 6/4/22
2. स्वेषु श्रुतिकीर्तिः स रामं नीत्वा प्रपूजयत् ।
   आ. रा. 6/4/47
3. द्राक्षाकदलादिभिः पूर्णास्तथा पुष्पैः अलंकृताः ।
   करंडिकाः प्रेषितास्च राघवार्थं सहस्रशः ।।
   आ. रा. 7/22/4

मूलकासुर :

साहित्यकार अपने कथानायक के चरित्र को गौरव की सीमा तक पहुँचाने के लिये विपक्ष प्रति पक्ष को भी अनेक शक्तियों से सम्पन्न चित्रित करता है। इस चित्रण का मूल उद्देश्य कथानायक पक्ष का उत्कर्ष दर्शाना ही होता है। आनन्द रामायणकार ने राम के प्रति पक्षियों में उनकी सिद्धि तथा मायावी शक्तियों को उत्कृष्ट रूप में दर्शाया है। रावणानुज कुम्भकर्ण के आत्मज मूलकासुर का चरित्र इसी कोटि में आता है। उसमें अदम्य साहस, वीरत्व, प्रतिकार का प्रबल भाव एवं विभिन्न आसुरी व मायावी शक्तियों का समावेश है।

मूलकासुर कुंभकर्ण का वह पुत्र है जिसे मूल नक्षत्र में उत्पन्न होने के कारण उसे जंगल में छोड़ दिया था। मधु मक्खियों ने उसके मुख में मधु की एक-एक बूंद डालकर उसकी रक्षा की। मूल नक्षत्र में पैदा होने तथा वृक्षों के नीचे पालित - पोषित होने के कारण इसका नाम मूलकासुर पड़ा।[1]

मूलकासुर ने अपनी घोर तपस्या से ब्रह्मा से यह वरदान प्राप्त कर लिया था कि वह किसी भी पुरुष के द्वारा नहीं मारा जा सकता। वर के प्रभाव से गर्वित होकर वह अपने चाचा विभीषण को कुलघाती समझकर उस पर आक्रमण कर ~~उस पर आक्रमण कर~~ देता है। विभीषण को परास्त कर वह लंका पर अपना अधिकार कर लेता है। उसके प्रबल युद्ध कौशल के समक्ष विभीषण अपने पुत्र, स्त्री तथा मंत्रियों के सहित अयोध्या की ओर छिपकर भागते हैं।[2]

---

1. मूलर्क्षे यः समुत्पन्नस्तन्मूले विवर्धितः ।
   मूलकासुर नाम्ना सः पराक्रमाति महो प्रभुः।।
   आ॰ रा॰ 7/4/93-94
2. तपसा तोष्य ब्रह्माणं तद्वरेणातिगर्वितः ।
   × × ×
   रात्रौ बहिर्विनिर्गत्य विभीषणोऽयोध्यां समागताः।।
   आ॰ रा॰ 7/4/90 से 93

मूलकासुर में प्रतिकार की भावना अत्यधिक प्रबल है। वह विभीषण को युद्ध क्षेत्र में ललकारता हुआ कहता है कि मैं तुझे मारकर राम से भी युद्ध करने जाऊंगा तथा राम को भी युद्ध में मारकर अपने पितृ ऋण से उऋण हो जाऊंगा।[1]

मूलकासुर परमवीर है। श्री राम की सेना के साथ युद्ध में वह राम के समस्त पार्श्ववर्ती राजाओं को क्षण मात्र में मूर्छित कर देता है।[2]

मूलकासुर मायावी शक्ति से भी सम्पन्न है। राजकुमार कुश के बाणों द्वारा जब वह लंका के बाजार में फेंक दिया जाता है तब उत्तम शस्त्र तथा रथ प्राप्त करने की इच्छा से वह एक कंदरा में प्रविष्ट होकर आभिचारिकी क्रिया के अनुसार हवन प्रारंभ करता है। इस प्रकार वह विभिन्न आसुरी तथा मायावी शक्तियों से सम्पन्न है।[3]

एक रामभक्त मुनि के समक्ष सीता को "चण्डी" तथा "कुलघातिनी" आदि अपमान जनित शब्दों का प्रयोग करने के कारण उसे ऋषि द्वारा शाप मिला कि तू उसी सीता के द्वारा ही युद्ध भूमि में मारा जायेगा। अतः रामाज्ञा से सीता भी विकराल रूप धारण कर मूलकासुर से युद्ध के लिये प्रस्तुत होती हैं। सीता के साथ उसका भीषण युद्ध होता है। यह युद्ध उसके अदम्य साहस तथा उच्च कोटि की शस्त्र विद्या का परिचायक है। वह सीता पर अग्न्यस्त्र, पर्वतास्त्र व सर्पास्त्र आदि का प्रहार करते हुए सातों दिन पर्यन्त युद्ध करता है।[4]

---

1. तं रामं समरे हत्वा मुक्तं भव्याम्यृणं पितुः। आ.रा.7/6/96
2. पार्श्वस्थान् राघवेन्द्रः स चकार क्षणे मूर्छितान्।आ.रा.7/6/124
3. ततो भिचारिकं होमं रथास्त्रार्थं मुन्नायम् । आ.रा. 7/6/128
4. सप्तकार्यां मुनोपाती सहसूनं मूलकासुर :।

    x x x

    एवं तत्तुमुलं युद्धं बभूव दिन सप्तकम् ।।

    आ.रा.7/6/15-18

किन्तु शाप के प्रभाव से वह चण्डी रूप धारिणी सीता के द्वारा युद्ध में वीरगति को प्राप्त होता है।

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने मूलकासुर को महान वीर तथा समस्त आसुरी शक्तियों से सम्पन्न चित्रित किया है तथा इस महान वीर का वध सीता के द्वारा चित्रित करके कवि ने कथा नायक पक्ष के उत्कर्ष को भी प्रदर्शित किया है।

<u>लवणासुर</u> :

तामसी वृत्तियों का लोक विध्वंसकारी रूप अधिकतम बनाने के लिए तपस्या का प्रश्रय ग्रहण करना लगभग सभी राक्षसों का ध्येय रहा है। लवणासुर भी इसी रूप का एक वीर राक्षस है। अपने पिता कुंभकर्ण की तरह वह भी भगवान शिव के वरदान से समृद्ध दिव्य अस्त्र का धारक एवं अदम्य साहस के साथ रण क्षेत्र में वीरता का परिचय देने वाला था।

कुम्भकर्ण की कुम्भीनसी नाम की भार्या से लवणासुर की उत्पत्ति हुई। लवणासुर अति दुरात्मा, दुर्बुद्धि तथा देव-द्विज दुःखदायी था।[1]

भगवान शंकर को प्रसन्न करके इसने एक दिव्य त्रिशूल प्राप्त किया। इस त्रिशूल का प्रहार जिस पर भी होता था वह भस्म हो जाता था।[2]

लवणासुर महान क्रूर तथा देव मुनि परितापी था। इसके अत्याचार से वे प्रपीड़ित होकर च्यवन ऋषि अनेक मुनियों को साथ लेकर श्रीराम की शरण में पहुँच कर अपनी व्यथा निवेदित करते हैं।[3]

---

1. रावणस्यानुजस्तस्य भार्या कुंभीनसी स्मृता । आ.रा. 7/6/74-75
   तस्यां तु लवणो नाम राक्षसो भीम विक्रमः ।।
2. तस्मै तुष्टो महादेवो ददौ शूलमनुत्तमम् । आ.रा. 7/6/73
3. पीडिता लवणेनात्र वयं त्वां शरणं गताः । आ.रा. 7/6/77

किन्तु शाप के प्रभाव से वह चण्डी रूप धारिणी सीता के द्वारा युद्ध में वीरगति को प्राप्त होता है।

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने मूलकासुर को महान वीर तथा समस्त आसुरी शक्तियों से सम्पन्न चित्रित किया है तथा इस महान वीर का वध सीता के द्वारा चित्रित करके कवि ने कथा नायक पक्ष के उत्कर्ष को भी प्रदर्शित किया है।

<u>लवणासुर</u> :

तामसी वृत्तियों का लोक विध्वंसकारी रूप अपितमय बनाने के लिए तपस्या का प्रश्रय ग्रहण करना लगभग सभी राक्षसों का ध्येय रहा है। लवणासुर भी इसी रूप का एक वीर राक्षस है। अपने पिता कुंभकर्ण की तरह वह भी भगवान शिव के वरदान से सम्पुष्ट दिव्य अस्त्र का धारक एवं अदम्य साहस के साथ रण क्षेत्र में वीरता का परिचय देने वाला था।

कुम्भकर्ण की कुम्भीनसी नाम की भार्या से लवणासुर की उत्पत्ति हुई। लवणासुर अति दुरात्मा, दुर्बुद्धि तथा देव-द्विज दुःखदायी था।[1]

भगवान शंकर को प्रसन्न करके इसने एक दिव्य त्रिशूल प्राप्त किया। इस त्रिशूलका प्रहार जिस पर भी होता था वह भस्म हो जाता था।[2]

लवणासुर महान क्रूर तथा देव मुनि परितापी था। इसके अत्याचार से वे प्रपीड़ित होकर च्यवन ऋषि अनेक मुनियों को साथ लेकर श्रीराम की शरण में पहुंच कर अपनी व्यथा निवेदित करते हैं।[3]

---

1. रावणस्यानुजातस्य भार्या कुंभीनसी स्मृता । आ॰रा॰7/6/74-75
   तस्यां तु लवणो नाम राक्षसो भीम विक्रमः ।।
2. तस्मै तुष्टो महादेवो ददौ शूलमनुत्तमम् । आ॰रा॰ 7/6/73
3. पीड़िता लवणेनाथ वयं त्वां शरणं गताः । आ॰रा॰ 7/6/77

तपस्या के प्रभाव से उग्र शक्ति से सम्पन्न होने के कारण श्री राम भी इस राक्षस को छल पूर्वक मारने का उपक्रम तैयार करते हैं। शत्रुघ्न तनय सुबाहु तथा शूरकेतु को वे लवणपुर का राजा बनाना चाहते हैं। अतः शत्रुघ्न को अपने नाम से अंकित बाण देकर लवणासुर को मारने के लिए भेजते हैं तथा यह आशीर्वाद भी देते हैं कि इस बाण से लवणासुर क्षण मात्र में ही नष्ट हो जायगा, किन्तु श्री राम जी शत्रुघ्न को युद्ध में कतिपय छल का भी आश्रय लेने के लिए भी प्रेरित करते हैं। वे कहते हैं कि हे शत्रुघ्न ! वह लवणासुर घर में त्रिशूल का पूजन करके वन में आखेट के लिए प्रतिदिन जाता है। अतः जब वह शिकार के लिये चला जाय तब तुम उसके द्वार पर जा बैठना तथा उसके आते ही युद्ध प्रारम्भ कर देना ताकि वह त्रिशूल न उठा सके। इस प्रकार तुम इसी बाण से उसका वध करने में सफल हो जाओगे। शत्रुघ्न ने इसी नीति का अनुसरण करके लवणासुर का वध किया तथा वहाँ मथुरा नाम की सुन्दर नगरी बसाकर राजकुमार सुबाहु को वहाँ का राजा नियुक्त कर वापस आये।[1]

इस प्रकार आनंद रामायणकार ने लवणासुर को उसी रूप में बल तथा साहस से युक्त चित्रित किया है जिस रूप में वानरराज बालि को। जिस प्रकार बालि के वध में राम ने छल नीति का प्रयोग किया है उसी प्रकार लवणासुर के संहार में भी वही नीति चित्रित हुई है।

मदनसुन्दरी:

रूप, गुण और भाव हृदय के सर्वाधिक शक्तिमय आकर्षण केन्द्र है। आनन्द रामायणकार ने मदन सुन्दरी के मनोरम चरित्र में इन तीनों की सुनीति त्रिवेणी ~~धारा~~, प्रवाहित की है। मदन सुन्दरी के हृदय में श्रद्धा, भक्ति, भावना, स्वच्छ अनुरक्ति तथा शरीर में अतुलनीय सौन्दर्य का मनोरम

---

1. स तु सम्पूज्य तं शूलं गेहे गच्छति काननम् ।
   अनेनैव बाणेन क्षणादेव मरिष्यति ॥
   आ० रा० 7/6/84 से 87

चित्रण प्रस्तुत हुआ है।

मदन सुन्दरी कांतिपुर नरेश कम्बुकण्ठ की परम रूपवती कन्या है जो शत्रुघ्न तनय सुकेतु की प्राण प्रिय भार्या के रूप में प्रतिष्ठित हुई। महाराज कम्बुकण्ठ श्री राम से द्वेष रखने के कारण उन्हें अपनी कन्या के स्वयंवर में आमंत्रित नहीं करते। यह समाचार मदन सुन्दरी को श्री नारद जी द्वारा ज्ञात होता है। मदन सुन्दरी की हार्दिक अभिलाषा श्री राम की पुत्र वधू बनने की ही है। वह देवर्षि नारद के दर्शन पाकर अपने को धन्य मानती हुई उनका पूजन तथा सत्कार कर उनसे अपनी उत्कृष्ट अभिलाषा की पूर्ति का उपाय पूंछती है।[1]

श्री राम के प्रति उसके हृदय में अगाध भक्ति भावना है। वह उनकी पुत्र वधू बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर पा रही, इसके लिये उसके हृदय में असह्य व्यथा है। वह खिन्नमना, साश्रुनेत्रा, म्लानमुखा, कम्पिताधरा तथा रोमांचितवपु होकर देवर्षि नारद से गद्गद वाणी में भाव भीनी प्रार्थना करती है कि वे उसे राम की पुत्र वधू बनने के लिए किसी युक्ति का निर्देश करें। वह व्यग्रता की अतिशयता से अपना मस्तक नारद जी के श्री चरणों में रखकर रुदन करने लगतीहै।[2]

मदन सुन्दरी कुलांकुश तथा मर्यादा से वेष्टित राजकुमारी है। नारद द्वारा श्री रामके न आने का समाचार सुनकर भी वह पिताजी के सभा मण्डप में वरमाल लेकर पहुंचती है, किन्तु श्री नारद जी की बातों का स्मरण होने के कारण उसका मुख मण्डल कुम्हलाया सा था।[3]

---

1. भक्तां दर्शनाच्च यापिमर्थं परमं मता। आ॰रा॰ 6/8/12
2. ततः सम्प्रार्थयामास नारदं बालिका मुहुः।
   × × ×
   चकार वन्दनं बाला तदा तौ मुनिर प्रबीणा।। आ॰रा॰6/8/23-26
3. किंचिन्म्लानमुखी दुःखारत्स्मरंती नारदोक्तितः। आ॰रा॰6/8/53

इधर श्री नारद जी अयोध्या आकर राजकुमार सुकेतु को समस्त समाचार बतलाकर उसे मदन सुन्दरी के स्वयंवर में भेज देते हैं। स्वयंवर में सुकेतु द्वारा अपना परिचय देने पर मदन सुन्दरी अति प्रसन्न होकर उन्हें नवरत्नमयी वरमाला पहिना देती है।[1]

मदन सुन्दरी में पति के प्रति अपार स्नेह है। राजकुमार सुकेतु द्वारा मदन सुन्दरी का अपहरण करने पर महाराज कम्बुकण्ठ तथा उनके अन्य आगन्तुक सहयोगी महिपाल उसका पीछा करते हैं। वीर सुकेतु मार्ग में रथ रोककर उन सब से युद्ध के लिये तैयार हो जाता है, किन्तु मदन सुन्दरी स्नेहाधिक्य वश अपने पति सुकेतु को युद्ध के लिए मना करती है। तत्पश्चात् विशाल सेना लेकर ही युद्ध करने के लिए विनम्र प्रार्थना करती है। इस प्रकार वह अपने पति-स्नेह तथा पति के क्षत्रिय-धर्म दोनों का ही सुन्दर निर्वाह करती हुई चित्रित हुई है।[2]

मदन सुन्दरी में स्वजन अनुरक्ति भी उच्च सीमा पर प्रतिष्ठित है। सुकेतु को युद्ध में महाराज कम्बुकण्ठ का वध करने को उद्यत देखकर वह अश्रु-पूर्ण नेत्रों से पति सुकेतु को प्रार्थना पूर्वक इस जघन्य कार्य से रोकती है। अपने पिता को इस स्थिति में देखकर वह विक्ल हो गयी, उसका समस्त उत्साह नष्ट हो गया तथा उसका शरीर काँपने लगा। इस प्रकार मदन सुन्दरी में कुटुम्ब वत्सलता की अधिकता है। इसी गुण के कारण वह अपने पिता की रक्षा कर उसे मुक्त करा देती है।[3]

मदन सुन्दरी सुन्दरता की सजीव प्रतिमा है। स्वयंवर में आये हुए समस्त महिपाल उसके सौन्दर्य पर अत्यधिक विमुग्ध हैं। मदन सुन्दरी को न पाकर उन समस्त राजाओं के हृदय खिन्न हो चुके हैं। ये महिपाल इसी हेय

---

1. मुमोच मालां तत्कण्ठे नवरत्नमयीं शुभाम्। आ॰रा॰ 6/8/57
2. शौर्यं मा कुरु नाथैवं तातो राजेन सेनया ।
   युद्धं कुरु सुवीरैस्त्वं सुवचनं प्रभो ॥ आ॰रा॰6/8/61-62
3. मद्वाक्यान्मोच्य सोऽप्यतस्मात्त्वां प्रार्थयाम्यहम् ॥
   आ॰रा॰ 6/8/85

से श्री राम की आज्ञा के विपरीत आचरण करने वाले चिन्तित हुए हैं।[1]

इस प्रकार आनन्द रामायण कार ने मदन सुन्दरी के चरित्र में रूप तथा गुण का मणिकांचन संयोग वर्णित किया है।

<u>गुणवती:</u>

अपने हृदय में भक्ति भाव की दृढ़ता को आत्मसात किये हुए अपनी साधना शक्ति से इष्ट राम की सानुकूलता प्राप्त करने में सहज सक्षम, आत्मबल से अपनी दैहिक कठिनाइयों पर विजय पाने वाली साध्वी गुणवती का चित्रांकन आनन्द रामायणकार ने आदर्श भारतीय नारी के रूप में किया है।

गुणवती मायापुरी के तेजस्वी ब्राह्मण देवशर्मा की इकलौती पुत्री है। देवशर्मा वेद वेदांगपारंगत, अतिथि पूजक तथा सूर्योपासक ब्राह्मण थे जिन्हें वृद्धावस्था में एक मात्र गुणवती नाम की कन्या प्राप्त हुयी। देवशर्मा ने अपनी पुत्री का विवाह चंद्र नाम के शिष्य के साथ कर दिया। एक दिन देवशर्मा तथा चन्द्र दोनों ही कुश तथा समिधा लाने के लिए जंगल गये तथा वहाँ एक विकराल राक्षस के द्वारा मार डाले गये। पितातथा पति की मृत्यु के पश्चात सर्वथा असहाय गुणवती अतिशय दुखित होकर अनेक प्रकार से विलाप करती है।[2] उसकी यह वेदना प्रत्येक सहृदय पाठक की सहानुभूति प्राप्त करने में पूर्ण सक्षम है।

किन्तु भक्ति के द्वारा गुणवती इस भीषण दुख को सहन करने में सक्षम होती है। वह भारतीय संस्कृति की आदर्श अनुचरी है। यद्यपि उसकी आर्थिक स्थिति अभावमय है, तथापि वह घर का समस्त माल-असबाब बेचकर

---

1. स्मृत्वा मदन सुन्दर्या दुःखं चिन्तातुरं पुनः आ.रा. 7/4/103
आज्ञां न पालयामीव तव राघव सत्प्रभो ॥

2. पितृभर्तृज दुःखार्ता विललाप भृशातुरा । आ.रा. 4/6/12

अपनी शक्ति के अनुसार पिता तथा पति की पारलौकिक क्रिया सम्पन्न करती है।[1]

अब उसका जीवन पूर्णतः वैराग्यमय हो जाता है। भिक्षा वृत्ति से वह जीवन यापन करती है। किन्तु भक्ति रता सुमती सत्य-शौच, जितेन्द्रियता आदि गुणों से पूर्ण हो गयी। वह श्रद्धा पूर्वक अनेक व्रतों को रखकर पुराणादि के श्रवण में अपने मन को योजित करती है। इस प्रकार उसका जीवन घोर तपस्यामय बन जाता है।[2]

पुराणों में अयोध्या के तीर्थ-स्नान का महत्व सुनकर वह स्वयं अयोध्या पहुंचती है तथा सरयू की रेती में डेरा डाल कर निवास कर रहे श्री राम के पूजनार्थ पूजा पात्र लेकर उस पटगृह में प्रवेश करती है। वहाँ पर विविध प्रकार के अलंकरणों से युक्त, बन्धुजनों से वेष्टित तथा परिचारकों से सेवित शोभा धाम श्री राम के दर्शन कर वह अपने को कृतकृत्य मानती हुई दण्डवत प्रणाम निवेदित करती है। भगवान राम अपने कर-कमलों से उठाकर उसे अपनी विशिष्ट कृपा का पात्र बनाते हैं। वह विविध प्रकार के उपचारों से श्री राम की पूजा कर उन्हें प्रसन्न करती है।[3]

भगवान राम उसके पूजन-सत्कार से संतुष्ट होकर उसे वर मांगने के लिए कहते हैं।[4]

किन्तु सुमती को अब किसी ऐहिक वस्तु की कामना नहीं है। वह केवल प्रभु श्री राम का सामीप्य लाभ चाहती है। श्री राम के प्रति

---

1. सा गृहोपस्करान्सर्वान्विक्रीय सुकर्म कृत् । आ.रा. 4/8/13
   तयोश्चक्रे यथाशक्ति परलोक क्रियां तदा ।।
2. तस्मिन्नेव पुरे वासं चक्रे प्रव्राजिनी । आ.रा. 4/8/
   x x x
   इत्थं व्रताचरणं सम्यक सा चकारातिभक्तितः ।। 15 से 17
3. तां समुत्थाप्य कृपामत्तया सम्यक् प्रपूजितः । आ.रा. 4/8/36
4. वरं वरय भामिन यत्ते मनसि वर्तते । आ.रा. 4/8/37

उसके हृदय में अपार दास्य भक्ति विद्यमान है। श्री राम से वह केवल इसी वरदान की याचना करती है। उसकी हार्दिक अभिलाषा है कि श्री राम की सहस्त्रों दासियों में उसकी भी गणना हो।[1]

भगवान राम उसे ब्राह्मणी होने के कारण अपनी दासी बनाने में असमर्थता प्रकट करते हैं, किन्तु उसे अगले जन्म में भार्या के रूप में स्वीकार करने का आश्वासन देकर उसे संतुष्ट करते हैं। श्री राम जी ने कहा कि द्वापर युग में मैं कृष्ण रूप में अवतरित होकर तुम्हें सत्यभामा रूप में अपनी भार्या बनाऊंगा। तब तुम द्वारिका में रहकर इच्छानुसार मेरी सेवा कर सकोगी।[2]

श्री राम के वरदान से परम प्रसन्न होकर वह क्षेत्र-स्नान पूर्ण करके हरिद्वार के लिए प्रस्थान करती है। वहाँ गंगा तट पर अपनी शेष आयु समाप्त कर अपने पार्थिव शरीर को त्याग देती है।[3]

वरदान के प्रभाव से जन्मान्तर में गुणवती सत्राजित की पुत्री होकर जन्मी तथा कृष्ण की पत्नी बनकर द्वारिका में निवास का सौभाग्य प्राप्त कर सकी।[4]

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने गुणवती के रूप में एक आदर्श भारतीय नारी का श्रद्धास्पद चित्र प्रस्तुत किया है।

---

1. दास्यः संति तथा मां त्वमंगीकर्तुमिहार्हसि ।

   आ० रा० ४/८/३९

2. सत्यभामेति नाम्ना त्वं भविष्यसि प्रिया मम।

   आ० रा० ४/८/४३

3. सत्वरं स्नान समये त्यक्त्वा प्राणं दिवं गता ।

   आ० रा० ४/८/४६

4. बभूव पत्नी कृष्णस्य द्वापरे द्वारिकापुरी ।

   आ० रा० ४/८/४७

<u>साम्य और वैषम्य :</u>

मानसकार का लक्ष्य लोक नायक राम के लोक पावन चरित्र को लोक मानस के द्वारा अभिनंदित बनाना था। अतः उन्होंने राम तथा राम के रामत्व से अभिभूत समस्त पात्रों में आदर्श की उच्चता स्थिर करने का स्तुत्य प्रयास किया है। उनके समस्त चरित्र अपना निजी व्यक्तित्व लिए हुए है जो अनूठी मौलिकता से युक्त हैं। सत् तथा असत् दोनों ही प्रवृत्तियों को प्रश्रय देने वाले व्यक्तित्व तुलसी की सशक्त लेखिनी द्वारा प्रभावमय बन गये हैं। सत् की ओर प्रवृत्त व्यक्तित्व तथा असत् की ओर प्रवृत्त व्यक्तित्व अपने - अपने क्षेत्र में सीमा पर पहुंचे हुए प्रतीत होते हैं। असत् के ऊपर सत् की विजय का प्रतिपादन करके तुलसी ने चरित्र चित्रण द्वारा सत् का प्रबल समर्थन एवं उसकी ओर प्रवृत्त होने का राजमार्ग सबके लिए प्रशस्त बनाया है। दूसरी ओर आनन्द रामायणकार ने अनेकानेक उपाख्यानों को कथा के अन्तराल में समाहित तो अवश्य किया है किन्तु उनका कोई भी चरित्र अपने प्रभाव की विशिष्ट छाप जन मानस पर छोड़ने में सक्षम नहीं है।

मानस में उच्च मानवीय मूल्यों को स्थिर करने वाले चरित्र—राम, भरत, हनुमान्, सीता तथा कौशल्या आदि अपने आदर्शों के प्रति पूर्ण सक्षम दर्शाये गये हैं। राम लोकमर्यादा, कुटुम्ब वत्सलता, भ्रातृप्रेम भावना, प्रजावत्सलता एवं लोक कल्याण की भावना आदि सभी ऐसी सीमा पर स्थिर दर्शायी गयी हैं कि लोक मानस को विवश होकर उन्हें भगवान मान लेना पड़ता है। भरत का भ्रातृत्व, कौशल्या का मातृत्व, सीता का पत्नीत्व एवं हनुमान का सेवा भाव सर्वथा आदर्श एवं अनुकरणीय है। इस प्रकार मानस का चरित्र चित्रण अत्यन्त प्रभावी है। आनंन्द रामायणकार इस क्षेत्र में शिथिल हैं। उनका मुख्य ध्यान व्यक्ति के चरित्र की ओर न रहकर उसकी चमत्कार पूर्ण गतिविधियों पर केन्द्रित रहा है। अतः ये चरित्र केवल तमाशा मात्र बनकर रह गये हैं। हृदय में स्थायित्व प्राप्त करने की शक्ति का उनमें अभाव है।

—:—:—:—:—:— समाप्त —:—:—:—:—:—

तृतीय अध्याय

[प्रकृति चित्रण]

तृतीय अध्याय

प्रकृति चित्रण

अखिल लोक में अभिराम तत्वों का अन्वेषण और विश्लेषण सहज कवि धर्म है। जो कवि इस धर्म का जितना अधिक निर्वाह कर लेता है, महानता की उतनी ही उच्च सीमा पर उसकी प्रतिष्ठा होती है। प्रत्येक कवि ने इस धर्म के पालन के लिए प्रकृति के मोहक चित्रणों का अवलम्ब लिया है। निसर्ग की अलौकिक शोभा कवि के अंतःकरण को प्रभावित और आन्दोलित करती है। उस शोभा के आलोक में उसका अंतःकरण पवित्र भावों से इतना आलोकित हो उठता है कि वह आलोक वाणी के रूप में अनन्त रमणीयता का विस्तार करता हुआ लोक मानस को भी निर्मल आलोक प्रदान करने में सक्षम हो जाता है।

कवि परम्परा के अनुसार प्रकृति चित्रण आलम्बन और उद्दीपन दो रूपों में प्रस्तुत हुआ है। कतिपय कवियों ने लोक मानस में प्रसुप्त भावों को उद्दीप्त करने के लिये प्रकृति चित्रण का सहारा लिया है। रस विधान को परिपक्व बनाने में यह प्रकृति चित्रण अत्यधिक सहायक सिद्ध हुए हैं। किन्तु ऐसे चित्रण में प्रकृति का रूप गौण हो जाता है। प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता लुप्त हो जाती है। अतः प्रकृति के मूर्धन्य चितेरों ने उद्दीपन के रूप में प्रकृति चित्रण न करके आलम्बन के रूप में प्रकृति की शोभा का भाव पूर्ण चित्रण किया है। मानसकार ने प्रकृति के दोनों प्रकार के रूपों को अपने महाकाव्य में प्रतिष्ठित किया है। मानस के बालकाण्ड में नारद मोह और शिव-विवाह के प्रसंग में मायावी कामदेव द्वारा विस्तीर्ण की गयी वासन्ती सुषमा उद्दीपन विभाव की भूमिका के रूप में है।[1]

---

1. (क) प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। कुसुमित नव तरु राजि बिराजा॥
बन उपबन बापिका तड़ागा। परम सुभग सब दिसा बिभागा॥
जहं तहं जनु उमगत अनुरागा। देखि मुयहुं मन मनसिज जागा॥
रा.च.मा. 1/85 6,7,8

(ख) कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा॥
चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। काम कृसानु बढ़ावनि हारी॥
रा.च.मा. 1/125/2,3

क्रोध से सद्भावों की क्षति भी हो जाती है। वर्षा ऋतु ने भूमि की ऐसी ही दुर्गति कर दी है। परोपकारी पुरुष का विनम्र सबको सुख पहुंचाते हुए स्वयं सम्मानित बनता है। शस्य श्यामलाम भूमि इस तथ्य का ही संकेत दे रही है। वर्षा ऋतु में जल के वेग से क्यारियों का विघटन नियंत्रण से मुक्त नारी के विकृत हो जाने का संकेत लिये हुए हैं।[1] कृषकों की निराई से खेतों की सुषमा अत्यन्त रमणीक रूप धारण कर लेती है, ज्ञानी पुरुष मनोविकारों से शून्य होने पर इसी स्थिति का आभास देता है। भक्ति भाव से भरा हुआ अंत:करण ऐहिक कामनाओं से मुक्त होजाता है। वर्षा से अनुप्लावित ऊसर भूमि इस तथ्य को प्रमाणित करती है।[2] वर्षा की पोषक वृत्ति ने अखिल लोक को असंख्य जीवजन्तुओं से परिपूर्ण कर दिया है। सुशासक के राज्य में प्रजा की प्रगति इससे सूचित है। ज्ञानकी उद्भूति से इन्द्रियां विषयों से पराङ्मुख होकर अपने निज लक्ष्य की ओर गतिशील होती हैं। वर्षा की ऊबड़-खाबड़ गलियों ने पथिक वृन्दों के पंथों को अवरुद्ध करके इस महत तथ्य को स्पष्ट किया है। वर्षा की प्रबल पवन में मेघों का विलुप्त होना परिवार के अन्तराल में कुपुत्र के द्वारा विनष्ट होने वाले सद्धर्म की स्थिति दर्शाता है। ज्ञान की विनष्टि और उत्पत्ति कुसंग और सुसंग जन्य है। वर्षा ऋतु में घनघोर अंधकार एवं कभी सूर्य का दर्शन इसी तथ्य का उद्घोष कर रहा है।[3]

---

1. महावृष्टि चलि फूटि कियारीं।
   जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारीं।। रा.च.मा. 4/14/7

2. ऊसर बरषइ तृन नहिं जामा। रा.च.मा. 4/14/10
   जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा।।

3. कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
   जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं ।।
   कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
   बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग ।।

   रा.च.मा. 4/15"क"एवं"ख"

मानसकार ने वर्षा वर्णन के समान ही शरदी सुषमा के सरस चित्रों में प्रकृति के नैतिक मूल्यों का संकेत देने वाले सजीव चित्र प्रस्तुत किये हैं। अगस्त नक्षत्र के उदय के साथ ही शरदी सुषमा निखार लेने लगती है। मार्ग अवरोध उत्पन्न करने वाली पंक राशि का शोषण पूर्णमेव हो जाता है। मानव अंतःकरण के पथ को सद्भावों के पथिकों के लिए दुर्गम बना देने में लोभ की भूमिका वही है जो पथिकों के लिए सामान्य पथ दुर्गम बनाने में पंक की भूमिका है। शरदागम के अभिनन्दन कर्ता अगस्त नक्षत्र का उदय पुष्कल पंक का शोषण करके मार्ग को प्रशस्त करता है। मानव-हृदय में उदित संतोष का भाव सद्वृत्तियों के पंथ को दुर्गम बनाने वाले अंतःकरण के लोभ पंक को तिरोहित कर सद्वृत्तियों का उदात्त लक्ष्य की ओर अग्रसर होने में सक्षम बनाता है।[1] संतों के अंतःकरण की भांति शरदागम पर जलाशयों की जलराशि निर्मल रूप में दर्शित होने लगती है। जिस प्रकार अंतर्वृत्तियों में लिपटा हुआ मनोविकार जन्य मद व मोह जब तक अपनी स्थिति बनाये रहता है तब तक हृदय कपट व दम्भ की मलिनता से आकुल रहता है। मद और मोह की इति श्री के पश्चात अंतःकरण पवित्र भावों से समावृत हो उठता है। शारदी जलाशय अपनी निर्मलता में उन्हीं संत हृदयों के प्रति रूप हैं।[2] ज्ञानोदय पर राग और द्वेष की संकीर्णतायें समाप्त हो जाती हैं। भावना लोक कल्याण कारिणी रूप ग्रहण कर लेती है। शारदीय सर सरिताओं का विमल सलिल क्रमशः न्यूनता की ओर प्रवृत्त होकर इसी तथ्य की विवेचना करता है।

---

1. उदित अगस्ति पंथ जल सोषा ।
   जिमि लोभहि सोषइ संतोषा ।।

   रा०च०मा० 4/15/3

2. सरिता सर निर्मल जल सोहा।
   संत हृदय जस गत मद मोहा ।।

   रा०च०मा० 4/15/4

3. रस रस सूख सरित सर पानी ।
   ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी।।

   रा०च०मा० 4/15/5

समय की सानुकूलता सुकृतों को फलीभूत करती है। निर्मल ऋतु के समागम में खंजनों का शुभागमन इस तथ्य का ही द्योतक है। नीतिज्ञ नरेश के सुशासन की स्थिति का दर्शन पंक तथा रेणु से रहित शारदीय भू-भाग में समाहित है।[1] गृहस्थ विवेक शून्य होने पर आर्थिक अभावों में अशांति का अनुभव करता है। शरद ऋतु में जलाशयों में जल की न्यूनता से विकल मीन-वर्ग इस तथ्य का ही प्रतीक है। वर्षा कालीन मेघों के सघन जाल से मुक्त निर्मल गगन मण्डल की शोभा समस्त सांसारिक आशाओं से विमुक्त ईश्वर की भक्ति के प्रति आस्थावान अंतःकरणों की झाँकी प्रस्तुत करती है।[2] कदा-कदा मन्द मंद होने वाली शरद कालीन वर्षा ईश्वर के रागात्मक भावों से ओत-प्रोत अंतःकरणों की विरलता की प्रतीक है।[3] शारदी जल शोषण की प्रक्रिया से अप्रभावित अगाध जल राशि से सम्पन्न जलाशयों में चिदानंद व चिरानंद की अनुभूति लेती हुई मछलियाँ ईश्वर की शरण में प्रस्तुत शरणागत की भाँति सर्वसुखों से सम्पन्न व सर्व संकटों से मुक्त हैं।[4] सगुण उपासना के प्रति अपनी गहरी आस्थाएं समर्पित करने वाले मानसकार ने शारदी जलाशयों में विकसित सरसिज समूहों से होने वाली शोभा की अभिवृद्धि को निर्गुण ब्रह्म के सगुण रूप में प्रस्तुत होने की स्थिति की समरूपता में बाँधा है।[5]

---

1. पंक न रेनु सोह असि धरनी ।
   नीति निपुन नृप कै जसि करनी ॥ — रा० च० मा० 4/15/7
2. बिनु घन निर्मल सोह अकासा ।
   हरिजन इव परिहरि सब आसा ॥ — रा० च० मा० 4/15/9
3. कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी ।
   कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी ॥ — रा० च० मा० 4/15/10
4. सुखी मीन जे नीर अगाधा ।
   जिमि हरि सरन न एकउ बाधा ॥ — रा० च० मा० 4/16/1
5. फूलें कमल सोह सर कैसा ।
   निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा ॥ — रा० च० मा० 4/16/2

शरदागम से रात्रि की सुषमा शरद चंद्रिका की प्रभा से अत्यन्त रमणीय दर्शित होती है। किन्तु निशा काल के चिर अभिलाषित, अपनी विमुक्त स्थिति से व्यथित एक चाक का दुख पर विभव से प्रपीड़ित दुर्जनों के दुख के समान है।[1] स्वाति जल-कण की अभिलाषा चातक अपने अभीष्ट की अप्राप्ति से इस अत्यन्त रमणीय ऋतु में भी दुखी दर्शित होता है। इसकी स्थिति सतत दुखभागी शिव द्रोही के तुल्य है।[2] दिन में सूर्य की प्रखरता से जिस तपन का अनुभव होता है। निशा काल की शारदी चंद्रिका में वह तपन पूर्ण रूपेण अंतर्हित हो जाती है। संत पुरुषों के समागम से अघ- राशियों के निर्मूलन की क्रिया का आभास इस शारदी कार्यक्रम में अंतर्हित है।[3] शरद चंद्र की मनोरम सुषमा के अवलोकन में निर्निमेष चकोर वृन्द ईश्वर के साक्षात्कार में भाव मग्न भक्त जनों के तुल्य हैं। वर्षा कालीन जीव संकुलता से शरदागम पर भूमि की विमुक्ति सद्गुरु की प्राप्ति पर अंतःकरण की संशय विमुक्ति के तुल्य है।[4]

कविता के विभिन्न तत्वों में बुद्धि तत्व की अपनी निजी भूमिका है। यद्यपि कवि अपने हृदय में विभिन्न दृश्यों को बिम्ब रूप में आत्मसात करके विभिन्न कल्पनाओं के द्वारा उसे आकर्षित और अति रंजित बनाता है। अतः कविता के उद्घाटन के लिए अभिनय सोपान के रूप में भाव और कल्पना तत्वों का सर्वोच्च आसन है। किन्तु बुद्धि तत्व के बिना भाव और कल्पना तत्वों को विशृंखल रहना पड़ता है। नीति कथन में मात्र

---

1. एक चाक मन दुख निसि पेखी।
   जिमि दुर्जन पर संपति देखी ।। — रा.च.मा. 4/16/4
2. चातक रटत तृषा अति ओही ।
   जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही।। — रा.च.मा. 4/16/5
3. सरदातपनिसि ससि अपहरई।
   संत दरस जिमि पातक टरई।। — रा.च.मा. 4/16/6
4. भूमि जीव संकुल रहे, गए सरद रितु पाइ ।
   सद्गुरु मिलें जाहिं जिमि, संसय भ्रम समुदाइ।।

   रा.च.मा. 4/17

बुद्धि तत्व ही सहयोगी है। इसीलिये नीति काव्यों को साहित्य में न्यूनतम मान्यता दी गयी है। कितने ही नीति सम्बन्धी ग्रन्थ संतों ने लिखे किन्तु वे काव्य की कोटि तक या तो पहुंच नहीं सके अथवा उनकी पहुंच अधूरी रह गयी। काव्य रसिक अंतःकरण की रस-पिपासा की तृप्ति हेतु ये नीति काव्य नहीं बन सके। किन्तु हृदय और मन की समन्विति तुलसी की नीत्युक्तियों में स्पष्ट लक्षित है। प्रकृति के बिम्बों का रोचक आश्रय इन नीति कथनों में रसार्द्रता को आन्दोलित कर देता है। प्राकृतिक दृष्टान्तों से नीति कथनों की काया ही बदल जाती है। उनकी रूक्षता स्वतः सरसता में परिवर्तित हो जाती है। तुलसी के महत् व्यक्तित्व का यह मौलिक उपहार है जो हृदय-हृदय को भाव-मग्न किये हुए है। उपर्युक्त नीति-कथनों की भाव - पूर्ण चौपाइयां एवं दोहे आज जन-जन के कण्ठहार बने हुए हैं। और प्रकृति का अवलम्बन लेकर किये गये ये नीति कथन प्रेरणा की प्रबलतम शक्ति से सम्पन्न हैं। जहाँ प्रकृति के इन बिम्बों से जीवन के विभिन्न बिम्ब समरूपता रखते हुए चित्रित हुए हैं वहाँ तो सहृदय पाठक के काव्यानंद की थाह मापना भी कठिन हो जाता है। वस्तुतः प्रकृति के माध्यम से किये गये उनके नीति कथन हमें नैतिक बल प्रदान करने हेतु मानसकार द्वारा ऐसे आत्म शक्ति के स्रोत के रूप में चित्रित किये गये हैं जो अपनी शाश्वत प्रभावोत्पादक शक्ति के द्वारा चिर नवीन रहेंगे।

कवि काव्य के बहिरंग की साज सज्जा के निमित्त भाषा, छन्द और शब्द एवं अर्थगत रमणीयता के प्रतिपादक विभिन्न अलंकारों की योजना करता है। बहिरंग की रमणीयता में चार-चांद लगाने का प्रमुख माध्यम अलंकार विधान है। अलंकार विधान में कवि प्रकृति के विभिन्न अवयवों का सहयोग लेकर उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि समता मूलक तथा असंगति, प्रतीप, विरोधाभास आदि विषमता मूलक अर्थगत अलंकारों का सुन्दर समावेश करके अपने काव्य को रमणीय बनाता है। मानसकार ने भी अपनी अलंकार योजना में जहाँ अनेकानेक विभिन्न वस्तुओं, कार्य व्यापारों प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से अत्यन्त आकर्षक अलंकारों की योजना अपने काव्य में की है। तुलसी का सर्वाधिक प्रिय अलंकार रूपक है। रूपक अलंकार की

योजना में जहाँ उन्होंने अन्य अनेक स्थितियों कार्य व्यापारों और वस्तुओं का सहयोग लिया है, वहीं उन्होंने प्रकृति के मनोमुग्धकारी चित्रों के माध्यम से रूपक की सुन्दर योजना की है।

धनुष तोड़ने के लिये मंच पर पहुँचने वाले राम के अभिराम रूप की रूपक के माध्यम से अत्यन्त मनोरम झाँकी प्रस्तुत हुई है। इस झाँकी के माध्यम से पाठकों के समक्ष प्रातः कालीन सुषमा की मनोरमता प्रस्तुत होती है। मंच पर पहुँचने वाले राम उदय गिरि की ओट में निकलने वाले बाल रवि की तरह अपनी शोभा से सभी के अंतःकरण में प्राकृतिक गुदगुदी उत्पन्न करते हैं, सरोवरों के कमलों की तरह संत विहँस उठते हैं, [illegible] और कमलों के अंतराल में रात्रि में विश्राम लेने वाले भ्रमरों की तरह संतों नेत्र उत्फुल्ल हो उठते हैं।[1]

राम और सीता के रूप की गरिमा का संकेत पाणिग्रहण के समय सिन्दूर वन्दन के कार्यक्रम में बड़े सुन्दर ढंग से मिलता है। रूपकातिशयोक्ति अलंकार के माध्यम से होने वाला यह चित्रण उन दोनों के असीम सौन्दर्य का बोध अंतः नेत्रों को प्रदान करता है। उपमेय को हमारे चिन्तन का विषय बनाकर उपमानों की योजना से निर्मित होने वाली रूप सुषमा अत्यन्त मनोमुग्धकारी है। [illegible] अमृत के प्रलोभन से कमल में लाल पराग भरकर सुधाकर का अभिषेक करता है। इस वर्णन के द्वारा राम की विशाल और सुडौल भुजाएँ, सुन्दर हाथ तथा सीता का चन्द्रमुख पाठक के सौन्दर्य राग को अपूर्व तुष्टि प्रदान करते हैं।

वियोगी राम के स्मृति पटल में सीता का हृदय ग्राही सौन्दर्य उपमानों के माध्यम से अत्यन्त सरस बन पड़ा है। सीता का अंग प्रत्यंग वन प्रांगण में फैले हुए प्राकृतिक जगत में राम को दर्शित होता है। खंजन,

---

1. उदित उदय गिरि मंच पर रघुबर बाल पतंग।
   बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग ॥
   रा. च. मा. 1/254
2. अरुन पराग जलज भरि नीके
   ससिहि भूष अहि लोभ अमी के।।
   रा. च. मा. 1/324/9

तोता, कबूतर, हरिण, मछली, भौंरे, कोकिल आदि जीव सीता के वियोग से व्यथित राम को स्वच्छन्द विचरण करते हुए दृष्टि गोचरित हो रहे हैं।[1] प्रस्तुत उपमान क्रमशः नेत्र, नासिका, ग्रीवा तथा स्वर की तुलना में प्रस्तुत होते हैं। किन्तु सीता के अंग-प्रत्यंगों की तुलना में अपने को पतंगा पाकर ये सभी छिपे रहते थे। आज सीता की अनुपस्थिति में ये निःसंकोच विचरण कर रहे हैं मानों इन्हें स्वराज्य प्राप्त हो गया हो।

प्रस्तुत में अप्रस्तुत के आरोपण की लम्बी प्रक्रिया एक तारतम्य में विभिन्न कल्पनाओं से रंजित एक धागे में गुथे हुए विभिन्न रंगों के कुसुमों की भाँति मोहक इस महा काव्य में स्थान स्थान पर मिलती है। राम वनवास के लिए कृत संकल्पकैकेयी अपनी माँग के साथ ही महाराज की सद्योचित की अभिलाषिनी है। किन्तु अपनी कामना के विपरीत महाराज की मुख रेखाएं उसे कदापि रुचिकर नहीं लगती अपितु उसके क्रोध को अत्यन्त भयानक बना देती है। गोस्वामी जी ने कैकेयी की इस कोप भावना को एक नदी के रूप में चित्रित किया है। इस सरिता का उद्गम कैकेयी के पापाचरण का दृढ़ और विशाल पर्वत है। क्रोध के भाव जल सदृश इस सरिता के अंतराल में तरंगित है। कैकेयी के द्वारा मांगे गये दोनों वरदानों के अंतराल में प्रवाहमान यह कोप भावना की नदी अपनी अविवेक पूर्ण हठ की धारा के सदृश पाकर और अधिक वेगवती हो जाती है तथा जिस प्रकार से कुधारा सों के योग से सरिता की भयंकरता

---

1. खंजन सुक कपोत मृग मीना ।
   मधुप निकर कोकिला प्रवीना ॥
   कुंदकली दाड़िम दामिनी ।
   कमल सरद ससि अहि भामिनी ॥ रा.च.मा. 3/29/10 से 14
   बरुन पास मनोज धनु हंसा ।
   गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ॥
   श्री फल कनक कदलि हरषाहीं ।
   नेकु न संक सकुच मन माहीं ॥
   सुनु जानकी तोहि बिनु आजू ।
   हरषे सकल पाइ जनु राजू ॥

और भीषिकट रूप लेती है उसी प्रकार कुबरी के वचन रानी की इस कोप भावना की नदी को अधिक प्रचण्ड रूप प्रदान कर देते हैं। इस कोप-सरिता के वेग से प्रताड़ित महाराज दशरथ तटवर्ती वृक्ष की सी स्थिति में हैं।[1]

इस प्रकार जिस सरिता के कलकल निनाद से वन स्थली संगीतमय रहती है, मानसकार ने उसे एक भयानक रूप देकर प्रकृति चित्रण में अपनी मौलिक सूझ योजित की है।

युद्ध के चित्रण में भी इसी प्रकार के लम्बे रूपकों का प्रयोग मानस में हुआ है। राम रावण के द्वन्द्व युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व युद्ध के लिये प्रस्थित वानरी सेना समूह को गरजते और ललकारते हुए गोस्वामी जी ने प्रलय कालीन मेघों की भाँति भयानक रूप में चित्रित किया है। इस स्थल पर युद्ध का दृश्य पावसकी गरिमा से सम्पन्न दर्शाया गया है। चमकती हुई वीरों की तलवारें दमकती हुयी दामिनी के रूप में प्रस्तुत हुई है। रण प्रांगण में सेना के विभिन्न अंग अपनी अपनी ध्वनि में गर्जन-तर्जन को समाहित किये हुए गरजते हुये मेघों के रूप में दर्शाये गये हैं। मगन मत्त होकर युद्ध में प्रवृत्त वानरों की पुच्छ समूहों को वर्षा ऋतु में आकाश में उदित इन्द्र धनुषों की सुन्दर और सटीक उपमा से बाँधा गया है। सेना के आधिक्य से गगन चुम्बनी धूल धारा को वर्षा कालीन जलधारा के रूप में चित्रित किया गया है। वीर-वरों की बाण-वृष्टि वर्षा की बूदों

---

1. अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी।
   मानहुं रोष तरंगिनि बाढ़ी ॥
   पाप पहार प्रगट भई सोई ।
   भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥
   दोउ बर कूल कठिन हठ धारा ।
   भवँर कूबरी बचन प्रचारा ॥
   ढाहत भूप रूप तरु मूला ।
   चली बिपति बारिधि अनुकूला ॥

   रा॰च॰मा॰ 2/33/1 से 4 तक

के रूप में प्रस्तुत हुयी है। विशाल पर्वत समूहों का प्रहार पावस के पवि-प्रहार का रूप लिये हुये हैं।[1]

इस प्रकार श्रृंगार की अनन्त झाँकियां प्रस्तुत करने वाली बहारों की वर्षा ऋतु को यु. के प्रसंग में रूप का माध्यम देकर प्रस्तुत करना तुलसी के प्रकृति चित्रण की मौलिक सूझ है।

रूपक के अतिरिक्त दूसरे अनेक अलंकारों की व्यवस्था गोस्वामी जी ने प्रकृति चित्रण के माध्यम से की है। किन्तु ऐसे अलंकारों के उदाहरण छुट-पुट ही प्राप्त होते हैं। गुरु-पूजा के निमित्त महाराज जनक के उद्यान से पुष्प लेने हेतु आगत राम लक्ष्मण लताओं के झुरमुट में अंतर्हित हो जाते हैं। पुष्प चयनोपरान्त लताओं के झुरमुटों से निकलते हुए दोनों भाइयों की शोभा जलद पटल को विलग करके निकले हुए निर्मल युगल सुधांशुओं के सदृश होती है। मानसकार " लताओं के झुरमुट" उपमेय में "जलद पटल" उपमान की तथा " दोनों भ्रात" उपमेय से " युगल विधु" उपमान की संभावना द्वारा उत्प्रेक्षा अलंकार की पुष्टि करता है।[2]

---

1. देखि चले सन्मुख कपि भट्टा ।
प्रलय काल के जनु घन घट्टा ।।
बहु कृपान तरवारि चमंकहिं ।
जनु दहँ दिसि दामिनी दमंकहिं ।।
गज रथ तुरग चिकार कठोरा । रा.च.मा. 6/86/ 2 से 7
गर्जहिं मनहुँ बलाहक घोरा ।।
कपि लंगूर बिपुल नभ छाए ।
मनहुँ इन्द्र धनु उए सुहाए ।।
उठइ धूरि मानहुँ जल धारा ।
बान बुंद भै वृष्टि अपारा ।।
दुहुँ दिसि पर्वत करहिं प्रहारा ।
बज्र पात जनु बारहिं बारा ।।

2. लता भवन ते प्रगट भे,
तेहि अवसर दोउ भाई ।।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु, रा.च.मा. 1/232
जलद पटल बिलगाई ।।

इसी प्रकार अनेक स्थलों पर प्रकृति को मानवीकृत करके अति सुन्दर मानवीकरण प्रस्तुत हुए हैं। बालकाण्ड में काम-दहन प्रसंग में काम की प्रभाव पूर्ण शक्ति के आधिपत्य का चित्रण करने के लिये लता और विटपों में, सरोवर और सरिताओं में मानव मन की भाँति कामोत्तेजना को तरंगित दिखाया गया है।[3]

इस तरह कवि ने अपने काव्य के अलंकरण में प्रकृति चित्रों का सहयोग लेकर अलंकारों की रमणीकता को द्विगुणित किया है। वस्तुतः प्रकृति चित्रण के माध्यम से कवि ने अलंकारों में रमणीकता की योजना को अत्यन्त मोहक स्वरूप प्रदान किया है।

प्रकृति चित्रण का सर्वाधिक मोहक रूप कवि के द्वारा स्वतंत्र रूप में अनेक कार्य व्यापारों में व्यस्त प्रकृति की बाँकी झाँकी के द्वारा प्रस्तुत हुआ है। नारद मोह प्रसंग के प्रारम्भ में नारद की साधना भूमि का मोहक चित्रण हृदय को भाव-विभोर कर देता है। हिमगिरि की पुनीत कन्दरा के समीप प्रवाहमान गंगा की निर्मल धारा देवर्षि को साधना की प्रेरणा प्रदान करती हुयी चित्रित हुई है।[2]

राम जन्म की आनन्दमयी बेला में प्रकृति का अतीव सुरम्य रूप में परिवर्तित हो जाना बहुत ही स्वाभाविक बन पड़ा है। मध्याह्न की शांत मुद्रा अत्यधिक रमणीक होती है। ऐसे ही पावन काल में लोक पावन राम की उद्भूति मंगलमयी क्यों न हो। त्रिगुणात्मक पवन का अत्यन्त रमणीक प्रवाह, बनाली का पुष्प-पुंजों से सरस अलंकरण, पर्वतों का मणियों से सम्पन्न

---

1. सबके हृदय मदन अभिलाषा ।
   लता निहारि नवहिं तरु साखा ॥
   नदी उमगि अंबुधि कहुं धाई ।
   संगम करहिं तलाव तलाई ॥
   रा. च. मा. 1/84/1,2

2. हिमगिरि गुहा एक अति पावनि।
   बह समीप सुरसरी सुहावनि ॥
   रा. च. मा. 1/124/1

तथा सरिताओं की सुधा धारा का प्रवहण राम-जन्म के अनुकूल वातावरण का निर्माण करने में अत्यन्त सटीक सिद्ध हुए हैं।[1]

आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण की मनोरम झांकी महाराज जनक की पुष्पवाटिका के सौन्दर्य अंकन में प्रस्तुत हुई है। गुरु विश्वामित्र जी के आदेश से पुष्प चयन करने हेतु अनुज लक्ष्मण सहित श्री राम महाराज जनक के उद्यान में प्रवेश करके अलौकिक आनन्द का अनुभव करते हैं। मन मोहक विटपावली एवं लोनी लताओं से सुसज्जित उद्यान की सुषमा को संवर्धित कर रहे हैं। पुष्पों व फलों से सम्पन्न विटप अपनी शालीनता सम्पन्नता व सुन्दरता से कल्पद्रुम की शालीनता को भी लज्जित करती है।[2] प्रकृति के उस मनोरम परिवेश में मोद मग्न विहगों का नृत्य और कलरव उद्यान को नवीनता प्रदान करता है।[3] उद्यान के मध्य में स्थित सरोवर की सुन्दरता अवर्णनीय है। जल की निर्मलता, कंजों की मंजुता, जल-विहगों का कलरव एवं मधुपों का गुंजन तड़ाग की रमणीयता को द्विगुणित कर देते हैं। इस प्रकार तुलसी ने अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन के द्वारा प्रकृति का यथा तथ्य चित्रण प्रस्तुत रूप में किया है।

सीता के अन्वेषण में तत्पर राम व लक्ष्मण भक्ति भावना से परिपूर्ण अंतःकरण वाली शबरी के संकेत पर किष्किन्धापुरी के रमणीक सरोवर के निकट पहुंचकर वहाँ के प्राकृतिक विभव से आत्म शांति की अनुभूति लेते हैं। सरोवर के अंतराल में विकसित कंजों की मोहक मुस्कान, गुंजरित भृंगों का मधु गीत, जल कुक्कुट एवं हंसों का मधुर बोल, अतीव भावपूर्ण रमणीकता के प्रतिपादक हैं।[4]

---

1. मध्य दिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक बिश्रामा।।
   सीतल मंद सुरभि बह बाऊ। हरषित सुर संतन मन चाऊ।।
   बन कुसुमित गिरिगन मनि आरा। स्रवहिं सकल सरिता मृतधारा।।
   रा० च० मा० 1/190/2, 3, 4
2. लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना।।
   रा० च० मा० 1/126/4
3. चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहग नटत कल मोरा।।
   रा० च० मा० 1/126/6
4. बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा।।
   बोलत जलकुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा।।
   रा० च० मा० 3/39/1, 2

सरोवर के निकटवर्ती प्राकृतिक वातावरण दर्शनीय है। फल-फूलों से सम्पन्न चम्पक, बकुल, कदम्ब, तमाल, पाटल, पनस, परास और रसाल के विटप पुंजों में प्रकृति की माधुरी का आह्लादकारी आभास मिलता है।[1] ऐसे सुरम्य सुस्थल में त्रिगुणात्मक पवन का प्रवाह व कोकिल का कमनीय कूजन अत्यन्त स्वाभाविक है।[2] मानसकार के इष्ट श्री राम इस प्राकृतिक सुषमा से प्रभावित होकर आत्मिक शांति का अनुभव करते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि मानसकार की प्रवृत्ति प्रकृति से तादात्म्य करने में उतनी लीन नहीं अनुभव होती है जितनी अपने आराध्य की महिमा के वर्णन में लीन है। उनकी यह प्रवृत्ति भक्ति-काल की सामान्य प्रवृत्ति है। महाकाव्य की परम्परा को निभाने के लिये ही उनकी भावना प्रकृति के चित्रणों में प्रवृत्त हुई है। अन्यथा प्रकृति के वर्णन के प्रति उनका कोई विशेष ध्यान नहीं जान पड़ता है।

डा० राम प्रकाश अग्रवाल के अनुसार -

" केवल अपने काव्य संबंधी विशिष्ट दृष्टिकोण के कारण ही उन्होंने प्रकृति की उपेक्षा की है और उसे अपने काव्य में यथेष्ट स्थान प्रदान नहीं किया है।[3]

---

1. चंपक बकुल कदंब तमाला ।
   पाटल पनस परास रसाला ॥
   नव पल्लव कुसुमित तरु नाना।
   चंचरीक पटली कर गाना ॥

   रा० च० मा० 3/39/6 व 7

2. सीतल मंद सुगंध सुभाऊ ।
   संतत बहइ मनोहर बाऊ ॥
   कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं ।
   सुनि रव सरस ध्यान मुनि हरहीं ॥

   रा० च० मा० 3/39/ 8 व 9

3. वाल्मीकि और तुलसी- पृष्ठ -288

अपने इष्ट के शील, शक्ति और सौन्दर्य के निरूपण में रत उनकी भावना प्रकृति की मनोरमता में अधिक नहीं रम सकी। " सीय राम मैं सब जग जानी" को उन्होंने मान्यता दी है। अत: उन्हीं के महिमार्णव में उनकी भावना निमग्न अनुभव होती है। यह अकाट्य तथ्य है कि यत् किंचित प्रकृति के सौन्दर्य की संस्तुति में उन्होंने लिखा, वह अपने आप में पूर्ण है। वस्तुत: उनका प्रकृति चित्रण अत्यन्त सरस, मार्मिक एवं सटीक है।

आनन्द रामायण में प्रकृति चित्रण :

आनन्द रामायण में प्रकृति चित्रण बहुत कम हुआ है परन्तु जितना हुआ है वह स्वतंत्र रूप में हुआ है। तुलसी को चित्रकूट से प्रेम है पर केवल "राम पद अंकित अवनि" होने के कारण। गंगा और यमुना की लहरें मानसकार को स्वतंत्र रूप से आकृष्ट नहीं करतीं अपितु विष्णु से संबंधित होने के कारण ही वह इन के प्रति आकृष्ट होता है। सेतुबंध के समय तुलसी का ध्यान सागर की उन्नत लहरों पर न जाकर प्रभु-दर्शन के लिये आये हुए जलचरों की ओर जाता है। इसके विपरीत आनन्द रामायणकार ने अपने काव्य में प्रकृति का सन्निवेश बहुत कुछ भिन्न पद्धति से किया है।

प्रकृति का स्वतंत्र वर्णन करने के लिये कवि ने " जन्म काण्ड" में श्री राम व सीता के उपवन-विहार की योजना की है। इस प्रसंग में प्रकृति चित्रण की जैसी बहुलता, विविधता तथा व्यापकता एवं सजीवता है, वह मानस में अप्राप्य है। उपवन में लगे हुए रसाल तथा अशोक वृक्षों का वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि रसाल के वृक्ष वास्तव में रस के आलय तथा अशोक के वृक्ष शोक को दूर करने वाले थे। इनके साथ ही ताल, तमाल, हिन्ताल और साल के वृक्ष भी सुशोभित थे -[1]

---

1. रसालयं रसालैस्तैरशोकै: शोकवारणम् ।
   तालैस्तमालैर्हिन्तालै: सालै: सर्वत्र शोभितम् ।।

   आ॰रा॰ 5/1/47

उपवन में लगे हुए सुन्दर रंग वाले नारंगी तथा केले के वृक्षों में आनन्द रामायणकार ने रंग मण्डप की शोभा के दर्शन किए हैं-[1]

वायु के झोंकों से केले के पत्र लहलहा रहे हैं। इन मन्दान्दोलित कदली-पत्रों में आनन्द रामायणकार ने "थके हुए बटोहियों को हाथ के संकेत से विश्राम करने के लिये बुलाने" की मनोरम कल्पना की है-[2]

उपवन में लगे हुए अनार के वृक्ष फलों से लदे हुए हैं। अनार के पके हुए फल फट जाते हैं। इन फलों का बड़ा ही चित्ताकर्षक वर्णन आनन्द रामायणकार ने किया है। कवि का प्रकृति प्रेमी हृदय इन फलों को देखकर कल्पना कर बैठता है कि ये फल अपना हृदय फाड़कर हार्दिक प्रेम प्रदर्शित कर रहे हैं-[3]

असंख्य फल धारण किये हुए गूलर के वृहद वृक्ष में कवि ने करोड़ों ब्रह्माण्डों को धारण किये हुए साक्षात् अनन्त भगवान के दर्शन किये हैं।[4] गूलर के फल में अनन्त छोटे-छोटे जीव निवास करते हैं। इसी प्रकार हरेक ब्रह्माण्ड में भी अनंत जीवों का निवास है। जिस प्रकार गूलर का एक वृक्ष अनेक फल धारण करता है उसी प्रकार परमात्मा के एक एक रोम में अनेक ब्रह्माण्डों की कल्पना की गयी है

रोम-रोम प्रति लागे,
कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड ।"

---

1. सुधाफल रम्भारंगिरंभाभिः परिशोभितम्
सुरंगैरपि नारिंगै रंगमण्डप परिष्कृतं॥ — आ. रा. 5/1/50

2. मन्दान्दोलित कर्पूर कदलीदल संज्ञया ।
विश्रामाय आपन्नानाहूयंतमिवाध्वगान् ॥ — आ. रा. 5/1/51

3. विदीर्णदाडिमैः स्वांतं दर्शयन्तमुदारवत् ॥
आ. रा. 5/1/53

4. उदुंबरैरपरैर नंतफल शालिभिः ।
ब्रह्माण्ड कोटि बिभ्रन्तमनंतमिव सर्वतः॥
आ. रा. 5/1/54

चम्पक के वृक्ष में उपवन की नाक की कल्पना तथा पलाश के पुष्प में तोते की नाककी कल्पना कितनी सहज एवं स्वाभाविक बन पड़ी है-[1]

नमेरु के ऊँचे ऊँचे वृक्ष कवि को सुमेरु गिरि के उच्च शिखरों की भाँति प्रतीत होते हैं। राजादन के वृक्षों द्वारा निर्मित कुरुट कामी पुरुषों को मदन-भवन सदृश प्रतीत होते हैं। ऐसी मनोहारी कल्पना सर्वथा अभिनन्दनीय है।[2]

कुटज वृक्षों श्वेत रंग के गुच्छे निकलते हैं। उपवन में लगे हुए ये कुटज वृक्ष ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे कलहंस-समूह विराजमान हो। पवन-वश करदि, करीर, कंजे, कदंब आदि के विशाल शाखाओं वाले वृक्षों में सहस्रों हाथ उठाये हुए याचकों की कल्पना कितनी हृदयाह्लादकारिणी है -[3]

राज चम्पक तथा कोरैया के वृक्षों में आरती जैसी छवि विद्यमान है। आनन्द रामायणकार की कल्पना में ये वृक्ष इस उपवन की आरती उतारते हुए प्रतीत होते हैं। फूलों से लदे हुए तेमर के वृक्षों की शोभा के समक्ष स्वर्ण-वन की शोभा भी फीकी पड़ जाती है। टपकते हुए महुए के फूलों को देखकर कवि कल्पना करता है कि मानों भगवान शंकर ही पृथ्वी का रूप धारण कर अपने ही हाथ से अपने ऊपर मोतियों की वर्षा कर रहे हैं।[4]

---

1. पनसैर्वनानासाभिः शुकनासैः पलाशकैः।"

   आ. रा. 5/1/55

2. नमेरुभिश्च मेरोश्च शिखरैरिव राजितम्।
   राजादनैश्च मदनैः सदनैरिव कामिनाम्॥

   आ. रा. 5/1/57

3. करमर्दैःकरीरैश्च कर्कैश्च कदंबकैः।
   सहस्रकरवदात्मार्थं प्रयच्छन्तीः करैः॥

   आ. रा. 5/1/59

4. मालत्मधूक पुष्पैर्वर्षयन्तं हरम्।
   स्वहस्तमुक्तमुक्ताभिर वर्षन्त मिवात्मनम्॥

   आ. रा. 5/1/63

उपवन में लगे हुए नारियल तथा खजूर के वृक्ष छत्र धारण करने वाले सेवकों की तरह प्रतीत होते हैं। उपवन रूपी राजा के और खजूर तथा नारियल के वृक्ष रूपी सेवक अपने पत्तों रूपी छत्र को तान कर खड़े हुए हैं। प्रकृति के स्वतंत्र आलम्बनत्व की कैसी भाव भीनी तथा सजीव कल्पना है। सर्ज, अर्जुन तथा बीजपुर आदि के वृक्ष उपवन-महीप को पंखा झल रहे हैं।[1]

बकुल और तिलक के वृक्ष उपवन रूपी राजा के मस्तक पर तिलक की भाँति प्रतीत हो रहे हैं।[2]

उपवन मालती के पुष्पों से अलंकृत है। इन पुष्पों पर भ्रमर समूह चक्कर काट रहा है। इस दृश्य को देखकर आनन्द रामायणकार का भावुक हृदय कृष्ण तथा गोपियों के विहार रूपी समुद्र में गोते लगाने लगाने लगता है।[3]

उपवन सद्य-विकसित पुष्पों से भरा पड़ा है। मयूरों की ध्वनि से यह मुखरित हो उठा है। खिले हुए पुष्पों में दानों की धनराशि की कल्पना तथा मयूर ध्वनि में उपवन द्वारा अपने यहाँ आये हुए अतिथियों के स्वागत की कल्पना कवि के सहज, स्वाभाविक, एवं सटीक प्रकृति चित्रण की परिचायक है।[4]

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने प्रस्तुत स्थल में प्रकृति का स्वतंत्र

---

1. सर्जार्जुनबीजपूरैर्व्यजनैरिव वीज्यमानवत्।
   नारिकेलैः खर्जूरैश्छत्र धारिभिः किंकरैः।। आ. रा. 5/1/64

2. बकुलैस्तिलकैरपि तिलकांकितमस्तकम्।
   आ. रा. 5/1/66

3. भ्रमद्भ्रमरमालाभिर्मालतीभिरलंकृतम्।
   अलिच्छलादागतं कृष्णं गोपी रंतुमनेकशः।।
   आ. रा. 5/1/71-72

4. उत्फुल्लतानिवार्थे वै सद्यःपुष्पैरितस्ततः।
   केकिकेकारवैर्दूरात्कुर्वन्तं स्वागतं किल।।
   आ. रा. 5/1/74

एवं स्वाभाविक वर्णन किया है। तुलसी ने भी मानस में दण्डक वन का प्राकृतिक वैभव चित्रित किया है। किन्तु मानसकार का हृदय दण्डक कानन की वन श्री की ओर आकृष्ट नहीं हुआ। वह वन तो इसलिये अवर्णनीय सुषमा से सम्पन्न है कि उसमें श्री राम का निवास है।

किन्तु आनन्द रामायण में प्रकृति और मानव का घनिष्ठ सम्बन्ध वर्णित है। प्राकृतिक विभूतियों के दर्शन से मानव उल्लसित होकर नाचता हुआ दृष्टिगोचर होता है और दूसरी ओर मानवीय सफलताओं पर प्रकृति मानव को उपहार देती हुई दिखाई देती है। यागकाण्ड में राम द्वारा अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति पर नदियाँ, पर्वत, समुद्र, मृग तथा पक्षी आदि सभी यथाशक्ति प्रभु राम को भेंट देते हैं।[2]

आनन्द रामायणकार ने राज्यकाण्ड(पूर्वार्द्ध) के आठवें सर्ग में नदियों तथा पहाड़ों का जो भौगोलिक वर्णन किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। मेरु पर्वत का वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि यह पर्वत एक लाख योजन ऊँचा है और उसकी चोटी पर बत्तीस हजार योजन लम्बा-चौड़ा मैदान है। नीचे सोलह हजार योजन विस्तार है। यह पर्वत धतूरे के पुष्प के आकार जैसा प्रतीत होता है।[3]

इस प्रकार जम्बू द्वीप में स्थित विभिन्न पर्वतों तथा नदियों का वर्णन कवि ने प्रस्तुत सर्ग में किया है। भारत वर्ष में प्रवाहित विभिन्न नदियों में कवि ने चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, तुंगभद्रा, कृष्णा, गोदावरी, नर्मदा, चर्मण्वती, आदि का वर्णन किया है।

---

1. सो बन बरनि न सक अहिराजा।
   जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा ॥ — रा० च० मा० 3/13/4
2. सरित्समुद्रा गिरयोनागा भावः खगा मृगाः।
   द्यौः क्षितिः सर्वभूतानि समाजह्रुश्च यन्मम् ॥ — आ. रा. 3/9/56
3. चतुरशीति सहस्र योजनानितो भुव्यां।
   बहीर्धतूर पुष्पवद् दृश्यते ॥ — आ. रा. 7(पूर्वार्द्ध) 8/34

इस भयावह वातावरण के बीच भी कवि का मन प्रकृति के शान्त, स्निग्ध तथा मनोरम दृश्यों में रमण किये बिना नहीं रहा। वन पुष्पों की सुगन्धि से वह वनस्थली सुगन्धित हो रही है। कहीं-कहीं प्राकृतिक रीति से बने हुए लतामण्डप अत्यधिक शोभा को प्राप्त हो रहे हैं। उन पर भ्रमण करने वाले भ्रमर तोरण के सदृश प्रतीत हो रहे हैं।[1]

राम चरित मानस में पक्षियों को भी राम नाम स्मरण करते हुए चित्रित किया गया है। अयोध्या नगरी में पालित शुक व सारिकाओं को बालक अपने अपने भवनों में शिक्षा दे रहे हैं।[2]

आनन्द रामायणकार ने भी अपने महाकाव्य के विलास काण्ड में पक्षियों द्वारा श्री राम के यश का गान करवाया है। प्रभु राम के विलास भवन में अनेक स्वर्ण निर्मित पिंजरे बंधे हुए हैं जिनमें मयूर, हंससारस, मैना, चकोर, तथा कोयल आदि पक्षी अनेक तरह से राम नामोच्चारण कर रहे हैं। इन पक्षियों को विभिन्न रानियों द्वारा जो अश्वमेध यज्ञ में आयी हुयी थीं, श्री सीता जी के लिये उपहार स्वरूप दिया गया था -[3]

पक्षी कह रहे हैं कि हे सीता रमण, कैकेयी की प्रेरणा से वन जाने वाले, चिरकाल तक चित्रकूट पर निवास करने वाले, अत्रि आदि ऋषियों से पूजित श्री रामचन्द्र जी आपकी जय हो-[4]

---

1. क्वचित्सुरभ्यवनच्छायां वन पुष्प सुगन्धिनीम् ।
   क्वचिल्लतागृहद्वारिस्थमण्डप सतोरणाम् ।। आ.रा.7[पू0]11/13-14

2. शुक सारिकन्ह पढ़ावहिं बालक।
   कहहु राम लखन सुख दायक ।।

3. ये चान्ये नृपपत्नीभिः श्रीसीतायाः समर्पिताः ।
   केषु वै केकिनो हंसाः सारसाः सारिकाः शुकाः ।।

   आ.रा. 4/2/22

4. जयतु सीतया सौख्यकृच्चिरं जयतु कैकेयी प्रेरितो वनम् ।
   जयतु चक्री वासकृच्चिरं जयति यो ऋषिभिः पूजितो वने ।।
   आ.रा. 4/2/30

इसी प्रकार के 9 श्लोकों का एकस्तोत्र कवि ने पक्षियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत स्थल इस तथ्य का द्योतक है कि आनन्द रामायणकार ने प्रकृति को भी भक्ति भावना से अन्वित देखा है। यह कवि के अंतःकरण की भक्ति है जो उसने प्रकृति पर आरोपित करके चित्रित की है।

कतिपय स्थलों में भावोद्दीपन के लिये भी प्रकृति चित्रण की योजना आनंद रामायण में हुई है। कवि ने उद्दीपन के रूप में प्रकृति का सहयोग लेकर रस का प्रसार किया है। शृंगार के स्थायी भाव "रति" के उद्दीपन में कवि ने उपवन की शोभा, फौवारों की रमणीक छटा तथा पुष्पों की मनोहरता का सहयोग लिया है। विलास काण्ड के पंचम सर्ग में श्री राम व सीता के जल विहार का चित्रण प्रकृति के उद्दीपन रूप का सुन्दर उदाहरण है।[1]

केसर आदि विविध रंगों से रंगे जल वाले विशाल हौज का चित्रण करके कवि ने नायक के मनोगत भावों का उत्कर्ष किया है। इससे उसे रस विधान में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है -[2]

प्रकृति मानवीय भावों की परिष्कारिका है। जीवन में मनुष्य को विभिन्न प्राकृतिक कार्यकलापों से शीलता, शालीनता, सौजन्यता, एवं तत्परनिष्ठा की दृष्टियां मिलती हैं। आनन्द रामायण कार ने इसी प्रकार के अनेक प्राकृतिक कार्य व्यापार चित्रित किये हैं जिनसे मानवीय गतिविधियां प्रभावित होती हैं।

---

1. रत्नमंडपसंस्था सा सीता रामनिरीक्षिता । आ. रा. 4/5/22
   जलयन्त्रकौतुकानि ददर्श मणिसंस्थाः ॥

2. एतस्मिन्नन्तरे रामः केसरादि विमिश्रितैः ।
   चित्ररागैः पूरितानि जलयन्त्राण्यनेकशः ॥
   आ. रा. 4/5/43

राज्य काण्डान्तर्गत सरोवर-वर्णन प्रसंग से ग्रन्थकार का उक्त दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। श्री राम के शिविर के समीपस्थ एक उत्तम सरोवर था जो अपनी गहराई से समुद्र को भी मात कर रहा था उसके आस-पास घनी पुष्पावली लगी हुई थी। स्थान-स्थान पर घाट बने हुए थे और पवित्र जल भरा था ।[1]

उस विशाल गंभीर तथा दीर्घिका सरोवर में विकसित कमल दलों पर भ्रमर गुंजार रहे थे। पवनाम्र प्रेरित बड़े-बड़े कमल पत्र मरकत के समान सुन्दर लग रहे थे।[2]

उसमें सज्जन प्राणी के मन की तरह स्वच्छन्दतापूर्वक मछलियाँ उछल रही थीं तथा जलचरों के इधर उधर चलने के कारण बार बार उसमें लहरें उठ रही थीं।[3]

खल मनुष्य के हृदय के समान उस सरोवर में कितने ही घड़ियाल भरे थे। कहीं-कहीं कंजूस प्राणी के घर की तरह सेंवार भरे थे, जिससे उसमें प्रविष्ट होना दूभर मालूम पड़ता था ।[4]

---

1. ददर्श सुमहच्छ्रेष्ठं स्पर्धमानमपां पतिम् ।
   धन्यारामसमध्यस्थं सुतीर्थं सलिलं शुभम् ॥ आ॰रा॰ 7/12/85

2. विशाल विकचाम्भोजमधुव्रतसुव्रतम्।
   पद्मिनीपत्रसंयुक्तं छन्नं मरकतैरिव ॥ आ॰रा॰ 7/12/86

3. स्वच्छन्दसुच्छलन्मत्स्यं स्वच्छं साधुमनो यथा।
   जलजलचरोद्भिन्नवीचिराजि विराजितम् ॥ आ॰रा॰ 7/12/87

4. उग्रग्राहगणक्रूरं खलानामिव मानसम् ।
   क्वचिच्छैवालदुर्गम्यं कृपणस्येव मंदिरम् ॥ आ॰रा॰ 7/12/88

अहर्निश कितने ही खग सरोवर का आश्रय लेकर अपनी थकावट दूर कर रहे थे। इससे वह सरोवर किसी ऐसे सज्जन के समान प्रतीत होता था जो अपना सर्वस्व लुटाकर गरीबों तथा शरणागत जनों की रक्षा में तत्पर हो।[1]

अपने शीतल जल से वह सरोवर उसी प्रकार वन्य जीवों की प्यास बुझा रहा था, जैसे चन्द्रमा दिन भर के परिश्रम से दुखी जनों की समस्त पीड़ा रात में हर लिया करता है।[2]

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने प्रस्तुत प्रसंग में सरोवर के चित्रण द्वारा मानवीय गुणों की सुन्दर अभिव्यंजना प्रस्तुत की है।

साम्य तथा वैषम्य :

साहित्य सदैव बाह्य जगत के सौन्दर्य बोध को आत्मसात करता है। सौन्दर्य का सृजन प्राकृतिक जगत में अत्यन्त स्वाभाविक रूप में होता है। यह सौन्दर्य ही मनोमुग्धकारी तथा भावात्मक उद्बोधन का प्रेरक होता है। साहित्य का प्रमुख कार्य भी भावोद्बोधन है। अतः साहित्यकार प्रकृति के सम्बल के आधार पर साहित्य संरचना का मार्ग तय कर पाता है। आनन्द रामायणकार तथा मानसकार दोनों ही कवियों के साहित्य में प्रकृति को पर्याप्त सम्मान प्राप्त हुआ है। दोनों काव्य ग्रन्थों में प्रकृति चित्रण सम्बन्धी निम्नांकित समानतायें तथा विषमतायें दृष्टिगत होती हैं—

---

1. नाना विहंगसर्वाणि श्रमयन्तं दिवानिशम्।
   उदारमिव सर्वस्वैरापन्नार्तिहरं महत् ॥

   आ. रा. 7/12/89

2. तर्पयन्तं हिमाम्भोभिः श्वापदान्स्वपितॄनिव ।
   हरंतं सर्व संतापं हिमांशुमिव प्राणिनाम् ॥

   आ. रा. 7/12/90

1. उद्दीपन विभाव के रूप में प्रकृति का चित्रण दोनों ही ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

2. विभिन्न नीति परक कथनों को पुष्ट करने में भी दोनों कवियों ने प्रकृति का प्रश्रय ग्रहण किया है।

3. आलम्बन विभाव के रूप में भी प्रकृति की मनोरम झाँकियाँ दोनों काव्य-ग्रंथों में प्राप्त होती हैं।

4. स्वतंत्र रूप में प्रकृति का चित्रण मानस की अपेक्षा आनन्द रामायण में अधिक हुआ है।

5. आनन्द रामायणकार ने विभिन्न स्थलों के भौगोलिक परिचय में भी प्राकृतिक चित्र प्रस्तुत किये हैं। मानस में इस चित्रण का सर्वथा अभाव है।

6. मानस में अनेक अलंकारिक चित्र प्रकृति के सहयोग से चित्रित हुए हैं। आनन्द रामायणकार इस संदर्भ में मौन हैं।

7. आनन्द रामायणकार ने प्रकृति में मानवीय आरोपण भी प्रस्तुत किये हैं जब कि मानसकार की प्रवृत्ति इस ओर उदासीन है।

8. दोनों ही काव्य ग्रन्थों में भक्ति की महनता सिद्ध करने के लिए मानवेतर प्राणियों को भी राम भक्ति में लीन दिखाया गया है। स्थान-स्थान पर चेतन वर्ग के साथ में जड़ वर्ग को भी भक्ति भाव व राम प्रेम से अभिभूत दर्शाया गया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यद्यपि आनन्द रामायण में प्रकृति चित्रण मानस की अपेक्षा कम मात्रा में हुआ है तथापि दोनों कवियों ने इस चित्रण से साहित्य के सुन्दरम् पक्ष को अत्यधिक रमणीक बनाने का स्तुत्य प्रयास किया है। कतिपय साम्य तथा कतिपय वैषम्य के साथ दोनों कवियों का प्रकृति चित्रण काव्य के साहित्यिक सौष्ठव की अभिवृद्धि करने वाला है।

-------- समाप्त --------

xxxxx

चतुर्थ अध्याय

(रस विवेचन)

चतुर्थ-अध्याय

रस विवेचन

संस्कृत में रस शब्द की व्युत्पत्ति "रसस्यते सो इति रसः" इस प्रकार दी गई है। अर्थात् जिससे आस्वाद मिले वही रस है। रस शब्द का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से चला आया है। रस केवल साहित्य में ही नहीं बल्कि अन्य ग्रन्थों में भी भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। वैदिक संहिताओं में रस का अर्थ जल होता है। उपनिषदों में रस ब्रह्म या ब्रह्मानंद का वाचक है। तैत्तिरीयोपनिषद् की यह लोक-प्रसिद्ध उक्ति इसी अर्थ की वाचक है –[1]

आयुर्वेद में रस शब्द औषधि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अलंकार शास्त्र में रस शब्द एक अनिर्वचनीय साहित्यिक आनंद के रूप में प्रयुक्त किया गया है। साहित्य वर्णितरसानंद उपनिषदों के ब्रह्म रूप रसानंद के समकक्ष माना गया है। रस रहित कोई भी शब्दार्थ साहित्य का विधान नहीं कर सकता। इसीलिए रस को साहित्य का प्राण कहा गया है।

साहित्य में रस का महत्व:

रस साहित्य का प्राण है। रस रहित काव्य काव्य नहीं होता। आचार्य भरत के अनुसार तो रस के बिना किसी अर्थ की प्रवृत्ति भी नहीं होती।[2]

अग्नि पुराण के रचयिता श्री व्यास जी ने स्पष्टतः रस को काव्य का प्राण कहा है।[3]

---

1. रसोवैसः रसंह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।
   "भारतीय समीक्षा के सिद्धान्त-" प्रथम भाग (लेखक-श्री गोविन्द त्रिगुणायत) में उद्धृत (पृष्ठ 198)
2. नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।
3. वाग्वैदग्ध्य प्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्।

रस की प्रतिष्ठा केवल रसवादियों में ही नहीं रही है अपितु अलंकार वादियों, वक्रोक्ति वादियों तथा रीतिवादियों आदि ने भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उसकी श्रेष्ठता प्रतिपादित की है।

भामह यद्यपि रस-विरोधी आचार्य थे किन्तु उन्होंने रस का अन्तर्भाव "रसवद् अलंकार" में करके अप्रत्यक्ष रूप से रस को ही मान्यता दी है। दण्डी ने भी रस के प्रति आस्था व्यक्त की है।[1]

रुद्रट ने भी काव्य में रस की प्रतिष्ठा आवश्यक ठहराई है।[2]

इस प्रकार लगभग सभी आचार्यों ने काव्य में रस के महत्व को स्वीकार किया है।

<u>रसों की संख्या :</u>

रसों की संख्या में समय-समय पर विस्तार होता रहा है। रस सम्प्रदाय के प्रवर्तक भरत मुनि ने "नाट्य शास्त्र" में शृंगार, रौद्र, वीर और वीभत्स इन चार ही रसों का प्रमुख रूप से उल्लेख किया है। उन्होंने इन्हीं से क्रमशः हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक रसों की उत्पत्ति मानी है। इस प्रकार उन्होंने कुल आठ रसों का वर्णन किया है।[3]

इन रसों के बाद उन्होंने शान्त रस को भी निरूपित किया है। वे शान्त रस में ही सब रसों की उत्पत्ति और उसी में उनका अवसान होना भी मानते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि शान्त रस की अवतारणा सर्वप्रथम उद्भट ने की थी। नाट्य शास्त्र में शान्त रस वाला अंश उद्भट द्वारा ही जोड़ा गया है।[4]

आचार्य विश्वनाथ ने वात्सल्य को दसम रस कहा है।[5]

---

1. कामं सर्वोप्यलंकारो रसं अर्थे निषिंचति।
2. तस्मात् कर्तव्यं यत्नेन महीयसा रसैर्युक्तम्।

~~3. दीप्तरसत्वं कान्तिः~~

3- अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः। नाट्य शास्त्र 6/15
4- भारतीय समीक्षा के सिद्धान्त [पृ0 230] गोविन्द त्रिगुणायत
5- स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः। साहित्य दर्पण 3/251

रूप गोस्वामी, मधुसूदन सरस्वती आदि ने भक्ति को भी स्वतंत्र रस कहा है। भक्ति रस के समर्थक भक्ति रस में ही नव रसों की स्थिति निरूपित करते हैं। भागवत में यह भक्ति रस भागवत रस के नाम से दिया गया है।[1]

इस प्रकार रसों की संख्या और नाम के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद रहा है। वे स्वतंत्रतापूर्वक नवीन रसों के नामकरण करते रहे हैं। वस्तुतः रस अलौकिक तत्त्व है। यह अक्षर ब्रह्म के समान आनंदमय माना गया है। आनंद चित्त की एकाग्रावस्था है। अतः आनन्द रूप रस भी अभेद है। इस मत के अनुयायी केवल एक रस ही मानते हैं।

रस सामग्री :

रस से सम्बंधित काव्य धर्मों को प्रमुख रूप से तीन भागों में विभक्त किया गया है। रस सम्प्रदाय के आदि आचार्य भरत मुनि का प्रसिद्ध रस सूत्र इस प्रकार है।[2]

अर्थात विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

नाटक या काव्य आदि साहित्य में चित्त वृत्तियों की ही प्रतिच्छाया दिखाई पड़ती है। चित्त वृत्तियों के उदय, विकास और तिरोभाव होने के अनेक बाह्य कार्य और सहायक कारण होते हैं। साहित्य में इन्हीं को क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी [संचारी] भाव कहा गया है।

---

1. निगमकल्पतरोर्गलितं फलं ।
शुकमुखादमृत द्रव संयुतम् ।।
पिबद् भागवतं रसमालयं ।
मुहुर हो रसिका भुवि भावुकाः ।।
भारतीय समीक्षा के सिद्धान्त पृष्ठ-231 में उद्धृत
2. विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगात रसनिष्पत्तिः
नाट्य शास्त्र/छठा अध्याय: पृष्ठ 620

स्थायी भाव:

सहृदयों के हृदय में वासना रूप में स्थित शाश्वत मनोविकार साहित्य में स्थायी भाव कहलाते हैं। भावों का अत्यधिक महत्व है।[1]

विभाव:

संस्कार रूप में स्थित रति आदि स्थायीभावों के उद्दीपक कारण को विभाव कहते हैं। भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र में लिखा है कि विभाव वाणी और अंगों के आश्रित अनेक अर्थों का विभावन या अनुभव कराते हैं। इसीलिए उनको विभाव कहा गया है।[2]

विभाव दो प्रकार के हैं -

1. आलम्बन विभाव :

आलम्बन विभाव वे हैं जिनका आलम्बन लेकर रति आदि स्थायी भाव जागृत होते हैं- जैसे नायक,नायिका ।

आलम्बन विभाव भी दो प्रकार के हैं -

(क) विषयालंबन- जहाँ नायक आदि से रस की प्रतीति होती है।

(ख) आश्रयालंबन- जहाँ नायक आदि आश्रय के द्वारा रस की उत्पत्ति होती है।

2. उद्दीपन विभाव:

उद्दीपन विभाव वे कहलाते हैं जिन वस्तुओं या स्थिति को देखकर रति आदि स्थायी भाव तीव्रतर या उद्दीप्त होने लगते हैं।जैसे चंद्रोदय

---

1. संस्काररूपि प्रधानानि देवादि विषया रतिः।
   उद्बुद्धः स्थायी च भाव इत्यभिधीयते ।।

   सा० द० 3/260

2. बहवो र्थाः विभाव्यन्ते वागङ्गाभिनयाश्रयाः।
   अनेन यस्मात्तेनायं विभाव इति कथ्यते ।।

   नाट्य शास्त्र 7/6

कोकिल आदि। प्रत्येक रस के अपने विशिष्ट उद्दीपन होते हैं। भावोद्दीपन के निम्नलिखित कारण होते हैं –

(क) आलम्बन के गुण।

(ख) आलम्बन की चेष्टाएँ।

(ग) आलम्बन के अलंकार।

(घ) तटस्थ- जैसे बसन्त, उद्यान आदि।

अनुभाव:

स्थायी भावों के उदय होने के पश्चात् जो शारीरिक विकार दिखाई पड़ते हैं, वे अनुभाव कहलाते हैं। भावों के अनुवर्ती होने के कारण वे अनुभाव कहलाते हैं । विभावों की प्रत्यक्षानुभूति अनुभावों द्वारा ही होती है- "अनुभावयन्तीति अनुभावाः।"

अनुभाव चार प्रकार के होते हैं :-

(क) कायिक- कटाक्ष आदि आंगिक चेष्टाएँ ।

(ख) मानसिक- वाचिक-कथोपकथन इत्यादि।

(ग) आहार्य- अलंकार आदि कृत्रिम वेष धारण करना।

(घ) सात्त्विक- सत्व का अर्थ है भावक के चित्त को दुःख-सुख इत्यादि की भावनाओं से भावित करना। इस प्रकार के अनुभाव जो सत्व से उत्पन्न होते हैं सात्त्विक अनुभाव कहे जाते हैं। ये सात्त्विक भाव आठ होते हैं- स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वर-भंग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु तथा प्रलय।

व्यभिचारी या संचारी भाव:

उत्पन्न हुए स्थायी भाव को जो अधिक पुष्ट करते हैं, उन सहकारियों को व्यभिचारी भाव कहते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने व्यभिचारी भाव उनको कहा है जो रसों में नाना प्रकार से विचरण करते हैं तथा रसों में नाना प्रकार से रसों को पुष्टकर आस्वाद योग्य बनाते हैं।[1]

1. विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नास्त्रयस्त्रिंशच्च तद्भिदाः ।। साहित्य द० 3/260

रीतिकालीन आचार्य केशवदास ने संचारी भाव के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है -

> भावनु सबही रसन में उपजत केशवराय ।
> बिना नियम तिन सों कहैं व्यभिचारी कविराय।।

ये व्यभिचारी संख्या में 33 बतलाये गये हैं ।

अब रामचरित मानस तथा आनन्द रामायण में उक्त ग्यारह रसों की स्थिति का पृथक-पृथक विवेचन प्रस्तुत है।

मानव अंत:करण अनादिकाल से अनवरत आनन्द के अन्वेषण में तत्पर है। यह आनन्द ही ऐसा तत्व है जिसके पाने में मनुष्य सब कुछ खोने को प्रस्तुत हो जाता है। आनन्द की यह उपलब्धि उसे एक ऐसी स्थिति में छोड़ देती है जिसमें वह आत्म विस्मृत हो कर किसी लोकातीत अनुभूति ~~का नाम ही~~ में खो जाता है। मनीषियों ने उसकी इस अनुभूति का नाम ही रसानुभूति दिया है। यह रसानुभूति उसकी परम उपलब्धि है। मानव मन इसे पाने के लिये सर्वत्र भटकने को तैयार है। भाव चित्रों में अंत:करण को मुग्ध करके इस आनन्दानुभूति को प्रदान करने वाला जो तत्व उन्मार्गित है उसे रस ~~इसकी~~ संज्ञा से अभिहित किया जाता है। विविध भावों के अंतराल में बहता हुआ यह रस तत्व मनुष्य का ऐसा चिर अभीप्सित लक्ष्य है जिसकी खोज कभी समाप्त नहीं होगी। नूतन संरचनाओं के मध्य अंत:करण में सदैव इस अनादि आनन्द तत्व की शाश्वत शांति देने वाली सुधा की तृषा अनुभव होती रहेगी। जिस क्षण उसे तृप्ति का आभास होगा वह क्षण उसे लोक से परे आनन्द की अत्यन्त मनोरम भावभूमि पर छोड़ देगा जहाँ उसे ब्रह्मानन्द की अनुभूति के तुल्य परमानन्द की अनुभूति उपलब्ध होगी। यह मानव हृदय की अन्तर्यात्रा की कथा है। वस्तुतः इस आनन्द की सरसता वर्णनातीत है। यह रस अनादि काल से अनुभूति का अंग होते हुए भी चिरनवीन है।

मनीषियों ने "रसोवैसः" कहकर रस को आनन्द स्वरूप ब्रह्म

माना है। मानव जीवन सारभूत तत्व रस है। मानव के समस्त कार्य-व्यापारों का प्रारम्भ व अंत रस में ही है। जीवन की सार्थकता के लिये रस की अनिवार्यता को नकारा नहीं जा सकता।

भरत मुनि ने तो यहाँ तक कह दिया है कि -

"नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते" ।

वास्तव में रस को छोड़कर जीवन का कोई उद्देश्य नहीं बन सकता रस का मानव जीवन से अभिन्न सम्बन्ध है। जिस प्रकार विभिन्न पदार्थों से निर्मित भोजन से रस की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार विभिन्न भावों के समावेश से रस की निष्पत्ति होती है। मानस में रस विवेचन की समीक्षा करते हुए डा0 राम प्रकाश अग्रवाल लिखते हैं -[1]

"राम चरित मानस में साहित्य शास्त्र के सभी तत्व विद्यमान हैं। तुलसी को "भाव भेद रस भेद अपारा" का गंभीर अध्ययन था। उन्होंने मानस में कहीं कहीं तो लक्षण ग्रन्थों की तरह भी रसों का नामोल्लेख किया है। यथा-

[आव नयउ हनुमान जिमि करुनामहं वीररस।"

आनन्द रामायण में भी रस व्यंजना सहज तथा स्वाभाविक रूप में हुई है। महाकाव्य में सभी रसों का समावेश होना चाहिए ऐसा काव्य शास्त्र का नियम है। आनन्द रामायण ने इस नियम का पालन मात्र नहीं किया वरन् स्वकीय भावों की उदारता के कारण सभी रस इस महाकाव्य में विद्यमान हैं।

यहाँ दोनों ही महाकाव्यों में पृथक पृथक सभी रसों की स्थिति का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है :-

---

1. वाल्मीकि और तुलसी" - डा0 रामप्रकाश अग्रवाल [पृष्ठ - 318]

मानस में रस विवेचन :

अपने राम के विराटत्व में विविध भावों को समाहित करके मानसकार ने उनकी लीला के विभिन्न भावों की सीमा को छूने वाले ऐसे मनोरम चित्र प्रस्तुत किये हैं जो रसज्ञ पाठक को रसाब्धि में निमग्न करने में सक्षम हैं। तुलसी के रस कोई अलग से आरोपित कल्पना उद्भूत तत्व नहीं हैं। वे तो जीवन से जुड़े हैं। राम का महिमामय चरित्र स्वयं में रस का अक्षय कोष है। "साकेत" के रचयिता कविवर मैथिलीशरण का कथन-

"राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।" इस तथ्य से ध्वनित करता है कि राम के चरित्र में स्वाभाविक सरसता है। किन्तु मानसकार ने अपनी भावाभिव्यक्ति की अनूठी प्रतिभा के द्वारा मानस में सभी रसों का भावमग्न करने वाला योग केन्द्रीभूत कर दिया है। उनकी सरसता की गंभीरता की थाह पाना संभव नहीं है। तथापि उसमें डूबने का हर भावुक हृदय उत्साही इच्छुक है। मानसकार ने अपने इस महाकाव्य में साहित्य के समस्त रसों का समायोजन किया है जिसमें डूबकर प्रत्येक भावुक हृदय अपने को आनन्द कीसीमा पर अनुभव करता है। विभिन्न रसों की कतिपय झाँकियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं:-

संयोग शृंगार :

मानसकार का भक्तिभाव दास्य भक्ति के अंतर्गत आता है। दास का शृंगार चित्रण में मर्यादित होना स्वाभाविक है। फिर अखिल विश्व में जिनकी व्याप्ति का आभास उनकी अंतःशांति का हेतु है तब शृंगार का मर्यादित होना महाकाव्य की स्वाभाविक गरिमा का संरक्षक है। माता जानकी और पिता श्री राम के सात्त्विक प्रेम में वे प्रेम की अंतर्मुखी भाव निधि में खो गये हैं। अतः संयोग की स्थिति में रीति कालीन कवियों की भाँति नायक व नायिका के बाह्य कार्य व्यापार का अंकन करने में उनकी वृत्ति नहीं रमी है। इस बात का संकेत हर पंक्ति पर प्राप्त होता है कि राम और सीता का प्रेम अटूट है, सनातन है।

किन्तु "रति" स्थायी भाव का विभिन्न संचारीभावों, अनुभावों और विभावों के सहयोग से होने वाला संयोग शृंगार का पोषण कुछ ही स्थलों में दे सके हैं। इसका कारण उनकी जगत के माता-पिता के प्रति सच्चे सेवक की भाँति समर्पित भक्ति भावना ही है।

कोहबर में कुल देवताओं के पूजन हेतु उपस्थित राम व सीता के पारस्परिक विशद स्नेह का अंकन उन्होंने सीता की आर्यनारी सुलभ लज्जा की सुरक्षा करते हुए अपने हाथ के मणि जटित आभूषणों में प्रियतम श्री राम की सुन्दर मूर्ति का अवलोकन करने वाली तथा इस अलौकिक आनन्द से भाव विभोर सीता के निम्न लिखित भाव चित्र को प्रस्तुत करके अत्यन्त मर्यादित शृंगार की पुष्टि की है।[1]

इसी प्रकार वन पथ पर मिलने वाली ग्राम-वधूटियों द्वारा घिर जाने पर सीता ने उनकी मनोकांक्षा पूर्ण करने के लिये अपने स्वामी का परिचय देने की जो सांकेतिक व्यवस्था की है उसमें भी संयोग शृंगार की मनोमुग्धकारी मर्यादित पुष्टि हृदय को रस मग्न करने वाली सिद्ध होती है।[2]

चित्रकूट की परम पुनीत अवनि में

पर्णकुटीर के अंतर्गत अपने स्वामी के साथ राज महलों का सुख अनुभव करने वाली सीता के परम पुनीत प्रेम चित्रण में मर्यादित एवं स्वाभाविक संयोग शृंगार की पुष्टि हुई है। सीता पुर-परिजन तथा गृह की सुधि को विस्मृत करके राम के साथ सुखी रहती हैं। वे प्रभु का मुख चंद्र देखकर उसी प्रकार प्रमुदित रहती हैं जिस प्रकार चकोर कन्या

---

1. निज पानि मनिमहुँ देखिअति मूरति सुरूप निधान की।
चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भय बस जानकी॥
रा.च.मा.2/326/छंद 3

2. बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सियँ सयननि॥
रा.च.मा. 2/116/ 6 व 7

वियोग श्रृंगार:

मानस में श्रृंगार रस की विप्रलम्भ पक्ष का अधिक विस्तार हुआ है। संयोग पक्ष तो सीमित तथा धर्म भावना द्वारा नियंत्रित है। वियोग श्रृंगार के 3 रूप हैं। पूर्वराग, मान तथा प्रवास। इनमें से पूर्वराग तथा प्रवास स्थितियों का चित्रण मानस में पर्याप्त मात्रा में मिलता है। मान का चित्रण मानसकार से भक्त हृदय के प्रतिकूल था। मर्यादा के आदर्श पुरुषोत्तम श्री राम तथा जगज्जननी जगदम्बा जानकी के आदर्श प्रेम में मान का अवसर ही कहाँ है। मान तो रीतिकालीन श्रृंगारिक वियोग चित्रण में ही उपयुक्त हो सकता है।

पूर्वराग तथा प्रवास स्थितियों में विप्रलम्भ श्रृंगार की पुष्टि का क्रमिक विवेचन नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है :-

पूर्वराग:

नायक तथा नायिका के मिलन से प्रथम प्रत्यक्ष, श्रवण, चित्र या स्वप्न दर्शन से जो प्रीति होती है वह पूर्वराग है। मानस में पूर्वराग की सुन्दर पुष्टि हुई है। पुष्पवाटिका में राम के प्रथम दर्शन के बाद सीता के मन में शिवधनुष की कठोरता को जानकर बड़ा खेद उत्पन्न होता है। वे राम की श्यामल मूर्ति को हृदय में रखकर चल देती हैं। प्रस्तुत स्थल में वियोग श्रृंगार की "चिन्ता" दशा की अत्यन्त सुन्दर पुष्टि हुई है।[1]

---

1. जानि कठिन शिव चाप बिसूरति।
   चली राखि उर स्यामल मूरति ॥
   सुख सनेह सोभा गुनखानी ।
   परम प्रेम मय मृदु मसि कीन्हीं ॥

रा.च.मा. 1/234/1 से 3

इसी स्थल पर नायक श्री राम जी के गुण-श्रवण पर नायिका श्री सीता जी के हृदय में उनके दर्शन की लालसा उत्पन्न होने का चित्रण है। अपनी प्रिय सखी द्वारा राम के सुन्दर रूप का वर्णन सुनकर सीता के नेत्र उनके दर्शनार्थ आकुल हो उठे।[1]

पूर्व दिशा में उदित चंद्र के दर्शन करके राम इसी सीता के मुख की समता करने लगते हैं। इस स्थल पर वियोग की "गुण-कथन" दशा की सुन्दर पुष्टि हुई है। नायक द्वारा नायिका के मुख की इस समता में चन्द्रमा भी फीका पड़ जाता है।[2]

सीता के नूपुरों की सुन्दर झनकार श्री राम के हृदय में उत्सुकता उत्पन्न करती है। यह चित्रण भी वियोग की "गुण-कथन" दशा की पुष्टि करता है। किन्तु धीर नायक में यहाँ आकुलता के किंचिद् मात्र भी दर्शन नहीं होते। राम विचार करते हैं कि मानों कामदेव विश्व विजय की इच्छा से दुंदुभी बजा रहा है।[3]

नायिका के नूपुरों की रुनझुन झनकार सुनकर नायक के नेत्र उसके मुख पर पहुंच जाते हैं। यहाँ नायक द्वारा नायिका की सुन्दरता के वर्णन में वियोग की 'गुण-कथन' दशा की मनोरम पुष्टि हुई है।[4]

---

1. तासु बचन अति सियहि सुहाने।
   दरस लागि लोचन अकुलाने ।। रा. च. मा. 1/228/7

2. प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुख पावा।।
   बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं। सीय बदन सम हिमकर नाहीं ।।
   × × ×
   सिय मुख छबि बिधु ब्याज बखानी। गुर पहिं चले निसा बड़ि जानी।।
   रा. च. मा. 1/237/1 से 4तक

3. कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि।।
   मनहुँ मदन दुंदुभी दीन्हीं। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्हीं।।
   रा. च. मा. 1/229/1-2

4. अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भये नयन चकोरा।।
   × × ×
   देखि सीय सोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचन न आवा।।
   × × ×
   सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई। छबिगृह दीपसिखा जनु बरई।।
   रा. च. मा. 1/229/4

इसी अवसर पर "जड़ता" दशा की सृष्टि भी कितनी सुन्दर हो गई है।[1]

नायिका नायक के दर्शनार्थ वाटिका में मृग, पक्षी और वृक्षों को देखने के बहाने बार-बार पीछे की ओर घूमती है तथा नायक का दर्शन लाभ प्राप्त करती है। "अभिलाषा" दशा का ऐसा मनोरम दृश्य अन्यत्र दुर्लभ है।[2]

धनुष यज्ञ-शाला के दर्शन के समय भी नायिका में इसी तरह की अवहित्था के दर्शन होते हैं। सीता चकित चित्त होकर राम को देखने लगीं। उनके नेत्र अपनी निधि पाकर सफल कर वहीं जा लगे।[3] किन्तु गुरुजनों की लज्जा से वह सकुचा गयीं एवं सखियों की ओर देखने लगीं।[4]

गुरु जन लाज समाज बड़ देखि सीय सकुचानि
लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहिं उर आनि

धनुर्भंग के लिये जाते हुए नायक श्री राम की असफलता की आशंका के कारण नायिका श्री सीता जी में अत्यधिक आकुलता के दर्शन होते हैं। वे नायक की सफलतार्थ विभिन्न देवी देवताओं से प्रार्थना करने

---

1. भये विलोचन चारु अचंचल । रा.च.मा. 1/229/4
   मनहुं सकुचि निमि तजे दिगंचल।।
2. देखन मिस मृग विहग तरु फिरइ बहोरि ।
   निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरी।।
   रा.च.मा. 1/234
3. सीय चकित चित रामहिं चाहा।
   भये मोह बस सब नर नाहा ।।
   मुनि समीप देखे दोउ भाई ।
   लगे ललकि लोचन निधि पाई ।।

   रा.च.मा. 1/248

लगती हैं।[1]

राम के सौन्दर्य की अनुभूति से सीता अधीर होकर अपने पिता के प्रण पर दुख प्रकट करने लगती हैं। परीक्षा के आधार स्वरूप धनुष की कठिनता तथा राम की सुकुमारता पर विचार करके वे और भी अधिक अधीर हो उठती हैं। विरह की चिन्ता दशा की पुष्टि इस स्थल पर अत्यधिक स्वाभाविक बन पड़ी है।[2]

यह अधीरता नायिका को इस सीमा पर पहुंचा देती है कि यदि सामाजिक मर्यादा का भय उसे न होता तो वह मुक्त कण्ठ से रुदन करने लगती। किन्तु मर्यादा का ध्यान करके वह संकुचित हो जाती है।[3]

प्रवास:

प्रिय से सुदूर स्थित होने पर जो प्रेम की दुखमयी स्थिति होती है वह प्रवास विरह कहलाती है। विरह की इस स्थिति का चित्रण मानस में सीता हरण के पश्चात प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है।

---

1. मनहीं मन मनाव अकुलानी ।
होहु प्रसन्न महेस भवानी ।।
करहु सफल आपन सेवकाई ।
करि हित हरहु चाप गरु आई ।।
रा.च.मा. 1/256/5 व6

2. कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा ।
कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा ।।
विधि केहि भांति धरउं उर धीरा।
सिरस सुमन कन बेधिय हीरा ।।
रा.च.मा. 1/257/ 4 व 5

3. गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी ।
प्रगट न लाज निसा अवलोकी ।।
लोचन जलु रह लोचन कोना ।
जैसे परम कृपन कर सोना ।।
सकुची व्याकुलता बड़ि जानी ।
धरि धीरज प्रतीति उर आनी ।।
रा.च.मा. 1/258/ 1 से 3

सीता हरण के बाद राम के आश्रम लौटने पर कवि ने वियोग की "प्रलाप" दशा की सुन्दर व्यंजना की है। उन्माद के कारण नायक पक्षियों, मृगों तथा लताओं से अपनी अपहृता नायिका का पता पूंछते हुआ दर्शित किया गया है।[1]

प्रेयसी की अनुपस्थिति में उसके अंग-प्रत्यंगों के उपमान नायक को अत्यधिक आनन्दित दिखायी पड़ रहे हैं। खंजन, शुक, कपोत, मधुप, कोकिल आदि उपमानों को देखकर नायिका के नेत्र, नासिका, ग्रीवा, अलक, स्वर आदि का चित्र नायक के समक्ष उपस्थित हो जाता है।[2]

वन में पशु पक्षी भी नायक को उनका उपहास करते हुए प्रतीत होते हैं। मृगी भयातुर होकर भागने वाले मृगों से कह रही है कि तुम भयभीत मत हो। ये तो स्वर्ण मृग की खोज में निकले हैं। तुमसे इनको कोई प्रयोजन नहीं है।[3]

नायिका की अनुपस्थिति में सुहावनी बसन्त सुषमा भी नायक के अन्दर भय का संचार कर रही है। यहाँ विरह की उद्वेग दशा का चित्रण अतीव यथातथ्य हो गया है। यह बसन्त सुषमा नायक को कामदेव के ससैन्य आक्रमण की भाँति प्रतीत हो रही है।[4]

---

1. आश्रम देखि जानकी हीना। भये बिकल जस प्राकृत दीना।।
   लछिमन समुझाए बहुभाँती। पूंछत चले लता तरु पाती।।
   हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनयनी।।
   रा. च. मा. 3/29/6, 8, 9
2. खंजन शुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना।।
   किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि किमि नाहीं।।
   रा. च. मा. 3/29/10 से 15
3. नारि सहित सब खग मृग बृंदा। मानहुं मोर करत हैं निन्दा।।
   हमहिं देखि मृग निकर पराहीं। मृगी कहहिं तुम्ह कहं भय नाहीं।।
   तुम आनन्द करहु मृग जाये। कंचन मृग खोजन ये आये।।
   रा. च. मा. 3/36/4, 5, 6
4. देखहु तात बसन्त सुहावा। प्रिया हीन मोहिं भय उपजावा।।
   रा. च. मा. 3/37

बिरह बिकल बलहीन मोहिं जानेसि निपट अकेल
सहित बिपिन मधुकर खग, मदन कीन्ह बगमेल ॥"

प्रवर्षण गिरि पर स्थित नायक को वर्षाकालीन मेघों का गर्जन नायिका केअभाव में भय उत्पन्नकरता है। विरह की चिन्ता दशा की दृष्टि प्रस्तुत स्थल पर अत्यधिक स्वाभाविक हो गयी है।[1]

वर्षा की समाप्ति पर निर्मल ऋतु के आगमन भी होजाता है तथापि नायक को नायिका का पता नहीं लग पाता। नायक के अन्दर "चिन्ता" का संचार होता है किन्तु धीरोदात्त नायक में इस अवसर पर भी भीरुता के दर्शन नहीं पाते। वह काल से भी युद्ध करके नायिका को ले आने के लिये प्रस्तुत होता हुआ वर्णित होता है।[2]

अशोक वाटिका में विरह व्यथित नायिका अपने प्रिय के दूत को देखकर नायक का गुण-कथन करती हुई उनकी कुशल क्षेम पूंछने को तत्पर होती है। वह अपने प्रिय के कोमल चित्त तथा सेवक सुखदायक स्वभाव का अनुभव करके सजल नेत्र हो उठती है।[3]

---

1. घन घमण्ड नभ गर्जत घोरा — रा.च.मा. 4/13/1
   प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥

2. बरषा गत निर्मल रितु आई। ।
   सुधि न तात सीता कै पाई ॥
   एक बार कैसेहुं सुधि जानौं ।
   कालहु जीति निमिष महुं आनौं ॥

3. अब कहु कुसल जाउं बलिहारी ॥
   अनुज सहित सुख भवन खरारी ।
   कपि केहि हेतु धरी निठुराई ॥
   सहज बानि सेवक सुखदायक ।
   कबहुंक सुरति करत रघुनायक ॥

   रा.च.मा. 5/13/ 3 से 5 तक

इसके साथ ही नायक के नेत्र सुकुमारत्व दर्शन की उत्कट अभिलाषा से वह अत्यधिक व्याकुल हो उठती है। उसकी वाणी अवरुद्ध हो जाती है तथा नेत्र सजल हो जाते हैं।[1]

विरह व्यथित नायिका के लिये दूत हनुमान द्वारा कहे गये नायक राम के संदेश में विरह की व्याधि दशा का यथातथ्य चित्रण हुआ है। नायिका के अभाव में नायक को वृक्षों के कोमल पत्ते अग्नि की तरह, रात्रि कालनिशा की तरह तथा चंद्रमा सूर्य की तरह प्रतीत हो रहा है। कुमुद पुष्प नुकीले भाले की भाँति तथा मेघों की शीतल वर्षा गर्म तेल की भाँति कष्टदायक अनुभव हो रही है। शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन सर्पोच्छ्वास की तरह विषैली अनुभव हो रही है।[2]

ठीक इसी प्रकार नायक के समक्ष दूत हनुमान द्वारा नायिका की विरह स्थिति के वर्णन में नायिका की व्याधि दशा का चित्रण भी अत्यधिक स्वाभाविक है। विरहातुरा नायिका के प्रणय संदेश को दैन्य और विषाद के भावों ने अतीव मर्मस्पर्शी बना दिया है।[3]

---

1. कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता।।
   बचन न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी ।।

   रा.च.मा. 5/13/6,7

2. कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता।।
   नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू।।

   × × ×

   जे हित रहे करत तेइ पीरा
   उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा।।

   रा.च.मा. 5/14/1 से 4

3. नाथ जुगल लोचन भरि बारी।
   बचन कहे कछु जनककुमारी ।।

   × × ×

   मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहि अपराध नाथ हौं त्यागी।।
   अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना ।।

   × × × ×

   नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरै न पाव देह बिरहागी।।

   रा.च.मा. 5/30/2 से 8 तक

की इस "प्रमाद" दशा का वर्णन कितना स्वाभाविक सिद्ध हुआ है।[1]

राम-रावण युद्ध के समय शत्रु के सिर कटने पर भी जब वह उसकी मृत्यु नहीं होती तब नायिका में भय का संचार हो जाता है। वह विरह व्यथित होकर अपने दुर्भाग्य को कोसने लगती है। इस स्थल पर विरह जनित अधीरता का सुन्दर चित्र चित्रित हुआ है।[2]

इस विरह से दुखित सीता को त्रिजटा अत्यधिक समझा बुझाकर अपने भवन को प्रस्थान कर जाती है। अब इस चाँदनी रात्रि की नीरवता में नायिका में पुनः विरह व्यथा उत्पन्न हो जाती है। वह रात्रि तथा चंद्रमा की अनेक तरह से निन्दा करने लगती है। यह रात्रि उसे युग की तरह लम्बी प्रतीत होतीहै।[3]

---

1. देखियत गगन विपुल अंगारा।
   अवनि न आवत एकउ तारा।।
   पावक मय ससि स्रवत न आगी। रा.च.मा. 5/11/8 से 11
   मानहुं मोहिं जान हतभागी ।।
   x x x
   नूतन किसलय अनल समाना।
   देहि अगिनि जनि करहि निदाना।।
2. मोर अभाग्य जिआवत ओही।
   जेहि हौं हरि पद-कमल विछोही।।
   जेहिकृत कपट कनक मृग झूठा ।
   अजहुं सो दैव मोहि पर रूठा ।। रा.च.मा. 6/98/6 से 9
   x x x
   रघुपति विरह सविष सर भारी ।
   तकि तकि मार बार बहु मारी।।
3. राम सुभाउ सुमिरि बैदेही।
   उपजी विरह व्यथा अति तेही।।
   निसिहि ससिहि निंदति बहु भाँति।
   जुग सम भइ सिराति न राती ।।
   करति बिलाप मनहिं मन भारी।
   राम बिरहं जानकी दुखारी ।।
   रा.च.मा. 6/99/2 से 4

तुलसी के राम अधर्म के विनाश तथा धर्म की स्थापना के लिये अवतार लेते हैं। अधर्म का विनाश करने के लिये उन्हें अपने जीवन में विभिन्न युद्ध करने पड़ते हैं। युद्ध-प्रेम उनकी प्रवृत्ति नहीं है अपितु इस वीरत्व की मूलभूत भावना में सज्जनों की रक्षा तथा दुष्टों का विनाश निहित है। वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। मानस में अनेक स्थलों पर यह"उत्साह" नामक स्थायी भाव विभिन्न विभावों,अनुभावों तथा संचारी भावों के सहयोग से वीर रस की पुष्टि करने में पूर्णरूपेण सक्षम सिद्ध हुआ है।

महामुनि शरभंग को परम गति प्रदान कर श्री राम जी अनुज लक्ष्मण तथा प्राणप्रिया सीता के सहित सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम की ओर प्रस्थान करते हैं। मार्ग में हड्डियों के ढेर को देखकर प्रभु राम विभिन्न मुनियों से इसका कारण पूछते हैं तथा उन्हें ज्ञात हो जाता है कि निशाचरों द्वारा मुनि वृन्दों का भक्षण कर लिया गया है। यह उन्हीं का अस्थि-समूह है। श्री राम जी के नेत्रों में जल भर आया तथा उन्होंने भुजा उठाकर प्रण किया कि मैं पृथ्वी को राक्षसों से हीन कर दूंगा-[1]

किष्किंधा काण्ड में बालि-सुग्रीव-युद्ध के चित्रण में भी वीर रस की पूर्णरूपेण पुष्टि हुई है। सुग्रीव को युद्ध भूमि में देखकर बालि उसपर मुष्टिका प्रहार करके घोर ध्वनि से गर्जना करता है। यह प्रहार सुग्रीव को वज्र के समान प्रतीत होता है। वह व्याकुल होकर प्रभु श्री राम जी की ओर भाग खड़ा होता है।[2]

---

1. निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
   सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह।।
   रा.च.मा. 3/9
2. अस कहि चला महा अभिमानी। तृन समान सुग्रीवहि जानी।।
   भिरे उभौ बाली अति तर्जा। मुठिका मारि महाधुनि गर्जा।।
   तब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा।।
   रा.च.मा. 4/7/1,2,3

अशोक वाटिका में राक्षसों के साथ श्री हनुमान जी के युद्ध के चित्रण में तुलसी ने हनुमान जी को अदम्य साहस के साथ युद्ध करते हुए चित्रित किया है। रावण अनेक राक्षसों को युद्ध करने के लिये भेजता है। हनुमान जी ने घोर गर्जना करके उनका वध कर डाला।[1]

रावण का पुत्र अक्षय कुमार भी विशाल सेना लेकर युद्ध के लिये आता है किन्तु वीर हनुमान द्वारा उसका भी वध कर दिया जाता है।[2]

यहाँ तक कि इन्द्रजीत मेघनाद को भी उनके मुष्टिक प्रहार से मूर्छा आ जाती है। मर्कटपुंगव ने एक विशाल वृक्ष का प्रहार करके मेघनाद को रथ रहित कर देते हैं। इसके पश्चात् उसकी सेना का संहार करके मेघनाद से युद्ध करने लगते हैं।[3]

मानसकार ने लंका काण्ड में तो वीर रस के अनेकानेक चित्र प्रस्तुत किये हैं। विभिन्न युद्ध प्रसंगों में वीर रस की सुन्दर सृष्टि की है।

---

1. सुनि रावन पठए भट नाना।
   तिन्हहिं देखि गर्जेउ हनुमाना।। रा.च.मा. 5/17/5,6
   सब रजनीचर कपि संघारे।
   गए पुकारत कछु अधमारे।।

2. पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा।
   चला संग लै सुभट अपारा।। रा.च.मा. 5/17/7,8
   आवत देखि बिटप गहि तर्जा।
   ताहि निपाति महाधुनि गर्जा।।

3. कपि देखा दारुन भट आवा।
   कटकटाइ गर्जा अरु धावा।।
   अति बिसाल तरु एक उपारा।
   बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा।।
   x x x रा.च.मा. 5/18/4,8
   मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई।
   ताहि एक छन मुरुछा आई।।

राम की विशाल वानर-भालु सेना ने लंका को घेर लिया। उधर राक्षस भी अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्ध क्षेत्र में आ डटे। मानसकार ने दोनों सेनाओं के युद्धोत्साह का अतीव सजीव चित्रण किया है।[1]

अंगद तथा हनुमान दोनों वीर गर्जना करके शत्रु सेना के बीच में कूद पड़ते हैं तथा राक्षसों का संहार करने लगते हैं। वे एक को पकड़कर दूसरे से रगड़ देते हैं और मुण्डों को पकड़कर तोड़ डालते हैं। वे मुण्ड रावण के आगे गिरकर दधि कुण्ड की तरह फूट जाते हैं।[2]

युद्ध क्षेत्र में सरोष मेघनाद के युद्ध कौशल का वर्णन मानसकार ने अत्यधिक चित्रात्मकता से किया है। वह युद्ध में राम, लक्ष्मण, नल, नील सुग्रीव, हनुमान अंगद तथा विभीषण आदि को ललकारता हुआ कठोर बाणों का संधान करता है। उसके बाण तक्षक सर्पों की तरह दौड़ रहे हैं। वानर सेना युद्ध में स्थिर न रह सकी। समस्त वानर भालु सेना की युद्ध की इच्छा समाप्त हो गयी।[3]

अपनी सेना को विचलित देखकर श्री लक्ष्मण श्री राम जी से आज्ञा माँगकर युद्धार्थ चल देते हैं। तुलसी ने युद्ध के लिये उत्साहित तथा धनुर्धारी क्रुद्ध लक्ष्मण का चित्रण करते हुए लिखा है कि उनके नेत्र लाल थे, छाती चौड़ी और भुजाएँ लम्बी थीं। उनका हिमालय पर्वत

---

1. कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहिं। दसन ओठ काटहिं अति तर्जहिं।।
उत रावन इत राम दोहाई। जयति जयति जय परी लराई।।
निसिचर सिखर समूह ढहावहिं। कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं।।

रा.च.मा. 6/40/6, 7, 8

2. एक एक सों मर्दहिं तोरि चलावहिं मुण्ड।
रावन आगे परहिं ते जनु फूटहिं दधि कुण्ड।। रा.च.मा. 6/44

3. अस कहि कठिन बान संधाने। अतिसय क्रोध श्रवन लगि ताने।।
सर समूह सो छाड़ै लागा। जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा।।
x x x
जहँ तहँ भागि चले कपि रीछा।
बिसरी सबहिं युद्ध कै ईछा।। रा.च.मा. 6/49/4 से 7

तुल्य उज्ज्वल शरीर कुछ लालिमा लिये हुए है।[1]

लक्ष्मण तथा मेघनाद की सेना का युद्ध प्रारंभ होता है। तुलसी ने इस युद्ध का वीरों की ध्वनियों के रक्त को खौला देने वाला चित्रण प्रस्तुत किया है। युद्ध क्षेत्र में केवल "मारो" तथा पकड़ो" की ध्वनि ही सुनाई दे रही है।[2]

इसी प्रकार राम कुंभकर्ण युद्ध में भी वीर रस की सुन्दर सृष्टि हुई है। कुंभकर्ण के भीषण युद्ध से रामादल विचलित होगया। तब श्रीराम जी ने परम क्रुद्ध होकर अनेक बाण छोड़े। इन बाणों ने राक्षस वीरों के सैकड़ों टुकड़े कर डाले। घायल योद्धा घूम-घूम कर पृथ्वी पर गिरने लगे।[3]

---

1. छतज नयन उर बाहु बिसाला ।
   हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला।।

   रा.च.मा. 6/52/1

2. मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं ।
   कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं।।
   मारु मारु धरु धरु धरु मारू ।
   सीस तोरि गहि भुजा उपारू ।।
   असि रव पूरि रही नव खण्डा ।
   धावहिं जहँ तहँ रुण्ड प्रचण्डा ।।

   रा.च.मा. 6/52/5,6,7

3. कटहिं चरन उर सिर भुजदण्डा
   बहुतक बीर होहिं सतखण्डा
   घुर्मि घुर्मि घायल महि परहीं
   उठि संभारि सुभट पुनि लरहीं।।

   रा.च.मा. 6/67/5,6

इस प्रकार वीर रस के अनेकानेक उदाहरण तुलसी ने अपने इस महाकाव्य में प्रस्तुत किये हैं।

करुण रस:-

महाकवि भवभूति ने करुण रस को ही एक मात्र रस माना है। उन्होंने कहा है -" एको रसः करुण एवं निमित्तभेदात्।" अर्थात करुण ही एक रस है, अन्य रस तो भेद के कारण हैं।" शोक" नामक स्थायी भाव परिपुष्ट होकर करुण रस की सृष्टि करता है। मानस में अनेक स्थलों पर करुण रस की सुन्दर तथा मार्मिक सृष्टि हुई है।

श्री पार्वती जी की विदाई बेला पर माता मैना द्वारा दिए गए उपदेश में करुण रस की अति मार्मिक व्यंजना मानसकार ने प्रस्तुत की है। अम्बा मैना के नेत्र सजल हो उठते हैं। वे श्री पार्वती जी को हृदय से लगा लेती हैं। वे स्त्री जाति की पराधीनता को कोसने लगती हैं।[1]

श्री जानकी जी की विदाई बेला पर तो करुण रस अपनी सीमा पर पहुँचा हुआ प्रतीत होता है। पशु-पक्षी भी व्याकुल दृष्टि गोचर हो रहे हैं। अष्टांग योगी महाराज जनक के नेत्रों में प्रेमाश्रु उमड़ पड़े। आज सीता को देखकर उनका धैर्य उनसे कोसों दूर भाग गया है।[2]

---

1. बचन कहत भरे लोचन बारी ।
बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी ।।
कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं।
पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं ।।

रा.च.मा. 1/101/45

2. सीय बिलोकि धीरता भागी।
रहे कहावत परम बिरागी ।।
लीन्ह रायँ उर लाइ जानकी ।
मिटी महा मरजाद ग्यानकी ।।

रा.च.मा. 1/337/ 5,6

अयोध्या काण्ड में श्री राम के वन-गमन पर तो तुलसी ने करुण रस की अद्वितीय सृष्टि कर दी है। समस्त अयोध्यावासी अपने प्रिय राम के साथ वन को चल देते हैं। प्रथम दिन तमसा नदी के तट पर विश्राम होता है। वहाँ सबको सोता हुआ छोड़कर श्री राम श्री अनुज लक्ष्मण तथा भार्या जानकी जी के साथ रथारूढ़ होकर वन के लिये प्रस्थान कर देते हैं। प्रातः काल सबके जागने पर वहाँ करुण रस की मार्मिक झाँकी के दर्शन होते हैं।[1]

दशरथ-मरण प्रसंग में तो करुण रस अतीव प्रभावशाली रूप में चित्रित हुआ है। महाराज दशरथ जीवन के अंतिम क्षणों में श्री कौशल्या जी के मधुर वचनों को सुनकर धैर्य धारण करके बैठ जाते हैं। वे समग्र रात्रि पर्यन्त प्रिय राम, लक्ष्मण तथा जानकी के लिये व्याकुल होकर विलाप करते रहते हैं।[2]

महाराज दशरथ के मरणोपरान्त समस्त रानियाँ, दास व दासियाँ तथा पुरवासी व्यथित हृदय होकर विभिन्न प्रकार से विलाप करने लगते हैं। करुण रस की इतनी मार्मिक सृष्टि अन्यत्र दुर्लभ है।[3]

---

1. निंदहिं आपु सराहहिं मीना।
   धिग जीवन रघुबीर बिहीना।।
   जौं पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा।।
   तौ कस मरनु न मागें दीन्हा ।।
   रा. च. मा. 2/85/5,6

2. धरि धीरजु उठि बैठ भुआलू।
   कहु सुमंत्र कहँ राम कृपालू।।
   कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही।
   कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही ।।
   रा. च. मा. 2/154/1,2

3. सोक बिकल सब रोवहिं रानी।
   रूप सील बल तेज बखानी ।।
   x x x
   बिलपहिं बिकल दास अरु दासी।
   घर-घर रुदन करहिं पुरबासी ।।
   रा. च. मा. 2/155/3,4,5

सीता-हरण प्रसंग में भी करुण रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। राक्षसराज रावण के रथ पर आसीन सीता जी विविध-विलाप करती हुई आकाश मार्ग से चली जा रही हैं। अपने प्राण वल्लभ श्री राम को वे बारंबार पुकार रही हैं। लक्ष्मण को हठ पूर्वक श्री राम के पास भेजने पर ही उनकी यह स्थिति हुई। अब इस बात को स्वीकार करती हुई वे अत्यधिक करुण क्रन्दन कर रही हैं।[1]

लंका-दहन के पश्चात वापस लौटते हुए हनुमान को श्री जानकी जी अपना संदेश प्रभु राम के लिये कहती हैं। इस स्थल पर भी करुण रस की अत्यधिक मार्मिक व्यंजना हुई है। वे कहतीं है कि हे हनुमान! यदि एक मास तक प्रभु नहीं आये तो वे मुझे जीवित नहीं पायेंगे। पवन सुत को देखकर उन्हें कुछ शांति मिली थी किन्तु अब वे भी जाने को तैयार हैं। अतः जानकी जी के हृदय में पुनः शोक जागृत हो उठता है।[2]

लक्ष्मण को शक्ति लग जाने पर श्री राम द्वारा किये गये विलाप में शोकजन्य रस अपनी उच्चतम सीमा पर प्रतिष्ठित हो गया है। करुण रस का ऐसा सुन्दर उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। वनवास काल में लक्ष्मण कृत सेवा का स्मरण कर वे शोक सागर में डूब जाते हैं।[3]

---

1. हा जग एक बीर रघुराया ।
   केहि अपराध बिसारेहु दाया॥
   बिबिध बिलाप करति बैदेही ।   रा.च.मा. 3/28/1,4
   भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही ॥

2. मास दिवस महुं नाथ न आवा ।
   तौ पुनि मोहिं जियत नहिं पावा॥   रा.च.मा. 5/26/6,8
   तोहि देखि सीतलि भइ छाती ।
   पुनि मो कहुं सोइ दिन सोइराती॥

3. मम हित लागि तजेहु पितु माता।
   सहेहु बिपिन हिम आतप बाता॥
   सो अनुराग कहाँ अब भाई ।   रा.च.मा. 6/60/4,5
   उठहु न सुनि मम बच बिकलाई॥

श्री रामजी आज उसी तरह से दुखित हैं जिस प्रकार बिना पंख के पक्षी, बिना मणि के सर्प तथा बिना सूंड के श्रेष्ठ हाथी दुखी होता है। अधिक क्या ? वे तो अब जीवन से भी ऊब चुके हैं। बिना लक्ष्मण के वे जीना भी नहीं चाहते ।[1]

इस प्रकार अनेक स्थलों पर तुलसी ने अपने महाकाव्य में करुण रस की सुन्दर सृष्टि की है।

हास्य रस:

हास्य रस का स्थायी भाव "हास" है। विभिन्न विभावों, अनुभावों तथा संचारी भावों के सहयोग से यह " हास" नामक स्थायी भाव हास्य रस की सृष्टि करताहै। राम चरित मानस में हास्य रस के पर्याप्त स्थल प्राप्त होते हैं। मानस में हमें इस रस के दर्शन निम्नांकित दो रूपों में प्राप्त होते हैं -

[क] शुद्ध हास्य-

[ख] व्यंग्य मिश्रित हास्य-

[क] शुद्ध हास्य:

शुद्ध हास्य के दर्शन हम मानस में शिव-बारात वर्णन, केवट-पद-प्रक्षालन तथा रावण पर विजय के पश्चात विभीषण द्वारा विभिन्न वस्त्राभूषणों की वर्षा करने पर वानरों की स्थिति आदि प्रसंगों में पाते हैं।

---

1. जथा पंख बिन खग अति दीना ।
   मनि बिनु फनि करिबर कर हीना ॥
   अस मम जिवन बंधु बिन तोही ।
   जौं जड़ दैव जिआवै मोही ॥

   रा॰च॰मा॰ 6/60/9, 10

भगवान शंकर की वर यात्रा में भाग लेने वाले सदस्यों के वर्णन में तुलसी ने हास्य रस की सुन्दर छटा प्रस्तुत की है। कोई मुखहीन है तो किसी के बहुत से मुख हैं। कोई बिना हाथ पैर का है तो कोई बहुत से हाथ तथा पैर धारण किये है।[1]

गंगातट पर प्रभु राम केवट से नाव की याचना कर रहे हैं। केवट नौका नहीं लाना चाहता। इस स्थल पर केवट की बातों से तुलसी ने हास्य रस की सुन्दर योजना की है। केवट कहता है कि हे प्रभु आपकी चरण-रज में पत्थर को भी मनुष्य बना देने की शक्ति है। फिर मेरी नौका तो काष्ठ की ही है। यदि ये भी स्त्री बन गयी तो मेरी जीविका ही समाप्त हो जायेगी।[2]

विजय को प्राप्त करने के पश्चात श्री राम जी समस्त प्रियजनों के साथ अयोध्या लौटने को तैयार होते हैं। विभीषण जी विभिन्न वस्त्राभूषणों की वर्षा करते हैं। जिसको जो अच्छा लगता है वह वही ले लेता है। मणियों को मुंह में रखकर बन्दर उन्हें पुनः डाल देते हैं। श्री सीता जी व अनुज लक्ष्मण जी के सहित प्रभु राम जी हंसने लगते हैं।[3]

---

1. कोउ मुख हीन बिपुल मुख काहू ।
   बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू ।। — रा॰च॰मा॰ 1/92/7,8
   बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना ।
   रिष्टपुष्ट कोउ अति तन खीना ।।

2. छुअत सिला भइ नारि सुहाई ।
   पाहन तें न काठ कठिनाई ।। — रा॰च॰मा॰ 2/99/5,6
   तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई ।
   बाट परइ मोरि नाव उड़ाई ।।

3. जोइ जोइ मन भावइ सोइ लेहीं ।
   मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं ।। — रा॰च॰मा॰ 6/116/7

व्यंग्य मिश्रित हास्यः

तुलसी ने मानस के अनेक स्थलों पर हास्य को व्यंग्य मिश्रित करके दर्शाया है। नारद-मोह प्रसंग में हमें इस हास्य का सुन्दर चित्रण प्राप्त होता है। विश्वमोहिनी के स्वयंवर में शिव और नारद जी परम प्रसन्न होकर बैठे थे उस ओर तो उसने भूलकर भी नहीं देखा। नारद जी बार-बार उचकते और अकुलाते हैं।[1]

मंथरा कैकेयी संवाद में भी इसी हास्य के दर्शन होते हैं। कैकेयी द्वारा बहुत पूछे जाने पर भी मंथरा कुछ नहीं कहती, केवल आँसू बहाती है। इस पर कैकेयी हंसकर कहती है कि तेरे गाल बड़े फूले हैं। ज्ञात होता है कि लक्ष्मण ने तुझे कुछ शिक्षा दे दी है।[2]

मंथरा द्वारा समस्त वृत्तांत ज्ञात कर रानी उसे डाँटकर "घर फोड़ी" कहकर संबोधित करती है। वह व्यंग्य करती हुई कहती है कि काणी, कुब्ज, कुबड़े प्रायः कपटी और कुचाली होते हैं। उनमें भी विशेष रूप से स्त्री और दासी हो तो कहना ही क्या है।[3]

श्री राम जी द्वारा शूर्पणखा से लक्ष्मण को अविवाहित कहलवा कर तुलसी ने व्यंग्य मिश्रित हास्य की योजना की है।[4]

---

1. जेहि दिसि बैठे नारद फूली।
   सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली॥
   पुनि-पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं॥ रा.च.मा. 1/134/1,2
   देखि दसा हरि गन मुसुकाहीं॥
2. हँसि कह रानि गालु बड़ तोरे। रा.च.मा. 2/12/7
   दीन्ह लखन सिख अस मन मोरे॥
3. काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
   तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि॥
   रा.च.मा. 2/14
4. सीतहि चितइ कही प्रभु बाता।
   अहइ कुआँर मोर लघु भ्राता॥ रा.च.मा. 3/16/11

श्री लक्ष्मण जी भी उससे तटस्थता वार्तालाप करते हैं। उसे प्रभु की बहिन जानकर प्रथम तो वे प्रभु की ओर देखते हैं और फिर उसी कोमल वाणी से व्यंग्य करते हैं।[1]

वह अंत तक भी यह नहीं समझ पाती कि उसे मूर्ख बनाया जा रहा है। राम उसे लक्ष्मण के पास भेज देते हैं तथा लक्ष्मण उसे पुनः प्रत्यावर्तित कर देते हैं।[2]

श्री अंगद जी के लंका पहुंचने पर भी तुलसी ने व्यंग्य मिश्रित हास्य का अतीव सुन्दर प्रयोग किया है। नगरवासी यह समझते हैं कि वही बन्दर पुनः आ गया है जिसने लंका जलाई थी। वे बिना पूछे ही उन्हें मार्ग बतला देते हैं। जिसकी ओर अंगद जी देख लेते हैं वही सूख जाता है।[3]

विभिन्न उत्तर प्रत्युत्तर होने के पश्चात् अंगद जी रावण की सभा में अपना पैर जमा देते हैं। विभिन्न योद्धा उनका पैर टालने का प्रयास करते हैं किन्तु वे सफल नहीं होते हैं। अंत में रावण स्वयं उनका पैर पकड़ता है किन्तु अंगद उसे तुरंत ही यह कह कर रोक देते हैं कि मेरे पैर पकड़ने से तेरा उद्धार न होगा। अरे शठ ! जाकर श्री राम जी के पैर क्यों नहीं पकड़ता।[4]

---

1. गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी॥
   सुन्दरि सुनु मैं उन्ह कर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा॥
   रा.च.मा. 3/16/12, 13
2. पुनि फिरि राम निकट सो आई।
   प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई॥ रा.च.मा. 3/16/17
3. भयउ कोलाहल नगर मझारी। आवा कपि लंका जेहिं जारी॥
   × × ×
   बिनु पूछें मगु देहिं दिखाई। जेहि बिलोक सोइ जाइ सुखाई॥
   रा.च.मा. 6/17/8 से 10
4. कपि बल देखि सकल हियँ हारे। उठा आपु कपि कें परचारे॥
   गहत चरन कह बालिकुमारा। मम पद गहें न तोर उबारा॥
   गहसि न राम चरन सठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई॥
   रा.च.मा. 6/34/1 से 3

बन्दर भालुओं द्वारा लंका पर चढ़ाई कर देने पर रावण अपनी राक्षसी सेना को बुलाकर कहता है कि ब्रह्मा ने घर बैठे ही भोजन भेज दिया है। समस्त योद्धा चारों ओर जाओ तथा सभी रीछ वानरों को पकड़कर खा जाओ। इस अवसर पर तुलसी ने भगवान शंकर द्वारा रावण की बात पर सुन्दर व्यंग्य हास्य प्रस्तुत किया है। भगवान शंकर कहते हैं कि हे पार्वती! रावण को ऐसा गर्व था जैसे टिटिहरी पक्षी ऊपर को ओर पैर करके सोता है।[1]

इसी प्रकार से अनेकानेक हास्य व्यंग्य पूर्ण स्थलों से मानस भरा पड़ा है।

<u>रौद्र रस-</u>

रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। भौंहे तानना, दाँत पीसना, ललकारना आदि इसके अनुभाव हैं तथा गर्व, अमर्ष, उग्रता आदि संचारी भाव हैं। राम चरित मानस में अनेक स्थलों पर इस रस की सुन्दर सृष्टि हुई है।

बालकाण्ड में "लक्ष्मण -परशुराम संवाद" प्रसंग इस रस का सुन्दर उदाहरण है। लक्ष्मण के व्यंग्य वचनों को सुनकर परशुराम जी अत्यधिक क्रोधित हो जाते हैं। वे क्रोधावेश में आकर लक्ष्मण से कहते हैं कि मैं तुझे बालक समझकर ही छोड़ रहा हूं। मैंने अनेक बार पृथ्वी को राजाओं से शून्य कर दिया है। मेरा परशु सहस्त्र बाहु की भी भुजाओं को काटने में समर्थ सिद्ध हुआ है। अतः तू इस प्रकार का व्यवहार करके अपने जीवन

---

1. उमा रावनहिं अस अभिमाना।
   जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना।।

   रा० च० मा० 6/39/6

को संकट में मत डाल।[1]

श्री राम जी को अयोध्या वापस लाने के लिये चित्रकूट जा रहे भरत पर निषादराज की आशंका उसे भरत से युद्ध के लिये उत्तेजित कर देती है। निषादराज गुह अपने सभी सहयोगियों से कहता है कि वे सब भरत से युद्ध के लिये तैयार होजायें। वह समस्त नाविकों को घाटों को रोकने तथा नाव को डुबो देने का आदेश दे, प्राणों का मोह त्याग कर यु. के लिये उद्यत होने लगता है।[2]

ठीक इसी प्रकार की शंका लक्ष्मण जी भरत के सम्बन्ध में व्यक्त करते हैं। इस स्थल में भी रौद्र रस की सटीक पुष्टि हुई है। श्री लक्ष्मण जी अपने अग्रज श्री राम जी से युद्ध के लिये आदेश माँगने लगते हैं। वे कहते हैं कि आज मैं भरत को सेना के सहित उसीप्रकार नष्ट कर दूंगा जिस प्रकार एक सिंह हाथियों के समूह का तथा बाज बटेर-पक्षियों का विनाश कर डालता है। वे श्री राम जी की सौगन्ध खाकर यहाँतक कह डालते हैं कि यदि भगवान शंकर भी आकर भरत की सहायता करें तो भी मैं उसे मार डालूंगा।[3]

---

1. भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही॥
सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीप कुमारा॥

रा॰च॰मा॰ 1/271/ 7 व 8

2. होहु सँजोइल रोकहु घाटा।
ठाटहु सकल मरै के ठाटा॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ।
जियत न सुरसरि उतरन देऊँ॥

रा॰च॰मा॰ 2/189/1 व 2

3. जिमि करि निकर दलइ मृग राजू।
लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥
तैसेहिं भरतहि सेन समेता।
सानुज निदरि निपातउँ खेता॥
जौं सहाय कर संकर आई।
तौ मारउँ रन राम दोहाई॥

रा॰च॰मा॰ 2/229/6,7,8

भयानक रस:

भयानक रस का स्थायी भाव भय है। विकृत और उग्र ध्वनि तथा भयावह चेष्टाएँ उद्दीपन हैं। कंपन, रोमांच, विवर्णता तथा कण्ठावरोध आदि अनुभाव हैं। शंका, दैन्य, आवेग, चिन्ता आदि संचारी भाव हैं। रामचरित मानस में अनेक स्थलों पर तुलसी ने इस रस की सजीव सृष्टि की है।

कोप-भवन में कैकेयी के भीषण रूप का चित्रण भयानक रस की सृष्टि करता है। भयभीत राजा दशरथ कैकेयी को इस स्थिति में देखकर अत्यधिक दुखित हो जाते हैं। कैकेयी मोटा तथा पुराना वस्त्र लपेटे भूमि पर पड़ी है। उसने आभूषणों को शरीर से उतार फेंका है। महाराज दशरथ की ओर वह इस प्रकार देख रही है जैसे रोष से भरी हुई सर्पिणी टेढ़ी दृष्टि से देख रही हो।[1]

श्री राम जी द्वारा सीता को वन जाने से रोकने के लिए जंगल के भयानक दृश्य का वर्णन हुआ है। इस सम्पूर्ण वर्णन में भयानक रस की सुन्दर सृष्टि हुई है।

गिरि कन्दराओं, नदियों तथा दुर्गम नद और नालों की भयानकता के साथ वन्य जीवों की रोमांचकारी गर्जना धैर्य को छुटा देने वाली हैं।[2]

---

1. सभय नरेस प्रिया पहिं गयऊ।
   देखि दसा दुख दारुन भयऊ ॥
   भूमि सयन पटु मोट पुराना।
   दिए डारि तन भूषन नाना ॥   रा.च.मा. 2/24/5 से छंद तक

   x   x   x

   केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई।
   मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि बिषम भाँति निहारई ॥

2. कंदर खोह नदी नद नारे ।
   अगम अगाध न जाहिं निहारे ॥
   भालु बाघ बृक केहरि नागा ।
   करहिं नाद सुनि धीरज भागा ॥

   रा.च.मा. 2/61/ 7 व 8

सृष्टि की है। सुग्रीव तथा हनुमान द्वारा कुम्भकर्ण के नाक कान काटे जाने पर वह और भी भयानक लगने लगा। उसे देखते ही वानरी सेना में भय व्याप्त हो गया।[1]

देखते-देखते कुम्भकर्ण करोड़ों वानरों को पकड़ कर खाने लगा। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों टिड्डियाँ पर्वत कन्दरा में समा रही हों। करोड़ों वानरों को उसने अपने शरीर से मसल डाला। करोड़ों को धूल में मिला दिया। बन्दर भालुओं के झुण्ड मुँह, नाक तथा कानों की राह से निकल कर भागने लगे।[2]

इस प्रकार अनेक स्थलों पर तुलसी ने मानस में भयानक रस की सफल सृष्टि की है।

<u>वीभत्स रस:</u>

इस रस का स्थायी भाव घृणा है। पूयकृमि, रुधिर, माँस तथा दुर्गन्धियुक्त वस्तुएँ इसका आलम्बन हैं। इन वस्तुओं की चर्चा करना अथवा देखना उद्दीपन है। थूकना, मुँह फेरना, नाक सिकोड़ना तथा कम्प आदि अनुभाव हैं। तुलसी ने अपने मानस में युद्ध काण्ड में इस रस की सृष्टि की है। मेघनाद-युद्ध वर्णन वीभत्स रस का सटीक उदाहरण है। युद्ध में मेघनाद आकाश से अनेक अंगारे बरसाने लगा। पृथ्वी से जलधारा प्रकट होने लगी। नाना प्रकार के पिशाच तथा पिशाचिनी "मारो-काटो" के शब्द करने लगे। विष्टा, पीब, रक्त, बाल तथा हड्डी की वर्षा करता हुआ मेघनाद कभी-कभी पत्थरों को फेंकने लगता है। उसने धूल की वर्षा कर इतना अँधेरा कर दिया कि अपना फैलाया हुआ हाथ ही नहीं दिखाई पड़ता है।[3]

---

1. नाक कान काटे जियँ जानी। फिरा क्रोध करि भइ मन ग्लानी।।
   सहज भीम पुनि बिनु श्रुति नासा। देखत कपि दल उपजी त्रासा।।
   रा.च.मा. 6/65/9, 10
2. कोटिन्ह कोटि कपि धरि धरि खाई। जनु टीड़ी गिरि गुहाँ समाई।।
   कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा। कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा।।
   रा.च.मा. 6/66 2, 3
3. नभ चढ़ि बरष बिपुल अंगारा। महि ते प्रगट होहिं जल धारा।।
   विष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा। बरषइ कबहुं उपल बहु छाड़ा।।
   रा.च.मा. 6/51/1 से 4 तक

राम-रावणयुद्ध तो अनेक वीभत्स वर्णनों से परिपूर्ण है। बन्दर व भालु राक्षसों को पकड़ कर उनके गाल फाड़ देते हैं। उनका पेट चीरकर उनकी आँतों को गले में पहन लेते हैं। पकड़ो, मारो, काटो तथा पछाड़ो की ध्वनि आकाश और पृथ्वी में भर गई है।[1]

रण-क्षेत्र में परम भयावनी रुधिर-सरिता बह रही है। बहुत सी मज्जा बह रही है, वहीफेन है। भूत, पिशाच और बेताल उस सरिता में स्नान करते हैं। कौआ और चील भुजाएं लेकर उड़ते हैं तथा एक दूसरे से छीनकर खा जाते हैं।[2]

गिद्ध आँतें खींच रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों शिकारी नदी के तट पर बंसी खेल रहे हों।[3]

बहुतेरे सियारों के झुण्ड मुर्दों को काटते, खाते तथा "हुंआ-हुंआ" ध्वनि कर रहे हैं। मुण्ड रहित करोड़ों धड़ घूम रहे हैं तथा वसुधा पर पड़े हुए सिर जय-जय बोल रहे हैं।[4]

---

1. धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अँतावरि मेलहीं।
   प्रहलादपति जनु बिबिध तनु धरि समर अंगन खेलहीं ॥
   धरु मारु काटु पछारु घोर गिरा गगन महि भरि रही।
   जय राम जो तृन ते कुलिस कर कुलिस तेकर तृन सही ॥

   रा.च.मा. 6/80/ अंतिम छंद

2. मज्जहिंभूत पिसाच बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला॥
   काक कंक लै भुजा उड़ाहीं । एक ते छीनि एकै खाहीं ॥

   रा.च.मा. 6/87/ 1,2

3. खैंचहिं गीध आँत तट भए ।
   जनु बंसी खेलत चित दए ॥

   रा.च.मा. 6/87/5

4. जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं ।
   खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं ॥
   कोटिन्ह रुण्ड मुण्ड बिनु डोल्लहिं।
   सीस परे महि जय जय बोल्लहिं ॥

   रा.च.मा. 6/87/ 9,10

बन्दरों तथा राक्षसों के युद्ध में जब राक्षस पराजित होने लगे तब राक्षसों के सेनापति- अकंपन और अतिकाय माया से उत्पन्न अंधेरा कर देते हैं। रक्त,पत्थर और राख की वर्षा होने लगती है।[1]

वानर-भालु राक्षसों को पकड़कर समुद्र में डाल देते हैं। मगर, सर्प तथा मच्छ इत्यादि विभिन्न जल जन्तु उन्हें पकड़ कर खाते हैं।[2]

इसी प्रकार के अनेकानेक वीभत्स उदाहरण युद्ध काण्ड में विद्यमान हैं।

ज) अद्भुत रस:

अद्भुत रस का स्थायी भाव विस्मय या आश्चर्य है। इस रस का आलम्बन अलौकिक चरित्र या विचित्र वस्तु है। आँखें फाड़कर देखना, स्तब्ध हो जाना, अवाक् हो जाना आदि अनुभाव हैं।

राम चरितमानस में अनेक स्थलों पर तुलसी ने अद्भुत रस की विविध झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। माता कौशल्या द्वारा बालक राम में विराट रूप का दर्शन अद्भुत रस का सुन्दर उदाहरण है। माँ कौशल्या ने पालने में तथा रसोई घर में दोनों ही जगह बालक राम को एक ही समय में देखा। तत्पश्चात् माता ने बालक के अलौकिक रूप में दर्शन किये जिसके प्रत्येक रोम-रोम में कोटि कोटि ब्रह्माण्ड लगे हुए हैं। अगणित सूर्य, चन्द्रमा, शिव ब्रह्मा जी तथा बहुत से पर्वत, नदियाँ तथा समुद्र देखे। यह दृश्य देखकर माता का शरीर पुलकित हो गया तथा वाणी अवरुद्ध होगयी।

---

1. भयउ निमिष महँ अति अँधियारा। वृष्टि होइ रुधिरोपल छारा ।। — रा.च.मा. 6/45/11
2. गहि पद डारहिं सागर माहीं। मकर उरग झष धरि-धरि खाहीं।। — रा.च.मा. 6/46/8
3. अगनित रबि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन।।
   काल कर्म गुन ग्यान सुभाउ । सोउ देखा जो सुना न काउ ।।
   तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूँदि चरनन सिर नावा ।।
   — रा.च.मा. 1/201/1 से 5

श्री राम जन्म के महोत्सव पर अयोध्या में महान उल्लास व्याप्त है। एक मास की अवधि का एक दिन हो गया किन्तु इस रहस्य को किसी ने भी नहीं जाना। सूर्य देव अपने रथ के सहित अयोध्या में ही ठहर गये। अतः रात्रि आ ही कैसे सकती है।[1]

पाषाण देह धारिणी गौतम नारी अहिल्या श्री राम के चरणों का स्पर्श पाते ही शाप विमुक्त होकर अपने पूर्व रूप में आ गयी। प्रेमाधिक्य से उसका शरीर पुलकित होगया। वह प्रभु के चरणों में लिपट गयी तथा उसके दोनों नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी।[2]

श्री राम जी द्वारा शिव-धनुष भंजन के अवसर पर भी तुलसी ने अद्भुत रस की सृष्टि की है। श्री गुरुदेव जी को मानसिक प्रणाम करके श्री राम जी ने धनुष को उठा लिया। धनुष बिजली की भाँति चमका तथा आकाश में मण्डलाकार हो गया। सभी लोग राम की ओर एकटक देखते रहे तथापि उन्होंने धनुष को लेते, चढ़ाते तथा खींचते हुए नहीं देखा। केवल यह देखा कि श्री राम जी यह वेदिका पर खड़े हुए हैं।[3]

---

1. मास दिवस कर दिवस भा, मरम न जानइ कोइ। रा.च.मा. 1/195
   रथ समेत रवि थाकेउ, निसा कवन विधि होई।।

2. परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
   देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोर रही।।
   अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही।
   अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही।।

   रा.च.मा. 1/210/छन्द 1।।

3. दमकेउ दामिनी जिमि जब लयऊ।
   पुनि नभ धनुमण्डल सम भयऊ।।
   लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े।
   काहु न लखा देखि सब ठाढ़े।।

   रा.च.मा. 1/260/6 व 7

इन्द्र-पुत्र जयंत की कुटिलता पर श्री राम जी द्वारा मंत्र-प्रेरित ब्रह्म बाण छोड़ना अद्भुत रस का सुन्दर उदाहरण है। काक वेषधारी जयंत सभी लोकों में व्याकुल घूमता रहा किन्तु ब्रह्मबाण ने उसका पीछा नहीं छोड़ा।[1]

सीता हरण के पूर्व सीता का अग्नि में प्रवेश होना तथा छाया रूप में पुनः प्रतिष्ठित होना भी अद्भुत रस का सुन्दर उदाहरण है। इस रहस्य को श्री लक्ष्मण जी भी नहीं जान पाये।[2]

श्री काक भुशुण्डि जी द्वारा अपनी आत्म कथा वर्णन प्रसंग की एक घटना भी अद्भुत रस की निष्पत्ति करती है। अयोध्या नरेश दशरथ के आँगन में बालक राम विहार कर रहे थे। वहीं पर श्री काक जी पहुंच गये राम जी ने कौए को पकड़ने के लिए अपनी भुजा फैलाई किन्तु काक जी उड़ चले। जैसे जैसे वे आकाश में उड़ते जाते थे वैसे, वैसे राम जी की भुजा भी उनके समीप आती जाती थी। यहाँ तक कि वे उड़ते उड़ते ब्रह्म लोक तक पहुंच गये किन्तु उनके तथा राम जी की भुजा के बीच केवल दो अंगुल का अन्तर था।[3]

---

1. प्रेरित मंत्र ब्रह्म सर धावा।
   चला भाजि बायस भय पावा।।
   x x x — रा.च.मा. 3/1/1 से 4
   ब्रह्म धाम सिवपुर सब लोका।
   फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका।।

2. जबहिं राम सब कहा बखानी।
   प्रभु पद धरि हिय अनल समानी।। — रा.च.मा. 3/23/ 3 व 4
   निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता।
   तैसेइ रूप सील सुबिनीता।।

3. ब्रह्म लोक लगि गयउँ मैं,
   चितयउँ पाछ उड़ात। — रा.च.मा. 7/79
   जुग अंगुल कर बीच सब,
   राम भुजहिं मोहि तात।।

चौदह वर्ष की अवधि व्यतीत होने पर अयोध्या लौटे हुए प्रभु राम एक साथ सभी प्रेमातुर पुरवासियों से यथायोग्य मिले। इस अवसर पर प्रभु ने अपने अपार रूप प्रकट किये।[1]

सती -मोह प्रसंग में भी तुलसी ने अद्भुत रस की सुन्दर योजना की है। श्री सती जी के मन की सर्वान्तर्यामी स्वामी श्री राम जी पहिचान गये। इससे सती जी के हृदय में अत्यधिक संकोच हुआ और वे शिव जी के पास चलने को लौट पड़ीं। मार्ग में सती जी ने अद्भुत दृश्य देखा। उन्होंने अपने आगे तथा पीछे दोनों ओर लक्ष्मण तथा जानकी जी सहित सुन्दर वेश में राम जी को पाया। अब तो वे जिधर भी दृष्टिपात करती हैं वहाँ ही श्री राम जी विराजमान हैं तथा अनेक सिद्ध मुनीश्वर उनकी सेवा कर रहे हैं। सती जी इस दृश्य को देखकर भयभीत हो गयीं। उनका हृदय कंप गया तथा वे आत्म-सुधि-विस्मृत हो गयीं। वे आँखें बन्द कर मार्ग में ही बैठ गयीं।[2]

इस प्रकार अनेक स्थलों पर गोस्वामी जी ने मानस में अद्भुत रस के बहुत सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं।

---

1. अमित रूप प्रगटे तेहि काला ।
   जथा जोग मिले सबहिं कृपाला।।

   रा.च.मा. 7/5/5

2. सती दीख कौतुक मग जाता ।
   आगे राम सहित श्री भ्राता ।।
   फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा।
   सहित बंधु सिय सुन्दर वेषा ।।
   × × ×
   हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं।
   नयन मूँदि बैठीं मग माहीं ।।

   रा.च.मा. 1/53/4 से 1/54/6 तक

अधिकांश विद्वानों ने वात्सल्य रस को अलग रस न मानकर शृंगार के भीतर ही परिगणित किया है। किन्तु आचार्य विश्वनाथ ने अपने "साहित्य दर्पण" में इस रस को पूर्णता के साथ प्रतिष्ठित किया है। इस रस का स्थायी भाव पुत्र स्नेह है। पुत्रादि आलंबन हैं तथा उनकी चेष्टायें उद्दीपन हैं। आलिंगन, अंग स्पर्श, सिर चूमना तथा निहारना आदि अनुभाव हैं। शंका, हर्ष, गर्व आदि संचारी भाव हैं।

राम चरित मानस में वात्सल्य रस के अनेकानेक अनूठे चित्र प्रस्तुत हुए हैं। बालक राम को मातायें कभी गोद में लेती हैं तो कभी पालने में झुलाने लगती हैं। कभी प्रिय ललना कहकर दुलार करने लगती हैं।[1]

पुत्र-प्रेम में मग्न अम्बा कौशल्या रात्रि व दिन को व्यतीत होते नहीं जानतीं। वे श्री राम जी की बाल-लीलाओं का गान करने लगती हैं।[2]

भोजन के समय जब राजा दशरथ बालक राम को बुलाते हैं तो वे बाल समाज को त्यागकर नहीं आते। अम्बा कौशल्या जब बुलाने जातीं हैं तब ठुमुक ठुमुक चलते हुए दूर भाग चलते हैं किन्तु माता हठ पूर्वक उन्हें दौड़कर पकड़ लेती है। धूल धूसरित शरीर वाले बालक राम को महाराज दशरथ हँसकर अपनी गोद में बैठा लेते हैं।[3]

---

1. कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना।
   मातु दुलारइ कहि प्रिय ललना।। रा.च.मा. 1/197/8

2. प्रेम मगन कौसल्या, निसि दिन जात न जान। रा.च.मा. 1/200
   सुत सनेह बस माता, बाल चरित कर गान ।।

3. भोजन करत बुलावत राजा ।
   नहिं आवत तजि बाल समाजा।।
   × × ×
   धूसर धूरि भरें तनु आए ।
   भूपति बिहँसि गोद बैठाए।। रा.च.मा. 1/202/6से9

तुलसी ने बालक राम की बाल सुलभचेष्टाओं का मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया है। बालक राम चंचल चित्त से इधर उधर देखते हुए भोजन करते हैं। अवसर पाकर मुख में दधि तथा चावल लपटाए हुए किलकारी मारकर इधर-उधर भाग जाते हैं।[1]

श्री राम जी द्वारा शिव-धनुष का खण्डन करने पर श्री विश्वामित्र जी के वात्सल्य का चित्रण तुलसी ने अतिव मनोरम ढंग से किया है। श्री विश्वामित्र पुनीत सागरवत् हैं। उनमें प्रेम रूपी अथाह जल भर गया है। श्री राम रूपी पूर्ण चन्द्रमा को देखकर पुलकाय मे रूपी भारी तरंगे बढ़ने लगीं हैं।[2]

महाराज दशरथ का अपनी पुत्रवधुओं के प्रति वात्सल्य अनुमाननीय है। वे अपनी सभी रानियों को बुलाकर मृदुवाणी में कहते हैं कि वधुएं अभी बालिकाएं हैं तथा दूसरे घर में आयी हैं, अतः इन्हें पलकों में नेत्रों की भाँति प्यार से रखना।[3]

प्रभु श्री राम जी वनवास केलिए माता कौशल्या से आज्ञा प्राप्त ~~की~~ करने के लिए जाते हैं किन्तु माता अभी इस समाचार से अनभिज्ञ हैं। वह तो अभी यह ही समझ रही हैं कि राम का राज्याभिषेक होना है। राम जी को सम्मुख देखकर माता कौशल्या का वात्सल्य उमड़ पड़ा। माता ने आनन्दाश्रु बहाते

---

1. भोजन करत चपल चित,
   इत उत अवसरु पाई।
   भाजि चले किलकत मुख,
   दधि ओदन लपटाई।। — रा.च.मा. 1/203

2. कौशिक रूप पयोनिधि पावन।
   प्रेम वारि अगाधु सुहावन ।।
   राम रूप राकेसु निहारी ।
   बढ़त बीचि पुलकावलि भारी ।। — रा.च.मा. 1/261/293

3. वधु लरिकनीं पर घर आईं।
   राखेहु नयन पलक की नाईं।। — रा.च.मा. 1/358/8

हुए पुलकित हो उन्हें गोद में बिठा लिया। पुत्र प्रेम के आधिक्य से उनके स्तनों से दुग्ध स्रावित होने लगा।[1]

चित्रकूट में प्रिय पुत्री सीता को तपस्विनी के वेष में देखकर महाराज जनक के हृदय में वात्सल्य का सागर उद्वेलित हो उठा। उन्होंने जानकी को अपने हृदय से लगा लिया। वात्सल्य रस का इतना मनोरम उदाहरण सर्वथा स्तुत्य है।[2]

लंकापति रावण द्वारा अपहरित सीता के करुण क्रन्दन को सुनकर गीधराज जटायु का सीता के प्रति आचार्यण वात्सल्य रस से परिपूर्ण है। सीता को धैर्य दिलाते हुए जटायु ने कहा- हे पुत्रि! भय मत करो। मैं इस राक्षस को अभी नष्ट करता हूं।[3]

बालि अपने जीवन के अंतिम क्षणों में अपने पुत्र अंगद को श्री राम जी की शरण में देकर उसको अभय बना देना चाहता है। पुत्र अंगद को प्रभु श्री राम जी का दास बनाने में वह उसके मंगल मय भविष्य की कल्पना संजोए हुए है।[4]

---

1. बार बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जल पुलकित गाता।।
   गोद राखि पुनि हृदय लगाए। स्रवत प्रेम रस पयद सुहाए।।

   रा.च.मा. 2/51/3,4

2. लीन्हि लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन पेम प्रान की।।
   उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयउ भूप मन मनहुं पयागू ।।

   रा.च.मा. 2/285/4,5

3. सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। रा.च.मा. 3/28/9
   करिहउं जातुधान कर नासा।।

4. यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए।
   गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिए ।।

   रा.च.मा. 4/9/छन्द 2

अशोक वाटिका में माँ जानकी का श्री हनुमान जी पर अनुग्रह वात्सल्य रस से परिपूर्ण है। श्री सीता जी हनुमान को बल तथा शील का अजस्र भण्डार प्रदान करतीं हैं। वे हनुमान को पुत्र ! कह कर संबोधित करती हैं तथा अजर, अमर व सकल गुण निधान होने का वरदान देती हैं।[1]

रावण-विजय के पश्चात श्री हनुमन्त लाल जी लंका जाकर यह समाचार श्री जानकी जी से निवेदित करते हैं। इस स्थल पर तुलसी ने वात्सल्य रस की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है। श्री सीता जी के मन में अपार हर्ष हुआ। उनका शरीर पुलकित हो गया तथा नेत्रों में जल भर आया। वे बोलीं- हे पुत्र ! मैं तुम्हें क्या दूं ? इस सन्देश के समान तीनों लोकों में और कुछ भी नहीं है। वे हनुमान जी को आशीर्वाद प्रदान करती हैं कि हे पुत्र ! समस्त सद्गुण तुम्हारे अन्दर निवास करें तथा लक्ष्मण सहित श्री राम जी तुम पर प्रसन्न रहें।[2]

इस प्रकार मानस में अनेक स्थलों पर तुलसी ने वात्सल्य रस से परिपूर्ण भाव भीने चित्र प्रस्तुत किए हैं।

शान्त रस:

शान्त रस की गणना प्रधान रसों में होती है। इसका स्थायी भाव निर्वेद है। संसार की असारता तथा क्षण भंगुरता इसके आलम्बन है। सत्संग, भगवान

---

1. आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना।।
   अजर अमर गुन निधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू ।।

   रा॰च॰मा॰ 5/16/2,3

2. सुनु सुत सदगुन सकल तव,
   हृदय बसहुँ हनुमन्त।
   सानुकूल कोसलपति, रा॰च॰मा॰
   रहहुँ समेत अनंत ।।

तथा तीर्थदर्शनादि उद्दीपन हैं। रोमांच, अश्रु, ग्लानि आदि अनुभाव हैं। महात्मा तुलसीदास जी ने मानस की रचना आत्मशांति के लिए की है। स्थान स्थान पर उन्होंने संसार की असारता का चित्र प्रस्तुत करके पाठक को शान्त रस की अनुभूति कराने का सफल प्रयास किया है।

अयोध्या काण्ड में लक्ष्मण-गीता प्रसंग में शान्त रस की सुन्दर सृष्टि हुई है। श्री लक्ष्मण जी निषादराज से संसार की नश्वरता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि संसार के जो भी व्यवहार देखने, सुनने तथा मनन करने में आते हैं वे सब मोह की मूल हैं।[1]

यह संसार स्वप्नवत् है। जिस प्रकार स्वप्न में एक राजा भिखारी हो जाता है तथा एक दरिद्र व्यक्ति इन्द्र हो जाता है किन्तु जागने पर न कुछ लाभ है और न हानि, उसी प्रकार से इस संसार को भी प्रपंच समझना चाहिए।[2]

राम वनवास के पश्चात ननिहाल से लौटे हुए भरत को गुरु वशिष्ठ द्वारा सान्त्वना प्रदान की जाती है। इस उपदेश में शान्त रस की सुन्दर निष्पत्ति हुई है। हानि-लाभ तथा जीवन-मरण को दैवाधीन कहकर भरत को शान्ति धारण करने का गंभीर उपदेश गुरु वशिष्ठ द्वारा प्रदान किया गया। असहायता की प्रबलता का समर्थन गुरु वशिष्ठ के शब्दों में अधिक प्रभावकारी हो गया है।[3]

---

1. धरनि धाम धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू।।
   देखिअ सुनिअ गुनिअ मनमाहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं ।।

   रा. च. मा. 2/91/7, 8

2. सपनें होई भिखारि नृप, रंक नाकपति होई।
   जागे लाहु न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोई।।

   रा. च. मा. 2/92

3. सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनि नाथ।
   हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस विधि हाथ।।

   रा. च. मा. 3/14/ 2, 3

गोदावरी के तट पर पंचवटी में श्री राम द्वारा लक्ष्मण को ज्ञान, वैराग्य तथा माया का वर्णन शान्त रस की पुष्टि करता है। जीव के बन्धन का कारण माया है। मैं-मेरा तथा तू- तेरा का भेद ही माया है। विश्व में जो कुछ भी इन्द्रिय गोचरित हो रहा है वह सब माया का स्वरूप है।[1]

अरण्य काण्ड के अन्त में मानसकार ने युवती के शरीर को दीप-शिखा कहकर मन को उसका पतंगा बनाने से रोका है। काम व मद को त्याग कर सर्वदा सत्संग तथा भगवद्भजन करने का सदुपदेश देकर तुलसी ने शान्त रस की सफल सर्जना की है।[2]

बालि-वध के पश्चात शोक विह्वल तारा के प्रति श्री राम जी द्वारा तत्व ज्ञान का उपदेश शान्त रस को निष्पादित करता है। प्रभु श्री राम जी ने उपदेश किया कि जीव नित्य है तथा शरीर नाशवान है। बालि का पंच भौतिक शरीर तो तारा के सम्मुख ही है। जीवात्मा परमात्मा का अंश है अतः वह शाश्वत है। इस उपदेश से तारा के अन्दर ज्ञान का उदय हुआ तथा उसने परम भक्ति का वरदान माँग लिया।[3]

---

1. मैं अरु मोर तोर तैं माया।
   जेहिं बस कीन्हें जीव निकाया।।
   गो गोचर जहँ लगि मन जाई।
   सो सब माया जानहु भाई ।।
   रा.च.मा. 3/14/2,3

2. दीपशिखा सम युवति तन,
   मन जनि होसि पतंग ।
   भजहि राम तजि काम मद,
   करहि सदा सतसंग ।।
   रा.च.मा. 3/46(ख)

3. छिति जल पावक गगन समीरा।
   पंच रचित अति अधम सरीरा ।।
   प्रगट सो तनु तव आगे सोवा ।
   जीव नित्य केहि लगि तुम रोवा ।।
   उपजा ज्ञान चरन तब लागी ।
   लीन्हेसि परम भगति बर मागी।।
   रा.च.मा. 4/10/4,5,6

विभीषण-गीता प्रसंग भी शान्त रस का सुन्दर उदाहरण है। श्री राम जी द्वारा विभीषण के लिए धर्म रथ का उपदेश पाठक को अपार शांति प्रदान करता है। शौर्य तथा धैर्य इस रथ के पहिये हैं। सत्य व शील दृढ़ ध्वजा तथा पताका है। बल, ज्ञान, इन्द्रिय निग्रह तथा परोपकार रूपी चार घोड़े क्षमा, दया तथा समता की रस्सी से जुड़े हुए है। भगवद्जन ही चतुर सारथी है। वैराग्य ढाल तथा संतोष तलवार है। दान फरसा है, बुद्धि तीव्र शक्ति है, श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है। निर्मल तथा निश्चल मन रूपी तरकस में शम, यम, व नियम रूप अनेक बाण है। ब्राह्मण व गुरुपूजन अभेद्य कवच हैं। इस प्रकार का धर्म-रथ जिस के पास है उस पर विजय प्राप्त करने वाला कहीं भी कोई शत्रु नहीं है।[1]

उत्तर काण्ड में पुरजन-गीता प्रसंग भी शान्त परिपूर्ण है। श्री राम जी द्वारा समस्त पुरवासियों के सम्मुख मानव शरीर की महत्ता तथा उसके महत्व पर प्रकाश डाला गया है। देव दुर्लभ मानव शरीर समस्त साधनों का धाम तथा मोक्ष का द्वार है। इसे प्राप्त करके भी जिसने परलोक को नहीं बनाया वह काल, कर्म तथा ईश्वर को मिथ्या दोष देकर सिर धुन-धुन करके पछताता है।[2]

---

1. सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
   सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।
   × × × रा.च.मा. 6/79/ 5 से ।।
   सखा धर्ममय अस रथ जाकें।
   जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें।।

2. बड़े भाग मानुष तनु पावा।
   सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।
   साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।
   पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ।।

   सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछिताइ।
   कालहिं कर्महिं ईस्वरहिं, मिथ्या दोष लगाइ।।

   रा.च.मा. 7/43

इस प्रकार तुलसी ने मानस में विभिन्न स्थलों पर सांसारिक माया जाल में फँसे हुए मानव मन को शान्ति प्रदान करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

भक्ति रस:

आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ ने "रस गंगाधर" में भक्ति के स्वतंत्र रसत्व पर बल दिया है।[1] उन्होंने इस रस का स्थायी भाव-भगवत्प्रेम माना है। आलम्बन ईश्वर या उसका कोई रूप है। पुराणादि श्रवण उद्दीपन है। रोमांचादि अनुभाव तथा हर्ष दैन्य आदि संचारी भाव हैं।

भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने अपने रामचरित मानस को भक्ति ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत कियाहै। अनेक स्थलों पर राम भक्ति की पावन सुरसरि प्रवाहित करके तुलसी ने भक्त-हृदयों को असीम आनन्द की अनुभूति प्रदान की है।

श्री भरत जी की राम भक्ति हमारे सम्मुख सर्वोत्कृष्ट आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। श्री भरत जी प्रभु की चरण पादुकाओं को सिंहासनासीन करके उनसे आज्ञा माँग-माँग कर राज्य का कार्यभार संभालते हैं। स्वामी राम यदि वन में वास कर रहे हैं तो श्री भरत जी पृथ्वी को खोदकर कुशाओं की साथरी बिछाकर निवास कर रहे हैं।[2]

---

1. "काव्य शास्त्र" – डा० भगीरथ मिश्र

[पृष्ठ 239]

पंचम संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

2. राम मातु गुरु पद सिरु नाई।
प्रभु पद पीठ रजायसु पाई ।।
नंदिगाँव करि परन कुटीरा।
कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा।।

रा.च.मा. 2/323/1,2

महर्षि अत्रि प्रभु श्री राम जी का आगमन सुनते ही पुलकित शरीर होकर दौड़ पड़े। विविध प्रकार से विनय कर मस्तक झुकाकर महर्षि ने प्रभु के चरण कमलों की भक्ति की याचना की।[1]

महामुनि शरभंग भी प्रभु-दर्शन कर स्वयं को कृतार्थ मानते हैं। वे प्रभु से अपनी सर्व साधनहीनता प्रकट करके उनकी कृपा के लिए कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं।[2]

श्री राम के अनन्य भक्त सुतीक्ष्ण जी तो प्रभु का आगमन सुनते ही भगवद्दर्शन की उत्कट अभिलाषा से दौड़ पड़ते हैं। ज्ञानी मुनि सुतीक्ष्ण पूर्ण प्रेम में मग्न हैं। उनको दिशा विदिशा और मार्ग नहीं सूझता है। वे आत्म सुधि विस्मृत हो गये हैं। कभी वे पीछे मुड़कर पुनः आगे को जाते हैं और कभी प्रभु का गुणगान कर नृत्य करते हैं।[3]

---

1. विनती करि मुनि नाइ सिर,
   कह कर जोरि बहोरि।
   चरन सरोरुह नाथ जनि,
   कबहुं तजै मति मोरि ।। रा.च.मा. 3/4

2. चितवत पंथ रहेउं दिन राती।
   अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती ।।
   नाथ सकल साधन मैं हीना । रा.च.मा. 3/7/3,4
   कीन्हीं कृपा जानि जन दीना।।

3. दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा ।
   को मैं चलेउं कहाँ नहिं बूझा ।।
   कबहुंक फिरि पाछे पुनि जाई ।
   कबहुंक नृत्य करइ गुन गाई ।।

   रा.च.मा. 3/9/11 व 12

अनेक तरह से प्रभु की पूजा कर तथा निर्मल भक्ति का वरदान प्राप्त करके सुतीक्ष्ण जी प्रभु को अपने गुरु अगस्त्य मुनि के पास ले गये। महामुनि कुंभज में भी भक्ति की पावन धारा प्रवाहित है। प्रभु को देखकर उनके नेत्रों में जल भर गया। आदर के साथ कुशल पूंछ कर उन्हें उत्तम आसन पर बैठाया। अनेक तरह से प्रभु की पूजा कर मुनि ने अपने भाग्य की प्रशंसा की।[1]

किष्किन्धा में प्रभु श्री राम जी के प्रथम मिलन पर श्री हनुमन्त लाल जी में भक्ति रस की निष्पत्ति हुई है। अपने प्रभु को पहिचान कर वे चरण पकड़कर पृथ्वी पर गिर पड़े। उनका शरीर पुलकित हो उठा तथा वाणी अवरुद्ध हो गयी।[2]

प्रभु श्री राम जी के अमित बल की परीक्षा करने के पश्चात् सुग्रीव में भी भक्ति रस के दर्शन होते हैं। श्री सुग्रीव जी सुख, सम्पत्ति, परिवार तथा बड़ाई का त्याग कर प्रभु की सेवा करने का निश्चय करते हैं।[3]

उनमें वैराग्य इस सीमा तक पहुंच जाता है कि वे सब कुछ छोड़कर अहर्निशि भगवद्भजन करने के लिए प्रभु कृपा की आकांक्षा प्रकट कर देते हैं।[4]

---

1. सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए।
   हरि बिलोकि लोचन जल छाए।।
   × × × रा॰च॰मा॰ 3/11/9 से।।
   मुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा।
   मोहिं सम भाग्यवंत नहिं दूजा।।

2. प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना।
   सो सुख उमा जाइ नहिं बरना ।। रा॰च॰मा॰ 4/1/5,6
   पुलकित तन मुख आव न बचना।
   देखत रुचिर बेष कै रचना ।।

3. सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई । रा॰च॰मा॰ 4/6/16
   सब परिहरि करि हउँ सेवकाई।।

4. अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। रा॰च॰मा॰ 4/6/21
   सब तजि भजन करउँ दिन राती।।

रावण का पद-प्रहार सहन करने पर भी श्री विभीषण जी हर्षित होकर श्री राम जी के पास चल देते हैं क्योंकि आज उन्हें सेवक सुख प्रदाता प्रभु चरणार विन्दों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होना है। परम भागवत श्री विभीषण जी अनेक भक्ति मनोरथों से युक्त होकर चले जा रहे हैं। अहिल्या उद्धार कर्ता, दण्डक वन पावन कर्ता, श्री जानकी जी के सर्वस्व तथा भगवान शंकर के हृदय सरोवर में कमलवत विराजमान प्रभु चरणों का दर्शन विभीषण के लिए अहो भाग्य होगा।[1]

इस प्रकार भक्ति रस के अनेकानेक उदाहरण मानस में सुलभ हैं।

आनन्द रामायण में रस विवेचन :

रस की अति व्याप्तता के कारण ही इस धरती का नाम रसा पड़ा है। वस्तुतः सरसता से ही आनन्द की उद्भूति है तथा आनन्द चेतन का चरम व परम लक्ष्य है। रूक्षता की कठोर भूमि में भटकता हुआ मानव मन केवल कुण्ठाओं के आघात सहता हुआ मृतक का जीवन जीता है। अतः रस निधान अपने कार्य, विचार और वाणी को भावार्णव में डुबोकर वातावरण को सदैव सरस बनाते रहे हैं। साहित्य के क्षेत्र में यह रस ही साहित्य के सत्यम् शिवम् सुन्दरम् को आनन्द की पराकाष्ठा तक पहुँचाता है। काव्य की आत्मा के रूप में मनीषियों द्वारा मान्य यह तत्त्व प्रत्येक काव्य ग्रन्थ में सर्वोच्च आसन का अधिकारी है। विभिन्न अनुभूतियाँ मानव अंतःकरण में स्थित भावों को सक्षम बनाती हैं। ये भाव कभी अपने क्रम को नहीं खोते हैं। भावानुभूति की इस स्थिति में कवि के शब्द विधान को रसात्मकता की

---

1. देखिहउँ जाइ चरन जल जाता।
   अरुन मृदुल सेवक सुखदाता ॥
   × × × रा.च.मा. 5/41/5 से 8
   हर उर सर सरोज पद जेई।
   अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई ॥

प्राप्ति होती है। कवि की कृति में रसात्मकता की यह अनुभूति जितनी अधिक होती है उतनी ही चिरंतनी और आनन्ददायिनी होती है। तभी कवि अपनी कृतियों को इस रसार्णव में स्नात कराके ही अपने को कृतकार्य मानते हैं। आनन्द रामायणकार इस क्षेत्र में पीछे नहीं है। उनके इस ग्रन्थ में रसानुभूति के अनेक सुरम्य स्थल हैं जिनका क्रमिक विवेचन निम्नवत है -

<u>संयोग शृंगार :</u>

"रति" स्थायी भाव सर्वाधिक सशक्त स्थायी भाव है। समस्त संचारियों से संचारित समस्त अनुभावों से अभियुक्त एवं अनेकानेक विभावों से विभूषित इस स्थायी भाव के द्वारा पुष्ट शृंगार रस का रस राजत्व स्वयं सिद्ध है। जीवन के सुख और दुख दोनों पक्षों को आत्मसात किये हुए यह अपनी व्यापकता के द्वारा साहित्य के चिरंतत्व को सर्वाधिक बल प्रदान करता है। विभिन्न कवियों ने अपने ढंग से अपनी कृतियों में रसराज को अभिसिक्त किया है। इसके संयोग और विप्रलम्भ दोनों पक्षों को काव्य ग्रन्थों में स्थान मिला है। संयोग पक्ष के चित्रण में कतिपय साहित्यकार सामाजिक मर्यादाओं से आबद्ध रहे हैं। किन्तु अन्य अनेक साहित्यकारों ने मर्यादा के बन्धन को तोड़कर अपनी उन्मुक्त वासनाओं की भावभीनी छाप रसराज के मस्तक पर सुसज्जित की है। आनन्द रामायणकार का संयोग शृंगार इसी कोटि का है। विलास काण्ड में ऐसे अनेक चित्र ग्रन्थकार ने चित्रित किए हैं। श्री राम द्वारा सीता के सौन्दर्य का नख शिख वर्णन कराकर कवि ने संयोग शृंगार की सुन्दर सृष्टि की है। सीता के नाखून अपनी अनुपम छटा द्वारा चन्द्रकला को भी पीछे कर देने में सक्षम हैं। नाखूनों की लालिमा अनारदाने की भाँति झलक रही है।[1]

---

1. प्रतिपच्चंद्रकलया स्पर्धंति नखानि ते।
   नख मध्या रक्तवर्णाः शुभा दाडिमबीजवत्।।
   आ० रा० 4/2/39-40

सीता की नासिका को देखकर तोते अपने को बार-बार धिक्कारते हैं उसके ओष्ठों की लालिमा और कोमलता देखकर आम्रवृक्ष के नवीन लाल पत्ते लज्जावश हरे हो गये। अर्थात सीता के ओष्ठों की लालिमा के समक्ष नवीन आम्र पल्लव की लालिमा नहीं ठहर सकी।[1]

इस प्रकार इस समस्त वर्णन में संयोग शृंगार की सुन्दर छटा विद्यमान है।

सीता के विविध अलंकारों का वर्णन भी ग्रन्थकार ने इसी काण्ड में प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत वर्णन में संयोग शृंगार की स्वच्छ स्वाभाविक एवं मनोरम पुष्टि हुई है। सीता के कटि प्रदेश में स्थित एक रेशमी वस्त्र की सुरम्य झांकी कवि द्वारा प्रस्तुत की गयी है। उस वस्त्र में मोतियों की झालर लगी हुयी थी तथा स्वर्ण के तारों से चित्रकारी बनी हुई थी। गति की चंचलता के कारण उसमें से एक मधुर ध्वनि निकल रही थी।[2]

उनकी सुन्दर साड़ी में स्थान-स्थान पर मयूर, सिंह, वृषव्याघ्र और मृग आदि के चित्र बने थे। पीत, रक्त, हरित, नील, एवं कृष्ण वर्ण के मणियों से वह साड़ी खचित थी।[3]

विभिन्न हारों, ग्रीवा के आभूषणों तथा चोली व बाजूबन्द का सरस चित्रण तो अत्यधिक चित्ताकर्षक है। हाथ के दोनों कंकण स्वर्ण पुष्पों

---

1. तव घ्राणं शुकोद्दृष्ट्वा स्वात्मानं धिग्धिक्करोतिहि।
   x x x
   लज्जया हरितो भाति रक्तत्वात् त्वदीयां सुरक्तताम्।।

   आ. रा. 4/2/70,71

2. तस्याः कट्यां दुकूलो पीत कौशेयमुज्ज्वलम्।
   x x x
   नवीनं गतिचांचल्यात्कृत मंजुलनिः स्वनम् ।।

   आ. रा. 4/4/41,42

3. हैकिसिंह वृष व्याघ्र मृग चित्र विचित्रिताम्।
   पीतरक्तहरिन्नील कृष्णमणि खचमण्डिताम् ।।

   आ. रा. 4/4/44

से जड़े हुए थे। स्वर्ण निर्मित चूड़ियों के मध्य वे सूर्य तथा चन्द्र की भाँति प्रतीत होते थे।[1]

सीता के ललाट पर रत्नों तथा मणिमुक्ताओं से युक्त एक स्वर्ण तिलक था जो कोटि सूर्यवत प्रकाशमान था। उनके सीमन्त में अतिशय दीप्तिमान चूड़ामणि थी जो वेणी से लेकर तिलक पर्यन्त शोभित हो रही थी।[2]

काण्ड के पंचम सर्ग में श्री राम व सीता के जल विहार चित्रण में संयोग शृंगार का अमर्यादित तथा अश्लील रूप प्रस्तुत हुआ है। उपवन में रिक्त तथा केसरादि से रंजित जल वाले एक विशाल हौज में राम ने सीता को गोद में उठाकर फेंक दिया तथा वे स्वयं भी उसमें कूद गये। दासियों द्वारा सुगन्धित तेल तथा विविध प्रकार के परिमल मंगाकर वे एक दूसरे पर डालने लगे। पिचकारियों द्वारा परस्पर केसरादि से मिश्रित जल की वर्षा करने लगे। इस रस-वृष्टि को देखकर समस्त सखियाँ लज्जावश वहाँ से अन्यत्र जा बैठीं।[3]

तदनन्तर उनकी एकान्त जल क्रीड़ा का भद्दा तथा कुरूप चित्रण भी चित्रित हुआ है। परस्पर कोमल मुष्टि प्रहार तथा वस्त्र रहित करने का चित्रण तथा श्री राम द्वारा सीता के चुम्बन, आलिंगन तथा कुचमर्दन इत्यादि का नग्न चित्रण तो अश्लीलता की सीमा को स्पर्श

---

1. करचूडौ दीप्तिमंतौ हेमचूडादिमिश्रितौ। आ. रा. 4/4/6।
   करकंकणमध्यस्थौ चन्द्रसूर्याविव स्थितौ ।।
2. निटिले तिलकं रत्नमणिमुक्ताविराजितम्।
   हैमं विद्युत्समुज्ज्वलं च कोटि सूर्य समप्रभम् ।।
   ×   ×   ×   आ. रा. 4/4/77, से 79
   चूडामणिं च तद्मूर्ध्नि वनकेन समर्पितम् ।।
3. जल क्रीडां स मैथिल्या चकार रघुनन्दनः ।
   ×   ×   ×
   वस्त्रभित्तिव्यवहितं गत्वा तस्थुर्विलज्जिताः ।।

   आ. रा. 4/5/45 से 50

करता हुआ सा प्रतीत होता है।[1]

ठीक ऐसा ही चित्रण राज्य काण्ड में भी प्राप्त होता है।[2]

विलास काण्ड के अतिरिक्त अन्य काण्डों में भी संयोग शृंगार का सरस चित्रण कवि द्वारा प्रस्तुत हुआ है। चित्रकूट में श्री राम द्वारा सीता का शृंगार सुमन प्रसंग संयोग शृंगार की सुन्दर पुष्टि करता है। श्री राम भी उस पवित्र वन में मैनसिल की सुन्दर शिला पर चन्दनादि घिस कर सीता के मस्तक पर तिलक रचना करते थे। उनके कोमल कपोलों पर कमनीय चित्रावली का निर्माण करते थे। अनेक सुकोमल पत्रों तथा पुष्पों से उन्हें सुसज्जित करते थे।[3]

यात्रा काण्डान्तर्गत श्री रामतीर्थ में स्नान करने के पश्चात् विविध वस्त्राभूषणों से अलंकृत श्री राम व श्री सीता का सुन्दर वर्णन संयोग शृंगार की मनोरम तथा पवित्र झाँकी प्रस्तुत करता है।[4]

---

1. मुष्टिकया जानकी रामं ताडयामास कौतुकात्।
   सो ऽपि तां ताडयामास मुष्ट्या पुष्पसमानया।।
   ×   ×   ×
   कुसुम्भ तस्या विबोधिं चूर्णयामास तत्कुचौ ।
   कुचस्या सर्वंचुकीबंध मालिंग्य हृदयेन ताम् ।।
   ×   ×   ×
   एवं परस्परं क्रीडां चक्रतुर्दम्पती मुदा ।

   आ०रा० 4/5/ 53 से 56 तक

2. ततो विहस्य श्री रामस्तामालिंग्य पुनः पुनः।
   कराभ्यां तत्स्तनौ स्पृष्ट्वा पपौ बिंबाधरामृतम्।। आ०रा० 7/5/67

3. चकार सीतया क्रीडां चित्रिने रम्य पर्वते।
   ×   ×   ×   आ०रा० 1/7/120, 121
   कुर्वन्तं कपोलयोः कोमलैः कुसुमादिभिः।।

4. अथ रामो हरे क्षौमे परिधाय स्वलंकृतः ।
   शुभे निसर्गं दिव्यकंकणाभ्यां सुमंडितः ।।
   ×   ×   ×   आ०रा० 3/8/52 से 54 तक
   चिंतामणि कौस्तुभयोः प्रभया दीपितोदरः।।

जन्म काण्ड में श्री राम व सीता के उपवन विहार प्रसंग में श्री ग्रन्थकार ने संयोग श्रृंगार की मनोरम सृष्टि की है। श्री सीता जी लता-मण्डप में छिपकर श्री राम को स्पर्श कर देती हैं। जब वे यह समझ लेती हैं कि श्री राम ने उन्हें देख लिया है तब दौड़कर उनसे हृदयालिंगन करने लगती हैं।[1]

इस प्रकार आनन्द रामायण में स्थान-स्थान पर संयोग श्रृंगार की अनेकानेक सरस तथा भाव-भीनी झाँकियाँ प्रस्तुत हुई हैं। ग्रन्थकार ने प्रस्तुत स्थलों में रस सिद्धि करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

वियोग श्रृंगार:

संयोग वियोग की धूप छाँह में जन-जीवन के क्रिया कलाप अनवरत निरन्तरित हैं। संयोग काल की कुछ स्मृतियाँ वियोग काल के अवलम्बन के रूप में अंतःकरण को सरसता की जो अनुभूति देती हैं वह अनिर्वचनीय है। साहित्यकारों ने रसराज के उभय पक्षों में से सरसता की तीव्रता वियोग पक्ष में अधिक अनुभव करके अपने काव्य ग्रन्थों में इसे उच्च स्थान दिया है। आनन्द रामायणकार ने भी अपने ग्रन्थ में वियोग श्रृंगार के भाव भीने चित्र प्रस्तुत किए हैं।

राम चरित मानस की ही भाँति आनन्द रामायण में भी वियोग श्रृंगार के पूर्वराग तथा प्रवास- दो ही रूपों का चित्रण हुआ है। इसके तीसरे रूप- मान का चित्रण प्रस्तुत ग्रन्थ में अप्राप्त है। पूर्व राग तथा प्रवास के कतिपय चित्रण निम्नवत हैं-

---

1. गोपयित्वा निजं देहं सीता कुञ्जलतैः नेः।

× × ×

एवं सीताराघवयोः क्रीडनं परमाद्भुतम्॥

आ॰रा॰ 5/2/ 11 से 13 तक

पूर्वराग:

आनन्द रामायणकार ने अपने इस महान ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर वियोग शृंगार के पूर्वराग रूप की सरस पुष्टि की है। सीता-स्वयंवर प्रसंग में श्री जानकी जी श्री राम की सुकोमलता तथा शिव धनुष की कठोरता का अनुभव करके अधिक दुखित हो जाती है। वे अपने पिता द्वारा किये गये अविवेकपूर्ण प्रण की भर्त्सना करती हुई ईश्वर व भाग्य को कोसतीं हैं। वे राम के अतिरिक्त अन्य किसी का भी वरण नहीं करना चाहती हैं। ऐसा न होने पर वे आत्म हत्या तक कर लेने की कल्पना कर बैठती हैं। वे अनेक देवी देवताओं से धनुष को हल्का बना देने तथा श्री राम के भुजदण्डों को बल प्रदान करने हेतु प्रार्थना याचना करती है तथा मनौतियाँ मानती हैं। इस प्रकार प्रस्तुत स्थल में वियोग शृंगार की चिन्ता दशा की सुन्दर पुष्टि हुई है।[1]

श्री राम द्वारा धनुष के टूट जाने पर श्री सीता जी के शरीर में आनन्दातिरेक से रोमांच हो उठा। वे उत्कण्ठा पूर्वक निमेष रहित नेत्रों से श्री राम का दर्शन करने लगीं। विरह की " अभिलाषा" दशा का अत्यधिक सजीव चित्र प्रस्तुत स्थल में अंकित हुआ है।[2]

राजा कम्बुकण्ठ की कन्या मदन सुन्दरी के स्वयंवर में भी कवि ने वियोग शृंगार की चिन्ता दशा का सुन्दर चित्रण किया है।

---

1. किंपणो न कृतः पित्रा मम शुल्कवर्जिता ।
   क्व राम सुकुमारांगः क्वेदं चापं मनोभवम् ।।
   x x x
   सर्वैरेतन्महच्चापं करणीयं तु सुलघु ।
   प्रवेशनीयं बलमाभिः श्रीराम भुजदंडयोः ।।

   आ.रा. 1/3/ 113 से 120 तक

2. सीता पि मुदिता जाता हर्षरोमांचनिर्भरा।
   अनिमेषा स्वनेत्रा राममुत्कंठिता ह्यभूत् ।।

   आ.रा. 1/3/135

मदन सुन्दरी प्रद्युम्न तनय पुष्पकेतु का वरण करना चाहती है किन्तु उसके पिता द्वारा अयोध्या के लिए निमन्त्रण पत्र ही नहीं भेजा जाता। इसी अवसर पर दैवात् आप्राप्त श्री नारद जी से वह खिन्न मना, अश्रुनेत्रा, म्लानमुखा कम्पिताधरा तथा रोमांचगाता राजकन्या श्री राम की पुत्रवधू बनने हेतु गद्गद् वाणी से प्रार्थना करने लगी। वह मुनिराज के चरणों में अपना मस्तक रखकर सफलता का ~~प्रयत्न एवं~~ उपाय पूछती है।[1]

प्रवास:

प्रिय के सुदूर स्थित होने पर प्रेम की दुःखमयी स्थिति का चित्रण भी आनन्द रामायण में अनेक स्थलों पर हुआ है।

ग्रन्थकार ने अपने इस गौरव ग्रन्थ के राज्य काण्ड में प्रवास विरह का प्रचुर मात्रा में चित्रण किया है। कुम्भकर्ण के पुत्र मूलकासुर ने विभीषण को पराजित करके लंका पर अधिकार कर लिया। विभीषण की प्रार्थना पर श्री राम ससैन्य मूलकासुर का वध करने के लिए चल दिए। इधर श्री जानकी जी को श्री राम जी का यह वियोग महान कष्ट देने लगा। श्री राम के विरहानल ने उनके हृदय को दग्ध कर दिया। वे कभी उच्च प्रासाद पर तो कभी अंगूरों की वाटिका में वस्त्र व आभूषण उतार कर बैठी रहती थीं। प्रस्तुत स्थल पर विरह की उन्माद दशा का मार्मिक चित्रण हुआ है।[2]

---

1. ततः संप्रार्थयामास नारदं बालिका मुहुः ।
   खिन्नचित्ता साश्रुनेत्री म्लानास्या स्फुरिताधरा ॥
   x x x
   इत्युक्त्वा मुनिवर्यस्य पादयोः स्थाप्य सा शिरः ॥
   आ.रा. 6/8/ 23 से 25 तक

2. प्रासादे सा क्वचित् तस्थौ प्रासाद मूर्धनि।
   क्वचित् द्राक्षामंडपाय: क्वचित् संन्यस्तभूषणा ॥
   आ.रा. 7/5/2

सीता की भाँति ही उर्मिला तथा-रनिवासादिक स्त्रियों के विरह का वर्णन भी अत्यधिक मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी है। वे अपने-अपने स्वामियों की विरह व्यथा से व्यथित रहती हैं। उनके लिए समस्त सुख अनुपभोग्य हो गये हैं। योगियों के समान अन्तर्दृष्टि को नासिका के अग्र भाग में स्थिर करके वे अहर्निशि अपने-अपने पतियों का ध्यान करती हैं। एक एक रात्रि उन्हें एक युग की भाँति प्रतीत हो रही है।[1]

राज्य काण्ड के द्वादश सर्ग में श्री राम द्वारा यमुना नदी के तट पर सोलह हजार स्त्रियों को वरदान देने का प्रसंग वर्णित है। श्री राम के अन्तर्धान हो जाने पर ग्रन्थकार ने इन स्त्रियों की विरह व्यथा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। वे विरहाग्नि से व्यथित होकर चंचल नेत्रों से इतस्ततः देखने लगीं। वे दैव की विपरीतता को दोष देती हुई श्री राम को चित्तचोर तथा निष्ठुर हृदय कहती हैं। उनकी विरहाग्नि की ज्वाला से उस जंगल में करुणा की धारा बहने लगी।[2]

वे श्री राम को खोजने के लिए वन में इधर उधर घूमती हैं। वृक्षों तथा वन्य पशुओं से श्री राम का पता पूंछने लगती हैं। प्रस्तुत स्थल में कवि ने वियोग की प्रलाप दशा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

---

1. एवं ता उर्मिलाद्यश्च पतिकाश्यापि वै स्त्रियः ।
   x x x
   योगिन्य इव ता मुग्धा नासाग्रन्यस्त लोचनाः।
   अहः पत्यागतध्यानाः स्वानाथार्पित मानसाः ।।
   x x x
   हरस्तु युग समां रात्रिं दिनं ता मेनिरे तदा ।।

   आ.रा. 7/5/ 39 से 48 तक

2. हा कष्टं दर्शितः कस्मात्रामा किं रचितं त्वयम्।
   x x x
   न जीवामो न जीवामः पुनस्त्वद्दर्शनाद्विना ।।

   आ.रा. 7/12/ 41 से 46 तक

उन्माद वश वे समस्त युवतियाँ पीपल, तुलसी, कदम्ब, नदी तथा पवन से नायक श्री राम का पता पूछ रही हैं। भ्रमर, कोकिल, पपीहा तथा गजराज इत्यादि वन्य पशु पक्षियों से भी वे अपने प्रिय का पता जानना चाहती हैं।[1]

ठीक इसी प्रकार सार काण्ड में भी सीता-हरण होने पर श्री राम के विरह प्रलाप का चित्रण अतीव हृदयस्पर्शी है। नायक वन्य पशु-पक्षियों तथा वृक्षों से अपनी अपहृता नायिका का पता जाना चाहता है।[2]

विरह व्यथिता नायिका सीता कीचिन्ता दशा का वर्णन हृदय को स्पन्दित किये बिना नहीं रहता। विरह की अधिकता के कारण सीता अपने मरण का उपाय भी सोचने लगती हैं। अपने सिर की लम्बी जटाएँ उन्हें फाँसी लगाने हेतु उपयुक्त प्रतीत होती हैं। गोमती नदी के तट पर निर्दोष लक्ष्मण के लिए कहे गये कटु शब्दों का प्रायश्चित्त वे अपने प्राण देकर करना चाहती हैं।[3]

इस प्रकार आनन्द रामायण में शृंगार के संयोग तथा वियोग दोनों ही पक्षों का उत्कृष्ट चित्रण विद्यमान है।

---

1. वृक्षान् वनेचरान् रामो दृष्टो स्वाकं पतिर्न वा ।
   × × ×
   भो वायो कथयास्त्वं सीतारामो निरीक्षितः ॥

   आ. रा. 7/12/ 49 से 57 तक

2. ययौ पंचवटीं व्यनुत्ताय सीतां ददर्श न ।
   × × ×
   विचिन्वन्सर्वतः सीतां कुत्रापि ददर्श सः॥

   आ. रा. 1/7/134 से 135 तक

3. दीर्घवेणीं गलास्यर्थं वृक्षबंधाय कल्पयाति ।
   × × ×
   प्रायश्चित्तं करोम्यद्य तस्य त्यक्त्वा स्वजीवितम्॥

   आ. रा. 1/9/ 107 से 109 तक

वीर रसः

मानव जीवन सतत् संघर्षशील है। उत्थान-पतन, जय-पराजय तथा यश अपयश आदि के द्वन्द्वों में जीवन के इन संघर्षों को जो रसात्मकता प्राप्त होती है, वह जन-जीवन में जागृति एवं उमंग की अनुभूति कराती है। कर्मण्य वीर पुरुष सद् की प्रतिष्ठा और असद् के दमन हेतु इस उमंग से प्रेरित होकर कर्म क्षेत्र में गतिशील होता है। जीवन की यह गतिशीलता सर्वत्र मानव-भाव-जगत में रस की तरंगें उत्पन्न करती है। साहित्यकार मानव के इस चिर उद्योग को अपने ग्रन्थों में सदैव सम्मान देते आये हैं; इसी प्रेरणा से वीर काव्यों की अवतारणा हुई है। आनन्द रामायणकार ने भी इस प्रकार के चित्रणों को अपने इस गौरव-ग्रन्थ में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

गीधराज जटायु तथा लंकापति रावण के तुमुल युद्ध के चित्रण में कवि ने वीर रस से ओतप्रोत सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है। जटायु ने अपने पाद प्रहार तथा चंचुप्रहार से रावण के रथ को भग्न कर दिया, उसके मुकुटों को काट डाला तथा उसके शरीर को जर्जरित कर दिया।[1]

तथा सुग्रीव में अपनी वीरता के प्रति विश्वास उत्पन्न करने हेतु श्री राम द्वारा दुंदुभि के अस्थि समूह ~~उत्पन्न करने हेतु श्री राम द्वारा दुंदुभि के अस्थि समूह~~ का ढहाना तथा गोलाकार सप्त ताड़ वृक्षों का एक ही बाण से छेदन करना चित्रित करके ग्रन्थकार ने वीर रस की सुन्दर पुष्टि की है।[2]

---

1. मुकुटान् दश सँछिद्य कृत्वा देहं तु जर्जरम् ।

   आ.रा. 1/7/110

2. पादांगुष्ठेनाक्षिपत्तद् दुंदुभेः शिर उत्तमम् ।

   आ.रा. 1/8/34

राम-रावण युद्ध वर्णन में तो कवि ने वीर रस के अनेक उत्साह वर्धक चित्र प्रस्तुत किये हैं। हनुमान के मुष्टिप्रहार से रावण का रुधिर वमन करते हुए धराशायी होना चित्रित करके कवि ने वीर रस की सुन्दर सृष्टि की है।[1]

श्री राम तथा कुंभकर्ण के बीच हुए युद्ध का चित्रण भी वीर रस का सुन्दर उदाहरण है। श्री राम के तीक्ष्ण बाण प्रहार से वह हाथ, पैर, तथा सिर से रहित होकर धराशायी हो जाता है।[2]

लक्ष्मण-मेघनाद युद्ध का वर्णन तो उत्साह स्थायी भाव को रस सिद्धि तक पहुंचाने में पूर्णरूपेण सक्षम है। मेघनाद द्वारा अनेक मायावी बाणों का प्रहार तथा लक्ष्मण द्वारा उस प्रहार का सफल प्रतिरोध आदि का वर्णन पाठक के हृदय में उत्साह की जागृति किये बिना नहीं रहता है।[3]

श्री राम तथा रावण के बीच हुए युद्ध का सजीव चित्रण वीर रस की सुन्दर सृष्टि करता है। श्री राम द्वारा मात्र आधे प्रहर तक ही युद्ध क्षेत्र में धनुष का घंटारव करने पर किंकणी की अनेक ध्वनियाँ होने लगीं। प्रस्तुत वर्णन पाठक में उत्साह का संचार करने में पूर्ण रूपेण सक्षम सिद्ध होता है।

---

1. तेन मुष्टि प्रहारेण पपात रुधिरं वमन् ।

   आ॰रा॰ 1/11/40

2. शरोघ तेन चिच्छेद कुंभकर्ण शिरोयहत् ।

   आ॰रा॰ 1/11/162

3. अनर्थं बाणान्मकरोत्यार्न्यास्तैन लक्ष्मणः।
   ×　　×　　×
   सर्वं संशोषयामास वायव्यास्त्रेण लक्ष्मणः ।।

   आ॰रा॰ 1/11/181 व 182

4. किंकिणीकिंकाराःप्रहरार्धेन,
   रघुपतेः कोदंड घंटारवैः।।

   आ॰रा॰ 1/11/258

राजकुमार लव तथा श्री राम के दूतों के बीच युद्ध के चित्रण में भी वीर रस की सुन्दर पुष्टि हुई है। लव ने अपने बाणों द्वारा श्री राम के चौदह दूतोंको उनके पास फेंक दिया तथा शेष वीर इस प्रबल पराक्रम को देखकर तत्काल: भाग खड़े हुए।[1]

इसी प्रकार राजकुमार कुश तथा लक्ष्मण के बीच हुए तुमुल युद्ध का चित्रण भी वीर रस का श्रेष्ठ उदाहरण है। कुश द्वारा गारुडास्त्र के प्रयोग से लक्ष्मण का मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिरना तथा लक्ष्मण की रक्षार्थ श्री राम द्वारा ब्रह्मास्त्र द्वारा गारुडास्त्र का निवारण करना इत्यादि वर्णन "उत्साह" स्थायी भाव को रस सिद्धि तक पहुंचाने में सफल सिद्ध हुए हैं।[2]

मदन सुंदरी स्वयंवर में राजकुमार यूपकेतु तथा अन्य राजाओं के बीच हुए युद्ध का चित्रण भी वीर रस का सुन्दर उदाहरण है। समस्त राजा एक साथ यूपकेतु पर अपने शस्त्रों का प्रहार करते हैं किन्तु उस वीर राज-कुमार ने वायव्यास्त्र का प्रयोग करके उन सब राजाओं की सैन्य उड़ाकर बहुत दूर फेंक दिया ।[3]

इस प्रकार वीर रस के अनेक सुन्दर चित्र आनन्द रामायणकार ने अपने इस गौरव ग्रन्थ में प्रस्तुत किये हैं।

---

1. चतुर्दश रामदूता लवबाणेन ताडिताः ।
   निपेतुर्मूर्च्छिताः सर्वे रामाग्रे व्याहृतीतटे।।

   आ॰ रा॰ 5/6/42-43

2. बाणो लगति वक्षस्य गारुडास्त्रं मुमोच सः।
   x x x
   चापं संधाय ब्रह्मास्त्रं सौमित्रेर्विपिताश्रया ।।

   आ॰ रा॰ 5/7/116 से 119 तक

3. यूपकेतुस्तदा सेनामुत्क्षिप्य महत्तुः ।
   वायव्यास्त्रेण तान्सर्वानुत्क्षिप्य दशदिक्षु सः।।

   आ॰ रा॰ 6/8/67-68

करुण रस:

विलाप प्रपीड़ित जगत में रस की निष्पत्ति का मूल हेतु करुणा है। आदि कवि के अंतःकरण से भी शोकाकुल पक्षी के करुणालाप से कविता की उद्भूति हुई थी। जहाँ यह भाव व्यापक है वहाँ स्वतः रससिद्धि है। इसी विचार से काव्य मनीषियों ने "करुण एव रसो" का नारा लगाया है। सभी काव्य ग्रन्थों में इस रस को समादृत किया गया है। आनन्द रामायणकार ने भी इस रस से अभिभूत अनेकानेक चित्रण अपने काव्यग्रन्थ में प्रस्तुत किये हैं।

रामादि राजकुमारों के विवाह के पश्चात शत्रु राजाओं द्वारा वापस अयोध्या लौटते हुए महाराज दशरथ पर आक्रमण कर दिया गया। राम तथा समस्त अन्य भाइयों द्वारा युद्ध में अद्वितीय कौशल का परिचय दिया गया किन्तु राजकुमार भरत युद्ध में मूर्छित होकर गिर गये। भरत की इस स्थिति को देखकर अम्बा कैकेयी के विलाप तथा महाराज दशरथ सहित कौशल्या व सुमित्रा आदि के विलाप का अतीव मार्मिक चित्रण ग्रन्थकार ने प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत स्थल में "शोक" स्थायी भाव विभिन्न विभिन्न विभावों व अनुभावों से पुष्ट होकर करुण रस की मार्मिक सृष्टि करता है।[1]

राम वन गमन के पश्चात उनके वियोग में महाराज दशरथ की मृत्यु का कारुणिक चित्रण तो अत्यधिक हृदयस्पर्शी है। मंत्री सुमंत्र के द्वारा समस्त वृत्तान्त जानकर महाराज दशरथ ने राम-राम कहते हुए अपने ~~स्व~~ प्राण त्याग दिये। प्रस्तुत स्थल में कवि ने करुण रस की हृदय विदारक सृष्टि की है।

---

1. ततो मूर्छित मालोक्य भरतं कैकेयी रुषा।
ततो दशरथश्चापि कौशल्याद्या मूर्छिता:।। आ.रा. 1/4/45-46
2. सुमंत्रो पि पुरीं गत्वा नृपं वृत्तं न्यवेदयत्।
सो पि राजा रामेति अनन्तं जीवितं जहौ।। आ.रा. 1/6/91

राक्षसराज रावण द्वारा सीता के अपहरण पर सीता का करुण-क्रन्दन प्रत्येक सहृदय पाठक की हृदय तंत्री के तारों को झकझोर देने में सक्षम है। परवशता के पाश से आबद्ध जानकी को लंकापति रावण के रथ में विमनस्क तथा मथित मुख होकर "हा राम- हा राम" पुकारती हुई चित्रित करके कवि ने करुण रस की मार्मिक झाँकी प्रस्तुत की है।[1]

श्री राम द्वारा लोकापवाद से साध्वी सीता के परित्याग का चित्रण भी हृदय को व्यथित किये बिना नहीं रहता। वन भ्रमण के बहाने सीता को लक्ष्मण के साथ वन भेजा जाता है। वाल्मीकि आश्रम के निकट गंगा तट पर लक्ष्मण रथ को रोक देते हैं तथा सीता को वस्तु स्थिति से अवगत कराते हैं। अबला निर्दोष सीता को इस तरह छोड़ने में लक्ष्मण का पवित्र हृदय विदीर्ण हो उठता है किन्तु वे अग्रज राम की आज्ञा पालन में विवश हैं। लक्ष्मण के व्यथित हृदय की पीड़ा आँसू बनकर बहने लगती है। वे मातृस्नेह युक्त सीता से अपने अपराध के लिए क्षमा याचना कर तथा उनकी प्रदक्षिणोपरान्त प्रणाम निवेदित करके वापस लौटते हैं। लक्ष्मण को इस स्थिति में चित्रित करके कवि ने करुण रस की मार्मिक व्यंजना प्रस्तुत की है।[2]

श्री राम द्वारा लक्ष्मण को सीता की एक भुजा भी काटकर लाने का आदेश दिया गया था, किन्तु लक्ष्मण इस जघन्य कार्य के करने में स्वयं को अक्षम अनुभव करते हैं। वे गंगा तट पर आत्म हत्या के लिए उद्यत हो जाते हैं। उनके द्वारा चिता बनाने का निश्चय किया जाता है। प्रस्तुत स्थल पर करुण रस की जैसी मार्मिक व्यंजना हुई है वह अन्यत्र दुष्प्राप्य है।[3]

---

1. ततो विहायसा सीतां निनाय रावणः पुनः। आ॰ रा॰ 1/7/113
   राम रामेति क्रन्दंती सीता उन्मत्त लोचना।।
2. निवेद्य नत्वा स प्राह साश्रुनेत्रः सगद्गदः। आ॰ रा॰ 5/3/77-78
   दोषो न गणयन्वै मातर्मेऽज्ञानकृतं मुनेः ।।
3. छेत्तुं सीता भुजं भ्रातो भविष्यामि कथं त्वहम्। आ॰ रा॰ 5/4/5-6
   अधुना चिन्नं विशाम्येव रामाज्ञां न दधे ।।

इतना करने पर भी जब वह नहीं जागा तब राक्षसों ने रावणाज्ञा से उसके शरीर पर लकड़ी के ढेर डालकर जलाना प्रारंभ कर दिया। तब वह तुरन्त ही जाग उठा।[1]

राजकुमार लव तथा लक्ष्मण के बीच युद्ध प्रसंग में भी कवि ने हास्य रस की एक मनोरंजक झाँकी प्रस्तुत की है। लक्ष्मण ब्रह्मास्त्र द्वारा लव को बाँधकर अयोध्या ले आये। वीर पुत्र लव से स्वयं उसकी ही मृत्यु का उपाय पूछा गया। लव ने कहा कि मेरे ऊपर जल डालते रहो तभी मेरी मृत्यु होगी। ऐसा ही किया गया किन्तु ज्यों ज्यों जल पड़ता है त्यों ही लव बढ़ते जाते थे। बढ़ते बढ़ते वह वीर बालक ब्रह्मास्त्र से छूट गया तथा भुजाएं व ताल ठोंकता हुआ दौड़ने लगा। उसके विकराल रूप को देखकर लोग भाग खड़े हुए। बहुतों ने भय वश वस्त्रों में ही मल मूत्र त्याग कर दिया। इस प्रकार ग्रन्थकार ने प्रस्तुत वर्णन को हास्य रस का पुट देकर अधिक सरस बना दिया है।[2]

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने अपने इस महान ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर "हास" का सुन्दर व मनोरंजक पुट देकर पाठक की रुचि को आकर्षित करने का सफल प्रयास किया है।

रौद्र रसः

जगत की विषम और विकराल स्थितियों का निदर्शन मानव चेतना में आक्रोश और रोष को जन्म देता है। उस स्थिति में मनुष्य अपने सहज को छोड़कर उग्र और आतंकमय व्यक्तित्व को वहन करता है। साहित्यकार इस स्थिति के चित्रण से अपने ग्रन्थ में दुर्भावनाओं की सरस झाँकी प्रस्तुत करता है। आनन्द रामायण में भी रौद्ररस से परिपूर्ण अनेक काव्य चित्रों का सुन्दर समायोजन प्राप्त होता है।

---

1. काष्ठ भारैर्महद्भिश्च देहे प्रज्वलितास्तदा। आ०रा० 1/11/14
2. तं दृष्ट्वा दुद्रुवुः सर्वे व्याकुलास्ते लोकसत्तमाः।
   मलमूत्रं प्रकुर्वन्तो वस्त्रमध्ये तथेतराः ।।
   आ०रा० 5/7/106

दण्डकारण्य में शूर्पणखा के क्रोध का चित्रण रौद्ररस की सटीक सृष्टि करता है। वह क्रोधातुर होकर सीता को पकड़ने के लिये झपट उठती है।[1]

राम कार्य को विस्मृत कर देने वाले विलासी सुग्रीव के प्रति लक्ष्मण के आक्रोश से रौद्र रस की श्रेष्ठ अभिव्यंजना प्रस्तुत हुई है। परम क्रोधित लक्ष्मण ने सुग्रीव से कहा – तुम विलासिता में फंसकर श्री राम को भूल गये हो। जिस बाण से बालि का वध हुआ है वही बाण तुम्हारी भी प्रतीक्षा कर रहा है। आज मैं तुम्हें मारकर बालि के मार्ग से ही भेज दूंगा।[2]

श्री राम की विनम्र प्रार्थना स्वीकार न करने पर समुद्र को सुखा देने के लिए राम का आक्रोश तथा अपने धनुष पर अग्नि बाण का संधान रौद्र रस की सटीक सृष्टि करता है। श्री राम के इस क्रोध पूर्ण कथन से पृथ्वी कांप उठी तथा समस्त दिशाओं में अंधकार छा गया।[3]

अंगद की कटूक्तियों से परम क्रोधित रावण के उत्तेजना से युक्त कथन में रौद्र रस की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। वह अंगद को नीच कहकर संबोधित करता है। त्रैलोक्य को रुलाने में सक्षम तथा कैलाश पर्वत को भी कम्पित कर देने वाली अपनी महान शक्ति का वह रोषपूर्वक स्वयं ही कथन करता है।[4]

---

1. ततः क्रोधेन सा सीतां धर्षितुं प्रचक्रमे। आ० रा० 1/7/51

2. बाली येन हतो वीरः स बाणस्त्वां प्रतीक्षते।
   त्वमद्य बालिनो मार्गं गमिष्यसि मया हतः ॥

   आ० रा० 1/8/85

3. बाणानि मद्भुजो यं मां किं करिष्यति वानरैः।
   अद्य पश्य महाबाहो शोषयिष्यामि वारिधिम् ॥

   आ० रा० 1/10/56

4. अवध्यतां च किं मां त्वं रावणं लोकरावणम्।
   येन सर्वे विजिता देवाः कैलासः कंपितो मया॥

   आ० रा० 1/10/226-227

सीताकृत अनुष्ठान में पूजन के लिए कमल पुष्प दुष्प्राप्य था क्योंकि अयोध्या के उपवन स्थित सरोवर में ही यह पुष्प अधिक मात्रा में था और वहाँ अनेक बलवान वीर रक्षक रूप में थे। वीर बालक लव इन पुष्पों को लाने के लिए तैयार हो जाते हैं। अम्बा सीता द्वारा राजकुमार लव के बल पौरुष पर संदेह व्यक्त करने पर लव का वीरतापूर्ण कथन रौद्र रस का सुन्दर उदाहरण है। लव ने रोष युक्त होकर कहा कि माँ! आपके पवित्र स्तनों के दुग्ध तथा महर्षि वाल्मीकि की शस्त्र विद्या के प्रभाव से मैं राम से भी नहीं डरता। आप आदेश देकर मेरा पुरुषार्थ देखें।[1]

मना करने पर भी कमल पुष्प तोड़ने में संलग्न राजकुमार लव के प्रति उपवन रक्षक श्री राम के दूतों के कथन में भी कवि ने रौद्र रस का सुन्दर समावेश किया है।[2]

यज्ञाश्व की मुक्ति हेतु आयी हुई श्री राम की सेना को युद्धार्थ ललकारते हुए राजकुमार लव को ग्रन्थकार ने रौद्र रस की प्रतिमूर्ति चित्रित किया है। मेघवत गर्जन करते हुए लव ने समस्त विपक्षी सैनिकों से क्रोध पूर्वक कहा कि अरे दुष्टो मैं सीता की शोकाग्नि को बुझाने वाला मेघ हूं। सीता की उष्ण उच्छ्वास रूपी उग्र ज्वाला के समक्ष तुम सबका पुरुषार्थ आज स्पष्टतः दिखायी पड़ेगा।[3]

---

1. अम्ब स्तनस्तन्यपानेन वाल्मीकेः शस्त्र विद्यया।

   x x x

   पश्याम्ब पौरुषं मे त्व मामनुज्ञातुमर्हसि ॥

   आ.रा. 5/6/18 व 19

2. तत्तस्य वचनं श्रुत्वा क्रोधाद्दूता वचनो ब्रुवन् ।

   x x x

   बद्ध्वा त्वां वयमेवात्र विनेष्यामो रघूत्तमम् ॥

   आ.रा. 5/6/37-38

3. सीता शोकानलस्यैव मां मेघं विद्धि भो भटाः ।

   x x x

   विद्रुधं न स्फुटं लोकान् दर्शयिष्ये ममापि वा ॥

   आ.रा. 5/7/61-62

महर्षि दुर्वासा के आतिथ्य सत्कार के लिए श्रीराम द्वारा स्वर्ग से कल्प वृक्ष तथा पारिजात मँगाये गये। श्रीराम ने अपने बाण में एक पत्र बाँधकर देवराज इन्द्र के पास प्रेषित किया। श्री राम द्वारा इस पत्र की शब्दावली में कवि ने रौद्र रस की सुन्दर योजना की है। राम ने अपने तीव्र अमर्ष को प्रकट करते हुए लिखा कि हे देवराज तुम उक्त वस्तुएँ अति शीघ्र भेज दो। कहीं रावण का विनाश करने वाले मेरे बाणों की प्रतीक्षा न करने लगना।[1]

इसी प्रकार कुंभकर्ण के पुत्र मूलकासुर का वध करने के लिए उद्यत चण्डी रूप धारिणी सीता का क्रोध पूर्ण कथन रौद्र रस की सटीक सृष्टि करने में पूर्ण सक्षम सिद्ध हुआ है। पर्वतों को भी कंपित कर देने वाली कठोर वाणी में सीता ने कहा कि रे दुष्ट ! इस समय उग्र रूप धारिणी चंडिका हूं। मैं वही सीता हूं जिसके कारण तुम्हारा कुल तथा समग्र लंका ध्वस्त हो गयी थी।[2]

इस प्रकार आनन्द रामायण में अनेक स्थलों पर रौद्र रस की वीरत्व पूर्ण झाँकियों के दर्शन प्राप्त होते हैं। प्रस्तुत स्थलों में कवि ने रस सिद्धि करने में पूर्णरूपेण सफलता प्राप्त की है।

---

1. मा रावणशिरश्छेत्तुः प्रतीक्षां त्वमिषोः कुरु ।

आ. रा. 7/2/3।

2. मूलकासुर तां सीतां चंडीं मां विद्धि चंडिकाम्।
यन्निमित्तात्कुलं नष्टं तव लंका प्रधर्षिता ।।

आ.रा. 7/6/6-7

भयानक रस:

विश्व की दुर्भेद्य उलझनों से मानव मन में संदिग्धता एवं आत्म सुरक्षा की प्रतिकूलता का आभास अनुभव होता है। वह अपने को विषम पाश में आबद्ध सा अनुभव करता है। पलायन के लिये भी वह स्वतन्त्र नहीं हो पाता है। इस भय जन्य स्थिति से भयानक रस की निष्पत्ति होती है। साहित्यकार इस भीषण परिस्थितियों के चित्रण द्वारा मानव की अंतःवृत्ति को स्पन्दित करता है। आनन्द रामायण में भी कवि ने इस भयावह वातावरण की अनेक स्थलों पर सृष्टि की है।

विवाहोपरान्त मिथिला से लौटते हुए महाराज दशरथ मार्ग में साक्षात् कालवत श्री परशुराम जी के विकराल स्वरूप को देखकर भयातुर हो उठते हैं। श्री परशुराम जी के आगमन के पूर्व ही घोरतर वायु बहने लगी। इस वायु ने धूल से सबकी आँखें भर दीं। तत्पश्चात् नील मेघ वर्ण वाले तथा ऊँची जटाओं से मंडित श्री परशुराम जी हाथ में धनुष तथा कुठार लिए हुए महाराज दशरथ के आगे खड़े हो गये। महाराज दशरथ भयाधिक्य से त्राहि-त्राहि पुकार उठे।[1]

धर्म ब्राह्मण धर्मदत्त को रात्रि में विष्णु मंदिर जाते समय मार्ग में एक पिशाचिनी के दर्शन हुए। प्रस्तुत स्थल में आनन्द रामायणकार ने "भय" स्थायी भाव को रस सिद्धि पर प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयास किया है। पिशाचनी द्वारा किया जा रहा भयानक "घर-घर" शब्द तथा उसकी लम्बी जीभ का हिलाना उद्दीपन विभाव के रूप में चित्रित हुए हैं। इस प्रकार कवि भयानक रस की सटीक निष्पत्ति करने में सफल सिद्ध हुआ है।[2]

---

1. ववौ वै वदतस्तस्य ववौ घोरतरो निलः।
   कुर्वंश्चक्षूंषि सर्वेषां पांसुवृष्टिभिरर्दयन् ।। आ. रा. 1/3/344-348
   अत्यर्तिवृद्धां पितृत्वं त्राहि त्राहिति चाब्रवीत्।।

2. तेन दृष्टा समायाता राक्षसी भीमनिःस्वना ।
   तां दृष्ट्वा भयार्तः कंपितावयवस्तदा ।।
   आ. रा. 1/4/123-124

दण्डकारण्य में विराध राक्षस का वर्णन करते कवि ने भयानक रस की भयावह झाँकी प्रस्तुत की है। यह राक्षस अपने विकराल दाँत वाले मुख को फैलाकर भयानक गर्जन करता हुआ श्री राम लक्ष्मण व जानकी को भयभीत करने के लिए उद्यत हुआ। उसने अपने भाले की नोंक में बहुत से मनुष्यों को बाँध रखा था। वह व्याघ्र, हाथी तथा महिष आदि वनचरों को मार-मार कर खा रहा था।[1]

अशोक वाटिका में स्थित श्री सीता जी को विभिन्न राक्षसियों द्वारा डराने व धमकाने का चित्रण भी भयानक रस से ओतप्रोत है। राक्षसराज रावण की आज्ञा से विकराल रूपधारिणी अनेक राक्षसियाँ अपनी भयानक ध्वनियों से, क्रूर वाक्यों से, भयानक मुखाकृतियों से तथा तलवार एवं अंगुलियों के संकेतों से सीता जी को भय त्रस्त करने में प्रयत्नशील हैं।[2]

विवाह काण्ड में श्री राम द्वारा गंधर्व कन्याओं को बन्दिनियों के बंधे से विमुक्त करने का चित्रण भी भयानक रस की सफल निष्पत्ति करता है। श्री राम के शर-संधान मात्र से पृथ्वी डगमगाने लगी, सप्त समुद्रों में प्रलयंकारी लहरें उठने लगीं, घोर तर वायु बहने लगा, दिशायें धूल से भर गयी, तारे टूट-टूट कर गिरने लगे, वन्य जीव वन छोड़कर भागने लगे, पर्वत काँपने लगे तथा मेघ रुधिर वर्षा करने लगे। दण्डकारण्य स्थित उस सरोवर की जल देवियाँ धनुष की घनघोर टंकार सुनकर भयभीत हो गयीं।[3]

---

1. ते तं ददृशुरायान्तं महाकायं भयानकम्।
   × × × आ.रा. 1/7/4 से 6 तक
   भक्षयन्तं गजं व्याघ्रं महिषं वनगोचरम्॥

2. जानकीं तां स्वकण्ठेन तथा क्रूरोक्तिभिर्मुहुः। आ.रा. 1/9/100
   आस्यैर्विदीर्णैर्भीषणाद्यै भीषयन्त्यः करादिभिः॥

3. तदा चचाल धरणी चुक्षुभुः सप्त सागराः।
   × × ×
   पर्वताः कंपिता आसन् ववर्षुः शोणितं घनाः॥

   आ.रा. 6/5/35 से 37 तक

कुंभकर्ण के पुत्र मूलकासुर का वध करने में उग्र चण्डी रूप धारिणी सीता भयावह वर्णन करके भी कवि ने भयानक रस की सफल अभिव्यंजना की है। उग्ररूपमयी सीता के बड़े-बड़े दाँत, भयावनी आँखें, बिजली के समान पीतवर्ण के केश, तालवत लम्बी-चौड़ी भुजायें, कूप की तरह चौड़े पैर पर्वत-कंदरा की तरह भयावना तथा मेघ के समान कालिमा युक्त मुख लपलपाती जीभ तथा अत्यधिक विशाल सिर को देखकर मूलकासुर भय विह्वल हो उठता है।[1]

सीता द्वारा मूलकासुर का सिर काटने में सफल अस्त्र के प्रहार का चित्रण करके भी कवि ने "भय" स्थायी भाव को रसत्व की स्थिति प्रदान की है। इस अस्त्र के प्रहार से पृथ्वी डगमगाने लगी तथा समुद्र अपनी मर्यादा त्याग कर बड़ी बड़ी लहरें उछालने लगा।[2]

राज्य काण्ड में भी राम के मृगया विहार वर्णन प्रसंगान्तर्गत कवि ने बीहड़ वन के भयावह वातावरण का हृदय को कंपित कर देने वाला चित्रण चित्रित किया है। वन में कहीं-कहीं मुंह फैलाये हुए बड़े-बड़े अजगर सर्प बैठे थे। कहीं-कहीं सर्पों की केंचुलियां दिखाई देती थीं। कहीं पर दावानल के लगने से जलते हुए निकुंजों में से व्याघ्र तथा वृक आदि बड़े-बड़े जन्तु निकल-निकल कर भाग रहे थे।

इस प्रकार आनन्द रामायण में "भय" स्थायी भाव विभिन्न विभावों, अनुभावों तथा संचारी भावों के सहयोग से भयानक रस की सटीक निष्पत्ति करने में पूर्ण सक्षम सिद्ध हुआ है।

---

1. करालदंष्ट्रानयनां विद्युत्केशशिरोरुहाम्।
   तां दृष्ट्वा कौम्भकर्णिः स भीतः प्राह रुक्मादिमत।।
   आ. रा. 7/6/2, 3
2. तदा चचाल जगती मर्यादामजहात्तदा।
   संचचालाशु रत्ना व्याघ्राडयातंत्सदा दिवः।।
   आ. रा. 7/6/19-20
3. पुत्रास्त्याजगरै व्याप्तां क्वचिन्निर्मुक्त सर्पिणीम्।
   व्याघ्रवृकैस्तु दुर्गां पूर्णां क्वचित् क्वचित् ।।
   आ. रा. 7/11/15-16

अरुचिकर दृश्यों एवं स्थितियों में मानव अंतःकरण विशेष घुटन का अनुभव करता है। यह घुटन ही उसे उन स्थितियों के प्रति घृणा भाव से भर देती है। साहित्यकार इस प्रकार के चित्रण द्वारा मानव चेतना की यथार्थभूत पलायन प्रवृत्ति का रस चित्रण करता है। आनन्द रामायणकार ने इस "घृणा" स्थायी भाव को भी अपने काव्य में स्थान देकर उसे वीभत्स रस के रूप तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया है।

मेघनाद के मायावी यज्ञ का चित्रण करके कवि ने वीभत्स रस की सटीक पुष्टि की है। इस तमस, प्रधान यज्ञ में वह मांस नरमुण्ड, चर्बी, विभीतक फल, सर्पखण्ड, मण्डूक, चर्म, दांत, स्नायु, आंत तथा विभिन्न वनचरों के मांस आदि से हवन क्रिया में संलग्न चित्रित हुआ है। प्रस्तुत चित्रण से कवि ने "घृणा" स्थायी भाव को पूर्ण रस परिपाक की स्थिति पर प्रतिष्ठित किया है।[1]

मेघनाद वध के पश्चात रावण भी विजय की इच्छा से दैत्य गुरु शुक्राचार्य के कथनानुसार एक एकान्त गुफा में प्रविष्ट होकर हवन क्रिया करने लगा। इस अनुष्ठान के चित्रण में भी कवि ने वीभत्स रस की सफल पुष्टि की है। रावण ने अपने सम्पूर्ण शरीर में रक्त लपेट लिया, गले में मुण्डमाला पहिन ली तथा मृत पुरुष के शरीर को आसन बना लिया। उसने दस दिन से प्रथम उत्पन्न हुए बालकों के सिरों, मांस तथा रुधिर से हवन प्रारम्भ कर दिया।[2]

---

1. नरमुण्डैः वसाभिश्च विभीतक फलादिभिः॥
   × × ×
   नाना वनचराणां च मांसैरपि नासैरपि सर्वकम्॥

   आ.रा. 1/11/171 व 172

2. रक्तावगाहितो मुण्डमाली प्रेतासनस्थितः।
   × × ×
   आदशाहजातबालानां शिरोभिर्मांसशोणितैः॥

   आ.रा. 1/11/231-232

राक्षसराज रावण के कुछ मंत्री माल्यवान द्वारा लंका में हो रहे विभिन्न अपशकुनों का संकेत अपने सम्राट के समक्ष निवेदित करने में भी कवि ने इसी "घृणा" स्थायी भाव का चित्रण करके वीभत्स रस की सटीक सृष्टि की है। लंका में स्थित शिवलिंग कभी पसीजते हैं तथा कभी काँपने लगते हैं। मेघ तीव्र गर्जन करते हुए लंका में गर्म खून की वर्षा करते हैं।[1]

श्री राम द्वारा गंधर्व कन्याओं को अदेयियों के पंजे से निवृत्त करने का चित्रण भयानक रस के साथ वीभत्स रस को भी सफल निष्पादित करता है। श्री राम द्वारा शर संधान मात्र से पर्वत काँपने लगे तथा मेघ अनवरत रुधिरमयी वर्षा करने लगा।[2]

इस प्रकार आनन्द रामायण में वीभत्स रस की भी अनेक स्थलों पर प्रभावोत्पादक सृष्टि हुई है।

अद्भुत रसः —

निखिल ब्रह्माण्ड में मानव मन को चमत्कृत करने वाली अनेकानेक कल्पनामूलक एवं परिस्थिति जन्य स्थितियाँ हैं। ये स्थितियाँ मानव कौतूहल को अभिप्रेरित करती हैं। साहित्यकार अपने साहित्य में ऐसी अनेक झाँकियाँ प्रस्तुत करता है जो पाठक को विस्मय से भर देती हैं, अथवा उन स्थितियों की वास्तविकता को संदेह के साथ अपने चिन्तन का विषय बना लेता है। आनन्द रामायणकार ने अनेक स्थलों पर इस आश्चर्यमय वातावरण की सृष्टि करके अद्भुत रस की सफल योजना की है।

---

1. खराः स्तनितनिर्घोषा मेघाः प्रतिमंडराः ।
   शोणितान्यभिवर्षन्ति लंकायामुष्णं सर्वदा ॥

   आ॰ रा॰ 1/10/265-266

2. पर्वता कंपिता आसन् ववृषूरुधिरं घनाः ।

   आ॰ रा॰ 6/5/37

श्री राम जन्म के चित्रण में अम्बा कौशल्या के समक्ष सूतिकागृह में चतुर्भुजधारी भगवान विष्णु का प्रकट होना चित्रित करके कवि ने अद्भुत रस की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है।[1]

सीता जन्म प्रसंग में भी कवि ने अद्भुत रस की सजीव सृष्टि की है। भूमि कर्षण से प्राप्त पेटिका को महाराज जनक ने अपनी सभा के मध्य खुलवाया। उसमें सुन्दर बालिका को देखकर महाराज जनक अत्यधिक विस्मित हुए।[2]

मुनि श्रेष्ठ शरभंग के निर्वाण का चित्रण भी अद्भुत रस की सफल निष्पत्ति करता है। प्रभु श्री राम के समक्ष ही मुनि ने चिता में प्रवेश किया। तत्पश्चात् वे दिव्य रूप धारण कर तथा सुन्दर विमान पर आसीन होकर श्रीराम की स्तुति करते हुए वैकुण्ठ धाम को प्रस्थान कर गये।[3]

पंचवटी में श्री रामाज्ञा से सीता द्वारा त्रिगुणों से पृथक्-पृथक् तीन रूप धारण करना अद्भुत रस की सुन्दर सृष्टि करता है। तीन रूपों को धारण कर सीता रजो रूप से अग्नि में, सत्व रूप से यथावत् श्री राम के वामांग में तथा तमोमयी होकर पंचवटी में निवास करने लगीं।[4]

---

1. सूतिकागृहमध्ये च कौशल्यायाः पुरोऽभवत् ।
   चतुर्भुजः पीतवासा मेघश्यामो महाद्युतिः ॥ आ०रा० 1/2/4

2. तस्यां दृष्ट्वा बालिकां तु विस्मयं प्राप पार्थिवः ।
   आ०रा० 1/3/267

3. तस्मै समर्प्य स्वं पुण्यमारुरोह चितिं तदा। आ०रा० 1/7/20
   स्तुत्वा तं स विमानेन वैकुण्ठं परमं ययौ ॥

4. सीते त्वं त्रिविधा भूत्वा रजोरूपा वसाग्ने ।
   x x x
   तद्रामवचनं श्रुत्वा तथा सीता चकार सा ॥
   आ०रा० 1/7/67-69

सीतान्वेषण करके लौटे हुए श्री हनुमान के मार्गविहरण प्रसंग का चित्रण करते समय ने अद्भुत रस की सफल योजना योजित की है। पिपासा कुलित हनुमान एक जलाशय के तट पर आसीन मुनि के पास चूड़ामणि व मुद्रिका रखकर जल के लिए उनसे आज्ञा लेकर जलाशय में जल पीने गये। लौटकर मुद्रिका न देखकर उन्होंने मुनि से मुद्रिका का पता पूछा। मुनि ने संकेत से अपने कमण्डलु में से मुद्रिका निकालने को कहा। हनुमान कमण्डलु में वैसी ही सहस्रों मुद्रिकायें देखकर आश्चर्य चकित रह गये।[1]

मेघनाद की कटी हुई भुजा द्वारा लंका में आर्या सुलोचना से उसकी अपनी मृत्यु का समस्त हाल लिखित रूप से प्रस्तुत करना अद्भुत रस का आदर्श उदाहरण है।[2]

रावण की मृत्यु पर उसके कटे हुए सिर आकाश से हंसते हुए रणक्षेत्र में श्री राम के पैरों पर आ गिरे। रावण के मृत शरीर से सूर्य के समान एक प्रदीप्त तेज निकलकर श्री राम के देह में प्रवेश कर गया। प्रस्तुत चित्रण में कवि ने "विस्मय" स्थायी भाव को परिपुष्ट कर अद्भुत रस की स्थिति पर प्रतिष्ठित किया है।[3]

---

1. दृष्ट्वा सहस्रशस्तत्र चकितः प्राहतं मुनिम् । आ.रा. 1/9/290

2. भुजो पि सोऽत्ययम् तां स लेख मुन्यां शरेण्महिं।। आ.रा. 1/11/207

3. (क) हसितानि पतंति स्म राघवस्य पदोपरि ।

   (ख) रावणस्य च देहोत्थं ज्योतिरादित्यवत्स्फुरत्।

   (क) आ.रा. 1/11/274

   (ख) आ.रा. 1/11/283

सीता परित्याग प्रसंग में विश्वकर्मा द्वारा सीता की वैसी कृत्रिम भुजा बनाकर लक्ष्मण को प्रदान की जाती है जिसमें रुधिर बह रहा था तथा अंगूठी पड़ी हुई थी। इस कृत्रिम भुजा में सीता के सभी हस्त चिन्ह विद्यमान थे। प्रस्तुत काव्य चित्र पाठक को आश्चर्याब्धि में निमग्न करने में पूर्णतः सक्षम है।[1]

अयोध्या में लक्ष्मण द्वारा ब्रह्मपाश से आबद्ध लव की मुक्ति का चित्रण भी अद्भुत रस की सफल सृष्टि करता है। जैसे-जैसे लव के ऊपर जल पड़ता था वैसे ही वह राजकुमार बढ़ता जाता था। इस प्रकार वह वीर राजकुमार सप्ततालपुरुषों की ऊँचाई तक बढ़ा।[2]

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने अपने इस गौरव ग्रन्थ में अद्भुत रस से युक्त अनेक काव्य चित्र प्रस्तुत किये हैं।

वात्सल्य रस:

व्यवहार जगत में बिखरे हुए राग तत्वों में अपत्य स्नेह अपना विशिष्ट स्थान रखता है। माता-पिता के गुरुतर पद को पाकर ऐसा कौन होगा, जिसका राग संतति के प्रति समर्पित न हो। अतः साहित्य मनीषियों ने "रति" स्थाई भाव से भिन्न "संतति स्नेह" स्थायी भाव को मान्यता दी है। महाकाव्य के परिप्रेक्ष्य में जहाँ सभी रसों की योजना अपेक्षित होती है, "संतति-स्नेह" स्थायी भाव से पुष्ट वात्सल्य रस भी अपना विशिष्ट महत्व रखता है। आनन्द रामायणकार ने इस रस के भी भाव भीने चित्र अपने ग्रन्थ में प्रस्तुत किये हैं।

---

1. सीता कंकार सहितं तस्याश्छिन्नं विनिर्मितम् ।
   ददौ लक्ष्मण हस्ते तं स्वयंतर्दधे क्षणात् ।।

   आ. रा. 5/6/13

2. सप्तताल प्रमाणो सुबुद्धया भीमपराक्रम : ।

   आ. रा. 5/7/100

श्री राम द्वारा भगवान शंकर का धनुष अनायास खण्डित कर देने पर श्री विश्वामित्र जी के वात्सल्य का चित्रण कवि ने अतीव मनोरम रूप में चित्रित किया है। मुनीश्वर श्री विश्वामित्र जी ने स्नेहाधिक्य से श्रीराम गोद में बैठा लिया। वे राम का आलिंगन करके बार बार उनका सिर सूंघते हैं इस प्रकार के विभिन्न अनुभावों तथा हर्ष आदि संचारी भावों से परिपुष्ट "अपत्य-स्नेह" स्थायी भाव वात्सल्य रस की मनोरम निष्पत्ति करने में पूर्ण सफल सिद्ध हुआ है।[1]

श्री जानकी आदि पुत्रियों की विदाई वेला पर महाराज जनक द्वारा महाराज दशरथ से पुत्रियों के लालन पालन हेतु की गई विनम्र प्रार्थना में ग्रन्थकार ने वात्सल्य रस की सुन्दर झांकी संजोयी है। महारानी सुमेधा अपनी पुत्रियों को बार बार हृदय से लगाकर तथा सांत्वना प्रदान कर विदा करती हैं।[2]

श्री परशुराम जी के गर्व का विनाश करके तथा उनके द्वारा पूजित होकर श्री राम अपने पिता दशरथ से मिलते हैं। इस स्थल पर भी कवि ने महाराज दशरथ के वात्सल्य का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। महाराज दशरथ श्रीराम को मृत्यु के बाद पुनः जीवित हो कर आये हुए की भांति हृदय से लगा लेते हैं। हर्षातिरेक से उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बह उठते हैं।[3]

सीतान्वेषण में सफल होकर वापस लौटे हुए हनुमान को श्रीराम जी अपने हृदय से लगा लेते हैं। हर्षातिरेक से वे गद्गद होकर हनुमान से अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। प्रस्तुत वर्णन में कवि ने वात्सल्य रस की सुन्दर अभिव्यंजना की है।

---

1. तदा रामं समालिंग्य विश्वामित्रो मुनीश्वरः।
   निवेश्याङ्कमथो तं प्रेम्णा घ्राय मस्तके ॥ आ. रा. 1/3/156
2. सुमेधा ताः समालिंग्य सांत्वयित्वा व्यसर्जयत्। आ. रा. 1/3/336
3. अथ राजा दशरथो रामं मृतमिवागतम्।
   दृढमालिंग्य हर्षेण नेत्राश्रूणि समुत्सृजन्॥ आ. रा. 1/3/38।
4. समालिंग्य हनुमन्तं राघवो वाक्यमब्रवीत् ।
   बहूपकारास्ते धन्यो सि कपीश्वर ॥ आ. रा. 1/9/308-309

वाल्मीकि आश्रम में सीता द्वारा लव तथा कुश को जन्म देने पर कवि ने वात्सल्य रस की सजीव झाँकी प्रस्तुत की है। समस्त देवता मंगलगान बजाकर श्री जानकी जी के ऊपर पुष्प वृष्टि करते हैं। महाराज जनक तथा सुमेधा भी अनेक प्रकार से उत्सव मनाते हैं।[1]

राजकुमार लव कुश के राज दरबार में उपस्थित होते ही श्रीराम के हृदय में वात्सल्य उमड़ पड़ता है। वे अपनी अमृतमयी आँखों से कुश वीर बालकों को प्रेम पूर्वक देखते हुए स्तब्ध रह जाते हैं।[2]

वाल्मीकि आश्रम में अपना वनवास काल बिताकर सीता श्रीराम के दरबार में महर्षि वाल्मीकि द्वारा उपस्थित की जाती है। श्री राम लंका विशुद्ध जानकी को दरबार में पुनः स्वयं आकर अपनी पवित्रता का प्रमाण प्रस्तुत करने हेतु आदेश देते हैं। इस अवसर पर सीता की जननी माँ वसुन्धरा का दिव्य रूप में आना तथा सीता को अपने हृदय से लगाकर दिव्य सिंहासन [illegible] पर बिठाना चित्रित करके कवि ने वात्सल्य रस की मनोरम झाँकी प्रस्तुत की है।[3]

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने वात्सल्य रस से ओतप्रोत अनेक सजीव तथा भावभीने चित्र अपने इस गौरव ग्रन्थ में प्रस्तुत किये हैं जो पाठक को रस मग्न करने में पूर्ण सक्षम हैं।

---

1. जहार जनकश्चापि सुमेधा परमोत्सवान् । आ.रा. 5/4/78

2. प्रेम्णाऽवलोकयामास सुधादृग्भ्यां शिशू मुहुः ।

   आ.रा. 5/7/29

3. भूदेवी जानकीं दोर्भ्यां धृत्वा हर्षितां जिवात् ।

   x x x

   समालिंग्याथ भूदेवी वीजयामास सादरम् ॥

   आ.रा. 5/8/51-52

<u>शान्त रसः</u>

भव बाधाओं से प्रपीड़ित अंतः वृत्ति नश्वर जगत की अचिर उपलब्धियों के प्रति उदासीन होकर किसी शाश्वत व चिरन्तन आनन्द के अन्वेषण की ओर प्रवृत्त होती है। समस्त भौतिक व्यापारों से सम्पन्न में जिस आनन्द को मानव स्वीकार करता है उसके अस्थायित्व से जगत के क्रिया कलापों के प्रति विरक्ति की अनुभूति स्वाभाविक है। मानव की चेतना में इस भाव की जागृति उसे जिस शान्त लोक की ओर उन्मुख करती है, साहित्यकार उसका मनोरम चित्रण अपने काव्य-ग्रन्थों में प्रस्तुत करता है। आनन्द रामायणकार ने भी भव विरक्ति तथा सच्चिदानंद के प्रति प्रवृत्ति के सरस चित्र अपने काव्य ग्रन्थ में चित्रित किये हैं।

पुत्र कलत्रादि में आसक्त महाराज दशरथ अपने आप को अशांत अनुभव करते हैं। उन्हें शांति प्रदान करने हेतु उनकी ही प्रार्थना पर श्री राम जी द्वारा उन्हें संसार की नश्वरता तथा आत्मा की अमरता का दिव्य उपदेश दिया जाता है। प्रस्तुत प्रसंग में कवि ने "निर्वेद" स्थायी भाव को रस सिद्धि की स्थिति पर प्रतिष्ठित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।[1]

जगत की अनित्यता के इस उपदेश के साथ ही वे ब्रह्म के स्वरूप का भी सम्यक निर्देश करते हैं। जल में कमल पत्र की भाँति यह ब्रह्म नित्य को और परमानंद स्वरूप ब्रह्म माया से निर्लिप्त रहता है।[2]

संसार में जो कुछ भी दिखायी पड़ता है, वह सब ब्रह्ममय है। इस प्रकार प्रस्तुत स्थल में ग्रन्थकार ने शान्त रस की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है।[3]

---

1. नश्वरं भासते चैतद् विश्वं मायोद्भवं नृप ।
   यथा शुक्तौ स्थिताभासःकाञ्चनं मत्स्यवत्।।

   आ. रा. 1/5/107

2. यथा पद्मं न स्पृशति जलं मायां तथा मनः।

   आ. रा. 1/5/111

3. यदस्तिकिंचिद्दृश्यते च तत्सन्मात्रस्वरूपकम् ।

   आ. रा. 1/5/113

बालकाण्ड के द्वितीय सर्ग में श्री शिव जी द्वारा श्री पार्वती जी को जो ब्रह्मज्ञान विषयक उपदेश प्रदान किया गया है, वह शान्त रस की सफल सृष्टि करने में पूर्ण सक्षम है। ब्रह्म की शाश्वत सत्ता का वर्णन करते हुए भगवान शंकर ने कहा कि जगत की स्थिति के पूर्व न कोई सद्-वस्तु थी और न ही कोई असद्वस्तु। सबका कारण व सृष्टि का बीज रूप ब्रह्म ही है। प्रलय के पश्चात् एक मात्र वह ही अवशिष्ट रहता है।[1]

अम्बा कैकेयी में आत्मबोध जागृति का चित्रण करके कवि ने शान्त रस का सुन्दर परिपाक किया है। श्री कैकेयी जी इस संसार को दुःखदायक कहती है। समस्त सांसारिक सम्बन्ध अतात्त्विक है। माता-पिता भ्राता, पुत्र व कलत्रादि सम्बन्ध अनित्य हैं। तात्त्विक दृष्टि से यह अखिल विश्व उन्हें ब्रह्ममय दिखायी पड़ता है। इस प्रकार कवि ने प्रस्तुत स्थल में "निर्वेद" स्थायी भाव को पुष्ट करके शांत रस की सटीक योजना की है।[2]

इसी प्रकार अम्बा सुमित्रा में जीव और ब्रह्म के ऐक्य की दिव्य भाव का चित्रण शान्त रस की सुन्दर अभिव्यंजना प्रस्तुत करता है। जिस प्रकार गंगा का जल गंगा के प्रवाह में स्थित रहकर गंगा जल रहताहै तथा घड़े में आकर भी गंगा जल ही रहता है उसी प्रकार ब्रह्म और जीव भी वारि तथा वीचि की भाँति अभिन्न है। इस अनुभव को आत्मसात् करके अम्बा सुमित्रा परम शांति को प्राप्त करती है।[3]

---

1. अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् ।
   पश्चादहं यदेतच्चयो वशिष्येत सो स्म्यहम्।।

   आ.रा. 2/2/59

2. क० पुत्रः कस्य वा भ्राता सर्वं ब्रह्म न संशयः ।

   आ.रा. 8/2/95

3. जिमि गंगै गेह भरे जिमि यथा गंगाजली घटे।

   आ.रा. 8/2/115

माता कौशल्या भी देह को नाशवान मानकर समस्त सुखों व दुखों को अनित्य समझती हैं। क्योंकि ये सुख दुख शरीर से ही सम्बन्धित हैं। समस्त भोगों का आश्रय शरीर है, आत्मा नहीं। प्रस्तुत स्थल पर कवि ने "निर्वेद" स्थायी भाव को शान्त रस के रूप में प्रतिष्ठित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।[1]

मनोहर काण्ड के द्वितीय सर्ग में आनन्दरामायणकार द्वारा प्रस्तुत पिण्ड दर्शन शान्त रस की सटीक पुष्टि करता है। कवि ने मुख तथा कान इत्यादि को द्वार तथा दाँत इत्यादि को इन द्वारों के रक्षक रूप में वर्णित किया है। पलक तथा ओष्ठ इत्यादि कपाट हैं। प्राणी रूपी राजपुत्र इस शरीर रूपी नगरी में भ्रमण करते हैं। आत्मा इस नगरी का राजा तथा इन्द्रिय आदि नगरनिवासीहै।[2]

देह नगरी के ये दुर्बल नागरिक मोह निशा में निद्रा निमग्न हैं। भ्रान्ति को ही कवि ने निद्रा के रूप में स्वीकार किया है। मुमुक्षु प्राणी को इस निद्रा का परित्याग करना परमावश्यक है।[3]

इस प्रकार आनन्द रामायण कार ने अपने इस भक्ति ग्रन्थ में शान्त रस के अनेकानेक भव्य चित्र प्रस्तुत करके सांसारिक आधियों तथा व्याधियों में सर्वथा अशान्त मानव मन को शांति प्रदान करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

---

1. सुखं दुःखं तु देहाय न मे किंचित्प्रयोजनम् ।
   तिष्ठत्वयं वा यातु देहो भोगालयः प्रभो।।
   आ.रा. 8/2/141-142

2. आत्मा श्रेयस्त्वत्र राजा जीवश्चेन्द्रिय देवता ।
   आ.रा. 8/2/39

3. मोह एव निशा ह्येषा निद्रा भ्रान्तिरुदाहृता।
   नैवं भ्रान्तिः समीचीना नृणां मुमुक्षुभिस्त्यजेत्।।
   आ.रा. 8/2/36

भक्ति रसः

राम के ईश्वरत्व को निरन्तर स्वीकार करने वाले सभी राम काव्य ग्रन्थों ने उनके प्रति सर्व समर्पण को भाव की कृतार्थता का प्रतीक माना है। रामत्व में स्वत्व को विलीन कर लेना ही इन भक्त कवियों का ध्येय रहा है। सर्व समर्पण के इस राम तत्व का नाम ही भक्ति है। यह राग लौकिक रागों से सर्वथा भिन्न है क्योंकि इसमें ध्याता ध्येय के प्रति एकान्त भाव से समर्पित रहता है। आनन्द रामायण में भी अन्य राम काव्य ग्रन्थों की भाँति भक्ति भाव बेतरह चित्र विद्यमान हैं।

श्री राम के स्वरूप को सम्यक रूप से जानकर श्री परशुराम जी में भक्त्युद्रेक की अतिशयता का चित्रण करके कवि ने भक्ति रस की मनोरम झाँकी प्रस्तुत की है। श्री परशुराम जी अपना दैन्य निवेदित करके श्री राम जी की बार – बार प्रार्थना करते हैं तथा उनसे अचल भक्ति का वरदान माँगते हैं।[1]

गंगावतरण प्रसंग में निषादराज गुह द्वारा श्री राम के पद प्रक्षालन का सरस चित्र भक्ति रस का मनोरम आदर्श प्रस्तुत करता है। परम भक्त केवट प्रभु के श्री चरणों के प्रक्षालनार्थ अनेक तरह से अपना वाक् चातुर्य प्रदर्शित करके अपनी भक्ति भावना [illegible] कर लेता है।[2]

बालि वध प्रसंग में भी कवि ने भक्ति रस की बाँकी झाँकी संजोयी है। बालि श्रीराम के तात्त्विक स्वरूप को जानकर उनके द्वारा ही अपनी मृत्यु का अभिलाषी है।[3]

---

1. अद्य मे सफलं जन्म प्रतीतोऽसि मम प्रभो । आ॰रा॰ 1/3/372
नमो नु जगतां नाथ नमस्ते भक्ति भावन ।। व 377 तक
रघुकुलकमलपत्रपादे मम भक्तिः सदा तु मे।।

2. क्षालयामि तव पाद पंकजं नाथ दारुदृषदः किमन्तरम्।।
आ॰रा॰ 1/3/26

3. तस्य हस्तान्मृतिर्मेऽस्तु गच्छामि परमं पदम्।
आ॰रा॰ 1/8/54

साम्य व वैषम्य :

रसात्मक अनुभूति से अपने अंतःकरण के भाव जन-जन के अंतःकरण के भाव बन जायें, यही साहित्यकार की अभीप्सा रहती है। इसीलिए प्रत्येक साहित्यकार अपने साहित्य में विभिन्न भावों की इतनी सूक्ष्म और व्यापक झाँकियाँ सुसज्जित करता है कि उससे उन भावों की गरिमा अधिक से अधिक प्रभाव पूर्ण हो जाती है। रसात्मक बोध की जितनी व्यापक स्थिति साहित्य में होती है वह उतना ही महान होता है। मानसकार और आनन्द रामायणकार दोनों ने ही रसात्मक अनुभूतियों की ऐसी मनोरम अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है कि वे हमारे हृदय को भाव मग्न करने में सहज सक्षम हैं। दोनों कवियों ने सभी रसों को अपने ग्रन्थ में स्थान दिया है। दोनों ग्रन्थ भक्ति काव्य ग्रन्थ हैं अतः भाव की प्रधानता स्वाभाविक ही है। लोकासक्ति से विरक्त होने का संदेश दोनों ग्रन्थों में मिलता है। अतः शांत रस की पुष्टि भी दोनों ग्रन्थों में समाहित है। दोनों ग्रन्थ कर्मक्षेत्र के सौन्दर्य की मीमांसा प्रस्तुत करते हैं। अतः वीररस के प्रभाव पूर्ण चित्र भी दोनों ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। संतति स्नेह के सरस चित्र दोनों कवियों ने अपने अपने ढंग से प्रस्तुत किये हैं। अतः वात्सल्य रस भी दोनों ग्रन्थों में समाहृत है। मानसकार तथा आनन्द रामायणकार दोनों ने युद्ध आदि के स्थलों में वीर रस के परिपाक के लिये रौद्र वीभत्स तथा भयानक रसों के सरस चित्र प्रस्तुत किये हैं।

मानसकार ने रसराज के अंकन में रघुकुल की मर्यादा का परिपालन किया है। विप्रलम्भ और संयोग दोनों के चित्र अत्यन्त सरस एवं मर्यादित हैं। वास्तव में उनके काव्य का रसराज कहीं भी उच्छृंखल और अमर्यादित नहीं है। इसके विपरीत आनन्द रामायणकार ने रसराज की रघुकुलीन मर्यादा में स्थान-स्थान पर प्रश्न सूचक चिन्ह लगा दिए हैं। भवभूति के "करुण एव रसो" की मार्मिकता को भी मानसकार ने भली प्रकार पहिचाना है। इसीलिए मानस के समस्त मर्मस्पर्शी स्थल करुण रस की हार्दिक संवेदना से सम्पन्न हैं।

आनन्द रामायणकार इस क्षेत्र में भी मानसकार से पीछे है क्योंकि उनमें करुण रस में अंतःकरण को झकझोरने की वह शक्ति नहीं है जो तुलसी के करुण रस चित्रण में है। साहित्य जगत में शिष्ट हास ही स्पृहणीय माना जाता है। मानसकार ने हास्य और व्यंग्य के जितने चित्र खींचे हैं उन सब में यह पूरा ध्यान रखा है कि वे शिष्टता की सीमा के अंतर्गत रहें। भद्दे और फूहड़ हास्य चित्रों का मानस में सर्वथा अभाव है, किन्तु आनन्द रामायणकार ने हास्य की सृष्टि में अनेक फूहड़ और पुनरुक्ति दोष युक्त चित्रण भी प्रस्तुत किए हैं। अद्भुत रस के क्षेत्र में भी तुलसी राम के लोक विस्मयकारी चित्रण तक ही सीमित हैं। ये चित्रण अलौकिक होते हुए भी लोक मान्य हो सके हैं किन्तु आनन्द रामायणकार के चित्रण केवल हमारे विस्मय को बढ़ाने वाले हैं ।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दोनों ग्रन्थों में रसत्व का समुचित प्रतिपादन हुआ है, किन्तु मानस के रसत्व में भाव को जिस उच्च सीमा तक तथा स्वाभाविकता की परिधि के अंतर्गत प्रतिष्ठित किया गया है, आनन्द रामायणकार ने उस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है। इसी कारण मानस का लोक व्यापी प्रभाव स्थायित्व को प्राप्त कर गया है जब कि आनन्द रामायण केवल संदर्भ ग्रन्थ बनकर रह गयी है।

—:—:—:—:—:—:— समाप्त —:—:—:—:—:—

xxxxx

पँचम- अध्याय

(काव्य-शैली)

पंचम अध्याय

काव्य-शैली

काव्य में शब्दगत और अर्थगत रमणीयता के प्रतिपादन का कार्य अलंकारों के द्वारा सम्पादित होता है। इस रमणीयता के प्रतिपादन में कवि शब्द और अर्थ के इस प्रकार के सुव्यवस्थित प्रयोग प्रस्तुत करता है कि वर्ण्य विषय स्वयं में अत्यन्त रोचक, भावमय और हृदयहारी होजाता है। संस्कृत की काव्य परम्परा से लेकर आधुनिक समय तक कवियों की यशस्विनी वाणी ने रमणीयता प्रतिपादन के महद् कार्य को सम्पन्न करने के लिये विभिन्न शब्दगत तथा अर्थगत अलंकारों का परिधान धारण किया है। अनेकानेक संस्कृत के महान ग्रन्थकारों ने अलंकारों को काव्य के लिये अत्यन्त आवश्यक ठहराया है। हिन्दी के रीतिकालीन कवि आचार्य केशवदास ने "भूषन बिन न बिराजई कविता वनिता मित्त" कहकर अलंकारों की दुहाई दी है। रीतिकाल के कवियों ने तो अलंकारों के प्रयोग की होड़ सी लगा दी है। देव, बिहारी, पद्माकर जैसे शृंगार रस लीन कवि तथा भूषण और लाल जैसे वीर रस रसिक कवि एवं वृन्द, गिरिधर और बाबादीन दयाल जैसे नीति विशारद कवि अपनी वाणी को विभिन्न अलंकारों से सुसज्जित करना किसी भी अंश में नहीं भूले हैं। कुछ कवियों ने तो अलंकारों से कविता-कामिनी को इतना बोझिल कर दिया है कि उनकी उक्तियाँ केवल एक प्रदर्शिनी मात्र बनकर रह गयी हैं अथवा ऊहात्मक हो गयी हैं। किन्तु तुलसी के काव्य में अलंकारों का प्रयोग अत्यन्त सटीक व स्वाभाविक रूप से हुआ है। भावोत्कर्ष, रूपोत्कर्ष, गुणोत्कर्ष एवं क्रियोत्कर्ष हेतु ही यह प्रयोग हुआ है। कहीं भी हम ऐसा आभास नहीं पाते कि उनके द्वारा अलंकार कविता कामिनी के ऊपर केवल अपनी बौद्धिक तुष्टि हेतु लाद दिये गये हैं। अलंकारों के इतने समीचीन प्रयोग हिन्दी के अन्य कवियों में दुर्लभ हैं।

अलंकारों के द्वारा शब्दगत रमणीयता को प्रतिपादित करने में

मानसकार अत्यधिक सचेत है। उनके द्वारा किये गये शब्द विधान में यदि कहीं आनुप्रासिकता का समावेश किया गया है तो यह पूरी चौकसी रखी गयी है कि उसमें भाषा के स्वाभाविक प्रवाह पर कोई आँच न आने पाये।[1]

प्रस्तुत चौपाइयाँ तुलसी की अलंकार योजना की स्वाभाविकता को व्यंजित करती हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे एक एक शब्द अनुप्रास की गरिमा से सम्पन्न होने के साथ साथ भाषा के स्वाभाविक प्रवाह में अपना सबल समर्थन दे रहा हो। श्लिष्ट प्रयोगों में भी उनकी प्रतिभा अत्यन्त तीव्र भाव ध्वनि को उत्तेजित करने की शक्ति प्रकट करती है। "नारद-मोह के प्रसंग में विवाह के लिये आतुर विष्णु रूप आकांक्षी किन्तु विष्णु के द्वारा वानर मुखाकृति से विभूषित नारद जी की पूर्ण विवेचना निम्नलिखित चौपाई में प्रयुक्त हरि शब्द द्वारा कितने सुन्दर ढंग से व्यंजित है।[2]

बालकाण्ड के प्रारम्भ में विभिन्न देवी देवताओं की वन्दना के प्रसंग में तुलसी ने संत और असंत दोनों की वन्दना में इस प्रकार की शाब्दिक योजना की है जिससे स्तुति तथा व्यंग्य का निराकरण स्वतः मिलता जाता है। साथ ही अर्थ की स्पष्टता में कोई बाधा नहीं आती है। निम्नांकित चौपाई में "सुरानीक" पद द्वारा श्लेष की शाब्दिक व्यंजना कितनी मनोरम है।[3]

लंका काण्ड में राम-रावण युद्ध के प्रसंग में निरन्तर रावण के ऊपर धारावाहिक ढंग से चलाये गये राम के बाण रावण के दसों सिरों पर अपना

---

1. बंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के॥
   तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी। धींग धरम ध्वज धंधक धोरी॥
   रा॰च॰मा॰ 1/11/3,4

2. रीझहिं राजकुँअरि छबि देखी। इन्हहि बरिहि हरि जानि बिसेषी॥
   रा॰च॰मा॰ 1/133/4

3. बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही। संतत सुरानीक प्रिय जेही॥
   रा॰च॰मा॰ 1/3/10

आधिपत्य जमा चुके हैं। इतना ही नहीं अपनी तीक्ष्ण अनीकों के द्वारा वे रावण के सिरों को रक्त रस से रहित कर चुके हैं। गोस्वामी जी ने इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिये रावण के सिरों में कमल वन उपमान को आरोपित किया है। ताकि शिलीमुखका शिलष्ट प्रयोग वस्तुस्थिति कोपूर्ण स्पष्ट निरूपित कर दे। कमल के रस भोगी भ्रमर और रावण सिर के रक्त रस भोगी बाण गोस्वामी जी की महत् शब्दगत अलंकारप्रियता की दुहाई दे रहे हैं।[1]

मानस में शब्दगत सौन्दर्य के बढ़ाने हेतु एक रूपात्मक भिन्नार्थक शब्दों की अत्यन्त सटीक और रमणीक आवृत्ति के द्वारा मानसकार यमक अलंकार की सृष्टिकरने में पूर्ण सफल हुए हैं। राम के जनकपुर पहुँचने पर महाराज जनक, जो आत्म सुधि विस्मृत होने के कारण विदेह नाम से विख्यात हुए, उनके स्वागतार्थ गुरु महाराज विश्वामित्र के निकट पहुँचे राम का अलौकिक सौन्दर्य अवलोकित करते ही उनकी विदेह स्थिति विशेष रूप से यथातथ्य प्रभावित होगयी। तुलसी ने इस संदर्भ में यमक का जो प्रयोग किया है वह सर्वथा सटीक, स्वाभाविक एवं श्लाघ्य है।[2]

अनुज राम की सेवा में सतत् प्रस्तुत लक्ष्मण राम वन गमन के प्रस्ताव की जानकारी के साथ राम काअनुगामी बनने हेतु चिंतित थे। जब माता सुमित्रा से विदाई लेकर वे राम के पास जाने लगे तब उन्हें बड़ी राहत सी अनुभव हुई तथा इस सेवा के सुयोग को उन्होंने अपना सौभाग्य समझा। तुलसी की निम्न लिखित पंक्ति में पारिवारिक मोह बंधन से मुक्त होकर राम सेवा की मनोकामना को सफल अनुभव करके जब वे माता के निकट

---

1. रावन सिर सरोज बनचारी।
   चलि रघुबीर सिलीमुख धारी।। रा.च.मा. 6/91/7

2. मूरति मधुर मनोहर देखी।
   भयउ विदेह विदेह विसेषी।। रा.च.मा. 1/214/8

तुलसी ने अपनी भावना के तागे कल्पना के दानों में गूंथ कर काव्य का इतना भव्य वितान तान दिया है जिसकी छाया में युग युगान्त तक मानव हृदय की अनन्त भाव साधनायें शांति का सुखद अनुभव लेती रहेंगी। अपने राम के अप्रतिम राग में डूबी डूबी उनकी वृत्तियां उनके काव्य में ऐसे मनोरम चित्रों का अंकन कर रही हैं जिनकी रमणीयता लोक अंतःकरण में चिरस्थायी रहेगी। उनका अलंकरण रीतिकाल के अलंकार वादी कवियों से सर्वथा भिन्न है। कविता कामिनी के स्वतः कमनीय कलेवर को उन्होंने बलात् भूषण-भार से बोझिल नहीं किया अपितु अपनी काव्य साधना की स्वाभाविक गति में अलंकारों के द्वारा ऐसी स्थिति को जन्म दिया गया है जो मानव अंतःकरण को स्वतः प्रसूत अनुभव हो। वर्ण्य विषय की रमणीयता की वृद्धि उनके अलंकारों का प्रमुख लक्ष्य रहा है। अलंकारों के प्रयोग कहीं भी अनावश्यक, अस्वाभाविक, भारयुक्त, एवं अरुचि कारक नहीं मिलेंगे। वर्णन में जो भी अलंकार संयोजित विषय को अधिक उभारने में सहयोगी जान पड़ा है तुलसी उसका प्रयोग करने में कहीं नहीं चूके हैं। वर्ण्य विषय की विभिन्न स्थितियों के अनुरूप उन्होंने अपने अलंकारों को रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, उदाहरण, स्मरण, विभावना, प्रतीप आदि अलंकारों के द्वारा अत्यन्त रम्य रूप में प्रस्तुत किया है। उनके अलंकार भावक्रिया, स्थिति, वस्तु आदि के उत्कर्ष को उच्चतम सीमा तक पहुँचाने में सर्वथा सहायक सिद्ध हुए हैं। विभिन्न स्थितियों में उनकी अलंकार योजना की सफलता का सिंहावलोकन प्रत्येक स्थिति को अलग-अलग लेते हुए निम्नवत निरूपित किया जा रहा है।

(क) अलंकारों के माध्यम से अनुभूतियों का उत्कर्ष:

गोस्वामी जी ने अपने ग्रन्थ "मानस" में अलंकार-योजना के द्वारा भावानुभूति को प्रखर करने में अद्भुत पूर्ण सफलता पायी है। राम वनवास के साथ सीता की सर्वप्रियता का उद्घोष मानसकार ने नूपुरों की झनकार द्वारा उत्प्रेक्षा के माध्यम से अत्यन्त प्रभाव पूर्ण ढंग से किया है।[1]

1. चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी।।
मनहुँ प्रेम बस बिनती करहीं। हमहिं सीय पद जनि परिहरहीं।।
रा.च.मा. 2/57/5,6

वस्तूत्प्रेक्षा से पुष्ट साँग रूपक के द्वारा ही उन्होंने वनवासिनी पुत्री सीता के प्रति उमड़े हुए महाराज जनक के अगाध प्रेम भाव की भावपूर्ण व्यंजना प्रस्तुत की है।[1]

इस प्रकार उनकी अलंकार योजना स्थान स्थान पर भावानुभूति को प्रखर करने में पूर्ण सार्थसिद्ध हुयी है।

(घ) <u>रूप गरिमा के उत्कर्ष में सहयोगी अलंकार :</u>

सत्यम् शिवम् सुन्दरम् हमारी संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र में साध्य तत्व हैं। मानसकार के समक्ष सत्यम् और सुन्दरम् की रमणीय पथ-वीथिकाओं पर शिवम् के दिव्य स्पन्दन को गतिमान बनाना अभीष्ट लक्ष्य है। अलंकार योजना के माध्यम से कवि ने विभिन्न सौन्दर्य उपादानों का अत्यन्त रमणीय चित्र प्रस्तुत करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। सत्यम् के विवेचन में मानसकार की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर्याप्त सहायक सिद्ध हुई है। किन्तु सुन्दरम् की संरचना में विभिन्न रूप सृष्टियों का मनोहारी विवेचन कवि ने अलंकारों को माध्यम बनाकर प्रस्तुत किया है। दोनों उनकी लोक मंगल साधना के परम सहयोगी सिद्ध हुए हैं।

रूपोत्कर्ष की विशिष्ट झाँकियाँ कवि ने रूपक और उत्प्रेक्षा के सहयोग से प्रस्तुत की है। अम्बा पार्वती की लोक पावनी प्रतिमा का आभास निम्न विवरण में कितना हृदयहारी बन गया है।[2]

तपस्या में लीन अम्बा पार्वती की साधना के प्रति सच्ची लगन का आभास उनके निम्न विवेचन में कितना भाव पूर्ण है।[3]

---

1. उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयउ भूप मन मनहुँ पयागू ।।
   सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा। तापर राम प्रेम सिसु सोहा।।
   चिरजीवी मुनि ग्यान बिकल जनु। बूड़त लहेउ प्रेम अवलम्बनु।।
   रा.च.मा. 2/285/5,6,7
2. सोह सैल गिरिजा गृह आये। रा.च.मा. 1/65/3
   जिमि जन राम भगति के पाये।।
3. रिषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी। रा.च.मा. 1/77/1
   मूरतिमन्त तपस्या जैसी ।।

कामनाओं पर विजय पाने में ही शान्ति की अनुभूति अंतर्हित है। इस तथ्य का संकेत भगवान शंकर के सौम्य रूप वर्णन में कितना स्वाभाविक बन पड़ा है।[1]

मनु शतरूपा की तपस्या से भावाभिभूत होकर सच्चिदानन्द की साकार झलक का कितना मनोरम चित्रण मानसकार ने प्रस्तुत किया है।[2]

राजा भानु प्रताप को भुलावे में डालने वाले सूकर रूप राक्षस का अत्यन्त डरावना रूप रूपक के माध्यम से अति स्वाभाविक बन पड़ा है।[3]

राम रूप वर्णन में उनके चरणों की मनोरमता का चित्रण भक्त हृदय तुलसी के सच्चे राम प्रेम को साकार कर देता है।[4]

पुष्प वाटिका में लताओं के झुरमुट से निकलकर राम व लक्ष्मण की भासमान मूर्तियों का अत्यन्त मोहक चित्र उत्प्रेक्षा के माध्यम से प्रस्तुत हुआ है।[5]

---

1. बैठे सोह काम रिपु कैसे।
   धरे शरीर शान्त रस जैसे।। रा.च.मा. 1/106/1

2. नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम।
   लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम।।
   रा.च.मा. 1/146

3. फिरत बिपिन नृप दीख बराहू।
   जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू।।
   बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं।
   मनहुँ क्रोध बस उगिलत नाहीं।। रा.च.मा. 1/155/5,6

4. अरुन चरन पंकज नख जोती।
   कमल दलन बैठे जनु मोती।। रा.च.मा. 1/198/2

5. लता भवन ते प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाई।
   निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाई।।
   रा.च.मा. 1/232

भगवान शंकर के धनुष की प्रत्यंचा को आकर्ष आकृष्ट करने हेतु मंच पर पधारे हुए श्री राम की तेजोमयी मूर्तिका तथा उनके अनुगु प्रेमियों का मोहक चित्र रूपक के माध्यम से प्रस्तुत हुआ है।[1]

सीता के पाणिग्रहण के समय सिंदूर वन्दन की भावना प्रधान विधि का परिपालन करते समय राम व सीता की रूप गरिमा का कितना हृदयहारी चित्रण रूपकातिशयोक्ति अलंकार के माध्यम से प्रस्तुत हुआ है।[2]

इसी प्रकार महाराज जनक के मणि स्तम्भों से विभूषित पाणिग्रहण स्थल पर परिक्रमा करते हुए राम और सीता विभिन्न मणि-स्तम्भों में परिक्रमा के क्रम से प्रकट और अंतरहित होते हैं। मानस कार के अंतःकरण में लोकाभिराम युगल विभूतियों का रूप उत्प्रेक्षा के माध्यम से अति मनोरम ढंग से प्रस्तुत हुआ है।[3]

इस तरह मानस में रूप गरिमा के उत्कर्ष कारक अनेकानेक चित्र विभिन्न अलंकारों के माध्यम से प्रस्तुत करने में गोस्वामी जी सर्वथा सफल हुए हैं।

---

1. ~~[illegible]~~ ।
   ~~[illegible]~~
   उदित उदय गिरि मंच पर रघुबर बाल पतंग ।
   बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग ॥
   रा॰ च॰ मा॰ 1/254

2. अरुन पराग जलजु भरि नीके ।
   ससिहि भूष अहि लोभ अमी के ॥
   रा॰ च॰ मा॰ 1/324/9

3. राम सीय सुन्दर प्रतिछाहीं ।
   जगमगात मनि खंभन माहीं ॥
   मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा ॥
   देखत राम बिआहु अनूपा ॥

   रा॰ च॰ मा॰ 1/

गुणोत्कर्ष साधक अलंकार :

मानसकार ने अलंकार योजना के द्वारा व्यक्तित्व को निखारने का स्तुत्य प्रयास किया है। पात्र से संबंधित गुणवत्ता को कवि ने जिस स्थान पर केन्द्रीभूत किया है, अलंकारों के सहयोग से वह स्थल अत्यन्त मनोरम बन गया है। पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के उत्कर्षों मानसकार ने मुख्य रूप से रूपक तथा उत्प्रेक्षा के माध्यम से प्रदर्शित किया है।

आनन्द दया के धाम श्री गुरु देव जी के चरण कमलों की पवित्र पावनी रज की महत्ता की अभिव्यक्ति रूपक के माध्यम से अतीव सुन्दर हो गयी है। यह रज मूल संजीवनी जड़ी से निर्मित उस चूर्ण की तरह है जो समस्त भव रोगों को नष्ट करने में समर्थ है।[1]

सज्जनों के पर दुख कातर चरित्र की विशेषता को उद्घाटित करने के लिये कवि ने रूपक का प्रयोग करके गुणोत्कर्ष किया है। सज्जनों का चरित्र कपास की तरह शुभ है जो कि स्वयं चोटों को सहकर दूसरों की रक्षा करता है।[2]

वन्दनीय संत समाज को चलता फिरता तीर्थराज प्रयाग कहकर मानसकार ने संतों की महिमा का वर्णन किया है। श्री राम जी की भक्ति इस संतसमाज रूपी प्रयाग में गंगा की धारा की तरह है, ब्रह्म ज्ञान का प्रचार ही सरस्वती की धारा है तथा कर्तव्य एवं अकर्तव्य कर्मों का बोध

---

1. बंदउँ गुरु पद पदुम परागा।
   सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।
   अमिय मूरिमय चूरन चारू।
   समन सकल भव रुज परिवारू।। — रा.च.मा. 1/मंगलाचरण/ 1 व 2

2. साधु चरित सुभ चरित कपासू।
   निरस बिसद गुनमय फल जासू।।
   जो सहि दुख परछिद्र दुरावा।
   बन्दनीय जेहि जग जस पावा।। — रा.च.मा. 1/1/5,6

3. वही

कैकेयी के महाराज दशरथ से राम वन गमन का वरदान माँगने पर अयोध्यावासी कैकेयी के कार्य पर टिप्पणी कर रहे हैं। इस प्रसंग मैं कवि ने लक्षणा द्वारा विभिन्न कल्पना चित्र प्रस्तुत किये हैं। अयोध्यावासी कैकेयी को उन्माद ग्रस्त सिद्ध करते हुए कहते हैं कि इसने मानो मकान पर छप्पर रखकर आग लगा दी। यह अपने ही हाथों से अपने नेत्रों को निकाल कर देखना चाहती है तथा अमृत छोड़कर विष खाना चाहती है। यह रघुकुल रूप वन के लिये अग्नि बन गयी। यह पत्तों पर बैठ कर डाल काट रही है।[1]

श्री राम, लक्ष्मण व जानकी को वन पहुँचाकर वापस लौटते समय मंत्री सुमंत्र की विक्षिप्त दशा का चित्रण लक्षणा के प्रयोग से अत्यधिक मार्मिक हो गया है। सुमंत्र इस प्रकार पश्चाताप कर रहे हैं मानों कोई कृपण बहुत बड़ी धनराशि खो बैठा हो। वे इस प्रकार चल दिये मानों कोई योद्धा वीर बाना सजाकर और श्रेष्ठ योद्धा कहाकर युद्ध से भाग चला हो।[2]

राम राज्य के प्रभाव का वर्णन भी कवि लक्षणा के सहयोग से किया है। श्री काक भुशुण्डि जी पक्षिराज गरुड़ जी से कहते हैं कि जब से श्री राम जी का प्रताप रूपी अत्यन्त प्रबल सूर्य उदित हुआ तब से त्रिलोक मैं पूर्ण प्रकाश छा गया। इससे बहुतों को सुख तथा बहुतों मैं मन मैं शोक हुआ।

---

1. एहि पापिनिहिं बूझि का परेऊ।
   छाइ भवन पर पावक धरेऊ ॥
   निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। रा.च.मा. 2/46/2, 3, व 5
   डारि सुधा बिषु चाहत चीखा॥
   पालव बैठि पेड़ु एहिं काटा ।
   सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा॥

2. मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई ।
   मनहुँ कृपन धनराशि गँवाई ॥
   बिरिद बाँधि बर बीर कहाई ।
   चलेउ समर जनु सुभट पराई ॥

   रा.च.मा.2/143/7-8

कराने वाली संत वाणी यमुना की श्यामल धारावत है।[1]

उपमा के माध्यम से दुष्टजनों की प्रवृत्ति का कवि ने यथातथ्य निरूपण किया है। दुष्ट प्रवृत्ति के लोग दूसरों के कार्य को विनष्ट करने के लिए अपना शरीर उसीतरह त्याग देते हैं जिस प्रकार ओले खेती का विनाश करके स्वयं भी गल जाते हैं।[2]

संत तथा असंतों की व्याख्या व्याघात के द्वारा कितनी सटीक बन पड़ी है। संत और असंत दोनों ही दुखदायक हैं किन्तु संतों का वियोग कष्टदायक है किन्तुअसंतों का संयोग कष्टदायक है।[3]

अपनी प्रगति पर प्रसन्न होने वाले व्यक्ति तो संसार में अनेक हैं किन्तु दूसरों के अभ्युदय पर हर्षित होने वाले महान पुरुष बहुत कम है। इस तथ्य का उत्कर्ष नदी, तालाब तथा सागर के दृष्टान्त से अत्यधिक प्रभावी हो गया है।[4]

भरत के त्याग तथा संकल्प के प्रति दृढ़ता का चित्रण रूपक के माध्यम से अत्यधिक सशक्त बन पड़ा है। महामुनि भरद्वाज की संपत्ति रूपी चकवी तथा भरत रूपी चक का संयोग आश्रम रूपी पिंजड़े में रात्रि पर्यन्त नहीं हो सका

---

1. साधु चरित सुभ चरित कपासू।
   निरस बिसद गुनमय फल जासू।।
   जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा। रा.च.मा. 1/1/5,6
   बन्दनीय जेहि जग जस पावा ।।

2. राम भगति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा।।
   बिधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रबि नंदनि बरनी।।
   रा.च.मा. 1/1/8,9

2. पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं।
   जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं।। रा.च.मा. 1/3/7

3. बंदउँ संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।। रा.च.मा. 1/4/
   बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं।। 3-4

4. जग बहु नर सर सरि सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई।।
   सज्जन सकृत सिंधु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई ।।
   रा.च.मा. 1/7/13-14

5. सम्पति चकई भरत चक, मुनि आयसु खेलवार।
   तेहि निसि आश्रम पिंजरौं, राखे भा भिनुसार।।
   रा.च.मा. 2/215

जनक प्रिया की तुलना द्वारा अम्बा कौशल्या की विनय शीलता की प्रशंसा प्रस्तुत दृष्टान्त के प्रयोग से अतीव प्रभावोत्पादक हो गयी है। महान पुरुषों की यह सामान्य प्रवृत्ति होती है कि वे अपने निम्नश्रेणी के लोगों का भी सम्मान करते हैं।[1]

चित्रकूट दरबार प्रसंग में धर्मधुरीण भरत की वाणी के अर्थ की गूढ़ता का चित्रण करने में मानसकार ने उदाहरण अलंकार के प्रयोग द्वारा विषय के प्रति पादन में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। दर्पण के हस्तगत होने पर भी प्रतिबिम्ब को नहीं पकड़ा जा सकता। भरत की वाणी की स्थिति वैसी ही है।[2]

कुमित्र के मन की कुटिलता का उद्घाटन मानसकार ने सर्प की चाल के दृष्टान्त द्वारा यथा तथ्य कर दिया है। जो प्रत्यक्ष में प्रिय भाषी तथा परोक्ष में अहित कर है ऐसे सर्प की चाल वाले कुटिल मित्र को सर्वथा त्याग देना चाहिये।[3]

इसी प्रकारकी रामभक्ति की प्रभुता का प्रतिपादन रूपक अलंकार के माध्यम से अत्यधिक उत्कृष्ट रूप में हो गया है। यह वह चिंतामणि है जिसके आ जाने से हृदय में सदैव परम प्रकाश बना रहता है।[4]

---

1. प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। — रा.च.मा. 2/284/3
   अगिनि धूम गिरि सिरतिनु धरहीं।।

2. ज्यों मुख मुकुर मुकुरु निज पानी। — रा.च.मा. 2/293/3
   गहि न जाई अस अटपट बानी ।।

3. आगे कह मृदु वचन बनाई।
   पाछे अनहित मन कुटिलाई।।
   जाकर चित अहि गति सम भाई। — रा.च.मा. 4/6/7 व 8
   अस कुमित्र परिहरे भलाई ।।

4. राम भगति चिन्तामनि सुन्दर।
   बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर ।।
   परम प्रकास रूपदिन राती । — रा.च.मा. 7/119/2-3
   नहिं कछु चाहिय दिआ घृत बाती।।

इस प्रकार तुलसी विभिन्न अलंकारों के माध्यम से गुणों के उत्कर्ष चित्रण में पूर्ण रूपेण सफल सिद्ध हुए हैं।

(घ) <u>क्रियोत्कर्ष साधक अलंकार :</u>

मानस में कार्य व्यापारों का चित्रण भी विभिन्न अलंकारों के प्रयोग से उत्कृष्ट रूप में चित्रित हुआ है। क्रिया की तीव्र अनुभूति कराने में तुलसी द्वारा प्रयुक्त अलंकार विधान सर्वथा उपयुक्त सिद्ध हुआ है।

इस क्षेत्र में मानस में सर्वाधिक प्रयोग उत्प्रेक्षालंकार का हुआ है। जनक नंदिनी सीता द्वारा श्री राम को जय माला पहिनाने का वर्णन उत्प्रेक्षा के योग से अतीव मनोरम हो गया है।

प्रेमाकुल वैदेही राम के गले में जय माल पहिनाने में अपनी विवशता प्रकट करती हैं। ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे भयभीत हुए नालयुक्त दो कमल पुष्प चन्द्रमा को जयमाल प्रदान कर रहे हों।[1]

राम को चौदह वर्ष का वनवास देने की हठ को प्रदर्शित करती हुई कैकेयी महाराज दशरथ के समक्ष क्रोध युक्त होकर खड़ी हो गयी। इस कार्य व्यापार के वर्णन को उत्कर्ष प्रदान करने के लिये मानसकार ने उत्प्रेक्षा की है कि मानों आवेश रूपी नदी में बाढ़ आ गयी हो।[2]

निषाद राज गुह भरत को ससैन्य आते हुए देखकर यह संदेह कर बैठा कि भरत राम से युद्ध करने जा रहे हैं। वह भरत से युद्ध करने के लिये सेना तैयार करता है। सेना के उत्साह से पूर्ण क्रिया कलापों का वर्णन उत्प्रेक्षा के

---

1. सुनत जुगल कर माल उठाई।
   प्रेम विवश पहिराई न जाई।।
   सोहत जनु जुग जलज सनाला।
   ससिहि सभीत देत जयमाला।। रा.च.मा. 1/263/6-7

2. अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी।
   मानहुं रोष तरंगिनि बाढ़ी ।। रा.च.मा. 2/33/1

माध्यम से अत्यधिक सजीव हो गया है।[1]

वन गमन के लिये तैयार प्रभु रामव श्री जानकी जी के साथ जाने के लिये अनुज लक्ष्मण श्री माता सुमित्रा से आज्ञा लेने जाते हैं। माता से स्वीकृति प्राप्त कर लेने के बाद लक्ष्मण बड़ी आतुरता के साथ चकित हो राम के पास आते हैं। लक्ष्मण की इस आतुर गति का चित्रण तुलसी ने कमल से पुष्ट उत्प्रेक्षा के द्वारा किया है। मानों भाग्यवश कोई हिरण कठिन जाल को तोड़कर भाग निकला हो।[2]

मंत्री सुमन्त्र शृंगवेरपुर में राम, जानकी व लक्ष्मण को छोड़कर अयोध्या वापस लौटते हैं। इस अवसर पर रथ के घोड़ों का विषाद-पूर्ण कार्य व्यापार उत्प्रेक्षा के योग से और अधिक मार्मिक होगया है। ये घोड़े लड़खड़ाते हैं तथा मार्ग में चलते नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों वन मृगों को लाकर रथ में जोत दिया गयाहो।[3]

चित्रकूट में राम व लक्ष्मण की पारस्परिक समवेदना का चित्रण उदाहरण की सहायता से अति मनोरम होगया है। श्री राम जी द्वारा सीता व लक्ष्मण को उतना ही संरक्षण प्राप्त है जितना नेत्र गोलकों को पलकों का। लक्ष्मण भी राम व सीता की ऐसी सेवाकरते हैं जैसे अज्ञानी पुरुष शरीर की।[4]

---

1. अंगरी पहिर कूंड सिर धरहीं ।
   फरसा बांस सेल सम करहीं ।।
   एक कुशल अति ओड़न खांड़े । रा.च.मा. 2/190/5-6
   कूदहिं गगन मनहुं छिति छांड़े।।

2. मातु चरन सिर नाई, चले तुरत संकित हृदय। रा.च.मा. 2/75
   बागुर विषम तुराई, मनहुं भाग मृग भागवश।।

3. चरफराहिं मगचलहिं न घोरे। रा.च.मा. 2/142/5
   बन मृग मनहुं आनि रथ जोरे ।।

4. जो गवहिं प्रभु सियलखनहिं कैसे।
   पलक विलोचन गोलक जैसे ।।
   सेवहिं लखन सीय रघुवीरहिं । रा.च.मा. 2/141/1-2
   जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहिं ।।

चित्रकूट पर्वत में निवास कर रहे श्री राम, लक्ष्मण व जानकी का दर्शन लाभ प्राप्त करने के लिये वनवासी कोल किरातों के उत्साह पूर्ण प्रस्थान का चित्रण उत्प्रेक्षा द्वारा अधिक सुन्दर हो गया है। वे कन्द, मूल, फल दोनों में भर कर इस प्रकार चल रहे हैं मानों रंक सोना लूटने चले हों।[1]

जीवन के अंतिम क्षणों में बालि को शरीर के त्याग का तनिक भी कष्ट अनुभव नहीं हुआ क्योंकि उनमें श्री रामचरणारविन्दों के प्रति भक्ति भावना का उदय हो गया था। इस तथ्य के चित्रण में कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि बालि ने शरीर को इसी प्रकार त्याग दिया जैसे हाथी अपने कण्ठ से पुष्पमाला को गिरते हुए नहीं जान पाता।[2]

राम रावण युद्ध के अवसर पर नल व नील रावण के सिरों पर चढ़कर नखों से उसके मस्तक को फाड़ने लगे। रावण ने उन्हें पकड़ने के लिए हाथ फैलायें किन्तु वे हाथों के ऊपर ही ऊपर फिरते हैं, पकड़ में नहीं आते। नलनील के इस कार्य व्यापार के चित्रण में मानसकार ने उत्प्रेक्षा की है- मानों दो भ्रमर कमल वन में भ्रमण कर रहे हैं।[3]

ससैन्य भरत को आता हुआ देखकर शंकित हृदय लक्ष्मण क्रोध से उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर प्रभु श्री राम से युद्ध के लिये आज्ञा मांगने लगे। तुलसी ने उत्प्रेक्षा के सहयोग से लक्ष्मण के उठने की क्रिया में वीरता का संकेत किया है। लक्ष्मण क्रुद्ध होकर खड़े हो गये मानों वीर रस सोते से जाग उठा हो।[4]

---

1. कंद मूल फल भरि भरि दोना।
   चले रंक जनु लूटन सोना ।। रा.च.मा. 2/134/4

2. राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।
   सुमन माल जिमि कण्ठ ते गिरत न जानइ नाग ।। रा.च.मा. 4/10

3. गहे न आवहिं करन्हि पर फिरहीं।
   जनु जुग मधुप कमल बन चरहीं ।। रा.च.मा. 6/97/8

4. उठि कर जोरि रजायसु मांगा।
   मनहुँ बीर रस सोवत जागा ।। रा.च.मा. 2/229/1

अशोक वाटिका में स्थित श्री सीता जी की असहाय दशा का चित्रण करने में कवि रूपक के सहयोग से पूर्ण रूपेण सफल हुआ है। सीता की दैन्य स्थिति का निरूपण करते हुए श्री हनुमान जी प्रभु राम जी से कहते हैं कि हे प्रभु आपके वियोग रूपी अग्नि से शरीर रूपी रूई क्षण मात्र में जल सकती है किन्तु नेत्र अपने हित के लिये अश्रु बहाते हैं जिससे देह जलने नहीं पाती।[1]

इस प्रकार तुलसी ने विभिन्न कार्य व्यापारों के उत्कर्ष चित्रण में अनेकानेक अलंकारों का सुन्दर विधान किया है। वस्तुतः उनका यह अलंकार विधान उनके लक्ष्य की सिद्धि में पूर्ण रूपेण सफल दर्शित होता है।

(ड) विविध कल्पनाओं से पुष्ट अलंकार:

बिम्बों की योजना विशिष्ट कवि धर्म माना गया है। मानसकार इस धर्म के परिपालन में श्रेष्ठ सफलता सम्पन्न माने गये हैं। उनकी उदात्त कल्पनाएँ मानस में काव्य सौन्दर्य को विभूषित करने में सहज समर्थ सिद्ध हुयी है। विभिन्न अप्रस्तुतों के माध्यम से तुलसी ने कल्पना का अतीव रमणीक जाल तैयार करके वर्ण्य विषय को सहज बोध गम्य बनाते हुए सरस और रमणीक बना दिया है।

जनक नगर में भ्रमण कर रहे श्री राम व लक्ष्मण की सुन्दरता के वर्णन में मानसकार ने प्रतीप अलंकार के सहयोग से बड़ी सुन्दर कल्पना संजोयी है। जनकपुर की नारियाँ राम लक्ष्मण की शोभा के समक्ष ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश इत्यादि देवताओं की शोभा को भी अतुलनीय सिद्ध कर देती हैं।[1]

प्रतीप के द्वारा ही श्री राम द्वारा सीता के सौन्दर्य वर्णन में मानसकार ने एक सुन्दर सौन्दर्य वर्णन में मानसकार ने एक सुन्दर कल्पना का प्रयोग किया है। सीता के मुख की समता करने में चन्द्रमा को सर्वथा अक्षम सिद्ध करने के लिये कवि चन्द्रमा के जन्म उसके परिवार, स्थितियाँ एवं

---

1. विष्णु चारि भुज विधि मुख चारी। विकट वेष मुख पंच पुरारी॥
   अपर देव अस कोउ न आहीं। यह छवि सखी पटतरिय जाहीं॥
   रा.च.मा. 1/221/7-8

एवं चरित्र को हेय दृष्टि से देखता है।[1]

जनक रनिवास में श्री सीता जी के प्रवेश करने पर उनकी शोभा का वर्णन भी कवि ने प्रतीप के माध्यम से किया है। श्री सीता जी को सरस्वती पार्वती, रति तथा लक्ष्मी जी से भी अधिक सुन्दर सिद्ध करने वाली कवि की कल्पना सर्वथा अभिनन्दनीय है।[2]

कैकेयी द्वारा श्री राम की प्रशंसा करने पर मंथरा उसका विरोध करती है। मंथरा के वक्तव्य में दृष्टान्त अलंकार की सुन्दर सृष्टि करके कवि ने अपनी प्रखर कल्पना शक्ति का परिचय दिया है। मंथरा कहती है कि समयानुसार प्रिय जन भी शत्रु हो जाते हैं। सूर्य कमल कुल का पालक है पर जल के बिना वही उसे जलाकर राख कर देता है।[3]

कुटिल मंथरा को कैकेयी ने अपनी परम हितैषिणी समझकर अपने भावी दुख को ध्यान में न रखते हुए उसकी बात मान ली। इस अवसर पर मानसकार ने दो उत्प्रेक्षाओं की सटीक कल्पना प्रस्तुत करके अपने कथन को अधिक प्रभावोत्पादक बना दिया है। कैकेयी अपने भावी दुख को उसी प्रकार नहीं देखती जैसे बलि पशु घास चरता हुआ तलवार को नहीं देखता। मंथरा की बात सुनने में तो कोमल है पर उसका परिणाम कठोर है। मानों वह शहद में विष घोलकर कैकेयी को पिला रही है।[4]

---

1. जनक सिंधु पुनि बंधु बिष। दिन मलीन सकलंक ।। रा.च.मा. 1/237
   सिय मुख समता पाव किमि। चंदु बापुरो रंक ।।

2. गिरा मुखर तनु अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी।।
   बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिय रमा सम किमि बैदेही ।।
   रा.च.मा. 1/246/5-6

3. रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरें रिपु होहिं पिरीते।।
   भानु कमल कुल पोषनिहारा। बिनु जल जारि करइ सोइ छारा।।
   रा.च.मा. 2/16/7-8

4. लखइ न रानि निकट दुखु कैसे। चरइ हरित तृन बलि पसु जैसें ।।
   सुनत बात मृदु अंत कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी ।।
   रा.च.मा. 2/21/2-3

वन पथ पर श्रीराम, लक्ष्मण व जानकी को देखकर ग्रामवासी विधाता को कोस रहे हैं। इन ग्रामवासियों की भावना में प्रवेश करके तुलसी ने अपनी कल्पना द्वारा जो भव्य चित्र अंकित किया है वह अतीव हृदय ग्राही है। ग्रामवासी कहते हैं कि ये तीनों सुन्दर मूर्तियाँ विधाता की सृष्टि से पृथक् हैं। ब्रह्मा ने इनके समान ही दूसरी प्रतिमाओं की सृष्टि करना चाही पर वह असफल रहा। अतः उसने ईर्ष्यावश इन्हें वन में लाकर छिपा दिया है।[1]

चित्रकूट पर्वत तथा मंदाकिनी नदी के महत्व वर्णन में कवि ने मानवीकरण के रूप में अत्यन्त सुन्दर कल्पना का प्रयोग किया है। समस्त सरोवर, नदियाँ तथा समुद्र मंदाकिनी की प्रशंसा कर रहे हैं। हिमालय इत्यादि समस्त पर्वत चित्रकूट का यश-गान कर रहे हैं।[2]

चित्रकूट में प्रभु श्री राम ने अपनी चरण पादुकायें प्रदान करके भरत को संतुष्ट कर वापस लौटा दिया। इन चरण पादुकाओं के सम्बन्ध में तुलसी ने विभिन्न उत्प्रेक्षाओं के रूप में अपनी मनोरम कल्पनाओं की सुन्दर सृष्टि की है। श्री राम के चरनपीठ मानों प्रजा की प्राण रक्षा के दो सन्तरी हैं, भरत के स्नेहरूपी रत्न के संपुट हैं तथा जीव के कल्याणार्थ राम नाम के दो अक्षर हैं।[3]

---

1. इन्हहिं देखि बिधि मनु अनुरागा।
   पटतर जोग बनावै लागा ॥
   कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आये । — रा.च.मा. 2/119/5-6
   तेहि इरिषा बन आनि दुराये॥

2. सब सर सिंधु नदी नद नाना।
   मंदाकिनी कर करहिं बखाना॥ — रा.च.मा. 2/137/5-7
   सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहिं तेते ॥

3. चरन पीठ करुना निधान के।
   जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के॥
   संपुट भरत सनेह रतन के । — रा.च.मा. 2/31-5-6
   आखर जुग जनु जीव जतन के॥

सीतान्वेषण कर वापस लौटे हुए हनुमान जी से प्रभु राम प्राणप्रिय भार्या जानकी की कुशल क्षेम पूंछते हुए कहते हैं कि वहाँ पुत्र जानकी किस प्रकार अपने प्राणों की रक्षा करती हैं। प्रस्तुत प्रश्न के उत्तर में श्रीहनुमान के वचनामृत को रूपक अलंकार के माध्यम से तुलसी ने अधिक प्रभावपूर्ण बना दिया है। हनुमान ने कहा– प्रभु आपका नाम पहरेदार है, आप का ध्यान कपाटवत है। नेत्रों को अपने पैरों पर नियंत्रित रखना तालाबन्दी की तरह है। इस स्थिति में प्राण किस मार्ग से जा सकते हैं।[1]

सीता हरण के पश्चात वियोगी राम वन में सीतान्वेषण करते हुए फिर रहे हैं। मृग उन्हें देखकर भाग रहे हैं किन्तु मृगी अवध्य होने के कारण स्थिर खड़ी रहती है। मृगी व्यंग्य कर रही है कि हे मृग पुत्र तुम सानन्द विचरण करो। ये तो सोने के मृग की खोज में निकले हैं। ऐसी उदात्त कल्पना अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।[2]

हथिनियों के साथ विचरण कर रहे हाथियों को देखकर कवि कल्पना सुन्दर उत्प्रेक्षा कर बैठी है। ये सभी हाथी मानों राम को शिक्षा दे रहे हैं कि स्त्री को कभी अकेला नहीं छोड़ना चाहिये।[3]

---

1. नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
   लोचन निज पद जंत्रित, जाहिं प्रान केहि बाट॥

   रा.च.मा. 5/30

2. हमहिं देखि मृग निकर पराहीं।
   मृगीं कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं॥
   तुम्ह आनन्द करहु मृग जाये।
   कंचन मृग खोजन ये आये॥ रा.च.मा. 3/36/5-6

3. संग लाइ करिनीं करि लेहीं।
   मानहुँ मोहि सिखावनु देहीं॥
   × × ×
   राखिय नारि जदपि उर माहीं। रा.च.मा. 3/36/7-9
   जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं॥

सेतु बन्ध के लिये प्रभु राम मंत्रियों को आदेशित करते हैं। इस अवसर की हनुमान जी की उक्ति में अपह्नुति अलंकार का प्रयोग करके कवि ने मनोरम कल्पना को स्वरूप प्रदान किया है। हनुमान कहते हैं कि हे प्रभु आपके प्रताप रूपी बड़वानल ने प्रथम ही समुद्र को सोख लिया था किन्तु आपके शत्रु की नारियों की अश्रुधारा से वह पुनः भर गया है और इसीलिये जल खारी हो गया है।[1]

शान्ति समय अंगद के लंका से वापस आने पर प्रभु राम पूंछते हैं कि हे तात रावण के जो चार मुकुट तुमने फेंके थे वे तुम्हें किस प्रकार प्राप्त हुए हैं। इस प्रश्न के उत्तर में कही गयी अंगद की उक्ति में भी अपह्नुति अलंकार के माध्यम से कवि ने भव्य कल्पना की सृष्टि की है। अंगद ने कहा कि हे प्रभु ये मुकुट न होकर साम, दाम दण्ड, भेद चार राज्याश्रित गुण हैं। चूंकि ये नीति और धर्म के सुन्दर चरण हैं अतः अनीतिक रावण को त्याग कर ये आपके पास आ गये हैं।[2]

सुबेल गिरि पर विराजमान प्रभु राम के चन्द्रोदय दर्शन के प्रसंग में तुलसी की अतिशय कल्पना शक्ति का परिचय प्राप्त होताहै। चंद्रमा में श्यामलता का कारण पूंछने पर श्रीराम को विभिन्न मत प्राप्त हुए। परम भक्त हनुमान को सचराचर में अपने प्रभु रामका स्वरूप ही दिखायी देता है। वे कहते हैं कि प्रभु चन्द्रमा आपका दास है। आपकी श्यामल मूर्ति चन्द्रमा के हृदय में बस रही है। वह वही श्यामलता झलक रही है।[3]

---

1. प्रभु प्रताप बड़वानल भारी। सोषेउ प्रथम पयोनिधि बारी।।
   तव रिपु नारि रुदन जल धारा। भरेउ बहोरि भयउ तेहि खारा।
   रा॰च॰मा॰ 6/1/2-3

2. सुनु सर्बग्य प्रनत सुखकारी। मुकुट न होहिं भूप गुनचारी।।
   साम दान अरु दण्ड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा।।
   नीति धर्म के चरन सुहाये। अस जिय जानि नाथ पहिं आये।।
   रा॰च॰मा॰ 6/37/8, 9, 10

3. कह हनुमन्त सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास ।
   तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास।।
   रा॰च॰मा॰ 6/12

लंका में राक्षस राज रावण के नृत्य गान के अखाड़े का वर्णन करने में कवि ने उत्प्रेक्षा के रूप में अति सुन्दर कल्पना का प्रयोग किया है। विभीषण श्री राम जी से निवेदित करते हैं कि हे प्रभु जो आप देख रहे हैं यह न तो विद्युत है और न ही मेघमाला है। रावण के सिर पर स्थित मेघडम्बर छत्र ही मानो अत्यन्त काली मेघ घटा है। मंदोदरी के कर्णफूल ही बिजली की चमक की तरह प्रतीत हो रहे हैं।[1]

राम राज्य की महत्ता को प्रकट करने के लिये तुलसी ने परिसंख्या अलंकार के रूप में मनोरम कल्पना का प्रयोग किया है। श्री राम जी के राज्य में दण्ड केवल सन्यासियों के हाथ में था भेद नर्तकियों के नृत्य समाज में ही था। "जीतो" शब्द केवल मन के जीतने के लिये ही सुनने में आता था।[2]

इस प्रकार तुलसी ने अपनी उर्वर कल्पना शक्ति के द्वारा मानस में अनेक आकर्षक चित्र उपस्थित किये हैं।

<u>मानस में शब्द शक्तियाँ :</u>

राम चरित मानस में सशक्त शब्दावली का प्रयोग भाव के प्रभावोत्कर्ष में अत्यन्त साधक सिद्ध हुआ है। शब्द की समस्त शक्तियाँ तुलसी के इस गौरव ग्रन्थ में शरीर में रुधिर के समान व्याप्त हैं। गोस्वामी जी सरल शब्दों के पक्षधर रहे हैं किन्तु उनकी शाब्दिक साधना में अर्थगत गूढ़ता उनकी निजी विशेषता है। वाचक शब्दावली तो सामान्य रूप से सर्वत्र सुलभ है किन्तु विशिष्ट और मार्मिक स्थलों में उन्होंने लक्षक और व्यंजक शब्दों का पर्याप्त प्रयोग किया है।

---

1. छत्र मेघडम्बर सिर धारी। सोई जनु जलद घटा अतिकारी।।
   मंदोदरी श्रवन ताटंका। सोई जनु घन दामिनी दमंका ।।
   रा.च.मा. 6/12/5-6

2. दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज।
   जीतहु मनहिं सुनिअ अस, राम चन्द्र के राज।।
   रा.च.मा. 7/22

मानस में लाक्षणिक प्रयोग :

लक्षक प्रयोग के अभाव में अर्थगत गौरव की सिद्धि संभव नहीं होती है। अतः प्रत्येक कवि अपनी वाणी को गुरुत्व प्रदान करने हेतु लक्षक शब्दों को प्रमुखता देता है। तुलसी इस संबंध में बहुत आगे हैं। मानस के प्रारंभ से ही लक्षक शब्दों का अत्यन्त रमणीय प्रयोग देखने को मिलता है। निम्न प्रस्तुत चौपाई में "अंजन "शब्द गौणी लक्षणावृत्ति से सम्पन्न होकर पाठक को मनोमुग्ध कर देता है।[1]

इसी प्रकार "मानस" को मान सरोवर के रूप में प्रस्तुत करते समय तुलसी ने लक्षणा शक्ति के प्रयोग द्वारा अति मनोरम झाँकियां प्रस्तुत की हैं। जो अति दुष्ट तथा विषयी हैं वे भाग्यहीन कौए और बगुले के समान इस पावन सरोवर के निकट नहीं जाते क्योंकि इस सरोवर में उनकी स्वादिष्ट खाद्य सामग्री संबुक, भेक तथा सेवार आदि के समान विषय रस की अनेक कथाओं का अभाव है।[2]

संत-समाज रूपी चलते फिरते तीर्थराज के महत्व प्रतिपादन में तुलसी ने लक्षणा शक्ति के प्रयोग द्वारा अपने कथन को अधिक प्रभावशाली बना दिया है। इस सद्यः फलप्रदाता तीर्थराज में मज्जन करने से कौए कोकिल तथा बगुले हंस हो जाते हैं।[3]

---

1. गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। रा.च.मा. 1/1/1
   नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन।।

2. अति खल जे बिषई बग कागा।
   एहि सर निकट न जाहिं अभागा।।
   संबुक भेक सेवार समाना। रा.च.मा. 1/37/3-4
   इहाँ न बिषय कथा रस नाना ।।

3. मज्जन फल पेखिअ ततकाला।
   काक होहिं पिक बकउ मराला।। रा.च.मा. 1/2/1

सुर-दुर्लभ मानव शरीर पाकर भी जो हरि विमुख हो जाते हैं उनके विरुद्ध तुलसी ने अपनी तीव्र भावनाएँ लक्षणा के माध्यम से व्यक्त की है। जिन्होंने हरि कथा का श्रवण नहीं किया उनके कर्ण छिद्र सर्प के बिल के समान हैं। जिनके नेत्रों ने संत दर्शन नहीं किये वे नेत्र मयूर पंख की गणना में हैं।[1]

वे सिर कड़ुवी तुंबी के तुल्य हैं जो भी हरि व श्री गुरु के चरण तल पर आदर नहीं झुकते। जिनके हृदय में हरि भक्ति का प्रादुर्भाव नहीं हुआ वे प्राणी जीते हुए भी मृत समान हैं।[2]

धनुर्भंग के बाद दुष्ट राजागण सीता को छीन लेने की सलाह करते हैं। इसका प्रतिवाद साधु राजाओं द्वारा कवि ने लक्षणा के सहयोग से ही करवाया है। साधु राजाओं द्वारा दुष्ट राजाओं को उपदेशित किया गया कि अरे मूर्खों तुम्हारा यह प्रयास उसी तरह सिद्ध होगा जिस प्रकार गरुड़ के भाग को कौआ लेना चाहे अथवा खरगोश सिंह का भाग लेना चाहे अथवा लालची व्यक्ति संसार में अपनी कीर्ति चाहे, कामी व्यक्ति निष्कलंकता चाहे अथवा हरि पद विमुख व्यक्ति परम गति पाने की इच्छा करे।[3]

---

1. जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना।
   श्रवन रन्ध्र अहि भवन समाना ।।
   नयनन्हि संत दरस नहिं देखा । रा.च.मा. 1/112/2-3
   लोचन मोर पंख कर लेखा ।।

2. ते सिर कटु तुम्बरि समतूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला।।
   जिन्ह हरि भगति हृदय नहिं आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी।।
   रा.च.मा. 1/112/4-5

3. बैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि ससु चहै नाग अरि भागू ।।
   जिमि चह कुसल अकारन कोही। सब सम्पदा चहै सिव द्रोही।।
   x x x x
   हरि पद विमुख परम गति चाहा। तिमि तुम्हारे लालच नरनाहा।।
   रा.च.मा. 1/266/ 1 से 4

राम के सुन्दर स्वरूप के वर्णन में कवि ने व्यंजना के प्रयोग द्वारा चार चाँद लगा दिये हैं इस अवसर पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, स्वामी कार्तिकेय, देवराज इन्द्र सभी अपने अधिकाधिक नेत्रों का लाभ उठा रहे हैं। भगवान शंकर को अपने पन्द्रह नेत्र इस अवसर पर बहुत प्रिय लगे। ब्रह्मा जी श्रीराम की छवि का दर्शन कर बहुत हर्षित हुए किन्तु केवल आठ ही नेत्रों से उन्हें ये लाभ मिला अतः कुछ पछितावा भी हुआ।[1]

स्वामी कार्तिकेय चूंकि बारह नेत्रों से यह दर्शन लाभ पा रहे हैं अतः उन्हें ब्रह्मा जी से ड्योढ़ा नेत्र लाभ मिल रहा है। देवाधिपति इन्द्र सर्वाधिक प्रसन्न हैं क्योंकि उनके समस्त शरीर में शाप के कारण जो व्रण चिन्ह थे वे आज नेत्रों में परिवर्तित हो गये हैं।[2]

अपने पुत्रों को मिथिला से विवाहित लौटने पर माताओं के अपार हर्ष का वर्णन मानसकार ने व्यंजना के प्रयोग द्वारा अत्यधिक सुन्दर बना दिया है। माताएँ इस प्रकार से प्रमुदित हैं मानों योगियों को परम तत्व की प्राप्ति हो गयी हो अथवा संतत रोगी व्यक्ति को सुधा की प्राप्ति हो गया हो अथवा जन्म से महान दरिद्री ने पारस पा लिया हो अथवा जन्मान्ध को नेत्र लाभ हो गया हो अथवा गूंगे मुख में सरस्वती आ विराजी हो अथवा किसी योद्धा ने युद्ध में महान विजय प्राप्त कर ली हो।[3]

---

1. संकर रामरूप अनुरागे। नयन पंचदस अति प्रिय लागे।
   x x x
   निरखि राम छबि बिधि हरषाने।
   आठइ नयन जानि पछिताने ।। रा.च.मा. 1/316/2 व 4

2. सुर सेनप उर बहुत उछाहू।
   बिधि ते डेवढ़ लोचन लाहू।। रा.च.मा. 1/316/5-6
   रामहिं चितव सुरेस सुजाना।
   गौतम श्रापु परम हित माना।।

3. पावा परम तत्व जनु जोगी। अमृत लहेउ जनु संतत रोगी।।
   जनम रंक जनु पारस पावा। अंधहिं लोचन लाभ सुहावा ।।
   मूक बदन जनु सारद छाई। मानहुँ समर सूर जय पाई ।।

   रा.च.मा. 1/349/6,7,8

कैकेयी के महाराज दशरथ से राम वन गमन का वरदान माँगने पर अयोध्यावासी कैकेयी के कार्य पर टिप्पणी कर रहे हैं। इस प्रसंग में कवि ने लक्षणा द्वारा विभिन्न कल्पना चित्र प्रस्तुत किये हैं। अयोध्यावासी कैकेयी को उन्माद ग्रस्त सिद्ध करते हुए कहते हैं कि इसने मानों मकान पर छप्पर रखकर आग लगा दी। यह अपने ही हाथों से अपने नेत्रों को निकाल कर देखना चाहती है तथा अमृत छोड़कर विष खाना चाहती है। यह रघुकुल रूप वन के लिये अग्नि बन गयी। यह पत्तों पर बैठ कर डाल काट रही है।[1]

श्री राम, लक्ष्मण व जानकी को वन पहुँचाकर वापस लौटते समय मंत्री सुमंत्र की विक्षिप्त दशा का चित्रण लक्षणा के प्रयोग से अत्यधिक मार्मिक हो गया है। सुमंत्र इस प्रकार पश्चाताप कर रहे हैं मानों कोई कृपण बहुत बड़ी धनराशि खो बैठा हो। वे इस प्रकार चल दिये मानों कोई योद्धा वीर बाना सजाकर और श्रेष्ठ योद्धा कहलाकर युद्ध से भाग चला हो।[2]

राम राज्य के प्रभाव का वर्णन भी कवि लक्षणा के सहयोग से किया है। श्री काक भुशुण्डि जी पक्षिराज गरुड़ जी से कह रहे हैं कि जब से श्री राम जी का प्रताप रूपी अत्यन्त प्रबल सूर्य उदित हुआ तब से त्रैलोक्य में पूर्ण प्रकाश छा गया। इससे बहुतों को सुख तथा बहुतों के मन में शोक हुआ।

---

1. एहि पापिनिहिं बूझि का परेऊ।
छाइ भवन पर पावकु धरेऊ ॥
निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। रा.च.मा. 2/46/2, 3, व 5
डारि सुधा बिषु चाहत चीखा॥
x x x
पालव बैठि पेड़ु एहिं काटा ।
सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा॥

2. मीजि हाथ सिरु धुनि पछिताई ।
मनहुँ कृपन धनरासि गँवाई ॥
बिरिद बाँधि बर बीरु कहाई ।
कोउ समर जनु सुभट पराई ॥

रा.च.मा. 2/143/7-8

जिन्हें शोक हुआ है - अविद्या रूपी रात्रि, पाप रूपी उलूक, काम-क्रोध रूपी कुमुद तथा विभिन्न कर्म गुण, काल एवं स्वभाव रूपी चकोर और ईर्ष्या, मान मद और मोह रूपी चोर।[1]

श्री राम प्रतापरूपी सूर्योदय से जिन्हें सुख प्राप्त हुआ वे हैं धर्म-तड़ाग में विकसित ज्ञान विज्ञान रूप अनेकानेक कमल। सुख संतोष वैराग्य एवं विवेक रूपी अनेक चकवे शोक हीन हो गये।[2]

इसी प्रकार ज्ञान-दीप के प्रज्ज्वलित होने की पूर्व भूमिका के वर्णन में तुलसी ने लक्षणा शक्ति के प्रयोग द्वारा अधिक रमणीयता ला दी है। सात्विकी श्रद्धा रूपी गाय जब हरिकृपा से हृदय रूपी भवन में रहे तथा शुभ आचरण रूपी हरित तृणों का भोजन करे तब उससे परमधर्म रूपी दुग्ध प्राप्त होगा। इस दुग्ध को धैर्य रूप बावन से जमाकर तथा विचार रूपी मथानी से मथकर परम पवित्र वैराग्य रूपी मक्खन निकाला जायेगा। तब योगाग्नि में शुभाशुभकर्म रूप ईंधन लगाकर ममता रूपी मट्ठा जलाने के बाद ज्ञान स्वरूप घृत प्राप्त होगा। यह घृत ही चित्त रूपी दीपक में भरकर अज्ञानान्धकार को नष्ट करने में सक्षम होगा।[3]

---

1. जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा॥
   पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहु तेन्ह सुख बहुतन मन सोका॥
   जिन्हहिं सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अबिद्या निसा नसानी ॥
   × × ×
   मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनेउ ओरा ॥
   रा.च.मा. 7/30/1 से 6
2. धरमत डाग ग्यान बिग्याना। ए पंकज बिकसे बिधि नाना ॥
   सुख संतोष बिराग बिबेका। बिगत सोक ए कोक अनेका ॥
   रा.च.मा. 7/30/7,8
3. सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौं हरि कृपा हृदय बस आई ॥
   × × ×
   एहि बिधि लेसै दीप, तेज रासि बिग्यान मय।
   जातहिं जासु समीप, जरहिं मदादिक सलभ सब॥
   रा.च.मा. 7/116/9 से 7/117 तक

क्योंकि यह बारात दूल्हे के अनुरूप नहीं है। साथ-साथ चलने से दूसरे के नगर में पहुँचकर हम सब का उपहास होगा।[1]

विश्व मोहिनी स्वयंवर में बन्दर की मुखाकृति धारण किये हुए नारद को देखकर परम कौतुकी रुद्रगण व्यंग्य रूप में कहते हैं कि प्रभु ने इन्हें अच्छी सुन्दरता प्रदान की है। इनकी शोभा देखकर राज पुत्री मोहित हो जायेगी और विशेष रूप से "हरि" समझकर इनका वरण कर लेगी।[2]

लक्ष्मण परशुराम सम्वाद तो अनेकानेक मनोरम वक्रोक्तियों से भरा पड़ा है। लक्ष्मण द्वारा परशुराम जी के वीरत्व की समीक्षा में वक्रोक्ति का प्रयोग अतीव तीक्ष्ण रूप में हुआ है। वे कहते हैं कि आपके वचन ही करोड़ों वज्र के समान है। धनुष और बाण तो आप व्यर्थ ही धारण किये हुए हैं।[3]

श्री परशुराम जी विश्वामित्र जी से कहते हैं कि मैं आपके मधुर स्वभाव के कारण ही इस बालक का वध नहीं करता अन्यथा यह बालक वध के योग्य है। इस पर लक्ष्मण व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि हे मुनिराज ! आपका शील तो विश्व विदित है। आप माता-पिता से भली भाँति उऋण हो गये हैं। अब गुरु ऋण ही शेष रह गया है जिसके लिये आप चिन्तित हैं।[4]

---

1. बर अनुहारि बारात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई।।

   रा.च.मा. 1/92/1

2. करहिं कूट नारदहिं सुनाई। नीक दीन्ह हरि सुन्दर ताई ।।
   रीझिहि राजकुँअरि छबि देखी। इन्हहिं बरिहि हरि जान बिसेषी।।

   रा.च.मा. 1/133/3-4

3. कोटि कुलिस सम बचन तुम्हारा।
   ब्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा ।। रा.च.मा. 1/272/8

4. कहेहु लखन मुनि सीलु तुम्हारा। को नहिं जान विदित संसारा।।
   माता पितहि उरिन भये नीके। गुरु रिन रहा सोच बड़ जी के।।

   रा.च.मा. 1/275/1,2

श्री राम द्वारा क्षमा याचना करने पर परशुराम जी की क्रोधाग्नि कुछ शीतलता को प्राप्त हो जाती है। परशुराम जी कहते हैं आज मेरा स्वभाव ही परिवर्तित हो गया है क्योंकि मेरे हृदय में क्षत्रिय राजाओं के प्रति दया का संचार तो कभी नहीं हुआ। इस दया के कारण आज मुझे अपार दुख सहन करना पड़ रहा है। इस कथन पर लक्ष्मण की वक्रोक्ति कितनी सटीक सिद्ध हुई है। वे कहते हैं कि कृपा रूपी वायु आपकी मूर्ति के अनुकूल ही है। इसीलिये आपके बोलने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो आपके मुख से पुष्प वृष्टि हो रही हो।[1]

अयोध्याकाण्ड में दशरथ कैकेयी संवाद में भी सुन्दर वक्रोक्तियों का प्रयोग किया गया है। महाराज दशरथ कैकेयी से राम को वनवास देने के लिये मना करते हैं क्योंकि उनका जीवन " राम दरस आधीन" है। दशरथ द्वारा प्रतिपादित राम के साधु स्वभाव पर व्यंग्य करती हुई कैकेयी कहती हैं कि राम साधु हैं, आप भी चतुर साधु हैं तथा राम की माता भी बहुत भली हैं ।[2]

वन यात्रा के लिये साथ जाने को तैयार श्री सीता जी को सुकुमारी कहकर श्री राम उन्हें वन जाने से रोकते हैं। वे वन के कठोर वातावरण के साथ समायोजन करने में सुकोमलांगी सीता को अक्षम सिद्ध करते हैं। इस अवसर पर सीता द्वारा कथित वक्रोक्ति कितनी प्रभावोत्पादक है। वे कहती हैं कि मैं सुकुमारी हूं और आप वन के योग्य हैं ? आप को तप उचित है और मुझे भोग विलास ? क्या आपका यह कथन उपयुक्त है ?[3]

---

1. बाउ कृपा मूरति अनुकूला।
   बोलत बचन झरत जनु फूला।।   रा.च.मा. 1/279/2

2. राम साधु तुम साधु सयाने ।
   राम मातु भलि सब पहिचाने ।। रा.च.मा. 2/32/7

3. मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू।
   तुम्हहिं उचित तप मो कहँ भोगू।। रा.च.मा. 2/66/8

रावण् अपने को गुण ग्राहकता सिद्ध करता है। उसकी गुण-ग्राहकता पर तीक्ष्ण व्यंग्य करते हुए अंगद ने कहा कि तुम्हारी सच्ची गुण ग्राहकता तो हनुमान जी ने मुझे प्रथम ही सुना दी है। उन्होंने अशोक वाटिका नष्ट की, तुम्हारे पुत्र का वध किया, तुम्हारे नगर को जलाया तो भी तुमने उनका कोई अहित नहीं किया। तुम्हारी उसी सुन्दर प्रकृति पर विचार करके मैंने भी तुम्हें समझाने की ढिठाई की है।[1]

अंगद द्वारा अनेक कटूक्तियों का प्रहार करने पर रावण क्रोध युक्त होकर कहता है कि अरे दुष्ट मैं तेरे कठोर वचनों को इसीलिये सहन कर रहा हूं कि मैं धर्म तथा नीति का ज्ञाता हूं। इस कथन पर अंगद ने जलती हुई अग्नि में घृताहुति की तरह पुनः तीखी वक्रोक्ति का प्रयोग करके रावण की क्रोधाग्नि को अधिक उद्दीप्त कर दिया। अंगद ने कहा- रावण! तुम्हारी धर्म शीलता का सुन्दर प्रमाण सीता-हरण से अच्छा क्या हो सकता है। नाक तथा कान रहित अपनी बहिन को देखकर भी तुमने धर्मविचार कर ही क्षमा कर दिया। तुम्हारी धर्मशीलता विश्व विख्यात है। मैं भी बड़ा भाग्यशाली हूं जो तुम्हारा दर्शन हो गया।[2]

---

1. कह कपि तव गुन गाहकताई।
   सत्य पवन सुत मोहि सुनाई।।
   बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा।
   तदपि न तेहि कछु कृत अपकारा।।
   सोई बिचार तव प्रकृति सुहाई।
   दसकंधर मैं कीन्ह ढिठाई ।। रा.च.मा. 6/23/5,6,7

2. कह कपि धरम सीलता तोरी।
   हमहुं सुनीकृत पर त्रिय चोरी।।
   x x x
   नाक कान बिनु भगिनि निहारी।
   छमा कीन्ह तुम्ह धर्म बिचारी।।
   धर्म सीलता तव जग जागी।
   पावा दरस हमहुं बड़ भागी ।। रा.च.मा. 6/21/5,6,8

रावण अपनी वीरता का वर्णन अंगद से करता है। वह कहता है कि अरे दुष्ट मुझ जैसे महान योद्धा के समक्ष किसी अन्य वीर की वीरता वर्णन करने में तुझे लज्जा का अनुभव होना चाहिए। इस कथन पर रावण की सलज्जता पर व्यंग्य करते हुए अंगद ने कहा कि - हे रावण विश्व में तेरे समान लज्जावान कोई नहीं है। सलज्जता तो तुम्हारा सहज स्वभाव है। इसीलिये तो तुम अपने ही मुख से अपना गुणगान कर रहे हो।[1]

इस प्रकार अनेक वक्रोक्ति प्रधान काव्य चित्रों का दिग्दर्शन मानस में स्थान स्थान पर हुआ है। और इन व्यंजक प्रयोगों द्वारा भावोत्कर्ष करने में तुलसी ने अत प्रशंसित सफलता प्राप्त की है।

उपर्युक्त तथ्यों से तुलसी की काव्य-कला में शब्दगत और अर्थगत शालीनता का पूर्णाभास मिल जाता है। राम चरित मानस का एक एक शब्द अपनी स्थिति और अर्थगत गुरुता से गौरवान्वित है। शब्द और अर्थ के गौरव से प्रभावित होकर ही बुन्देली के महान कवि ईसुरी ने राम चरित मानस की प्रत्येक चौपाई को मंत्र माना है। वस्तुतः अपनी सटीक और स्वाभाविक अलंकार योजना की रमणीयता और सशक्तशब्दा वली की गुरुता के कारण मानसकार का यह गौरव ग्रन्थ हर साहित्य रसिक का कण्ठहार बन गया है। यह निर्विवाद सर्वमान्य तथ्य है कि तुलसी शब्द और अर्थ के महान शिल्पी थे।

डा० माताप्रसाद गुप्त के शब्दों में -

कल्पना चित्रों और अलंकारों को अपनी रचनाओं में लाने के लिए तुलसी को प्रायः किसी प्रकारका प्रयास नहीं करना पड़ता है। उनकी यह विशिष्टता उन्हें एक महान कवि और कलाकार का आसन- प्रदान करती

---

1. कह अंगद सलज्ज जग माहीं।
   रावन तोहि समान कोउ नाहीं।।
   लाजवन्त तव सहज सुभाऊ ।   रा.च.मा. 6/28/5 व6
   निज मुख निज गुन कहसि न काऊ।।

2. "तुलसीदास"
   डा० माताप्रसाद गुप्त

आनन्द रामायण में अलंकार योजना :

महर्षि पाणिनी के पश्चात् वैदिक संस्कृत केवल वैदिक साहित्य की भाषा मात्र रह गयी। पाणिनी के कठिन व्याकरण-पाश से आबद्ध लोकमान्य संस्कृत में साहित्यिक कृतियों की संरचना पाणिन्युत्तर सभी साहित्यकारों ने की है। किन्तु यह लौकिक संस्कृत की साहित्यिक कृतियों का आदिकाल था। अतः साहित्य की शब्द और अर्थगत सुषमा के सम्वर्धन हेतु विभिन्न बिम्बों और अलंकरणों की उद्भावना उस समय तक अविकसित रूप में ही रही होगी। यही कारण है कि भावाभिभूत और मार्मिक वर्णन भी शब्द और अर्थ की उस प्रांजलता को ग्रहण नहीं कर सके जो संस्कृत साहित्य के स्वर्ण युग (। से 6 वीं शताब्दी तक) के साहित्यकार अपने साहित्य में अत्यन्त स्वाभाविक रूप से प्रतिष्ठित करने में सक्षम हो सके थे। आनन्द रामायण उसके भाषागत गुण दोषों को ध्यानस्थ करके लौकिक संस्कृत के आदि काल की रचना कही जा सकती है। अतः शब्द और अर्थगत सौन्दर्य की अभिवृद्धि हेतु आनन्द रामायणकार अपने युग की सीमाओं से आबद्ध प्रतीत होते हैं। किन्तु उनके इस ग्रन्थ में तत्कालीन स्थिति के अनुसार शब्द और अर्थ के सौन्दर्य वर्धन हेतु विभिन्न अलंकरणों का जो प्रयोग हुआ है वह सर्वथा स्तुत्य है।

शब्द की गरिमा आनुप्रासिक प्रयोगों से जो साहित्य ग्रहण करती है उसके लिए प्रारम्भ से ही कवि वृन्द अपनी शब्द सम्पत्ति को गौरवान्वित बनाने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। आनन्द रामायणकार भी इस शब्द गत गौरव की प्रतिष्ठा में पीछे नहीं है। स्थान-स्थान पर उनकी यह शाब्दिक चमत्कृति काव्य को रमणीय बनाने में समर्थ हुई है।

विलास काण्ड के प्रथम सर्ग में श्री राम स्तवराज स्तोत्र में अनुप्रास की मनोरम छटा अत्यधिक चित्ताकर्षक है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है-

निम्नलिखित श्लोक में ग वर्ण की अनेकावृत्ति कितनी सरसतया प्रवाहपूर्ण है -[1]

---

1. गोविन्दं गोपतिं विष्णुं गोपीजन मनोहरम् ।
   गोपाल गोपरीवारं गोपकन्या समावृतम् ॥

इसी प्रकार प्रस्तुत श्लोक में क वर्ण की अनेकावृत्ति अतीव मनोरम बड़ी है।[1]

इस प्रकार अनेक आनुप्रासिक प्रयोगों से आनन्द रामायण भरी पड़ी है। इन प्रयोगों में ग्रन्थकार ने सर्वत्र यह ध्यान रखा है कि भाषा का स्वाभाविक प्रवाह नष्ट न होने पाये।

आनन्द रामायणकार ने एक स्वरात्मक भिन्नार्थक शब्द युग्मों के प्रयोग से अपने काव्य में श्लेष पद और अनेक यमक का प्रयोग सफलता पूर्वक किया है। उनके ये शब्द युग्म अत्यन्त सटीक, स्वाभाविक एवं काव्य रमणीयता के वर्धक हैं। जिस प्रकार अलंकारवादी कवियों ने हठात् अलंकारिकता को प्रतिष्ठित करने हेतु शब्दों की तोड़ मरोड़ एवं अनेक बेमेल शब्दों का प्रयोग किया है। तब वे यमक को प्रतिष्ठित कर सके हैं, आनन्द रामायणकार ने कहीं भी इस पद्धति को प्रश्रय नहीं दिया है। उनके यमक के प्रयोगों में अत्यन्त स्वाभाविकता एवं रमणीयता है।

जन्म काण्ड के प्रथम सर्ग में श्रीराम द्वारा उपवन दर्शन प्रसंग में यमक का सफल प्रयोग द्रष्टव्य है। निम्नलिखित श्लोक में रसाल तथा अशोक के वृक्षों का वर्णन अंगपद यमक के माध्यम से अतीव रमणीय हो गया है।[2]

श्लोक की द्वितीय पंक्तियों में अन्त्यानुप्रास से युक्त यमक की छटा अवलोकनीय है।

बकुल तथा श्रीफल के वृक्षों का वर्णन आनन्द रामायणकार ने अंगपद यमक के माध्यम से किया है। ऐसा स्वाभाविक प्रयोग अन्यत्र दुर्लभ है।

अगुरु के वृक्षों के वर्णन में अंग पद यमक का प्रयोग अनुभवनीय है।

---

1. सर्वक्रिया कारणकृमेयं कवि पुराणं कमलायताक्षम् । आ.रा.4/1/54
कुमारयेणं कमलामयं तं काव्यपूर्णं रामग्रहं भजामि ।।

2. रसालवृन्दं रसालैस्तीरसालैः सौवर्णवारम्। आ.रा. 5/1/48
सालैस्तमालैरहिन्तालैः सालैः सर्वत्र शोभितम्।।

काकु वक्रोक्ति के प्रयोग द्वारा काव्यात्मक चमत्कार का प्रदर्शन भी आनन्द रामायण में अनेक स्थलों पर हुआ है। विवाह काण्ड में राजा सुकीर्ति की कन्याओं के स्वयंवर-वर्णन प्रसंग में काकु वक्रोक्ति के अनेकानेक सुन्दर उदाहरण विद्यमान हैं। राजकुमारी सुमति वरमाल लेकर राजसमाजान्तर्गत भ्रमण कर रही है। उपमाता (धाय) सुनन्दा उसे समस्त राजाओं का परिचय बतलाती जा रही है। अवन्ति नरेश उग्रबाहु के परिचय प्रकरण में काकु वक्रोक्ति का सफल प्रयोग द्रष्टव्य है।[1]

कर्णाटक नरेश विजय का परिचय भी सुनन्दा द्वारा काकु वक्रोक्ति के माध्यम से ही कराया गया।[2]

शत्रुघ्न तनय सुकेतु का परिचय देकर राजकुमारी सुमति को आगे बढ़ने का संकेत भी सुनन्दा काकु वक्रोक्ति के माध्यम से ही देती है।[3]

शब्द और अर्थ चन्दन और सुरभि की भाँति एक दूसरे से अभिन्न हैं। शब्द शिल्पी को अर्थमर्मी बने बिना सफल साहित्यकार का गौरव सुलभ नहीं हो पाता है। इसीलिए साहित्यकार अर्थ की रमणीय व्यंजना के लिए विभिन्न बिम्बों, कल्पनाओं, प्रतीकों एवं अप्रस्तुतों का प्रश्रय लेता है। अलंकारवादी साहित्य मनीषियों ने तो शब्द और अर्थ की रमणीयता प्रतिपादित करना ही कवि धर्म मान रखा है। किन्तु यह तथ्य सर्वमान्य है कि एक सफल साहित्यकार अपनी भाव-निधि को शब्द और अर्थ की मणि मंजूषा के अंतराल में प्रतिष्ठित करके ही उसकी चिरता और स्थायी लोक मान्यता को दृढ़ कर पाता है। अतः सभी साहित्यकारों ने और विशेषतः कवियों ने शब्दों के अलंकरण के साथ अर्थगत अलंकरणों

---

1. वरयैनं शुभे मा त्वं गच्छ स्वं गजगामिनी। आ० रा० 6/3/4
   अत्यर्थं महिषी भूत्वा क्षिप्रानवाप्य सैवे।।
2. सुखं नृपेण कोऽस्य महार्घ्यं शुभे मा वृथ। आ० रा० 6/3/23
3. एनं पश्य चारित्रे त्वं लावण्यान्वितो भव।
   वरयैनं सुकेतुं मा त्वं गच्छ शुभाननै।।
   आ० रा० 6/3/29

की उपादेयता को महत्व दिया है। मानसकार इस श्रेणी में अत्यधिक सफल सिद्ध हुआ। आनन्द रामायणकार की स्थिति कृति के अत्यधिक प्राचीनकाल से संबंधित होने के कारण उस गौरव तक नहीं पहुँच सकी है। किन्तु जिस प्रकार आनन्द रामायणकार ने शाब्दिक रमणीयता के प्रतिपादन में अपने को जागरूक रखा है उसी प्रकार अर्थगत रमणीयता का प्रतिपादन भी प्रशंसनीय है।

मानसकार ने जिन आधारों से लेकर शब्दगत और अर्थगत रमणीयता के प्रतिपादन का कार्य किया है, उन्हीं आधारों को लेकर आनन्द रामायणकार की अर्थगत अलंकार योजना का अध्ययन करना समीचीन होगा।

(क) अलंकारों के माध्यम से अनुभूतियों का उत्कर्ष :

अर्थ की रमणीय व्यंजना अनुभवगम्य सभी दृश्य और अदृश्य लौकिक और अलौकिक तथ्यों को मनोमुग्धकारी रमणीयता प्रदान करती है। आनन्द रामायणकार ने अपने ग्रन्थ में अनेक ऐसी अर्थगत व्यंजनाएं प्रस्तुत की हैं जो अनुभूति को तीव्रतम करने में सक्षम हुई हैं।

माया जन्य संसार की असत्यता का प्रतिपादन उदाहरण अलंकार के माध्यम से अतीव प्रभावपूर्ण बन पड़ा है। सीपी में रजत, रेती में जल, रस्सी में सर्प तथा मृगमरीचिका में जल आदि दृष्टान्तों के प्रयोग द्वारा "अनात्मिकता" की अनुभूति को तीव्रता प्रदान की गयी है।[1]

आत्मा शुद्ध, नित्य तथा सच्चिदानंद स्वरूप है। उसकी माया से निर्लिप्तता का चित्रण ग्रन्थकार ने कमल पत्र तथा जल के दृष्टान्त द्वारा बड़े ही प्रभाव पूर्ण ढंग से किया है।[2]

---

1. नश्वरं भासते चैतद् विश्वं मायोदितं शुभ ।
   यथा शुक्तौ रौप्यभासः कासभूम्यां जलस्य च ।।
   यथा रज्जौ सर्पभासो मृगतोये जलस्पृहा ।। आ.रा. 1/5/107-10

2. यथैतौ नलिनीपत्रं लिप्यतेऽम्बुना न सः ।
   यथा पद्मं न स्पृशति जलं मायां तथा मनः ।।
   आ.रा. 1/5/111

लव तथा लक्ष्मण के युद्ध-प्रसंग में भी आनन्द रामायणकार ने लव के अप्रतिम प्रताप को प्रदर्शित करने के लिए दृष्टान्त अलंकार का प्रभावोत्पादक प्रयोग किया है। बुझने वाले दीपक की लव के दृष्टान्त[1] द्वारा प्रस्तुत अनुभूति अधिक उत्कृष्टता को प्राप्त हो सकी है।

राजकुमार कुश द्वारा राम तथा लक्ष्मण की निर्बलता का प्रस्तुतिकरण रूपक अलंकार के माध्यम से अधिक प्रभावपूर्ण बन गया है। निरपराधिनी परित्यक्ता सीता की तीव्र कोपाग्नि में राम व लक्ष्मण का बल जल चुका है।[2]

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने अनेक स्थानों पर भावानुभूति को प्रखर बनाने हेतु विभिन्न अलंकारों का सफल प्रयोग किया है।

[ब] <u>रूप गरिमा के उत्कर्ष में सहयोगी अलंकार -</u>

साहित्य साधना का एक महत् उद्देश्य निखिल विश्व में प्रसरित तत्वों और तथ्यों व आकारों का सौन्दर्य निरीक्षण है। विविध कलाओं की भाँति काव्य कला भी सुन्दरम् की साधना द्वारा शिवम् की अनुभूति एवं सत्यम् की प्राप्ति कर पाती है। अतः कवि रूपकी गरिमा को विकास की सीमा तक पहुँचाने केलिए अनेक सादृश्य मूलक वैषम्य मूलक एवं विरोध बोधक बिम्बों-प्रतिबिम्बों व प्रतीकों का अवलम्ब लेता है। आनन्द रामायणकार ने भी अपने ग्रन्थ में विभिन्न अलंकारों द्वारा रूपोत्कर्ष की मनोरम झाँकियाँ सृजित की हैं।

---

1. यथा सिमधी दीपो वृद्धिमेति प्रयच्छति ।
   तथायुधः क्षये मे वि वृद्धिं पश्य क्षयं रिपूनाम्।।

   आ.रा.5/7/102-103

2. सीताकोपाग्निसञ्जातसंदग्धं युवयोर्बलम् ।
   न ममाग्रेस्फुटं कार्यं कुमाराभ्यामुपहासकृत् ।।

   आ.रा. 5/7/113

महर्षि दुर्वासा कृत श्रीराम स्तुति में कवि द्वारा प्रयुक्त रूपक दर्शनीय है।[1]

पुष्कर द्वीप की चमकती हुई भूमि के वर्णन में प्रस्तुत उपमा कितनी अधिक सहयोगी सिद्ध हुई है। वह कांचनमयी भूमि शीशे के समान चमक रही थी।[2]

रमणी रूप धारिणी सूर्य पुत्री यमुना के रूप का वर्णन उपमा अलंकार के प्रयोग से अतीव मनोरम बन पड़ा है। उसके वर्ण, स्तन तथा जंघाओं के वर्णन में क्रमशः नील कमल, स्वर्णकलश तथा कदलीखंभ उपमानों का प्रयोग करके कवि ने रूपोत्कर्ष में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।[3]

मनोहर काण्ड में अयोध्या वर्णन प्रसंग में कवि द्वारा प्रयुक्त उत्प्रेक्षा अनुभवनीय है। अमरावती के समान देदीप्यमान अयोध्यापुरी में प्रतोली के मस्तक पर रखे हुए सुवर्ण के कलश ऐसे दीख रहे हैं जैसे अनन्त सूर्य एक साथ श्रीराम जी का दर्शन करने आये हों।[4]

सीतारूप वर्णन में ग्रन्थकार ने रूपक के अनेक मनोरम चित्र अंकित किए हैं। ये चित्र सीता के रूपोत्कर्ष हेतु महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत कर सके हैं।[5]

---

1. राम राजीवपत्राक्ष एवं साक्षाज्जगदीश्वरः । आ.रा. 7/2/84

2. ततो थे आदर्शतलोपमां कांचनीं भूमिं दैवैरधिष्ठितां ।
आ.रा.7/9/74

3. नीलोत्पलदलश्यामां हेमकुंभ पयोधराम् ।
स्मिताननां सुरंभोरुं किंकिणीजाल मालिकाम्।।
आ.रा.7/12/110-111

4. पश्यायोध्यां मुक्तिपुरीं द्वितीयाममरावतीम् ।
यत्र कार्तस्वरघटाः प्रतोलिशिरसि स्थिताः । आ.रा.8/11/262-2
रामं द्रष्टु मनंतास्तां प्राप्ताः सूर्या इवाययुः ।।

5. रम्भातलां च बिम्बोष्ठीं चन्द्राह्लाद लोचनाम् ।
कमनीय कमानास्यां कलकंठ मनोरमाम् ।। आ.रा.8/14/1112

भगवान श्री राम के वैकुण्ठारोहण प्रसंग में श्री शिव जी द्वारा की गयी उनकी स्तुति में कवि ने श्री राम के स्वोत्कर्षकारक अनेक अलंकरणों को योजित किया है। श्री राम जी पद्मानन पद्मनाभ तथा पद्मपाद हैं।[1]

इस प्रकार आनन्द रामायणकार की अलंकार योजना स्वोत्कर्ष करने में पूर्ण रूपेण सफल सिद्ध हुई है।

(ग) गुणोत्कर्ष साधक अलंकार :

मन की प्रशान्ति में चित्त को जिस आनंद की अनुभूति होती है वह आनंद साहित्यकार का अपना धन है। सुमन के बाह्य रूप रंग पर जन रूपसी का बाह्य श्रृंगार भले ही अवलंबित हो किन्तु उसकी सुरभि और सरसता ही मिलिन्द के आस्वादन का तत्व है। इसी प्रकार रूप की आराधना तभी स्थायित्व को ग्रहण करती है जब रूप गुण से सम्पन्न हो। साहित्यकार सौन्दर्य का सच्चा शिल्पी है। अतः वह रूप की गौरव गाथा को गुणों की गौरव गाथा से योजित करते हुए साहित्य साधना में लीन होता है। आनन्द रामायणकार ने ऐसे अनेक चित्र विभिन्न सादृश्य मूलक एवं वैषम्यमूलक प्रतीकों और बिम्बों द्वारा प्रस्तुत किये हैं जो वर्ण्य के गुणों का उत्कर्ष प्रतिपादित करने में कृत कार्य हुए हैं।

महाराज जनक की सभा में देश-देशान्तर से पधारे हुए महिपालों के बीच श्री राम जी धनुष भंजन हेतु तैयार होते हैं। श्री राम जी के अंग प्रत्यंगों की कोमलता तथा श्री शिव धनुष की कठोरता का अनुभव करके श्री जनक जी महर्षि विश्वामित्र जी से अपनी आशंका व्यक्त करते हैं। प्रस्तुत स्थल पर श्री राम जी की कोमलता तथा श्री शिव-धनुष की कठोरता का दिग्दर्शन बालक तथा समुद्र के दृष्टान्त द्वारा बड़े ही सहज रूप से करवाया गया है।[2]

---

1. शार्ङ्गिणं कमलाननं कमलादृशं पदपंकजं ,
   श्यामलं रविमातुलांशिक लोकदं कमलार्चितम् । आ.रा. 9/6/39

2. क्वायं बालः कोमलांगः क्वेदं चापं सुदुर्धरम् ।
   किं बालकस्तृषाक्रांतः सागरं शोषयिष्यति ।। आ.रा. 1/3/97-98

महर्षि वाल्मीकि की वन्दना के संदर्भ में प्रस्तुत निम्नलिखित श्लोक गुणोत्कर्ष साधन में पूर्णतः सफल सिद्ध हुआ है। कविता रूपी शाखा पर आसीन होकर मधुर अक्षरों में श्री राम नाम का गान करने वाले कोकिल स्वरूप श्री वाल्मीकि जी वंदनीय हैं।[1]

कविता वन विहारी, मुनि शार्दूल श्री वाल्मीकि जी की राम कथा गर्जना सुनकर प्रत्येक प्राणी उत्तम गति को प्राप्त हो जाता है।[2]

निरन्तर राम चरितामृत सागर का पान करते हुए भी अतृप्त रहने वाले, कल्मष रहित श्री वाल्मीकि प्रणम्य हैं।[3]

श्री हनुमान जी के गुणोत्कर्ष साधन में ग्रन्थकार द्वारा प्रस्तुत अधोलिखित श्लोक अत्यधिक सहयोगी सिद्ध हुआ है। विशाल सागर को गोखुरवत् तथा राक्षसों को मशकवत् समझने वाले अनिलात्मज श्री हनुमान जी रामायण-महामाला के रत्न हैं।[4]

अयोध्या निवासी ब्राह्मणों की उदारता, गंभीरता व क्षमा आदि गुणों का वर्णन विभिन्न उपमाओं के माध्यम से अतीव उत्कृष्टता को प्राप्त हुआ है। वे उदारता में कल्पवृक्ष, गंभीरता में समुद्र, क्षमा में पृथ्वी तथा दारिद्र्य-रूपी महान सागर के शोषण में अगस्त्य के सदृश हैं।[5]

---

1. कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
   आरुह्य कविताशाखां वंदे वाल्मीकि कोकिलम्।। आ.रा. 8/1/7

2. वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः ।
   शृण्वन्रामकथानादं को न याति परां गतिम्।। आ.रा. 8/1/8

3. यः पिबन्सततं रामचरितामृत सागरम् ।
   अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम् ।। आ.रा. 8/1/9

4. गोष्पदीकृत वारीशं मशकीकृत राक्षसम् ।
   रामायण महामालारत्नं वन्दे निलात्मजम्।। आ.रा. 8/1/10

5. औदार्ये कल्पतरवो गांभीर्ये सागरा इव।
   क्षमया क्षमया तुल्या गंगया निर्मला इव।
   दैन्यग्राहमहाम्भोधिग्रासागस्त्य महर्षयः।। आ.रा. 8/11/232-233

सरयू-जल की शुभ्रता के चित्रण में प्रस्तुत रूपक पूर्णरूपेण सफल है।[1]

श्री सीता जी के कोमल स्वर की उत्कृष्टता प्रदर्शन में प्रस्तुत रूपक अत्यधिक सटीक है-[2]

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने अनेक स्थलों पर गुणोत्कर्ष साधन में विभिन्न अलंकारों का प्रयोग किया है और इस कार्य में उनका प्रयास सर्वथा स्तुत्य कहा जा सकता है।

(ग) क्रियोत्कर्ष साधक अलंकार -

यह जगत कर्मक्षेत्र है। यहाँ कर्मों की उच्चता के आधार पर ही जीवन की उच्चता स्थिर होती है। साहित्य के अंतर्गत विभिन्न क्रिया-कलापों का प्रभावोत्पादक चित्रण करके कवि मानव अंतःकरण में कर्म के प्रति राग की भावनाएं पुष्ट करता है। कार्य के सौन्दर्य व्यंजक बिम्बों को वह इतना मनोमुग्धकारी चित्रण करता है कि हमारी अंतःवृत्ति उसमें ही विलीन होती हुई सी अनुभव होती है। आनन्द रामायणकार ने भी कार्य की रमणीयता को प्रतिपादित करने वाले विभिन्न बिम्ब चित्र अपने ग्रंथ में संजोये हैं।

जनकपुर से वापस लौटते समय शत्रु राजाओं व श्री राम जी के मध्य युद्ध का चित्रण हुआ है। प्रस्तुत स्थल पर श्री राम जी के वायव्यास्त्र चलाने का चित्रण उपमा अलंकार के प्रयोग द्वारा प्रभावोत्पादक सिद्ध हुआ है। इस शस्त्र द्वारा श्री राम जी ने उन समस्त राजाओं को सूखे पत्तों की भाँति उड़ाकर समुद्र तट पर फेंक दिया।[3]

---

1. घनः पानघटान् भोक्तुं तरंगान्मुंडानिव ।
   बिभर्ति सरयूतोयं निःशेषं भंगिभोगिनः ॥ आ.रा. 8/11/236-237

2. कलानाथ कलानाद्यां कोकिलकंठ मनोरमाम्।आ.रा. 8/8/12

3. उत्पाकृत्य महद्वायं वायव्यास्त्रेण तान्नृपान् ।
   शुष्कपर्णमिवद्भुय प्राक्षिपदब्धिरोधसि ॥
   आ.रा. 1/4/43-44

सार काण्ड के द्वादश सर्ग में श्रीराम के रण-यज्ञ रूपक का वर्णन है। यह रूपक युद्ध की उत्कृष्टता के चित्रण में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करता है। उस रण यज्ञ में युद्ध कुण्ड था। उसमें से न भागना ही वेदविहित ब्रह्मतत्व था। शस्त्रों की झनकार ही धर्म की सामग्री थी। भूमि में बाणों को फैलाकर रखना ही उत्तर कुश आदि का आस्तरण था। महान काल रूपी अग्नि ही यज्ञ कुण्ड की आग थी। रुधिर की धारा ही वसुधारा थी। भयानक हाहाकार ही ओंकार तथा वषट्कार का नाद था।[1]

जन्म काण्ड में श्री राम द्वारा उपवन-दर्शन प्रसंग अनेक चित्रोत्कर्ष-कारक अलंकारों से युक्त है। मन्द वायु के झोंकों से कदलीपत्र के झूमने से ग्रन्थकार ने परिश्रान्त बटोहियों को हाथ के संकेत से विश्राम करने हेतु बुलाने की उत्प्रेक्षा की है।[2]

अनार के विदीर्ण फलों के चित्रण में प्रस्तुत उत्प्रेक्षा अतीव मनोरम है। ये फल मानो अपना हृदय फाड़कर हार्दिक प्रेम प्रदर्शित कर रहे हैं।[3]

राज चम्पक तथा कोरैया के वृक्ष मानो आरती बनकर उस उपवन की आरती उतार रहे हैं।[4]

---

1. रणाग्निर्यज्ञकुण्डं तत्र वै युद्धदारुणम् ।
तस्य वेदविधानं हि ब्रह्मतत्वं प्रकीर्तितम्।।
× × ×
रक्तधारा वसोर्धारा हाहाकारो भयानकः ।
स ॐकार वषट्कारयोर्ध्वनिर्ज्ञेयो रणाध्वरे ।।

आ. रा. 1/12/171 से 175 तक

2. मन्दोन्दोलितसत्पुष्पकदलीदलसंज्ञया ।
विश्रामाय श्रमापन्नानाह्वयन्तमिवाध्वगान्।।

आ. रा. 5/1/51

3. विदीर्णदाडिमैः स्वान्तं दर्शयन्ननुरागवत् ।
माधवीयस्नेहेन विलसन्तमिव कानने ।। आ. रा. 5/1/53

4. नीराजितमिवोद्दीप्तै राजचम्पककोरकैः । आ. रा. 5/1/60

लव तथा श्री राम के दूतों के मध्य युद्ध वर्णन प्रसंग में लव के कठोर वचनों की उत्कृष्टता प्रस्तुत रूपक के द्वारा सहज रूप से प्रकट हो जाती है। लव के वचन रूपी बाणों से समस्त सैनिकों के हृदय विदीर्ण हो गये।[1]

राम-सभा मध्य लव-कुश के गायन की उत्कृष्टता गांधर्व-गायन के उपमान द्वारा बड़े ही स्वाभाविक रूप से प्रकट हो जाती है।[2]

लव तथा लक्ष्मण युद्ध प्रसंग में लव द्वारा चमत्कार प्रदर्शन किया गया। लव के ऊपर जल डाला गया। जितना जल लव पर पड़ता था वे उतने ही अधिक बढ़ते जाते थे। बढ़ने की इस क्रिया का चित्रण उपमा अलंकार के माध्यम से अतीव सुन्दर तथा प्रभावपूर्ण है।[3]

यात्रा काण्ड में श्री राम के यज्ञीय अश्व के सर्वत्र भ्रमण का वर्णन है। प्रथम दिन ही श्री राम जी ने अपनी माया द्वारा अश्व रक्षक श्री शत्रुघ्न के समक्ष एक विचित्र कौतुक प्रस्तुत किया। उनका समस्त बल समाप्त हो गया। गंगा की बाढ़ के कारण एक स्थान पर उनकी नौका भी रुक गयी। दृष्टान्त अलंकार द्वारा इस व्यवधान की सुन्दर प्रस्तुति हुई है।[4]

राजा भूरिकीर्ति की पुत्री चम्पिका के स्वयंवर वर्णन प्रसंग में शूरसेन नरेश सुषेण के रथाश्वों की गति के चित्रण में वायु का उपमान क्रियोत्कर्षकारक है।[5]

---

1. इति ते लववाग्बाणैर्भिन्नमर्मस्थलास्तदा । आ. रा. 5/6/50

2. ततः प्रवृत्तं मधुरं गांधर्वं गीतमुत्तमम् । आ. रा. 5/7/31

3. यथा यथा जलैस्तं हि सेचनं चक्रिरे जनाः ।
   तथा तथा लवस्तत्र व्यवर्द्धत घनो यथा ।। आ. रा. 5/7/99-100

4. आद्यदिवसेऽपि मे विघ्नमुत्पन्नं गमने महत् ।
   ग्रासे प्राथमिके मक्षिकापतनं तथा ।। आ. रा. 3/3/6

5. तुरगा वायुवेगाश्च यस्य चम्पो सुपीडकः ।
   आ. रा. 6/2/50

मनोहर काण्ड में श्री राम के प्रजापालन कार्य की महत्ता के चित्रण में प्रस्तुत उपमा अत्यधिक सटीक एवं सार्थक है।[1]

इस प्रकार अनेक स्थलों पर क्रिया की तीव्र अनुभूति कराने हेतु आनन्द रामायणकार द्वारा योजित अलंकार योजना सर्वथा उपयुक्त सिद्ध हुई है।

(ङ) विविध कल्पनाओं के प्रदर्शक अलंकार :

सत्य तक पहुंचने के लिए मार्ग की संरचना निर्णीत मार्ग निकल आने तक कल्पना मूलक ही रहती है। साहित्यकार कल्पना के सहारे अपने मन का संसार बनाने में सक्षम होता है। कल्पना की मनोज्ञता मानव मन को सौन्दर्य की सृष्टि के लिए प्रवृत्त करती है। कवि सौन्दर्य का सफल स्रष्टा है। अतः कल्पना ही उसकी इस सृजन की सहायक सामग्री है। सफल कवि वही है जिसके पास उच्च कल्पनाओं की प्रतिभा है। कल्पनाओं की सज्जा के लिए कवि विभिन्न सादृश्य मूलक एवं अन्य अलंकारों का सहयोग लेता है। आनन्द रामायण में भी हमें कल्पनाओं की रमणीयता प्रतिपादित करने वाले अनेक अलंकारों के दर्शन होते हैं।

परम ज्ञानी श्री हनुमान जी द्वारा रावण को सदुपदेश प्रदान किया गया किन्तु काल के वशीभूत होने के कारण उसने उस हितोपदेश को अन्यथा समझा। प्रस्तुत तथ्य के चित्रण में आनन्द रामायणकार ने दृष्टान्त अलंकार के माध्यम से मनोरम कल्पना की सृष्टि की है। रावण ने उस उपदेश को उसी प्रकार स्वीकार नहीं किया जिस प्रकार मुमूर्षु पुरुष औषधि नहीं खाता।[2]

जन्म काण्ड में तो श्री राम द्वारा उपवन दर्शन प्रसंग में ग्रन्थकार ने विभिन्न अलंकारों द्वारा अनेकानेक भव्य कल्पनाओं को स्वरूप प्रदान किया है

---

1. प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः ।
   रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ॥ आ॰ रा॰ 8/1/13

2. इत्थं हितं वचस्तं च वायु पुत्रस्य: शठः ।
   प्रतिजग्राह नैवासौ म्रियमाण इवौषधम् ॥ आ॰ रा॰ 1/9/167

जंबीर, पूग बीज तथा कदम्ब आदि वृक्षों से उपवन के कल्माषमय होने की कल्पना सर्वथा स्तुत्य है।[1]

पृथ्वी पर टपकते हुए महुए के फूलों को देखकर कवि कृत उत्प्रेक्षा अत्यधिक मनोरम है। मानो श्री शिव जी पृथ्वी का स्पर्श कर अपने ही हाथों से अपने पर मोतियों की वर्षा कर रहे हैं।[2]

सर्ज, अर्जुन, धव तथा बीजपूर में वृक्षों द्वारा उपवन को पंखा झलने की कल्पना तथा नारियल व खजूर के वृक्षों में चमरधारी सेवकों की कल्पना से ग्रन्थकार की उर्वर तथा चित्ताकर्षक कल्पनाशक्ति का परिचय प्राप्त हो जाता है।[3]

मालती के समीप आये हुए भ्रमर में कवि-कल्पना ने गोपांगनाओं के साथ विहार करने वाले श्री कृष्ण के दर्शन किये हैं। प्रस्तुत उत्प्रेक्षा दर्शनीय है।[4]

वृक्षों से गिरे हुए पुष्प किसी दानी की धनराशि के समान प्रतीत होते थे। मयूरध्वनि से वह उपवन आगन्तुकों का स्वागत करता हुआ सा अनुभव हो रहा था। यह प्राकृतिक वर्णन कवि की ऐसी मनोरम कल्पनाओं के योग से मनोमुग्धकारी हो गया है।[5]

---

1. कर्बुरम्-पूगनीपैश्च पुन्नागैर्विराजितम् । आ. रा. 5/1/62
   तालिंगुकेकुदीभिश्च कदम्बैः कल्माषमयम् ।।
2. मधूकपुष्पैः भुवि पतद्भिः परम् ।
   स्वहस्तमुक्तमुक्ताभिर्वर्षन्तमिवात्मनम् ।। आ. रा. 5/1/63
3. सर्जार्जुनाजिनैर्बीजपूरैर्वीज्यमानवत् ।
   नारिकेलैः सखर्जूरैश्चामरधरैरिवानुचरैः ।। आ. रा. 5/1/64
4. भ्रमरमालतीमिलितीभिरलंकृतम् ।
   अभिप्रायागतं कृष्णं गोपी रंगमनोहरः ।। आ. रा. 5/1/71-72
5. उत्फुल्लमिवार्थं पतत्पुष्पैरितस्ततः ।
   केकिकेकारवैर्दूरात्कुर्वन्तं स्वागतं किम् ।। आ. रा. 5/1/74

सरोवरवासी अनेक विहगों से वह सरोवर ऐसे सज्जन मनुष्य की भाँति प्रतीत होता था जो अपना सर्वस्व लुटाकर शरणागतों की रक्षा में तत्पर हो।[1]

अपने शीतल जल से वह सरोवर उसी तरह वन्य जीवों की पिपासा शान्त कर रहा था जैसे चन्द्रमा दिन भर के परिश्रान्त जनों की समस्त पीड़ा रात्रि में हर लेता है।[2] ऐसी कमनीय कल्पना किसी उर्वर-कल्पनाशक्ति-सम्पन्न साहित्यकार के ही हृदय की निधि हो सकती है।

राम राज्य की महत्ता के वर्णन में ग्रन्थकार ने व्यतिरेक अलंकार के रूप में जिस कल्पनाशक्ति का दिग्दर्शन कराया है वह सर्वथा श्लाघ्य है।

श्री राम के रथाश्वों की गति की तुलना में कवि ने पवन देवता को भी मन्थर ठहराया है। वे अश्व वायु को भी शीघ्र चलना सिखाते थे।[3]

श्री राम के पर्वतोपम हाथियों की अनवरतदानिता (सतत मद प्रवाह) को देखकर संसार के कृपण व्यक्ति भी दानी हो गये। श्लेष के सौन्दर्य से सम्पन्न व्यतिरेक की ऐसी मनोरम कल्पना अन्यत्र दुर्लभ है।[4]

अयोध्या-राज्य की तुलना में स्वर्ग का उपमान भी कवि ने हेय माना है।

---

1. नानाविहङ्गैः सर्वार्तिं शमयन्तं दिवानिशम् ।
उदारमिव सर्वस्वैरापन्नार्तिहरं महत् ।। आ.र. 7/12/89

2. तर्पयन्तं हिमाम्भोभिः श्वापदान्स्यापितृनिव।
हरन्तं सर्वसंताप हिमांशुमिव वाहिन्कम् ।। आ.र. 7/12/90

3. अशिक्षयत्स्वगतिमतीरिह यस्य तुरङ्गमान् ।
आशुगमाशुगाभिरयं धावमाने पथि स्थिताः ।।
आ.र. 7/15/35

4. अनवाप्यस्य तु गजानगणकम्बु वर्मणः ।
अनवरतदानिनो दृष्ट्वा कृपणाश्चापि दानिनः ।।
आ.र. 7/15/36

स्वर्ग लोक में केवल एक ही कलावान था, किन्तु राम के राज्य में सभी व्यक्ति कला के भण्डार थे।[1]

स्वर्ग में केवल एक कामदेव वह भी अनंग अर्थात बिना शरीर का था, किन्तु अयोध्या के समस्त मनुष्य सांगोपांग कामदेव (सुन्दर) थे ।[2]

राम-राज्य में खोजने पर भी कोई गोत्रभित् अर्थात् जाति से बहिष्कृत मनुष्य नहीं मिलता था, किन्तु स्वर्ग में देवताओं के राजा स्वयं गोत्रभित् (इन्द्र) हैं। यमक से युक्त व्यतिरेक का प्रस्तुत प्रयोग प्रशंसनीय है।[3]

राम राज्य में कोई क्षयी (क्षय रोगी) नहीं सुना गया, किन्तु स्वर्ग में चन्द्रमा पक्ष-पक्ष में क्षय को प्राप्त होता रहता है।[4]

राम राज्य की विशेषताओं के वर्णन में परिसंख्या अलंकार से युक्त अनेक मधुरकल्पनाओं के अनूठे चित्र आनन्दरामायण कार ने चित्रित किये हैं।

अयोध्या में कुटिलता केवल नदियों में थी, प्रजा में नहीं। कृष्ण पक्ष की रात्रि में ही तम (अंधकार) था, मनुष्यों में तम (तमोगुण) नहीं दीखता था ।[5]

---

1. कलावानेक एवास्ति त्रिदिवे हि दिवौकसाम् ।
   तस्य क्षोणीभुजःक्षोण्यां जनाः सर्वे कलाधराः ॥ आ.रा.7/15/39

2. एक एव हि कामो स्ति स्वर्गे सो प्यंग वर्जितः ।
   सांगोपांगाश्च सर्वेषां सर्वे कामा हि तद्भुवि ॥ आ.रा.7/15/40

3. तस्योर्वीतले दृष्टो न श्रुतो गोत्रभित्क्वचित्।
   स्वर्गे स्वर्गसदामीशो गोत्रभित्परिकीर्तितः ॥ आ.रा. 7/15/41

4. क्षयी च तस्य विषये को प्याकर्णि न केनचित्।
   त्रिविष्टपे क्षपानाथः पक्षे पक्षे क्षयिष्यते ॥ आ.रा. 7/15/42

5. नद्यः कुटिलगामिन्यो न यत्र विषये प्रजाः ।
   तमोयुक्ताः क्षपा यत्र बहुलेषु न मानवा : ॥ आ.रा. 7/15/8

दण्ड केवल कुल्हाड़ी, कुदाल तथा पंखों में ही दीखता था। प्रजा पर राजा को दण्ड प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी।[1]

कठोरता स्त्रियों के स्तन में रहती थी, पुरुषों में नहीं। केवल औषधियों में कुष्ठ [कूठ-औषधि विशेष] का योग दीखता था, किसी मनुष्य में कुष्ठ रोग नहीं था।[2]

मतवाले केवल हाथी होते थे, मनुष्य नहीं। युद्ध केवल जल की लहरों में देखा जाता था, समाज में नहीं।[3]

मनुष्यों में विहार होता था, किन्तु किसी की उरस्थली [छाती] विहार अर्थात हार से रहित नहीं देखी गयी।[4]

मार्गण [बाण] केवल धनुष पर रहते थे, प्रजा में कोई मार्गण [भिखारी] नहीं था। केवल भिक्षु ब्रह्मचारी थे।[5]

मनोहर काण्डान्तर्गत श्री हनुमान जी की वन्दना में ग्रन्थकार ने श्लेष से युक्त सुन्दर कल्पना चित्र अंकित किया है। पवन पुत्र हनुमान सीता की शोकाग्नि को लेकर ही लंका को भस्म करने में सक्षम हो सके हैं।

---

1. दण्डः परशुकुद्दालव्यजनराजिषु । आ. रा. 7/15/10
2. कठोर हृदया यत्र सीमन्तिन्यो न मानवाः ।
   औषधिष्वेव यत्रास्ति कुष्ठ योगो न मानवे ॥ आ. रा. 7/15/13
3. द्विपा एव प्रमत्ता वै युद्धं वीच्योर्जलाशये । आ. रा. 7/15/16
4. वनेष्वेव विहारा वै न कस्य विधुरः स्थली ।
   आ. रा. 7/15/17
5. मार्गणाश्चापकेष्वेव भिक्षुका ब्रह्मचारिणः ।
   आ. रा. 7/15/19

सीता की असह्य विरहाग्नि के उत्कृष्ट चित्रण में प्रस्तुत कल्पना पूर्णतः सफल सिद्ध हुई है।[1]

अयोध्या नगरी के उच्च प्रासादों के सम्बन्ध में कवि की उत्प्रेक्षा अनुपमनीय है। अयोध्या ने अपनी शोभा से पाताल लोक को भी नीचा दिखा दिया है। अब केवल अमरावती पुरी को जीतना बाकी है। ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रासादरूपी भुज को लिए हुए यह पुरी उसे भी जीतने की तैयारी कर रही है।[2]

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने अपने ग्रन्थ में अपनी सूक्ष्म तथा उर्वर कल्पना शक्ति द्वारा अनेक भव्य तथा मनोरम चित्रों का विधान किया है।

आनन्द रामायण में शब्द शक्तियाँ :

साहित्यकार सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की मनोरम सृष्टि के लिए जिस भाव सामग्री का प्रयोग करता है उसका आधार उसकी सशक्त शब्दावली है। सभी कवियों ने अपनी कृतियों में लोक रंजन, लोकमंगल एवं लोक के वास्तविक स्वरूप निर्धारण हेतु जो शब्द विधान किया है वह उसमें प्रयुक्त शक्तियों के आधार पर ही लोकमान्य हुआ है। इसी कारण साहित्यकार शब्द शक्ति का पारखी साधक होता है। वह विभिन्न प्रतीकों बिम्बों और अप्रस्तुतों के प्रयोग द्वारा आत्मिक शक्तियों का आह्वान करता है। संस्कृत के मूर्धन्य कवियों- कालिदास, भास, हर्ष तथा माघ आदि ने अपनी कृतियों को सक्षम शब्दों के सफल प्रयोगों द्वारा ही चिरनूतनता प्रदान की है। आनन्द रामायणकार ने भी अपनी कृति में शब्द शक्तियों के सफल प्रयोग किये हैं। काव्य-ग्रन्थ के आदियुगीन होने के कारण इस क्षेत्र में वे परवर्ती कवियों से पीछे अवश्य हैं, किन्तु सर्वथा नगण्य नहीं हैं। आनन्द रामायण में शब्द शक्तियों का समुचित प्रयोग मिलता है।

---

1. उल्लंघ्य सिंधोः सलिलं सलीलं यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
   आदाय तेनैव ददाह लंकां नमामि तं प्रांजलिरांजनेयम् ।।
   आ.रा. 8/1/12

2. अधः कृताधोभुवना जेतुमेकामरावतीम् ।
   प्रासाद भुजभावेन तन्न हेवाहय सहयते।।

ग्रन्थकार ने सामान्यतः शब्द की अभिधा, लक्षणा व व्यंजना तीनों शक्तियों का प्रयोग किया है किन्तु अधिकतर प्रयोग अभिधा शक्ति के ही हैं। कारण कि कवि ने जो भी वर्णन किया है उसे वह सीधे उसी रूप में ही वर्णन करते हुए आगे बढ़ गया है। अतः वाच्यार्थ शब्दावली अपनी मौलिकता के साथ काव्य के अर्थ गौरव को प्रतिष्ठित करने में सफल हुई है।

उदाहरणार्थ अयोध्या में सरयू स्नान के लिए आये हुए करोड़ों व्यक्तियों का सीधा सा चित्र कितना सहज है।[1]

आनन्द रामायण में लाक्षणिक प्रयोग :

जब किसी भाव-चित्र को प्रस्तुत करने में वाचक शब्दावली असमर्थ अनुभव होती है तब कवि विभिन्न प्रतीकों, बिम्बों तथा अप्रस्तुतों की योजना करता है। ऐसा करने में उसे शब्द की लक्षणा शक्ति से पुष्ट लक्षक शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। आनन्द रामायण में अनेक स्थलों पर लक्षक शब्दों का भी समुचित प्रयोग दर्शित होता है।

नाक तथा कान से हीन तथा अनेक तरह से विलाप करती हुई अपनी बहिन शूर्पणखा को सान्त्वना प्रदान करते हुए रावण के वक्तव्य में लक्षणा शक्ति की सुन्दर योजना योजित की गई है। लंकापति रावण ने बहिन शूर्पणखा को यह आश्वासन देकर शान्त किया कि वह राम-लक्ष्मण को मार कर उनके रक्त से उसके शोकाग्नि का मार्जन करेगा।[2]

विलास काण्डान्तर्गत सीतापृष्ट आध्यात्मिक प्रश्न के उत्तर में श्रीराम द्वारा देह रामायण वर्णन प्रसंग का तो अनेकानेक लाक्षणिक प्रयोगों से भरा पड़ा है।

---

1. पश्य पश्य महाभाग महायोध्यापुरीं शुभाम् ।
सरय्वां स्नातुं समायाताश्चपंचकोटिशो जनाः ।।
आ.रा. 8/11/22।

2. तौ रामलक्ष्मणौ हत्वा तव शोकाग्निमार्जनम् ।
करोम्यहं लोहितेन तयोः खेदं [illegible] मा ।।
आ.रा. 1/7/77-78

बुद्धि के मलाच्छादित होने पर जीव को इस संसार रूपी घोर जंगल में भटकना पड़ता है।[1]

संसार रूपी भयावह कानन में आत्मा ही एक ऐसी पर्णकुटी है जहाँ शांति मिलना संभव होता है।[2]

आत्मा का सच्चिदानंद रूपी महासागर में डूब जाना ही कल्याणदायिनी मुक्ति है।[3]

देहरामायण दर्शन में बुद्धि को माता कौशल्या बताया गया है। शुद्ध और सतोगुणमय अंतःकरण ही साक्षात् श्री दशरथ जी हैं।[4]

राम लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्न चारों भाई आत्मा की चार अवस्थायें हैं। उनमें तुरीयावस्था स्वरूप श्रीराम, जाग्रदावस्था स्वरूप श्री लक्ष्मण, स्वप्नावस्था रूप श्री भरत था सुषुप्ति अवस्था स्वरूप श्री शत्रुघ्नजी।[5]

---

1. ततः कुबुद्धिहेतोर्हि भवारण्ये सर्वं चिरम् ॥

आ. रा. 4/3/12

2. आत्मनः पर्णकुटिका विश्रांतिस्थानमीरिता ।

आ. रा. 4/3/13

3. महासागरे प्रवेशनं सच्चिदानंद संज्ञके ।
प्रवेशनं सागरे हि मुक्तिर्ज्ञेया स्मृतः शुभा ॥

आ. रा. 4/3/20-21

4. बुद्धिस्तु जननी चैव कौशल्या सा न कथ्यते ।
शुद्धसत्त्वांतःकरणं पिता तस्यात्मनः स्मृतः ॥

आ. रा. 4/3/39

5. तुर्यावस्था स्थितो परः स त्वं दशरथात्मजः ।
ततो जाग्रदवस्थाश्च लक्ष्मणः सो न कथ्यते ॥
स्वप्नावस्थास्तृतीयश्च भरतो हि निगद्यते।
अपरः सुषुप्त्यवस्थास्तु ज्ञेयः शत्रुघ्न एव सः ॥

आ. रा. 4/3/41-42

मनोवेग का दूर होना ही विश्वामित्र के यज्ञ में श्री राम जी की यात्रा है तथा मन की दुर्वृत्तियों का घात ही ताड़का वध है।[1]

मनोवेग का भंजन ही जनकपुर में धनुष टूटना है तथा सीता का पाणिग्रहण होना ही माया का योग है। परशुराम का दर्पभंजन ही पूर्व संस्कार का निग्रह है। कुबुद्धिरूपिणी कैकेयी के वरदान से श्रीराम द्वारा दण्डकारण्य में भ्रमण ही भवारण्य में भटकना है। दम्भ का रोक लेना ही विराध - वध है।[2]

काम का निग्रह करना ही खर राक्षस का वध है और क्रोध का निग्रह दूषण का वध है। लोभ का निग्रह त्रिशिरा का वध है। आशा का विच्छेद ही शूर्पणखा का विरूप करना है। मारीच मृग का वध करना ही मोह का निग्रह है, दण्डक वन में श्रीराम द्वारा सत्वगुणमयी सीता को अपने वामांग रहने के लिए आदेशित करना ही शुद्ध माया का आश्रय है। रजोगुण रूप से सीता का अग्नि प्रवेश करना ही तामसी माया का वियोग है।[3]

सुग्रीव की मित्रता ही विवेक का आश्रय है। श्री हनुमान जी का मिलना भक्ति का उद्रेक है। बालि-वध ही अज्ञान का वध है तथा विभीषण से मैत्री उत्साह का संग है। समुद्र में सेतुबन्धन ही अज्ञान से संतरण का उपाय है।[4]

---

1. मनोद्वेगो बहिर्यात्रा विश्वामित्राध्वरे मम: ।
   मनोदुर्वृत्तिघातश्च ताटिकाया वधो म तः ।।
   आ.रा. 4/3/44

2. मनोवेगस्य यो भंगः स धनुर्भंग उच्यते ।
   × × ×
   दंभस्य निग्रहस्तत्र विराधस्यात्र निग्रहः ।।
   आ.रा. 4/3/45 से 47 तक

3. कामस्य निग्रहः प्रोक्तः खरस्यात्र विनिग्रहः।
   × × ×
   तामस्याश्चैव मायाया वियोगश्च तदा स्मृता।।
   आ.रा. 4/3/49 से 53 तक

4. विवेकस्याश्रयस्तत्र सुग्रीवस्याश्रयो मतः ।
   × × ×
   अज्ञान तरणोपायः सेतुबंधो महोदधौ ।।
   आ.रा.4/3/55 से 57 तक

कुंभकर्ण का वध मद का निग्रह, मेघनाद-वध मद का निग्रह तथा रावण का वध ही अहंकार का नाश है।[1]

श्री राम द्वारा अयोध्या वापस आना ही हृदया काश का गमन है तथा उनका राज्य भोग एक मात्र आनंद का अनुभव है। वाल्मीकि आश्रम में सीता का त्याग ही माया का त्याग है तथा उनका पुनर्ग्रहण ही सात्विकी माया का ग्रहण है। समस्त अयोध्या के साथ श्री राम का वैकुण्ठा-रोहण ही हृदयाकाश का महाकाश में मिला देना है। मानव स्वरूप त्यागकर श्री राम द्वारा विष्णु स्वरूप धारण करना ही सच्चिदानंद रूपक महासागर में गोते लगाना अर्थात आत्मा की सायुज्य मुक्ति है।[2]

इस प्रकार यह समग्र प्रसंग कवि के उत्कृष्ट लाक्षणिक प्रयोग का सुन्दर उदाहरण है।

जन्य काण्ड में राजकुमार लव तथा अयोध्या के राजदूतों के बीच युद्ध वर्णन में कवि द्वारा प्रयुक्त लक्षणा शक्ति अत्यधिक प्रभावोत्पादक है। राजकुमार लव ने दूतों को तिरस्कृत करते हुए कहा कि जिस दिन तुम्हारे प्रभु राम ने सीता को वन में भेज दिया, उसी दिन से उनकी जय श्री भी विदा हो गयी।[3] राम दूतों की निर्वीरता प्रतिपादित करने में यह लक्षणा कृतकार्य सिद्ध हुई है।

लव के कठोर वचनों का दूतों के हृदयों पर कैसा प्रभाव पड़ा, इस तथ्य की अभिव्यक्ति कवि ने लक्षणा के माध्यम से ही की है। लव के यह वाक्य बाणों की तरह थे जिनसे सैनिकों के हृदय विदीर्ण हो गये।[4]

---

1. मदस्य निग्रहस्तस्य कुंभ कर्णवधस्तथा ।

   x x x

   तथाहंकारनाशश्च रावणस्य वधस्तथा।। आ. रा. 4/3/59-60

2. हृदयाकाशगमनमयोध्यागमनं पुनः ।

   x x x

   मुक्तिं त्वया सैव मुक्तिः सायुज्यात्मन ईरिता।।

   आ. रा. 4/3/61 से 66

3. यदा सीता वने त्यक्ता जयश्रीश्च गतातदा। आ. रा. 5/6/48

4. इति ते लव वाग्बाणैर्भिन्नमर्मस्थलास्तदा । आ. रा. 5/6/50

युद्ध वर्णन में भी ग्रन्थकार ने लक्षणा शक्ति का सटीक प्रयोग प्रस्तुत किया है। कुश ने युद्ध क्षेत्र में अप्रतिम साहस का परिचय देतेहुए गर्व पूर्वक श्री राम से कहा कि अब यदि तुममें सामर्थ्य हो तो महर्षि वाल्मीकि द्वारा प्रदत्त शस्त्र विद्या का चमत्कार देखो। यदि यह न कर सको तो हाथ बाँध-कर वाल्मीकि तथा सीता की शरण में चलकर आत्म रक्षा की भीख माँगो।[1]

विवाहकाण्डान्तर्गत राजा कम्बुकण्ठ तथा शत्रुघ्न तनय यूपकेतु के बीच युद्ध वर्णन में लक्षणा शक्ति का सुन्दर प्रयोग दर्शित होता है। यूपकेतु द्वारा राजा कम्बुकण्ठ के अनेक सैनिकों का वध कर दिया। इस प्रबल पराक्रम को देखकर राजा कम्बुकण्ठ अपनी शेष सेना के साथ सामने आया। उसने यूपकेतु का पुरुषार्थ ललकारते हुए कहा कि अरे मूर्ख! इन मच्छरों को मारकर क्या तू अपने पौरुष को पौरुष मानता है।[2]

मनोहर काण्ड के द्वितीय सर्ग में अयोध्यावासी जनों के आत्मज्ञान का चित्रण कवि ने लक्षणा के माध्यम से ही किया है। अयोध्या के सभी निवासी इस तथ्य से अवगत हैं कि मोह रात्रि है तथा भ्रान्ति निद्रा है।[3]

ग्रन्थकार ने अयोध्या के विशाल परकोटे को मानव शरीर का रूपक देकर लक्षणा शक्ति का सफल प्रयोग किया है। अयोध्या ही शरीर है। इसमें मुख, कान आदि नौ द्वार हैं और दसवाँ द्वार मस्तक में है जिसे ब्रह्मरंध्र कहते हैं। दांत इत्यादि इन द्वारों के रक्षक हैं। आँखों की पलकें तथा ओष्ठ आदि इनके कपाट हैं, प्राण ही राजदूत हैं जो सदैव इस पुरी में चक्कर लगाते रहते है। आत्मा राजा है और बोध व इन्द्रियाँ इस नगर के

---

1. वाल्मीकिशिक्षितां विद्यां प्रभावयं विलोकय ।
   नोचेत्त्वं याहि शरणं वाल्मीकिं जानकीमपि ।। अ.रा. 5/7/123

2. विजिताल्पबलान् हत्वा पौरुषं मन्यसे शठ ।
   अ.रा. 6/8/76

3. मोह एव निशा ज्ञेया निद्रा भ्रान्तिस्तु कथ्यते ।
   अ.रा. 8/2/36

निवासी हैं। काम महान चोर है तथा वात, पित्त, कफ आदि उसके सेवक जिसे देश में नागरिक की तरह रहते हैं।[1]

इस काम रूपी महान चोर से रक्षा के लिए ज्ञान खड्ग है तथा वैराग्य उसकी तीक्ष्ण धार है। सदाचार कवच है तथा युद्ध में दृढ़ भक्ति का होना धैर्य है।[2]

श्री राम द्वारा अम्बा कैकेयी व कौशल्या को दिव्य ज्ञान का बोध कराने का चित्रण ग्रन्थकार ने लक्षणा के सहयोग से ही प्रस्तुत किया है। अम्बा कैकेयी के अन्तःकरण में दिव्य ज्ञान का उदय भेड़ों के मुख से "मैं-मैं" की ध्वनि सुनकर ही हुआ। इस ध्वनि का अर्थ अम्बा कैकेयी ने इस प्रकार समझा कि संसारी जीव "मैं-मेरा" के बुद्धि भ्रम में पड़कर अपना सर्वस्व नाशकर डालते हैं।[3]

इसी प्रकार माता कौशल्या को आत्म ज्ञान की प्राप्ति गोशाला में बछड़ों द्वारा की जा रही "अंहंमा-अंहंमा" ध्वनि को सुनकर हुई। इस ध्वनि से अम्बा कौशल्या ने यह अर्थ निकाला कि संसारी जीव को "मैं-हूं" -ऐसा अहंकार नहीं करना चाहिए। "अहं" शब्द देह से सम्बन्ध रखता है आत्मा से नहीं।[4]

इस प्रकार आनन्द रामायणकार की कमनीय कल्पना शक्ति ने लक्षणा शक्ति से सम्पन्न अनेकानेक सुरम्य भाव चित्र प्रस्तुत किये हैं जो प्रत्येक भावुक हृदय की अनूठी निधि कहे जा सकते हैं।

---

1. अपोष्येव त्वयोपदेहस्तान विद्धामि ते नव ।
   x x x आ.रा. 8/2/37 से 40
   कामस्य सेवका ह्येवा नागरा इव संस्थिताः ॥
2. ज्ञानमेव महाखड्गो वैराग्यं तीक्ष्णता स्वयोः ।
   सच्छीलं कवचं ज्ञेय धैर्य भक्तिर्दृढा त्वयि ॥ आ.रा. 8/2/42 से 43
3. मे मे प्रकथते नित्यं पशु कुम्भुरादिषु ।
   x x x
   अतो ऽहं ममता मे मे प्रधानीत्यतः परम् । आ.रा.8/2/84 से 85
4. अहं मा इत्याति वाक्यानि तेषां श्रुत्वा स्फुटानि ।
   x x x
   अहं देही स्वयं माता येति बुद्धिर्मता मम ॥ आ.रा.8/2/137 से 140 तक

आनन्द रामायण में व्यंग्य प्रयोग :

व्यंग्य चित्रों के आधार पर साहित्यकार तीखी चुटकियाँ लेने में समर्थ होता है। समाज की विषमताओं का, कुत्सित विसंगतियों का भाव चित्रण व्यंग्य शब्दावली के माध्यम से ही संभव होता है। आनन्द रामायण में भी वर्ण्य विषय की स्थिति के अनुकूल सुन्दर व्यंग्य चित्रों के दर्शन प्राप्त होते हैं।

लंका में श्री सीता जी द्वारा रावण का प्रणय-निवेदन स्वीकार न करने पर वह क्रोधित होकर उन्हें कठोर वचन कहता है किन्तु श्री सीता जी व्यंजना द्वारा उसकी वाक्यावली का संशोधन कर उसे लज्जित कर देती हैं। रावण ने कहा कि इस लंका में आकर देवताओं के भी मुख मलीन हो जायेंगे। लक्ष्मण सहित वह राम भी युद्ध में नहीं खड़ा रह सकेगा। यहाँ आने पर वह राम भी अनुज के सहित बड़ी भारी विपत्ति में पड़ जायेगा। उस जटाधारी राम की जीत नहीं होगी और मुझे महान आनन्द प्राप्त होगा।[1]

श्री जानकी जी ने व्यंजना के सहयोग से उसके वाक्यों का संशोधन करते हुए कहा कि तुम अपने द्वारा कथित श्लोक के चारों चरणों में छठें अक्षर से आगे वाले (अर्थात् सातवें) चारों अक्षरों का लोप करके उसे पुनः पढ़ो। बस यही सार तुम्हारा होगा।[2]

रावण द्वारा कथित पूर्व श्लोक के रेखांकित चारों अक्षरों का लोप कर देने से उसका अर्थ विपरीत हो जाता है। अर्थात लंका में दशवदन रावण पर शीघ्र ही विपत्ति आयेगी। लक्ष्मण सहित राम युद्ध में डटेंगे। सानुज राम उच्च पद को प्राप्त होंगे। जटाधारी राम की विजय होगी और मुझे बड़ा हर्ष होगा। व्यंजना शक्ति का ऐसा अनूठा चमत्कार अवश्य ही श्लाघ्य है।

---

1. मायिनी लंकायां त्रिदशवदनश्री निरयिरात्,
   स रामो पि स्थाता न युधि पुरतो लक्ष्मण सखः।
   तथा यास्यत्युच्चैर्विपदमनुजेना स वलितो, आ.रा. 1/9/81
   जयः श्री रामेस्यान्न मम बहुतोषो स तु भवेद् ॥
2. षष्ठाक्षरपराण्येव चतुर्षु चरणेष्वपि ।

जन्म काण्डान्तर्गत राजकुमार लव द्वारा श्री राम जी के दूतों के समक्ष ही राम द्वारा सीता परित्याग की भर्त्सना व्यंजना शक्ति के योग से बहुत ही तीखी तथा चुटीली बन गयी है। लव ने दूतों से कहा कि सती-साध्वी सीता के परित्याग द्वारा ही तुम्हारे स्वामी के महान पौरुष का परिचय प्राप्त हो जाता है।[1]

राजकुमार कुश तथा श्री राम के बीच युद्ध प्रसंग में भी कुश द्वारा कटूक्ति का प्रहार व्यंजना के योग से अत्यधिक तीक्ष्ण सिद्ध हुआ है। कुश ने कहा कि तुमने संसार में यश प्राप्ति की इच्छा से सती सीता पर अपना पुरुषार्थ दिखाया है।[2]

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने अनेक स्थलों पर वक्रोक्ति प्रधान चुटीले चित्र अंकित किए हैं। उनके ये व्यंजक प्रयोग भावोत्कर्ष करने में पूर्ण-रूपेण सफल सिद्ध हुए हैं।

साम्य तथा वैषम्य:

कवि शब्द और अर्थ का शिल्पी होता है। शब्द और अर्थ की रमणीक योजना द्वारा भाव को सबल बनाते हुए वह अपनी कृति के द्वारा लोक मानस में स्थायी स्थान प्राप्त करने का प्रयास करता है। मानसकार तथा आनन्द रामायणकार दोनों का कार्य इस क्षेत्र में स्तुत्य है। दोनों काव्यों में अलंकार विधान सम्बंधी निम्नलिखित तथ्य निष्कर्षतः प्राप्त होते हैं।

1. शब्द गत सौन्दर्य दोनों कवियों ने स्वाभाविक ढंग से संजोया है। इस संदर्भ में उन्होंने सानुप्रासिकता तथा नाद सौन्दर्य का विशेष समावेश किया है। यमक, श्लेष, चित्र, पुनरुक्ति आदि शब्दगत अलंकार बहुत ही कम प्राप्त होते हैं। इनके प्रयोग में स्वाभाविकता की पूर्ण पुष्टि है।

---

1. सीतात्यागे तु युष्माकं स्वामिनः पौरुषं न माम् ।

आ.रा. 5/6/50

2. वनान् दर्शयितुं स्वीयं पौरुषं जानकी वने ।

2. दोनों कवियों ने प्रसंगानुकूल प्रसाद, माधुर्य तथा ओज गुणमयी शब्दावली का प्रयोग किया है। इससे भाषा अतीव स्वाभाविक रूप पा गयी है। शब्द शक्तियों के यथोचित प्रयोग द्वारा भी भाषा को प्रभावी बनाया गया है। दोनों कवियों ने यथोचित ढंग से वाचक, लक्षक तथा व्यंजक शब्दों के प्रयोग द्वारा भाषा को रोचक एवं भाव को प्रभावी बनाने में सफलता प्राप्त की है।

3. काव्य में अर्थगत रमणीयता के प्रतिपादन में भी दोनों कवियों को सफलता मिली है। अनुभूति, रूप, गुण, क्रिया तथा कल्पना के उत्कर्ष में सहायक विविध अर्थगत अलंकारों के सफल प्रयोग दोनों ही काव्य ग्रन्थों में मिलते हैं, किन्तु अनुभूति, गुण व क्रिया के उत्कर्ष का जितना रमणीय प्रतिपादन मानसकार ने किया है वह आनन्द रामायणकार नहीं कर सके हैं। हाँ, रूपोत्कर्ष व कल्पना मूलक उत्कर्ष हेतु दोनों कवियों का प्रयास समान रूप से प्रशंसनीय है।

4. अर्थगत अलंकारों के प्रयोग में तुलसी की विशेषता अपने मौलिक उपमानों की प्रस्तुति से अधिक बढ़ जाती है। सभी साम्य मूलक अलंकारों में उन्होंने रूढ़िगत उपमानों के अतिरिक्त अनेकानेक मौलिक उपमानों की रमणीय योजना की है। अतः मानसकार का काव्य इस क्षेत्र में अधिक मौलिक है।

5. दोनों ही कवियों ने अपने पूर्ववर्ती साहित्य का अंश ग्रहण किया है, किन्तु तुलसी के समय तक विशाल साहित्य सृजन हो चुकने के कारण यह स्वाभाविक ही था कि अपनी काव्य रचना में उन्होंने शास्त्रीय काव्य तत्वों का सन्निवेश आनन्द रामायणकार की अपेक्षा कहीं अधिक किया। यही कारण है कि आनन्द रामायण की अपेक्षा मानस में अलंकार बाहुल्य अधिक है।

निष्कर्षतः दोनों ही कवि इस क्षेत्र में सिद्ध हस्त हैं। यद्यपि अलंकार तथा चमत्कार लाने का प्रयत्न दोनों कवियों ने नहीं किया तथापि भावों

गंभीरता तथा विविधता के कारण उनकी शैली में ये काव्य तत्त्व स्वयमेव आ गये हैं। दोनों कवियों के शब्दगत और अर्थगत सौन्दर्य सम्पन्न प्रयोग काव्य की रसात्मक अनुभूति को शक्ति मय बनाने में पूर्णरूपेण सफल है।

-x-x-x-x-x-x- समाप्त -x-x-x-x-x-x-

xxxxxxxx

षष्ठ - अध्याय

(भक्ति - विवेचन)

षष्ठ अध्याय

-:-:-:-:-:-

भक्ति विवेचन

-:-:-:-:-:-:-:-:-

(साधना भक्ति, साध्य भक्ति, नवधा भक्ति
का स्वरूप)

भक्ति शब्द "भज् सेवायाम्" धातु से निष्पन्न हुआ है।[1] भक्ति-प्रतिपादक शास्त्रों और पुराणों में भक्ति की अनेक परिभाषाओं का उल्लेख किया गया है। श्रीमद्भागवत पुराण में कहा गया है कि भगवान के प्रति आसक्त पुरुषों की उनके प्रति प्रवृत्ति का नाम भक्ति है।[2]

देवी भागवत के अनुसार पूज्य में अनुराग होना भक्ति है।[3]

शांडिल्य सत्य सुधा में कहा गया है कि ईश्वर के प्रति सर्वाधिक स्नेह का नाम भक्ति है।[4]

भक्ति की दृढ़ता एवं निर्मलता का ज्ञान लौकिक प्रीति की भांति भगवत्कथा श्रवण, नाम-कीर्तन आदि में रोमांच और अश्रुपात आदि चिन्हों से होता है।[5]

नारद के मत से अपने सम्पूर्ण कर्मों को भगवान के प्रति अर्पित कर देना और भगवान का थोड़ा सा भी विस्मरण होने पर परम व्याकुल होना ही भक्ति है। यह भक्ति परम प्रेम रूपा और अमृत स्वरूपा है।[6]

---

2. देवानां गुणलिंगानामानुश्रविक कर्मणाम्।
सत्व एवैक मनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ।।
अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ।।

(1) भज्यते सेव्यते इति भक्तिः

3. पूज्येषु अनुरागो भक्तिः । भागवत 3/25/32-33
— देवी भागवत 7/31

4-3. सर्वस्मादधिकः स्नेहो भक्तिरित्युच्यते बुधैः । ~~देवी भागवतः 7/31~~

5. तत्परिशुद्धिश्च गम्या लोकवल्लिंगेभ्यः । शांडिल्य सत्यसुधा

6. (शा. भ. सू. 43 (गोस्वामी तुलसीदास व भक्ति)
लेखक डॉ० शिवकुमार दयालु में उद्धृत पृ० - 120)

6. सा त्वस्मिन परम प्रेम रूपा ।

इस प्रेमा भक्ति को प्राप्त कर लेने पर मनुष्य न तो किसी वस्तु की आकांक्षा करता है, न शोक करता है और न द्वेष ही करता है। वह किसी वस्तु में न तो आसक्त ही होता है और न विषय भोगों की प्राप्ति में उसे उत्साह ही होता है। ब्रज-गोपियों में यही प्रेम रूपा भक्ति थी।[1]

भक्ति मीमांसा नामक ग्रन्थ में ईश्वर के प्रति मन की उत्कट-वृत्ति को भक्ति कहा गया है।[2]

रामानुजाचार्य ने स्नेह पूर्वक सतत् ध्यान को भक्ति माना है।[3]

शंकराचार्य के मत से अपने स्वरूप का अनुसंधान करना भक्ति है।[4]

आचार्य राम चंद्र शुक्ल ने भक्ति का विवेचन करते हुए लिखा है कि श्रद्धा तथा प्रेम के योग का नाम भक्ति है। जब पूज्य भाव की वृद्धि के साथ श्रद्धाभाजन के सामीप्य लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो, तो हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिये।[5]

स्वामी विवेकानंद के अनुसार निष्कपट होकर ईश्वर की खोज करना भक्ति है।[6]

इस प्रकार हम देखते हैं कि शांडिल्य ने ईश्वर के प्रति परमानुरक्ति को भक्ति कहा है और आचार्य शुक्ल ने श्रद्धा युक्त प्रेम को भक्ति माना है। जब हमारी अनुरक्ति का आलम्बन ईश्वर होगा, तब वह अपने आप हमारी श्रद्धा का भी आलम्बन होगा। श्रद्धा के लिए यह आवश्यक है कि श्रद्धेय में लोकोत्तर गुण हों। ईश्वर में सभी सात्विक गुण निरवधि रूप से रहते हैं। इस प्रकार ईश्वर की परम श्रद्धेयता सिद्ध हो जाती है।

---

1. यथा ब्रज गोपिकानाम्। ना.भ.सू. - 21
2. भक्तिर्मनस उत्कट विशेषः। भक्ति मीमांसा 1/1/2
3. स्नेह पूर्वमनुध्यानं भक्तिरित्युच्यते बुधैः। गीता 7/1 पर रामानुज भाष्य
4. चिन्तामणि- आचार्य रामचंद्र शुक्ल[प्रथम भाग] [पृष्ठ - 32]
5. स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते। विवेक चूड़ामणि 32
6. भक्ति- स्वामी विवेकानंद

परम श्रेय ईश्वर के प्रति जब हमारे हृदय में परमानुरक्ति उत्पन्न हो जाती है, तब उसे भक्ति की अभिधा प्राप्त होती है।

श्री रूप गोस्वामी के मत से भक्ति तीन प्रकार की है-[1]

1. साधन भक्ति
2. भाव भक्ति
3. प्रेमा भक्ति

1. साधन भक्ति :

इष्ट देव के प्रति उपाय-साध्य भाव को साधन भक्ति कहते हैं।[2]

साधन भक्ति के दो उपभेद हैं।[3]

(क) वैधी
(ख) रागानुगा

जहाँ साधक की भक्ति की ओर शास्त्रों से ही प्रवृत्ति होती है, प्रेमाकर्षण से नहीं उसे वैधी भक्ति कहते हैं। इष्ट के प्रति हृदय में व्यक्त अनुराग को रागानुगा भक्ति कहते हैं। श्री कृष्ण के प्रति व्रजवासियों के हृदय में व्यक्त अनुराग रागानुगा भक्ति के अंतर्गत हैं।

2. भाव भक्ति :

नाना रुचियों से चित्त को कोमल बनाने वाले शुद्ध सत्त्वमय और प्रेमाभिन्न अनुराग को भाव भक्ति कहते हैं।[4]

साधक के हृदय में इस भक्ति का उदय, साधन भक्ति का अनुसरण करने से या भगवान अथवा उनके भक्तों की कृपा होने पर होता है।

---

1. सा भक्तिः साधनं भावः प्रेमा चेति त्रिधोदिता।
   हरि भक्ति रसामृत 1/2/1
2. कृतिसाध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा।
   ह.भ.र. 1/2/1
3. वैधी रागानुगा चेति सा द्विधा साधनाभिधा। ह.भ.र. 1/2/5
4. शुद्ध सत्त्व विशेषात्मा प्रेमसूर्यांशुसाम्यभाक्।

3. प्रेमा भक्ति :

वैधी और रागानुगा भाव भक्ति का अनुष्ठान करने पर या भगवान की महती कृपा होने पर साधक के हृदय में प्रेमा भक्ति का उदय होता है।[1]

अंतःकरण को सम्यक् रीति से कोमल बनाने वाले, भगवान के प्रति अतिशय ममत्व को स्थापित करने वाले और आत्मा में पूर्वोक्त भाव को दृढ़ करने वाले भाव को प्रेमा भक्ति कहते हैं।

भक्ति- संदर्भ में भक्ति के तीन प्रकार बतलाये गये हैं -[2]

1. आरोप सिद्धा
2. संग सिद्धा
3. स्वरूप सिद्धा

1. आरोप सिद्धा भक्ति :

भक्तित्व का अभाव होने पर भी भगवान को अर्पण करने आदि जिन कर्मों से भक्ति भावना की प्राप्ति होती है, उन कर्मों की समष्टि को आरोप सिद्धा भक्ति कहते हैं।

2. संग सिद्धा भक्ति :

भक्ति के परिकर के रूप में जो कार्य किये जाते हैं। उनको संगसिद्धा भक्ति कहते हैं। ज्ञान और कर्म, भक्ति के संगी के रूप में व्यवहृत होते हैं, अतएव इसे संगसिद्धा नाम से अभिहित किया गया है।

---

1. भावोत्थोऽति प्रसादोत्थ श्री हरेरिति सा द्विधा ।

   ह.भ.र. 1/4/3

2. गोस्वामी तुलसीदासः दर्शन तथा भक्ति (पृ०-140)
   लेखक- डॉ० विश्वम्भर दयालु अवस्थी

3. स्वरूप सिद्धा भक्ति :

स्वरूप सिद्धा भक्ति वह है जो स्वतः भक्ति के रूप में प्रसिद्ध है। श्रवण, कीर्तन आदि अंगों वाली नवधा भक्ति स्वरूपा सिद्धा भक्ति है।

नवधा भक्ति :

भागवत में नवधा भक्ति के नव अंगों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि भगवान का गुण-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन यह नवधा भक्ति है।[1]

अध्यात्म रामायण में भागवत से भिन्न एक अन्य प्रकार की नवधा भक्ति का उल्लेख हुआ है। इसमें भक्ति का प्रथम सोपान सत्संग है। भगवान के जन्म और कर्मों की कथा का कीर्तन करना द्वितीय साधन है। भगवान के गुणों की चर्चा करना तृतीय और भगवद् वाक्यों की व्याख्या करना चतुर्थ साधन है। अपने गुरुदेव की निष्कपट भाव से भगवद् बुद्धि से सेवा करना पंचम, भगवान की पूजा में प्रेम होना षष्ठ और उनके मंत्र की की सांगोपासना सप्तम साधनहै। भगवद् भक्तों को भगवान से अधिक मानकर उनकाआदर सत्कार करना और समस्त प्राणियों में भगवान की भावना करना अष्टम तथा तत्व विचार करना नवम् साधन है। जिस किसी में ये साधन होते हैं, वह स्त्री-पुरुष अथवा पशु -पक्षी आदि कोई क्यों न हो, उसमें प्रेम लक्षणा भक्ति का आविर्भाव हो ही जाता है।[1]

---

1. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम् ।
   अर्चन वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम् ।।

   भागवत 7/5/23

2. एवं नव विधा भक्तिः साधनं यस्य कस्यवा ।
   x x x
   भक्तिः संजायते प्रेमलक्षणा शुभ लक्षणे ।।

   अध्यात्म रामा०

   अरण्यकाण्ड 10/27-28

पराभक्ति की प्राप्ति साधन भक्ति से ही होती है। नवधा भक्ति के श्रवण आदि किसी भी साधन का विशेष रूप से अनुष्ठान करने से वही साधन पराभक्ति की प्राप्ति में सहायक बन जाता है।[1]

संसृति के विभिन्न जड़ चेतन तत्वों की सृष्टि, स्थिति और नाशित के व्यवस्थापक के प्रति लोक मानस की समर्पण भावना अतीव स्वाभाविक है। अनादिकाल से अपने सीमित साधनों से उस असीम की साधना अखिल लोक में निरन्तरित है। अंतःकरण की समग्र आस्था उस परम शक्ति के पद कंजों में विलस हो जाने में ही अपने को कृतकार्य मानती है। साधकों के अनन्त भाव सरिताओं की विविध धाराओं के पुण्य चिरकाल से उस महा-सिंधु को समर्पित होते रहे हैं। योगी, यती, सन्यासी, मुनि, दण्डी, सिद्ध विभिन्न रूपों में मनुष्य अपनी स्थिति समाहित करके उसके अन्वेषण में सतत संलग्न हैं। विश्व कोलाहल से आक्रान्त शांति के लिये मनोविकृतियों से ग्रस्त स्वस्थ अन्तस के लिये अभावों से पीड़ित भाव के लिये और संकुचित स्वार्थ वृत्तियों से ग्रस्त, वह उस विराट पुरुष के समक्ष अपनी विनय के स्वर समर्पित करने में लीन हैं। उस परम तत्व के प्रति लोक की इस समर्पण वृत्ति और भावनाओं को ही मनीषियों ने भक्ति की संज्ञा दी है।

दक्षिण के अलवार सन्तों ने भक्ति की जो आवाज उठाई, महाराष्ट्रीय संत नामदेव तथा ज्ञान देव ने जिस भक्ति को प्रतिष्ठित किया और स्वामी रामानंद एक व्यापक संदेश के रूप में जिस भक्तिभाव को उत्तरा-खण्ड में लाये उस भाव ने हिन्दी के पूर्व मध्य काल को अत्यन्त उच्च कोटि के कवि और मनीषी प्रदान किये जिनकी विमल वाणियों ने निराश भारतीय जन-हृदय में भक्ति रस का ऐसा दिव्य स्रोत प्रवाहित किया जिससे यहाँ का लोक मानस पूर्ण स्नात हो उठा। तुलसी के मानस में भक्ति की यही भावना उन्हें उस युग का ही नहीं अपितु

---

1. ईश्वर तुष्टेरेकोऽपि बली। शांडिल्य सूत्र / 63

सर्वकालीन उत्कृष्ट भक्त कवि की कोटि में प्रतिष्ठित कर सकी। मानस में उनकी भक्ति विभिन्न विशेषताओं से सम्पन्न है।

मानस में भक्ति :

मानस में भक्ति का विवेचन निम्न लिखित शीर्षकों में देखा जा सकता है :

मानस में दास्य भक्ति :

गोस्वामी जी तत्कालीन प्रचलित दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं दाम्पत्य भक्ति के विभिन्न रूपों में दास्य भक्ति को ही विशिष्ट मानकर अपने काव्य और जीवन में उतार सके। उनका विचार स्पष्ट था कि भक्ति के जिन रूपों में उनकी आस्था सर्वाधिक रम सकी वह दास्य भक्ति है। भक्ति का यही रूप है जिसमें भक्त पूर्ण समर्पण के साथ अपने भगवान के समक्ष प्रस्तुत होता है। कारण कि दाम्पत्य, सख्य व वात्सल्य में भक्त और भगवान एक ऐसे सम्बन्ध से आबद्ध होते हैं जिसमें समानता की गुंजाइश है। किन्तु सेवक को समानता का अधिकार कहाँ ? वह तो कठोर धर्म का पालक है। मानसकार ने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा है -

" सबते सेवक धर्म कठोरा । "

अतः समर्पण की उदात्त भावना से सम्पन्न तुलसी की वृत्ति अपनी दास्य भक्ति के समर्थन में आत्म तुष्टि एवं परमानंद की पुष्टि का अनुभव ले सकी। मानस के उत्तरकाण्ड में उन्होंने स्पष्ट घोषणा की है कि दास्य भक्ति ही मुक्ति की मूलाधार है।[1]

तुलसी ने मानस में भक्ति के इस रूप को समर्थन देते हुए अपने राम की महत्ता के समक्ष अपनी लघुता का अकिंचन रूप प्रस्तुत करते हुए इस दृढ़ विश्वास की पुष्टि की है कि राम का महत्वपूर्ण व्यक्तित्व सेवक

---

1. सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि ।

के हीन और लघु व्यक्तित्व को अमरत्व देकर ही महिमावान हुआ है। मानसकार ने इस भावना से प्रेरित होकर ही मानस के प्रारंभ में सभी की मनौती की है। अपनी दीनता दीनबंधु के पास तक पहुंचाने के लिये वे सभी छोटे बड़ों से अनुनय विनय करते हैं तथा राम चरण रति की याचना करते हैं।[1]

दास्य भक्ति की दुहाई देते हुए उन्होंने अनेकानेक रामानुरागियों को राम की महान प्रेम तथा करुणा की भावना से गदगद दर्शाया है। केवट उनकी सेवा के द्वारा अपने जन जीवन को सफल मानता है। वह केवल गंगा के उस पार लेकर ही अपनी सेवा को विराम नहीं देता अपितु उन्हें एक सुनिश्चित स्थान तक व्यवस्थित ढंग से लेकर अपने मन को उनके चरणों में ही छोड़कर अपने निवास - स्थान को लौटता है। विभीषण तथा सुग्रीव केवल लंका की उलझनों से अपने इष्ट राम को मुक्त करके ही उनका साथ नहीं छोड़ना चाहते अपितु अपनी सेवा में समर्पित करने हेतु वे अयोध्या तक जाते हैं। अंगद तो उनकी सेवा में इतना सुख अनुभव करता है कि उसे युवराज पद की गरिमा का किंचित मात्र ध्यान नहीं आता। जब अयोध्या से राम अपने सभी साथियों को विदा देते हैं उस समय अंगद की मनःस्थिति का भाव पूर्ण चित्रण हुआ है। वह उनकी सेवा में अपने जीवन की सफलता का अनुभव करता है। किन्तु स्वामी की आज्ञा का पालन भी सेवक के लिये आवश्यक है। इसलिये नत सिर होकर उसे चला जाना पड़ता है।[2]

---

1. संत सरल चित जगत हित, जानि सुभाउ सनेहु ।
   बाल बिनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहु।।

   रा. च. मा. 1/3/(ख)

2. मोरे तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता।।
   तुम्हहिं बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा।।
   बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीना ।।

   रा. च. मा. 7/17/4,5,6

है हीन और लघु व्यक्तित्व को अपनत्व देकर ही महिमावान हुआ है। मानसकार ने इस भावना से प्रेरित होकर ही मानस के प्रारंभ में सभी की मनौती की है। अपनी दीनता दीनबंधु के पास तक पहुंचाने के लिये वे सभी छोटे बड़ों से अनुनय विनय करते हैं तथा राम चरण रति की याचना करते हैं।[1]

दास्य भक्ति की दुहाई देते हुए उन्होंने अनेकानेक रामानुरागियों को राम की महान प्रेम तथा करुणा की भावना से गदगद दर्शाया है। केवट उनकी सेवा के द्वारा अपने जन जीवन को सफल मानता है। वह केवल गंगा के उस पार लेकर ही अपनी सेवा को विराम नहीं देता अपितु उन्हें एक सुनिश्चित स्थान तक व्यवस्थित ढंग से लेकर अपने मन को उनके चरणों में ही छोड़कर अपने निवास - स्थान को लौटता है। विभीषण तथा सुग्रीव केवल लंका की उलझनों से अपने इष्ट राम को मुक्त करके ही उनका साथ नहीं छोड़ना चाहते अपितु अपनी सेवा में समर्पित करने हेतु वे अयोध्या तक जाते हैं। अंगद तो उनकी सेवा में इतना सुख अनुभव करता है कि उसे युवराज पद की गरिमा का किंचित मात्र ध्यान नहीं आता। जब अयोध्या से राम अपने सभी साथियों को विदा देते हैं उस समय अंगद की मनःस्थिति का भाव पूर्ण चित्रण हुआ है। वह उनकी सेवा में अपने जीवन की सफलता का अनुभव करता है। किन्तु स्वामी की आज्ञा का पालन भी सेवक के लिये आवश्यक है। इसलिये नत सिर होकर उसे चला जाना पड़ता है।[2]

---

1. संत सरल चित जगत हित, जानि सुभाउ सनेहु ।
   बाल विनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहु।।

   रा० च० मा० 1/3/(ख)

2. मोरे तुम्ह प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जल जाता।।
   तुम्हहिं विचारि कहहु नर नाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा।।
   बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीना ।।

   रा० च० मा० 7/17/4,5,6

राम की सेवा में सर्वथा तल्लीन हनुमान जी के प्रति तुलसी की अपार निष्ठा स्पष्ट है। वस्तुतः हनुमान सर्वोत्कृष्ट सेवक के रूप में चित्रित हुए हैं। किष्किन्धा काण्ड में राम और लक्ष्मण के प्रथम दर्शन पर ही उनकी सेवा भावना अत्यन्त उच्च स्तर पर दर्शित होती है।[1] राम का काम उनके जीवन का महान उद्देश्य बन जाता है। दोनों भ्राताओं को अपने कंधों पर बैठाकर वे सुग्रीव के पास ले जाते हैं चाहे सीता की खोज हो या संजीवनी लाना- हनुमान राम की सेवा में कभी थकावट अनुभव नहीं करते हैं। "राम काज कीन्हें बिना मोहिं कहां विश्राम" कथन हनुमान जी की सभी गतिविधियों में समाहित अनुभव होता है। समस्त वानर समूह उनकी सेवा में तल्लीन दर्शाये गये हैं। रामानुज लक्ष्मण तो उनके गौरव के मूलाधार हैं। सेवा के लिये समर्पित लक्ष्मण का जीवन मानसकार ने राम के चरणों में सब प्रकार समर्पित दिखाया है। माता पिता, पत्नी सभी के मोह-पाश को तोड़कर लक्ष्मण राम की सेवा के लिये व्यग्र दर्शाये गये हैं।[2] चाहे जनकपुर का स्वयंवर उत्सव हो, चाहे चतुर्दश वर्ष वनवास की अवधि का कठोर श्रम हो लक्ष्मण की अथक सेवायें अपने राम को सर्वथा समर्पित हैं। इसी में लक्ष्मण की आत्म को शांति की अनुभूति मिलती है। भरत का सेवा भाव भी सर्वथा स्तुत्य है। अयोध्या का वह राज्य वैभव जिसके लिये माता कैकेयी ने कुलघातकारिणी का रूप धारण किया भरत के सेवक मन के लिये वह केवल विडम्बना मात्र बन सका। वे नंगे पांव अपने राम को मनाने के लिये चल

---

1. सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसे।।
   अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तन प्रगट प्रीति उर छाई।।

   रा.च.मा. 4/2/4-5

2. मातु चरन सिर नाइ, चले तुरत संकित हृदय।
   बागुर विषम तोराइ, मनहुँ भाग मृग भाग बस।।

   रा.च.मा. 2/75

पड़े। सेवकों ने जब उनसे स्वारूढ़ होने का आग्रह किया तब उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मुझे तो सिर के बल जाकर ही कठोर सेवक धर्म का पालन करना चाहिये।[1]

परिस्थिति वश उन्हें राम का सान्निध्य नहीं मिल सका किन्तु जो भी कार्य उन्होंने किये वे सच्चे राम सेवक के रूप में किये। सिंहासन पर राम की पादुकायें सुशोभित की गयीं और उनकी आज्ञा से ही राज काज के संचालन का कार्य सम्पादित होने लगा। भरत अतीव प्रेम के साथ नित्य प्रति उनकी पूजा करते रहे।[2]

इस प्रकार मानसकार ने दास्य भक्ति में ही आनन्द की अनुभूति और भव मुक्ति का सुयोग संभव अनुभव किया है। वस्तुतः उनकी इस भक्ति पद्धति को भक्ति काल के सख्य, वात्सल्य, तथा दाम्पत्य भक्ति विधियों की अपनी आस्था देने वाले कवियों ने भी स्थान-स्थान पर अपनाया है। सूर मीरा दोनों जहाँ सख्य तथा दाम्पत्य का सुख प्राप्त करते हुए चित्रित हुए हैं वहाँ उन्होंने भी स्थान-स्थान पर अपनी दीनता और हीनता दर्शाते हुए अपने प्रभु की सेवा का सुयोग पाने की चाह की है। तुलसी की यह भक्ति पद्धति अपने आप में विराट है जिसमें भक्त की समस्त भावनाओं को समर्पित होने की गुंजाइश है। मानस में भक्ति का यह रूप सभी युगों में श्रद्धास्पद है।

मानस में अनन्य भक्ति :

राम के रामत्व में एकाग्र होकर राम तत्वों का समर्पण अनन्य भक्ति है। मानसकार का मन लोक मानस के तादात्म्य की अनुभूति से सम्पन्न होकर समत्व में स्वत्व को विसर्जित करके आनन्द की उत्ताल तरंगों में खो जाता है। भाव संसार समग्र रूप से ही राम पद पद्मों

---

1. राम पयादेहिं पायँ सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए।।
   सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा।।
   रा.च.मा. 2/202/6-7

2. नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति।

की रसानुरागिनी प्रकृति बन जाती है। चिदानन्द और चिरानन्द की उपलब्धि इसी रस-कोष में सन्निहित है। उनका इस रस का आकांक्षी उन्मत्त भाव विभोर होकर पुकार उठता है।[1]

मानस में श्री राम के प्रति [illegible]और भक्ति का [illegible] समर्थन सभी भक्तों द्वारा अनन्य भाव से सम्पन्न हुआ है। मानस के प्रथम उद्घोषक भगवान शंकर स्वयमेव राम के प्रति अनन्य भाव से समर्पित हैं। अपनी प्रिया पार्वती से राम कथा वर्णन के पूर्व वे अनन्य भाव से उन्हें प्रणति निवेदन करते हैं।[2]

श्री राम के अनन्य प्रेमी काग भुशुण्डि जी अनन्य भाव से राम के गुण-गान में दत्त चित्त दर्शाये गये हैं। राम की भक्ति से उनका मन उसी प्रकार आबद्ध है जिस प्रकार जल से मछली। उन्होंने लोमश मुनि को अपनी मनः स्थिति का स्पष्ट रूप से कथन किया है।[3]

राम के प्रति वे अनन्य भाव से समर्पित हैं। राम की तुलना में कोई भी देवता उनकी दृष्टि में नहीं आता है। गरुड़ को वे स्पष्ट रूप से कह देते हैं।[4]

---

1. कामिहिं नारि पिआरि जिमि लोभिहिं प्रिय जिमि दाम ।
   तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहिं राम ॥
   रा.च.मा. 7/130/ख

2. राम ब्रह्म व्यापक जग जाना।
   परमानंद परेस पुराना ॥ रा.च.मा. 1/116
   पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ ।
   रघुकुल मनि मम स्वामि सोई कहि सिव नायउ माथ ॥

3. राम भगति जल मम मन मीना ।
   किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना ॥ रा.च.मा. 7/110/9

4. अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ ।
   केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥ रा.च.मा. 7/123/4

अनन्य भक्तों के क्रम में श्री हनुमान जी का आसन सर्वोच्च है। राम के प्रथम दर्शन के पश्चात ही उनकी भक्ति भावना अत्यन्त तीव्र रूप धारण करती है। अपने इष्ट के प्रति वे सर्वभाव से समर्पित होते हैं। उनके समर्पण से प्रभावित होकर ही श्री राम जी ने स्वयं श्री मुख से उन्हें अपना अनन्य भक्त स्वीकार किया है।[1]

हनुमान की अनन्य भक्ति से श्री राम स्वयं इतने प्रभावित हैं कि उनके कृतोपकारों से उऋण होने में वे अपने को असमर्थ पाते हैं।[2]

प्रभु श्री राम के प्रति उनकी अनन्य भावना उनके साथियों में भी यह धारणा पुष्ट कर देती है कि वे राम के ही कार्य हेतु अवतरित हुए हैं। समुद्र के उस पार जाने के लिये उनका उत्साह वर्धन करते हुए जामवन्त कहते हैं-[3]

श्री राम उनकी अनन्य भक्ति से प्रभावित होकर ही अपने सभी विशिष्ट कार्यों में श्री हनुमान जी का ही योगदान लेते हैं, चाहे सीता की खोज हो चाहे लक्ष्मण की रक्षार्थ संजीवनी बूटी लाने की व्यवस्था हो, चाहे भरत जी के पास अपने सकुशल प्रत्यागमन की सूचना हो सभी स्थलों पर हनुमान जी ही कार्यवाहक बनाये जाते हैं। उनकी अनन्य भक्ति के कारण ही सभी साथियों को अयोध्या से विदा करते समय श्री राम हनुमान जी को अयोध्या में ही रोक लेते हैं। निर्विवाद सच है कि हनुमान जी प्रभु श्री राम के अनन्य साधक थे।

---

1. समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ॥
सो अनन्य जाके असि मति न टरै हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त॥ रा.च.मा. 4/3

2. सुन सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। कर विचार देखेउं मन माहीं॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होई न सकत मन मोरा॥
रा.च.मा. 5/31/6-7

3. राम काज लगि तब अवतारा।
सुनतहि भयउ पर्वताकारा॥ रा.च.मा.4/29/6

अनन्य भक्तों की कोटि में द्वितीय स्थान पर श्री भरत लाल जी का आसन है। राम के प्रति उनके अनुराग भाव की कोई सीमा नहीं बाँधी जा सकती है। यद्यपि बाल्यावस्था से वे राम के साथ रहने का सुयोग लक्ष्मण की तरह प्राप्त नहीं कर पाते हैं किन्तु उनके भाव राम के प्रति अनन्य हैं। राम के प्रति उनके अनुराग का साक्षात्कार ने सर्वप्रथम चित्रण उस समय किया है जब जनकपुर से दूत जनक जी का पत्र लेकर अयोध्या में प्रस्तुत होते हैं। पत्र के सम्बन्ध में महाराज दशरथ से वे पूछते हैं।[1]

तथा पत्र को सुनकर -

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता ।
अधिक सनेह समात न गाता।।

के द्वारा उनका राम के प्रति हार्दिक अनुराग स्वतः स्पष्ट होजाता है। भरत जी का यह अनुराग उस समय एक अथाह सागर का रूप ले लेता है जब राम वन के लिये प्रस्थान हो जाते हैं। महाराज दशरथ परलोक गामी हो जाते हैं। भरतननिहाल से अयोध्या आकर प्रथम पितृ मरण का और फिर राम वनवास का वृत्तान्त ज्ञात करते हैं। उस समय राम के वन गमन का दुख पितृमरण के दुख से भी अधिक भरत जी के अंतःकरण को प्रपीड़ित करता है।[2]

अपने स्वामी का राज सुख से विरत होकर वन के कुश-कुंजों में भटकने का मार्मिक दुख भरत के अनन्य प्रेमी अंतःकरण को सदैव दुखित करता रहता है। प्रेमाधिक्य की प्रबलता से वे इतने अभिभूत हो जाते हैं कि उनके राज सिंहासनासीन होने के सारे प्रयास अपने आप

---

1. बूझत प्रान प्रिय बंधु दोउ अहहिं कहहु केहि देस ।
सुनि सनेह साने बचन बाची बहुरि नरेस ।।

रा.च.मा. [अ] 1/290
रा.च.मा. [ब] 1/290/1

2. भरतहिं बिसरेउ पितुमरन सुनत राम बन गौन ।
हेतु अपनपउ जानि जिय थकित रहे धरि मौन ।।

विकल हो जाते हैं। माता कौशल्या का आदेश, मंत्रियों का आग्रह, गुरु वशिष्ठ का अनुशासन सबके सब भरत के अनन्य राम प्रेम के समक्ष अपने अस्त्र विसर्जित कर देते हैं। वे अपनी दीनता को प्रकट करते हुए कहते हैं कि श्री राम जी के पद-पद्मों के दर्शन के बिना मुझे शांति नहीं मिल सकती।[1]

वे सभी पांच समस्त माताओं, गुरु वशिष्ठ, अनुज शत्रुघ्न एवं अयोध्यावासी राम प्रेमियों सहित राम को मनौती करने के लिये चित्रकूट को प्रस्थान हो जाते हैं। मार्ग में सभी स्थानों में पग-पग पर उन्हें अपने आराध्य श्री राम का ही ध्यान भाव मग्न किये रहता है। राम सखा केवट से मिलने के लिये वे उमंग से भर कर रथ से उतर कर उससे मिलने के लिये चल देते हैं।[2]

गंगा-तीर पर पहुंचकर माँ गंगा से वे राम व सीता के पुनीत चरणों का स्वाभाविक प्रेम मांगते हैं।[3]

तीर्थराज प्रयाग पहुंचने पर वे त्रिवेणी जी से अनन्य राम प्रेम की याचना करते हुए भाव मग्न हो जाते हैं।[4]

---

1. आपनि दारुन दीनता, कहउँ सबहिं सिरु नाइ।
   देखें बिनु रघुनाथ पद, जिय कै जरनि न जाई॥
   रा. च. मा. 2/182

2. राम सखा सुनि स्यंदनु त्यागा।
   चले उतरि उमगत अनुरागा॥ रा. च. मा. 2/192/7

3. भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू। सकल सुखद सेवक सुरधेनू॥
   जोरि पानि बर मागउँ एहू। सीय राम पद सहज सनेहू॥
   रा. च. मा. 2/196/7-8

4. अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरबान॥
   जनम जनम रति राम पद, यह बरदान न आन॥
   रा. च. मा. 2/204

भरद्वाज मुनि के समृद्ध सुख साधनों से सम्पन्न स्वागत भाव भरत के अनन्य राम प्रेमी अंतःकरण को किंचित मात्र भी आकर्षित नहीं कर पाते हैं। तुलसी ने ऋषि के तमाम विस्तृत सुख साधनों का अत्यन्त सुन्दर ढंग से स्पष्टीकरण किया है।[1]

भरत के अनन्य प्रेम का अतीव रूप चित्रकूट की पुण्य-स्थली में पहुंचने पर पूर्ण रूपेण स्पष्ट हो जाता है। राम के निवास शैल की शोभा का पुण्य दर्शन भरत के हृदय को अपार शांति प्रदान करता है।[2]

अब तो स्थान स्थान पर राम के पद चिन्हों का सुदर्शन सुलभ होता है। पद-चिन्हों का पहिचानकर उनकी रज सिर, हृदय, नेत्रों में लगाकर भरत जी राम मिलन के सदृश सुख अनुभव करते हैं।[3]

मिलन के समय तो प्रेम की पराकाष्ठा का मापन असंभव सा हो जाता है। मानसकार स्वयं वहाँ तक पहुंचने में असमर्थता प्रकट करते हुए कह देते हैं।[4]

अग्रज राम के आदेश के परिपालन को प्रथम मान्यता देकर वे अयोध्या लौटने की स्वीकृति तो दे देते हैं किन्तु चतुर्दश वर्ष के वियोग दुख को शमन करने हेतु किसी प्रतीक की प्राप्ति हेतु उनका हृदय विकल हो उठता है। तुलसी ने उनकी मनोदशा का आकलन करते हुए लिखा है।[5]

---

1. सम्पत्ति चकई भरत चक, मुनि आयसु खेलवार ।
   तेहि निसि आश्रम पिंजरां राखे भा भिनुसार ।।

   रा.च.मा. 2/215

2. राम सैल सोभा निरखि, भरत हृदय अति पेमु ।
   तापस तप फलु पाइ जिमि, सुखी सिराने नेमु ।।

   रा.च.मा. 2/215

3. हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारस पायउ रंका।।
   रज सिर धरि हिय नैननि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं।

   रा.च.मा. 2/237/3-4

4. अगम सनेह भरत रघुबर को।
   जहँ न जाइ मन बिधि हरिहर को।। रा.च.मा. 2/240/5

5. बहु प्रबोध कीन्ह बहु भाँती ।

प्रभु श्री राम अपने अनन्य भक्त भरत के मनोभाव को समझकर अपनी चरण पादुकायें उन्हें प्रदान करते हैं। भरत प्रभु का परम प्रसाद पाकर अपार आत्मिक शांति का अनुभव करते हुए उन्हें शिरोधार्य करते हैं।[1]

अयोध्या पहुँचकर अपने परम प्रियस्वामी के पुनीत पद त्राण सिंहासनासीन करके उनसे आज्ञा माँगकर वे राज्य-कार्य सम्पादित करते हैं। इससे राम के प्रति उनकी गहरी आस्था का आभास मिलता है।[2]

चतुर्दश वर्ष के बाद जब राम के पुनरागमन की वेला सन्निकट अनुभव होती है तब भरत की बेचैनी राम के प्रति उनकी अनन्य भक्ति का परिचय देती है। भरत अनेकानेक कल्पनाओं में खो जाते हैं। अनेक प्रकार से अपने को सदोष अनुभव करते हैं और तभी राम के पुनरागमन की सूचना लेकर हनुमान जी उपस्थित होते हैं। हनुमान जी के समक्ष राम प्रेम मग्न भरत की जो प्रतिमा प्रस्तुत होती है उसका चित्रण करते हुए तुलसी ने लिखा है।[3]

हनुमान जी के द्वारा प्रभु राम की सकुशल प्रत्यावर्तन की जानकारी प्राप्त करके भरत का हृदय गद गद हो जाता है। हनुमान जी के प्रति कृतज्ञता भाव विज्ञप्त करते हुए उन्होंने राम के कुशल संदेश की प्राप्ति को अपनी बहुत बड़ी उपलब्धि माना है। वे अपने को हनुमान जी का चिर ऋणी अनुभव करते हैं।[4]

---

1. प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं।
   सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥ रा.च.मा. 2/315/4

2. सिंहासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि।

   रा.च.मा. 2/323

3. बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
   राम-राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात॥

   रा.च.मा. 7/1/ख

4. एहि संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं॥
   ना हिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही॥

   रा.च.मा. 7/1/13-14

इन अनेक तथ्यों से स्वामी श्री राम के प्रति भरत की अनन्य भक्ति स्वतः प्रमाणित हो जाती है।

भरत के सदृश ही रामानुज लक्ष्मण भी अनन्य भक्तों की कोटि में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। तुलसी ने तो राम की कीर्ति का मूलाधार उन्हें ही स्वीकार किया है।[1]

लखन निःसन्देह अपनी अनन्य भक्ति के कारण वे स्वामी श्री राम के इतने समीप स्थिर हो जाते हैं कि दोनों का युग्म भक्तों का आराध्य बन जाता है। विशुद्ध प्रेम के अक्षय कोष के रूप में लक्ष्मण के साथ श्रीराम जी के चरणों में समर्पित होते हैं। ताड़का वन से दण्डक वन तक सब सर्वस्व सर्व-समर्पण का भाव लिये हुए राम की सेवा में लीन लक्ष्मण का भावपूर्ण चित्र देखते हैं। राम का किंचित वियोग उन्हें सहन नहीं है। रामका अपमान और अपकार उनकी सहन शक्ति के परे है। राम के सुख वैभव के लिये वे सदैव व्यग्र दर्शित होते हैं। वनवास की आज्ञा प्राप्त होने पर जब राम उन्हें अयोध्या में ही रुकने का निर्देश देते हैं तब उनकी बेचैनी सीमा पर पहुंच जाती है। वे किसी भी परिस्थिति में राम का साथ छोड़ने के लिये तैयार नहीं होते हैं वे राम से स्पष्ट रूप से कह देते हैं।[2]

उनके अनन्य भक्ति भाव से आकर्षित राम उन्हें अपना सहचर बनाने के लिये विवश हो जाते हैं। वन वास की अवधि में प्रभु राम व माँ जानकी की जिस लगन से सेवा लक्ष्मण द्वारा सम्पन्न हुई उसकी समता का उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। हर कठिनाई में वे कन्धे से कंधा मिलाकर श्री राम का

---

1. रघुपति कीरति विमल पताका ।
   दण्ड समान भयउ जस जाका।। रा०च०मा० 7/1/13-14

2. गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पति आहू ।।
   जहँ लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई।।
   मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी ।।
   रा०च०मा० 2/71/4,5,6

सहयोग देते हैं। इतना ही नहीं सेवा के सुयोग को वे अपने जीवन का सर्वाधिक आनन्द मय योग मानते हैं। उनकी अनन्य भक्ति से प्रभावित होकर ही राम का भी उनके प्रति अटूट अनुराग देखने को मिलता है। शक्ति बाण लगने के बाद मूर्छित लक्ष्मण को देखकर राम शोकाकुल हो उठते हैं। उनका करुण विलाप लक्ष्मण के प्रति उनकी सच्ची प्रेम भावना का परिचायक है।[1]

इस प्रकार लक्ष्मण भी अनन्य भक्त के रूप में मानसकार के द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। मानसकार ने अनन्य भक्ति को ही श्रेष्ठ भक्ति माना है। इसीलिये अपने इस गौरव ग्रन्थ में उन्होंने सभी उच्च आदर्श सम्पन्न पात्रों में प्रभु की अनन्य भक्ति को प्रतिष्ठित किया है।[2]

मानस में नवधा भक्ति :

मानसकार ने भक्ति को समस्त सद्गुणों से विभूषित महत् तत्व के रूप में माना है। उन्होंने रामत्व में समस्त सात्विक वृत्तियों का समन्वित पुंज मानकर उस तक पहुंचने के लिये साधन रूप भक्ति भाव को भी सर्वांगीण सोपानों के रूप में स्वीकार किया है। इसीकारण से प्रेमा भक्ति की साकार मूर्ति शबरी को अपने ही मुख से श्री राम ने भक्ति भाव की नव विधायें नवधा भक्ति की संज्ञा से अभिहित करके वर्णन की है। मानस में भक्ति की इन विधाओं का वर्णन निम्नप्रकार से मिलता है।[2]

---

1. जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना ।।
   अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जिआवै मोही ।।
   रा.च.मा. 6/60/9-10
2. प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।
   गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान। रा.च.मा.3/34/1 से
   चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान।। 35/5 तक
   मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा ।।
   छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा ।।
   सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा ।।
   आठव जथालाभ संतोषा। सपनेहुं नहिं देखइ परदोषा ।।
   [illegible] नवम सरल सब सन छलहीना ।

भक्ति की ये विधायें मानस के कथा क्रम में विभिन्न भक्त पात्रों के पुनीत चरित्र में समाहित करके इस गौरव ग्रन्थ के माध्यम से गोस्वामी जी ने भक्ति की जो सुर-सरिता प्रवाहित की है उससे जन-जन का अंतस समस्त कल्मषों से रहित होकर रामत्व की ओर प्रवृत्त होने की शक्ति पा सका। प्रत्येक विधा पर पृथक पृथक मानसकार की भाव दृष्टि का दर्शन विचारणीय है।

<u>प्रथम भक्ति संतन कर संगा -</u>

मानसकार ने सत्संग को भक्ति की सर्वप्रथम विधा के रूप में स्वीकार किया है। कारण कि उनके अनुसार यह सुयोग राम की कृपा का सुफल एवं सद्विवेक का हेतु है।[1]

भक्ति की इस विधा के साथ ही मानसकार ने मानस की संरचना की प्रक्रिया को योजित किया है। सत्संग के लाभ को पाने के लिये पार्वती जी शंकर जी के, भरद्वाज जी याज्ञवल्क्य जी के एवं गरुड़ जी काकभुशुण्डि जी के सान्निध्य हेतु व्यग्र होते हैं। इस सत्संग से उन्हें रामत्व को जानने एवं उसमें अपने राम तत्व को विलय करने की उमंग उत्पन्न होती है। इस प्रकार भक्ति की यह प्रथम विधा इस महाकाव्य की रचना के मूल में उत्प्रेरक का कार्य साधती है। सत्संग के उपर्युक्त स्थल राम कथा के स्थलों के रूप में विकसित होकर सम्पूर्ण राम चरित की प्रदक्षिणा करते हैं। मानस के अंतराल में भी सत्संग की महिमा मुक्तकण्ठ से ध्वनित की गयी है। इसे ही मानसकार ने समस्त साधनाओं का सुफल बताया है।[2]

---

1. बिनु सतसंग बिवेक न होई।
   राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥ रा.च.मा. 1/2/7

2. सतसंगति मुद मंगल मूला।
   सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥ रा.च.मा. 1/2/8

लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार से सत्संग तथा हरि कथा रस दो भक्ति क्रियाओं का एक साथ पोषण होता है। मानस में जहाँ जहाँ सत्संग का वर्णन है वहाँ हरिकथा कथन और श्रवण की प्रक्रिया सम्पादित होती हुई वर्णित है। सती के साथ भगवान शंकर अगस्त्य मुनि के आश्रम में पहुँचते हैं तथा वहाँ अगस्त्य ऋषि और भगवान शंकर का सत्संग कुछ दिनों राम कथा के साथ ही निरन्तरित रहता है।[1]

लंका में प्रवेश करने पर राम भक्त विभीषण ने हनुमान जी अपना परिचय राम कथा के कथन के साथ दिया। इससे उनके राम भक्त होने का स्वतः संकेत मिल जाता है। दोनों भक्त इस पुनीत परिचय के साथ राम कथा के परमानंद में खो जाते हैं।[2]

भक्ति राम हनुमान अशोक विटप के नीचे आसीन माता जानकी को अपनी विश्वास धारणा की प्रतीक स्वरूप अपनी राम भक्ति का परिचय देने के लिये उनके समक्ष राम कथा का कथन करते हैं और उस श्रवणामृत कथा रस से माता सीता की आत्म शांति के साथ हनुमान जी के प्रति महती आस्था उत्पन्न होती है।[3]

---

1. राम कथा मुनिबर्य बखानी। सुनी महेस परम सुख मानी ॥
रिषि पूछी हरिभगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई॥
कहत सुनत हरि कथा अनूपा। कछु दिन तहाँ रहे सुर भूपा॥

रा०च०मा० 1/47/3,4,5

2. तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम ।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम ॥

रा०च०मा० 5/6

3. रामचंद्र गुन बरनै लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा ॥
लागीं सुनै श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई ॥
श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही सो प्रगट होति किन भाई ॥

रा०च०मा० 5/12/5,6,7

सीता की खोज में निरत वानरगण जब निराश हो जाते हैं और अपने निर्दिष्ट कार्य की सम्पन्नता को संदिग्ध स्थिति में देखते हैं तब वयोवृद्ध जामवंत ने राम कथा के द्वारा ही सभी के अंतराल में राम भक्ति का संचार करते हुए कार्य-सम्पन्नता की पूर्ण प्रतीति उत्पन्न की।[1]

मानस के उत्तर काण्ड में राम कथा के द्वारा भक्ति भाव की पुष्टि के अनेक प्रसंग तुलसी ने प्रस्तुत किये हैं। श्री राम की पुनीत जन्म भूमि राम कथा की ध्वनि से सदैव परिपूर्ण वर्णित की गयी है। भरत-शत्रुघ्न, श्री हनुमान को किसी रमणीक उद्यान में ले जाकर उनसे राम कथा बार बार सुनते और भाव मग्न होते हैं।[2]

अयोध्या में घर-घर में राम-कथा की ध्वनि गुंजित होती है।[3]

सदैव ब्रह्मानंद में लीन सनकादिक ऋषि श्री राम के दर्शन हेतु अयोध्या पधारते हैं। उनके संबंध में मानसकार ने स्पष्ट किया है कि वे ज्ञान के भण्डार, अत्यन्त पुरातन ऋषि राम कथा के रसिक थे।[4]

---

1. जामवंत अंगद दुख देखी। कहीं कथा उपदेस विसेषी॥
   तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु॥
   हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥

   रा. च. मा. 4/25/11, 12, 13,

2. भरत सत्रुहन दोनउ भाई। सहित पवनसुत उपवन जाई॥
   बूझहिं बैठि राम गुन गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा॥
   सुनत विमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि विनय कहावहिं॥

   रा. च. मा. 7/25/4, 5, 6

3. सबके गृह गृह होहिं पुराना। राम चरित पावन विधि नाना॥
   नर अरु नारि राम गुन गानहिं। करहिं दिवस निसि जात न जानहिं॥

   रा. च. मा. 7/25/7-8

4. आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीं। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं॥
   तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घटसंभव मुनि विज्ञानी॥
   राम कथा मुनिवर बहु बरनी। ग्यान जोनि पावक जिमि अरनी॥

   रा. च. मा. 7/31/6, 7, 8

इस प्रकार इस महान भक्ति काव्य में राम कथा की महिमा को मानसकार ने उपर्युक्त विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से स्पष्ट किया है। वस्तुतः भक्ति के प्रेरक भगवान के महत् चरित्र ही हैं। अतः उनके चरित्र सागर में मन, वचन का निमग्न होना उनकी भक्ति का महान प्रतीक है।

गुरु पद पंकज सेवा तीसर भगति अमान -

मनुष्य के लिये ब्रह्मानंद की अनुभूति का पथ प्रशस्त बनाने में सद्गुरु की महत्वपूर्ण भूमिका को सभी आस्तिक हृदयों ने नत शिर होकर स्वीकार किया है। भक्ति काल का समग्र साहित्य गुरु महिमा से भरा पड़ा है। निर्गुणोपासक सन्तों ने साकार ब्रह्म के रूप में गुरु को मान्यता दी है। सगुण उपासकों ने उन्हें ईश्वर का ही दूसरा रूप माना है। इस प्रकार गुरु की महिमा ईश्वरीय साधना के साधक को सशक्त बनानेके कारण भक्ति काल में सभी कवियों ने श्रद्धा पूर्ण वाणी के द्वारा गायी है। मानसकार ने नवधा भक्ति की भाव भीनी झाँकी आयोजित करके भक्ति की इस विधा को सम्मानित किया है। स्वयं श्री राम एक बहुत बड़े गुरु भक्त शिष्य के रूप में दर्शाये गये हैं। चक्रवर्ती नरेश महाराज दशरथ के कुमार होने के नाते अनेकानेक विद्वान श्री राम का शिक्षण कार्य करने हेतु राज भवन में आ सकते थे। किन्तु गुरु के प्रति श्रद्धालु राजकुमार सामान्य बालकों की भाँति गुरु के आश्रम में जाकर ही ज्ञान ग्रहण करते हैं। इस प्रकार गुरु के महत्व को वे स्वीकार करते हैं।[1]

अपने शस्त्र ज्ञान के प्रदायक गुरुदेव विश्वामित्र जी के प्रति भी श्रीराम की श्रद्धा अत्यन्त उच्च स्तर पर है। महाराज दशरथ जैसे ही अनुज लक्ष्मण सहित श्री राम को विश्वामित्र जी के चरणों में समर्पित करते हैं तभी से श्री राम के अंतःकरण में उनके प्रति अटूट श्रद्धा जागृत होती है। वे गुरुदेव

---

1. गुरु गृह पढ़न गये रघुराई।
   अल्प काल विद्या सब पाई ॥ रा.च.मा. 1/203/4

की यज्ञ के बाधक राक्षसों को परास्त करके यज्ञ की पूर्ति कराते हैं तथा महाराज जनक का धनुष यज्ञ उत्सव देखने के लिये गुरु के साथ जनकपुरी जाते हैं। इस प्रकार लम्बा समय गुरु के सानिध्य में रहने को श्री राम को प्राप्त होता है। मानसकार ने सच्चे आदर्श शिष्य की भाँति सभी स्थलों पर उन्हें चित्रित किया है। चाहे जनकपुरी के अवलोकन का कार्य हो और चाहे भगवान शंकर के धनुष को आकर्ष खींचने और चढ़ाने का कार्य हो- राम हर स्थिति में गुरु के प्रति भक्ति भाव सम्पन्न देखे गये हैं।[1]

महाराज दशरथ राम राज्याभिषेक के तारतम्य में जब अभिषेक के पूर्व के व्रत और संयम का ज्ञान देने के हेतु गुरु वशिष्ठ को श्री राम के कक्ष में भेजते हैं, उस समय उनकी गुरु भक्ति भाव-विभोर करने वाली स्पष्ट होती है। वे पूर्ण स्नेह गुरु के सम्मान में तल्लीन दर्शित होते हैं।[2]

इस प्रकार गुरु भक्ति के महत्व का विशिष्ट रूप प्रस्तुत करने हेतु मानसकार ने श्री राम को सर्वत्र गुरु के प्रति भक्ति भाव से परिपूर्ण चित्रित किया है।

1.(क) मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता ।
चले लोक लोचन सुख दाता ॥ रा.च.मा. 1/218/1

(ख) समय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाई ।
गुरु पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाई ॥

रा.च.मा. 1/225

(ग) मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई ।
लगे चरन चापन दोउ भाई ॥ रा.च.मा. 1/225/3

2. गुरु आगमनु सुनत रघुनाथा ।
द्वार आइ पद नायउ माथा ॥
सादर अरघ देइ घर आने ।
सोरह भाँति पूजि सनमाने ॥
x x x रा.च.मा. 2/8/2 से आगे
आयसु होइ सो करौं गोसाईं ।

मानस के प्रारंभ में ही मानसकार ने गुरु के प्रति जो भक्ति भाव प्रदर्शित किया है वह अत्यन्त भावपूर्ण है। इन्होंने ईश्वर के रूप में ही गुरु को स्वीकार किया है।[1]

गुरु की चरण रज समस्त भव बाधाओं को दूर करने वाली है।[2]

गुरु के प्रति सच्ची आस्था से सम्पन्न अंबा पार्वती को मानसकार ने दर्शाया है। देवर्षि नारद को वे गुरु के रूप में स्वीकारती हैं। वे नारद जी की आलोचना करने वाले सप्तर्षियों को स्पष्ट कह देती हैं।[3]

गुरु के आसन पर प्रतिष्ठित शंकर भगवान के प्रति पार्वती जी की, याज्ञवल्क्य के प्रति भरद्वाज जी की तथा काकभुशुण्डि जी के प्रति गरुड़ जी की उच्च कोटि की श्रद्धा का सरस चित्रण मानसकार ने किया है।

इस प्रकार समूचे ग्रन्थ में गुरु की महिमा का गायन करके गोस्वामी जी ने भक्ति की इस विधा को अपने ग्रन्थ में महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

---

1. बन्दउँ गुरु पद कंज कृपासिंधु नर रूपहरि ।
   महा मोह तम पुंज जासु बचन रविकर निकर।।
   रा.च.मा. 1/1/5 सोरठा

2. बन्दउँ गुरु पद पदुम परागा ।
   सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।
   x x x
   श्री गुरु पद नख मनि गन जोती ।
   सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती।। रा.च.मा. 1/1/1 से 5

3. नारद बचन न मैं परिहरऊँ ।
   बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ।।
   गुरु के बचन प्रतीति न जेही।
   सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही।। रा.च.मा. 1/79/7-8

चौथि भगति मम गुनगन करइ कपट तजि गान –

निष्कपट होकर प्रभु के गुण समूहों के गायन को तुलसी ने नवधा भक्ति की चौथी विधा के रूप में माना है। मानस में अनेक स्थलों पर इस भक्ति को दर्शाते हैं। रावण के अत्याचार से प्रपीड़ित समस्त देवता पितामह ब्रह्मा जी के पास जाते हैं। ब्रह्मा जी उनके दुख से कातर होकर प्रभु की स्तुति करने लगते हैं। वे परमात्मा के भक्त-सुख-दाता, शरणागत वत्सल, गौ-ब्राह्मण हितैषी, दानव द्रोही आदि गुणों का गायन करने लगते हैं।[1]

महामुनि अत्रि भी श्री रामजी को आसन पर बैठाकर करबद्ध होकर प्रभु का गुणगान करते हैं। वे श्री राम जी के भक्त वत्सल, कृपालु, शील सम्पन्न स्वभाव का वर्णन करते हुए कहते हैं –[2]

परम भागवत श्री हनुमान जी व श्री विभीषण जी अपने प्रथम मिलन पर प्रभु गुण समूहों की चर्चा करते हैं। इस हरिचर्चा से दोनों भक्तों के शरीर पुलकित हो जाते हैं तथा मन प्रभु के गुणों में मग्न हो जाते हैं।[3]

इतना ही नहीं, प्रभु की गुणगाथा से दोनों भक्त हृदयों को अनिर्वचनीय विश्राम प्राप्त होता है।[4]

---

1. जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवन्ता।
   गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता।।
   रा.च.मा. 1/185/ छंद

2. नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं।।
   भजामि ते पदाम्बुजं। अकामिनां स्वधाम दं।।
   रा.च.मा. 3/3/छंद

3. तब हनुमंत कहीं सब राम कथा निज नाम।
   सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम।।
   रा.च.मा. 5/6

राक्षसराज रावण के वध पर परम प्रसन्न देवराज इन्द्र प्रभु की भावभीनी स्तुति करते हैं। प्रभु श्री राम जी के प्रणत विश्रामदायक तथा प्रबल प्रताप युक्त गुणों का गायन करते हुए इन्द्र परम प्रसन्नता को प्राप्त करते हैं।[1]

भगवान शंकर में श्री तुलसी ने नवधा भक्ति की इस विधा के दर्शन किये हैं। श्री शंकर जी प्रभु के गुणों का गायन करते हुए श्री पार्वती जी से कहते हैं कि हे पार्वती यद्यपि प्रभु के गुण तथा नाम असीम है तथापि अपनी बुद्धि के अनुसार मैं तुम्हें सुना रहा हूं ।[2]

भगवान शंकर अत्यधिक अनुराग पूर्वक हरि गुण गाथा का वर्णन करते हैं। सीता की खोज से प्रत्यावर्तित श्री हनुमान जी व श्री राम जी के भावनात्मक मिलन की चर्चा करते हुए वे भावमग्न हो जाते हैं। प्रभु श्री राम का वरद हस्त हनुमान जी के मस्तक पर रखा है। तथा हनुमान जी प्रभु के पद-कमलों पर पड़े हुए है। श्री राम जी के भक्त-वत्सल गुण का स्मरण कर भगवान शंकर की वाणी अवरुद्ध हो जाती है। वे प्रेम मग्न हो जाते हैं।[3]

रावण-वध के पश्चात, भगवान शंकर भी लंका पहुंचकर श्री राम जी की भावपूर्ण स्तुति करते हैं वे प्रभु को समस्त सद्गुणों का भवन तथा काम, क्रोध, मद व भ्रम का विनाशक कहकर अपनी रक्षा की याचना करते हैं।[4]

इस प्रकार मानस में सभी भक्त नवधा भक्ति की इस विधा से परिपूर्ण चित्रित किये गये हैं।

---

1. जय राम शोभा धाम। दायक प्रनत बिश्राम ।।
   धृत त्रोन बर सर चाप। भुजदण्ड प्रबल प्रताप ।।
   रा.च.मा. 6/112/छंद
2. हरिगुन नाम अपार कथा रूप अगनित अमित ।
   मैं निज मति अनुसार, कहउँ उमा सादर सुनहु।।
   रा.च.मा. 1/120/सोरठा|2|
3. प्रभु कर पंकज कपि के सीसा ।।
   सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा ।। रा.च.मा.5/32/2

* मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा ।
पंचम भजन सो बेद प्रकासा ।।

अटूट विश्वास के साथ श्री राम नाम का जप मानस में नवधा भक्ति की पाँचवीं विधा के रूप में स्वीकृत किया गया है। तुलसी ने अपने इस महाकाव्य के प्रारम्भ में राम-नाम की महिमा का विशद वर्णन किया है। मानस के सभी भक्त पात्र राम नाम का स्मरण अटूट निष्ठा-पूर्वक करते हुए चित्रित हुए है। अशिव वेषधारी भगवान शंकर नाम स्मरण के प्रभाव से शिव हो गये हैं।[1]

इस भक्ति की पुष्टि के लिये तुलसी ने अनेक पौराणिक उदाहरण प्रस्तुत किये है। ध्रुव ने अटूट निष्ठा के साथ प्रभु का नाम स्मरण किया इसके प्रभाव से उन्हें स्वर्ग में भी अचल तथा अनुपम स्थान प्राप्त हुआ ।[2]

अधम अजामिल, गज, गणिका आदि भी प्रभु के नाम का स्मरण कर मुक्त हो गये।[3]

मानस में स्वायम्भुवमनु तथा शतरूपा जी में इस भक्ति के दर्शन होते हैं। मनु महाराज नैमिषारण्य में गोमती नदी के तट पर सपत्नीक प्रभु का मंत्र जप करते हैं। श्री वासुदेव जी के चरण कमलों में दोनों का अत्यधिक अनुराग है।[4]

---

1. नाम प्रसाद संभु अबिनासी ।
   साजु अमंगल मंगल रासी ।। रा.च.मा. 1/25/1

2. ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ।
   पायउ अचल अनूपम ठाऊँ ।। रा.च.मा. 1/25/1

3. अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ ।
   भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ ।। रा.च.मा. 1/25/7

4. द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग ।
   बासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग ।।

माँ पार्वती जी भी राम नाम के महामंत्र का जप अतीव श्रद्धा के साथ करती हैं।[1]

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि अपने प्रारंभिक पातकी जीवन में इस महामंत्र का उल्टा जप करके भी शुद्ध हो गये।[2]

महामुनि अगस्त्य तथा सुतीक्ष्ण राम नाम जप से ही प्रभु को प्राप्त कर सके। प्रभु का पावन दर्शन प्राप्त कर सुतीक्ष्ण जी उन्हें अपने गुरुआश्रम ले जाते हैं। वे अपने गुरुदेव श्री अगस्त्य जी से निवेदन करते हैं कि हे देव, आपका जिनका अहर्निश जप करते हैं वे ही प्रभु राम अपने अनुज लक्ष्मण तथा प्राणप्रिया वैदेही के साथ आपसे मिलने आये हैं।[3]

श्री सीता जी लंका में अशोक वृक्ष के नीचे प्रभु का नाम जप करती रहती हैं। श्री हनुमान जी उनका समाचार प्रभु श्री राम जी से निवेदित करते हुए उनके अहर्निश नाम जप को प्रकट कर देते हैं।[4]

राम प्रेम की प्रतिमूर्ति श्री भरत लाल जी महाराज अयोध्या में पुलकित गात तथा सजल नेत्र होकर राम नाम जप करते रहते हैं। वे अपने भवन में ही रहकर वनवास जैसा तप करते हैं।[5]

---

1. सहस नाम सम सुनि सिव बानी।
   जपि जेईं पिय संग भवानी ॥ रा.च.मा. 1/18/6

2. जान आदि कबि नाम प्रतापू ।
   भयउ सुद्ध करि उलटा जापू ॥ रा.च.मा. 1/18/5

3. राम अनुज समेत बैदेही ।
   निसिदिन देव जपत हहु जेही ॥ रा.च.मा. 3/11/8

4. नाम पाहरु दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट ।
   लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट ॥
   रा.च.मा. 5/30

5. पुलक गात हियँ सिय रघुबीरु ।
   जीह नामु जपु लोचन नीरु ॥ रा.च.मा. 2/325/1

परम भागवत श्री काक भुशुण्डि जी भी राम मंत्र के जप द्वारा ही भक्तों की कोटि में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सके। वे अपना अनुभव श्री गरुड़ जी से निवेदित करते हुए स्पष्ट कहदेते हैं कि बिना हरि के भजन के जीवन क्लेश रहित नहीं हो सकता ।[1]

नाम स्मरण से प्रभु स्वयं भक्तों के वश में हो जाते हैं। प्रभु के पावन नाम का स्मरण करके ही श्री हनुमान जी ने उन्हें अपने वश में कर लिया।[2]

इस प्रकार अनेक प्रसंगों द्वारा तुलसी ने नवधा भक्ति की मंत्र जप विधाका सुन्दर निरूपण किया है।

छठ दमसील बिरति बहु करमा ।

निरत निरन्तर सज्जन धरमा ।।

इन्द्रिय दमन, शील स्वभाव, अनेकानेक कर्मों से विरक्ति तथा सज्जनों के धर्म का निर्वाह नवधा भक्ति की छठीं विधा के रूप में चित्रित है। यह विधा सतोगुणी वृत्ति की परिचायक है। मानस में विभिन्न भक्त पात्रों में इस भक्ति के दिव्य दर्शन होते हैं। भगवान शंकर की तपस्या में कामदेव बाधा पहुंचाने आता है। वह उन्हें विचलित करना चाहता है। किन्तु भगवान शंकर का इन्द्रिय निग्रह उच्चकोटि का है। ससैन्य कामदेव करोड़ों प्रकार से समस्त कलायें करके पराजित हो गया किन्तु भगवान शंकर की समाधि अडिग रही।[3]

---

1. निज अनुभव अब कहउँ खगेसा ।
   बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा।। रा.च.मा. 7/88/5

2. सुमिरि पवनसुत पावन नामू ।
   अपने बस करि राखे रामू ।। रा.च.मा. 1/25/6

3. सकल कला करि कोटि बिधि हारेउ सेन समेत ।
   चली न अचल समाधि सिव कोपेउ हृदय निकेत ।।

   रा.च.मा. 1/86

भगवान शंकर का शील भी स्तुत्य है। जब प्रभु राम प्रकट होकर उनसे पार्वती जी के साथ विवाह का आग्रह करते हैं उस समय वे न चाहते हुए भी अपने स्वामी के आदेश को शिरोधार्य मानकर स्वीकार कर लेते हैं।[1]

श्री पार्वती जी के तप में इन्द्रिय दमन की कठोरता अनुकरणीय है। अत्यन्त सुकोमलांगी पार्वती ने भगवान शंकर के पद-पद्मों का स्मरण कर समस्त भोगों का परित्याग कर दिया। एक सहस्त्र वर्ष तक उन्होंने फूल तथा फल का ही आहार किया। इसके बाद सौ वर्ष केवल शाक खा कर ही व्यतीत किये। कुछ दिनों तक वे जल तथा वायु का ही आहार करती रहीं तथा कुछ दिनों तक कठिन उपवास भी किये।[2]

देवर्षि नारद की तपस्या में भी कामदेव बाधा पहुंचाता है किन्तु नारद जी पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ पाता। इन्द्रिय निग्रही मुनि नारद की अचल समाधि को देखकर कामदेव भयभीत हो जाता है।[3]

---

1. कह शिव जदपि उचित अस नाहीं ।
   नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं ।।
   सिरधरि आयसु करिय तुम्हारा ।
   परम धरम यह नाथ हमारा ।।

   रा.च.मा. 1/76/1,2

2. संवत सहस मूल फल खाये ।
   सागु खाइ सत बरष गवाएँ।
   कछु दिन भोजन बारि बतासा।
   किए कठिन कछु दिन उपवासा ।।

   रा.च.मा. 1/73/4,5

3. काम कला कछु मुनिहिं न ब्यापी ।
   निज भयँ डरेउ मनोभव पापी ।। रा.च.मा. 1/125/7

नारद में शील की पराकाष्ठा पर है। कामदेव भयभीत होकर अपने सहायकों सहित हार मानकर मुनि के पद पद्मों में गिर जाता है। परम शीलवान नारद जी उस पर तनिक भी क्रोध नहीं करते हैं। वे प्रिय वचन कहकर नारद को संतुष्ट कर देते हैं।[1]

श्री भरत लाल जी तो इन्द्रिय निग्रह, विरक्ति एवं शील के उच्चतम आदर्श ही हैं। राम की चरण पादुकाओं को वे सिंहासन पर आसीन करके नंदिग्राम में पर्णशाला बनाकर निवास करते हैं। सिर पर जटा जूट तथा मुनियों जैसे वस्त्र धारण करके व पृथ्वी को खोदकर अंदर कुशाओं की साथरी पर शयन करते हैं।[2]

भरत ऋषि धर्म का पूर्णरूपेण निर्वाह करते हैं। उनके समस्त व्रत नियम तथा असन-वसन मुनियों जैसे ही हैं। सुन्दर आभूषणों, वस्त्रों तथा अयोध्या के स्वर्गिक भोगों व सुखों का उन्होंने मन, शरीर तथा वचन से भी तृणवत् परित्याग कर दिया है।[3]

इस प्रकार मानस में अनेकानेक सात्विक पात्रों में तुलसी ने नवधा भक्ति की इस विधा का दिग्दर्शन कराया है।

---

1. भयउ न नारद मन कछु रोषा ।
   कहि प्रिय बचन काम परितोषा ।।   रा.च.मा. 1/126/1

2. नंदिगावँ करि परन कुटीरा ।
   कीन्ह निवास धरम धुरि धीरा ।।
   जटा जूट सिर मुनि पट धारी ।
   महि खनि कुस साँथरी सँवारी ।।   रा.च.मा. 2/323/2,3

3. असन बसन बासन ब्रत नेमा ।
   करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा ।।
   भूषन बसन भोग सुख भूरी ।
   तन मन बचन तजे तिन तूरी ।।   रा.च.मा. 2/323/4,5

" सातवँ सम मोहि मय जग देखा ।
मोतें संत अधिक करि लेखा ।।

समान भाव से समस्त विश्व को प्रभुमय देखना तथा संतों को प्रभु से भी अधिक समझना नवधा भक्ति की सातवीं विधा है। तुलसी ने विभिन्न भक्त पात्रों के चरित्र में इस विधा का दिग्दर्शन कराया है। बालकाण्ड के वन्दना प्रसंग में तुलसी ने समस्त अग जग को सीता राम मय मानकर अपना प्रणाम निवेदित किया है। संतों तथा असंतों दोनों की वन्दना तुलसी ने इसी भाव से अन्वित होकर की है। अपनी अल्पज्ञता का निवेदन करते हुए वे समस्त जड़ चेतन जीवोंकी वन्दना करते हैं।[1]

"सम" से तात्पर्य सुख तथा दुख में समान बुद्धि रखने से है। इस उदात्त भावना के दर्शन तुलसी ने अपने इष्ट प्रभु श्री राम जी में किये हैं। श्री राम जी को राज्याभिषेक हो जाने पर कोई प्रसन्नता नहीं हुई और न ही वनवास मिलने पर कोई दुख अनुभव हुआ। अयोध्या काण्ड के मंगलाचरण में तुलसी ने श्री राम जी की वन्दना करते हुए इस तथ्य का उद्घोष किया है।[2]

मानसकार ने संतों की महिमा का गायन स्वयं श्री राम जी के श्री मुख से करवाया है। देवर्षि नारद से श्री राम जी संतों की महिमा वर्णन करते हुए अपने आप को भी संतों के वशीभूत बतलाते हैं।[3]

---

1. जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राम मय जानि ।
   बंदउं सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानि ।।
   रा० च० मा० 1/7/(ग)

2. प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा, न मम्ले वनवास दुःखतः ।
   मुखाम्बुज श्री रघुनन्दनस्य मे, सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा ।।
   रा० च० मा० 2/मंगलाचरण/श्लोक/2

3. सुनु मुनि संतन के गुन कहऊं ।
   जिन्हते मैं उनके बस रहऊं ।। रा० च० मा० 3/44/6

इसी क्रम में संतों का गुण गान करते हुए अंत में वे कह देते हैं कि – हे मुनि ! संतों का गुणगान करने की क्षमता शारद सरस्वती तथा वेदों में भी नहीं है।[1]

परम भागवत श्री विभीषण जी में भी नवधा भक्ति की इस विधा के पावन दर्शन प्राप्त होते हैं। उनके अनुसार संत-दर्शन महती भगवत्कृपा का परिणाम है। संत शिरोमणि श्रीहनुमान जी के दर्शन पाकर वे गद्-गद् हृदय हो जाते हैं। वे हनुमान जी को साक्षात् दीन दयालु श्री राम जी ही मानकर अपने आप को अतिशय बड़ भागी अनुभव करते हैं।[2]

सत्संग के सुख की तुलना में स्वर्ग तथा मोक्ष का सुख भी उन्हें नगण्य अनुभव होता है।[3]

इस प्रकार अनेक स्थलों पर संतों की महिमा का गायन करते मानसकार ने नवधा भक्ति की इस विधा का प्रतिपादन किया है।

---

1. मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते ।
   कहि न सकहिं श्रुति सारद तेते।।

   रा.च.मा. 3/45/8

2. की तुम्ह राम दीन अनुरागी ।
   आयहु मोहिं करन बड़भागी ।।

   रा. च.मा. 5/5/8

3. तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग ।
   तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ।।

   रा.च.मा. 5/4

आठवं जथालाभ संतोषा ।

सपनेहुं नहिं देखइ परदोषा।।

यथा लाभ में संतोष करना तथा स्वप्न में भी दूसरों के दोष को न देखना नवधा भक्ति की आठवीं विधा के रूप में वर्णित है। तुलसी ने मानस में अनेक स्थलों पर विभिन्न भक्त पात्रों में इस विधा के दर्शन करवाये हैं। राजा भानु प्रताप तथा लंकापति रावण में यथा लाभ संतोष का अभाव था। इसी कारण इनका विनाश हुआ। भक्त राज विभीषण में इस विधा का सुन्दर उदाहरण प्राप्त होता है। राक्षसों की नगरी लंका में भी वे संतोष प्रधान जीवनयापन करते हैं। वे अन्य किसी में दोष दर्शन नहीं करते अपितु स्वयं में ही दोष देखते हैं। वे श्री हनुमान जी से अपने दोषों का कथन करते हुए स्वयं को प्रभु का कृपा पात्र बनने में अक्षम बतलाते हैं।[1]

भगवान शंकर यथा लाभ संतोष के उच्चतम आदर्श हैं। श्री सती जी के साथ वे हरि गुण गानमें मग्न रहते हैं तथा दक्ष यज्ञ में सती जी के आत्म दाह करने के बाद भी वे प्रभु स्मरण में भाव विभोर बने रहते हैं। संतोष के अभाव में लाभ के बाद लोभ उत्पन्न होता है।

" जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई ।

किन्तु संतोष लोभ को समूल नष्ट कर देता है। प्रवर्षण गिरि पर श्री राम जी लक्ष्मण जी से शरद ऋतु का वर्णन करते हुए इस तथ्य को प्रकट कर देते हैं।[2]

संतोष कामनाओं को भी विनष्ट करने की औषधि है। जीव कामनाओं के रहते सुख प्राप्त नहीं कर सकता तथा ये कामनायें बिना संतोष के समाप्त भी नहीं हो सकतीं।[3]

---

1. तामस तनु कछु साधन नाहीं।
   प्रीति न पद सरोज मन माहीं।। रा.च.मा. 5/6/3
2. उदित अगस्ति पंथ जल सोषा।
   जिमि लोभहिं सोषइ संतोषा।। रा.च.मा. 4/15/3

श्री भरत जी के चरित्र में तो नवधा भक्ति की इस विधा की स्थिति सर्वथा स्तुत्य है। राम वनवास का समाचार सुनकर उनका हृदय विदीर्ण होने लगता है। वे इस कृत्य में किसी दूसरे को दोषी नहीं ठहराते अपितु समस्त दोष अपने ऊपर ही ले लेते हैं।[1]

वे अपने आप को कोसते हुए महान पापी कहते हैं क्योंकि उनके कारण ही श्री सीताराम जी को वनवास प्राप्त हुआ है।[2]

अयोध्या में घटित समस्त अमंगल की जड़ के रूप में वे स्वयं को ही स्वीकार करते हैं किसी दूसरे को नहीं।[3]

श्री काकभुशुण्डि जी द्वारा वर्णित अपनी आत्म कथा के प्रसंग में उनके श्री गुरुदेव जी में भी यह भक्ति दर्शित होती है। अभिमानवश श्री काकजी ने अपने पूर्व जन्म में गुरु जी को प्रणाम नहीं किया। परम सात्विकी गुरुदेव ने इस दोष को नहीं देखा किन्तु इस अपमान को भगवान शंकर न सहन कर सके। अतः वे शाप दे बैठे।[4]

इस प्रकार मानस में अनेकानेक स्थलों पर तुलसी ने नवधा भक्ति की इस विधा को विभिन्न भक्त पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

---

1. परम हानि सब कहुँ बड़ लाहू।
   अविनु मोर नहिं दूषन काहू।। रा.च.मा. 2/180/7

2. मोहि समान को पाप निवासू।
   जेहि लगि सीय राम बनबासू।। रा.च.मा. 2/178/3

3. जद्यपि मैं अनभल अपराधी।
   भै मोहि कारन सकल उपाधी।। रा.च.मा. 2/182/3

4. एक बार हर मंदिर जपत रहेउँ सिव नाम।
   गुर आयउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रनाम।।
   सो दयाल नहिं कहेउ कछु उर न रोष लवलेस।
   अति अघ गुर अपमानता, सहि नहिं सके महेस।।
   रा.च.मा.7/106/(क,ख)

नवम सरल सब सन छल हीना।

मम भरोस हिय हरष न दीना।।

सरल स्वभाव सभी के साथ निष्कपट व्यवहार तथा हृदय में प्रभु का भरोसा रखकर सुख-दुख में सम मनः स्थिति रखना नवधा भक्ति की अंतिम विधा के रूप में वर्णित है। इस भक्ति का चित्रण तुलसी ने अनेक भक्त पात्रों के माध्यम से किया है।

श्री भरत जी में इस विधा का सर्वोत्कृष्ट आदर्श दर्शित होता है। भरत को अपने परम प्रभु श्री राम जी का ही एक मात्र सहारा है। राम-वन गमन पर वे पश्चातापकरते हुए कहते हैं कि यद्यपि मेरा जन्म कुमाता से है तथा मैं सब तरह से दोषी हूं तथापि श्री राम मुझे अपना जानकर नहीं त्यागेंगे।[1]

भरत अतीव सरल हृदय हैं। वे सर्वथा निर्दोष होते हुए भी आत्म ग्लानि से अतीव लज्जा का अनुभव कर रहे हैं। महर्षि भरद्वाज जी के आश्रम में पहुंचने पर भरत जी के संकोची हृदय का सुन्दर चित्र प्रस्तुत हुआ है। वे मुनि को मस्तक झुका कर आसन पर इस प्रकार आसीन हुए मानों लज्जा के भवन में दौड़कर प्रवेश करना चाहते हैं।[2]

परम भागवत श्री विभीषण जी भी प्रस्तुत भक्ति से परिपूर्ण हैं। रावण द्वारा तिरस्कृत होकर वे प्रभु श्री राम जी की शरण में चल देते हैं। वे स्वयं को महान पापी तथा अज्ञानी समझते हैं तथापि उन्हें

---

1. जद्यपि जनम कुमातु से मैं सठ सदा सदोस।
   आपन जान न त्यागिहहिं मोहिं रघुबीर भरोस।।

   रा.च.मा. 2/183

2. आसन दीन्ह नाइ सिर बैठे।
   चहत सकुच गृहं जनु भजि पैठे।।

   रा.च.मा. 2/205/6

प्रभु श्री राम जी की शरणागत वत्सलता पर पूर्ण विश्वास है। वे समुद्र पार करके श्री राम जी के पास जाते हैं तथा अति आतुर होकर उनकी प्रार्थना करने लगते हैं।[1]

श्री हनुमान जी में भी भक्ति की यह विधा समग्र रूप में विद्यमान है। श्री राम जी से उनके प्रथम मिलन पर उनकी यह भक्ति प्रकट हो जाती है। वे शपथ खाकर कहते हैं कि प्रभु मैं अन्य कोई भी भक्ति का साधन नहीं जानता। केवल आपके भरोसे पर ही निश्चिंत बना रहता हूं।[2]

मुनि सुतीक्ष्ण में भी तुलसी ने इसी भक्ति को चित्रित किया है। श्री सुतीक्ष्ण जी मनसा, वाचा, कर्मणा श्री राम जी के सेवक हैं। उन्हें राम के अतिरिक्त स्वप्न में भी किसी अन्य देवता का भरोसा नहीं है।[3]

श्री सुतीक्ष्ण जी अतीव सरल हृदय है। महान ज्ञानी होते हुए भी वे अपने आप को भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य से शून्य कहते हैं। यह निरभिमानिता उनके हृदय की सरलता का संकेत करती है।[4]

इस प्रकार अनेक प्रसंगों में तुलसी ने नवधा भक्ति की इस विधा का सुन्दर निरूपण किया है।

---

1. श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर। रा.च.मा. 5/45
   त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥

2. ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई॥
   सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसे॥

   रा.च.मा. 4/2/3,4

3. मन क्रम बचन राम पद सेवक।
   सपनेहुँ आन भरोस न देवक॥

   रा.च.मा. 3/9/2

4. मोरे जिय भरोस दृढ़ नाहीं।
   भगति बिरति न ग्यान मन माहीं॥ रा.च.मा. 3/9/6

मानस में भक्ति की महिमा –

सगुण उपासना में भक्ति को ही साधन और साध्य मानकर ईश्वर के प्रति आत्म समर्पण किया गया है। मानसकार ने अपने महाकाव्य में भक्ति भाव को ही प्रधानता प्रदान की है। राम भक्ति की महती अभीप्सा कवि को इस राम-कथा मय काव्यग्रन्थ के प्रणयन के प्रति प्रेरकरूप में क्रियाशील अनुभव होती है। अतः पूरे काव्य ग्रन्थ में सर्वत्र राम के प्रति भक्ति भावना का दर्शन होता है। मानसकार का यह दृढ़ विश्वास है कि समस्त दुखों से मुक्ति तथा समस्त सुखों की सम्प्राप्ति राम भक्ति से ही संभव है। राम का नाम स्मरण इच्छित फल प्रदान करने वाला तथा अनिष्ट दुखों का विनाशक है।[1]

राम भक्ति के प्रभाव से भगवान शंकर अमांगलिक वेशभूषा में अमंगल होते हुए भी लोक कल्याणकारी हैं। शुकदेव, सनकादि सिद्ध अलौकिक ब्रह्म सुख का उपभोग करते हैं, नारद स्वयं राम के प्रिय पात्र बन गये हैं। प्रह्लाद भक्त शिरोमणि हो गये हैं। ध्रुव ने अचल स्थिति प्राप्त करली है। हनुमान जी स्वयं राम के अनुपालक बन गये हैं तथा नीच श्रेणी में आने वाले अजामिल, गज व गणिका मोक्ष के भागी हो सके हैं।

---

1. राम नाम कलि अभिमत दाता ।
   हित परलोक लोक सुखदाता ।।
   नहिं कलि करम न भगति बिबेकू ।
   राम नाम अवलम्बन एकू ।।

   रा.च.मा. 1/26/6,7

2. नाम प्रसाद संभु अबिनासी।
   साजु अमंगल मंगल रासी ।।

   × × ×

   अपतु अजामिलु, गजु गनिकाऊ ।
   भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ ।। रा.च.मा. 1/25/1 - 7

स्वयं भगवान शंकर ने भक्ति की महिमा को स्वीकारते हुए भक्ति को ही सत्य और जगत को असत्य माना है। उनके अनुसार भक्ति विहीन प्राणी जीवित भी मृत के तुल्य है।[1]

भक्त शिरोमणि काकभुशुण्डि जी ने गरुड़ जी से भक्ति की महिमा वर्णन करते हुए स्पष्ट कहा है।[2]

उन्होंने राम भक्ति को सर्व सम्मत तथा सर्व संस्तुत माना है।[3] भक्त राज हनुमान ने लंकापति रावण से भक्ति की महिमा स्पष्ट करते हुए कहा है कि जिस प्रकार विभिन्न आभूषणों से विभूषित होते हुए भी निर्वस्त्र नारी शोभा नहीं पाती है उसी प्रकार से वाणी कितने भी रत्नों से अन्वित क्यों न हो किन्तु राम नाम के बिना वह शोभाहीन प्रतीत होती है।[4]

इस प्रकार मानस मूल रूप में भक्ति काव्य का ग्रन्थ है। अतः उसके सभी स्थलों में मानसकार ने कहीं स्पष्ट कहकर और कहीं संकेत मात्र देकर भक्ति की महिमा का अत्यन्त प्रभावपूर्ण शब्दों में वर्णन किया है।

---

1. जिन्ह हरि भगति हृदयँ नहिं आनी ।
   जीवत सव समान तेइ प्रानी ॥ रा.च.मा. 1/112/5

2. राम भजन बिनु सुनहु खगेसा ।
   मिटइ न जीवन केर कलेसा ॥ रा.च.मा. 7/78/1

3. सब कर मत खग नायक एहा ।
   करिय राम पद पंकज नेहा ॥ रा.च.मा. 7/121/13

4. राम नाम बिनु गिरा न सोहा ।
   देखु बिचारि त्यागि मद मोहा ॥
   बसन हीन नहिं सोह सुरारी ।
   सब भूषन भूषित बर नारी ॥ रा.च.मा. 5/22/3,4

ज्ञान तथा भक्ति का तुलनात्मक विवेचन :

परम शक्ति के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना ही भक्ति है। यह समर्पण भक्त के परमानन्द का पथ है। इस पथ पर चल कर वह असीम शांति और आनन्द की पराकाष्ठा को प्राप्त करता है। वस्तुतः इस भक्ति के अगाध सागर में निमग्न अंतःप्रीति परमानंद की महानुभूति में आत्म विस्मृत होकर विलीन हो जाती है। जहाँ गति का निर्दिष्ट लक्ष्य मुस्कराता है वहाँ पहुँचकर भक्त अपने को कृतकार्य अनुभव करताहै। मानस कार ने इस महत अनुभूति को सारभूत और दुर्लभ माना है सर्व मनुष्य शरीर की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि माना है। निर्गुण की आराधना के लिये संतों ने साधन रूप ज्ञान को महत्व दिया है। उनकी दृष्टि में ईश्वर ज्ञान से ही प्राप्त तथा ज्ञान का ही रूप है। किन्तु समर्पण बोधात्मक न होकर भावात्मक तत्व है। अतः आस्था के आधार पर परम तत्व को किया गया समर्पण ही सच्चा समर्पण कहा जायेगा। और इस प्रकार से समर्पित भाव ही परम तत्व के परम प्रेम का पात्र होगा। यह बात यथार्थ है कि ज्ञानी और भक्त दोनों की खोज का एक ही लक्ष्य है किन्तु यह स्वयमेव सिद्ध तथ्य है कि उस लक्ष्य की दृष्टि में भक्ति का महत्व ज्ञानी की तुलना में अधिक होना स्वाभाविक है। मानसकार ने भी "ज्ञानहिं भगतिहिं नहिं कछु भेदा" कहकर ज्ञान और भक्ति को एक धरातल पर स्थिर करने का प्रयास किया है किन्तु भक्ति सहज समर्पित है औरज्ञानी का समर्पण ज्ञान हो जाने पर अवलम्बित है। सहज समर्पण परम तत्व के प्रति सच्ची लगन का प्रतीक है। ज्ञान के मार्ग में शास्त्रार्थ और तर्क लोक मत और वेदमत के बाधक तत्व सदैव प्रस्तुत है किन्तु भक्ति का पथ उस तत्व तक पहुँचने का निर्बाध राज मार्ग है। इसलिये मानसकार ने भक्ति को ज्ञान से अधिक महत्व पूर्ण माना है। इस संबंध में मानस के उत्तर काण्ड में विवेचन के तथ्य इस ढंग से प्रस्तुत हुए हैं कि भक्ति की महिमा स्वतः पाठक की चित्त भूमि में प्रतिष्ठित हो जाती है। प्रथम उन्होंने भक्ति तथा माया ~~दोनों को नारी का रूप~~

को मनोवैज्ञानिक ढंग से "मोहन नारि नारि के रूपा" कहकर स्वतः सिद्ध माना है।[1] अतः भक्ति माया से सदैव विरक्त रहेगी। किन्तु ज्ञान पुरुष कारक है अतः वह माया पर मुग्ध हो सकता है और उसके द्वारा वंचित भी किया जा सकता है। इस प्रकार भक्ति ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त जीव के अंतःकरण में लगी हुई माया की ग्रन्थि जीव के तमाम कष्टों को बढ़ाने वाली है। इस ग्रन्थि के खुलने पर ही जीव कृतार्थ होता है। इसके चारों ओर मोह का घनघोर अंधेरा है अतः विवेकशालिनी बुद्धि इस ग्रन्थि को नहीं देख पाती है। और ग्रन्थि का खुलना प्रकाश के बिना संभव नहीं होता है। मानसकार ने ज्ञान के दीपक द्वारा उस प्रकाश की प्राप्ति अनन्त बाधाओं से अन्वित बतायी है। किन्तु भक्ति स्वयमेव प्रकाशरूप चिन्तामणि के तुल्य कही गयी है।[2] इस भक्ति चिन्तामणि के निर्बाध प्रकाश के समक्ष मोहान्धकार की स्थिति कदापि संभव नहीं है। विवेकशालिनी बुद्धि को इस चिरन्तन प्रकाश की सम्प्राप्ति माया ग्रन्थि के छोरने के कार्य को अत्यन्त सुगम बना देती है और बिना किसी प्रयास के जीव कृतार्थ रूप हो जाता है।

इस प्रकार भक्ति का महत्व ज्ञान से सुन्दर प्रतिपादित किया गया है। मानसकार ने इस भक्ति महाकाव्य में भक्ति को निर्गुण ब्रह्म-वादी संतों के ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण बताकर भक्ति की अनन्त महिमा का उच्चस्वर से उद्घोष किया है।

---

1. मोह न नारि नारि के रूपा ।
   पन्नगारि यह चरित अनूपा ।। रा.च.मा. 7/115/2

2. राम भगति चिंतामणि सुन्दर ।
   बसइ गरुड़ जाके उर अंतर ।।
   परम प्रकाश रूप दिन राती ।।
   नहिं कछु चाहिय दिया घृत बाती ।।

   रा.च.मा. 7/119/2,3

भक्त हृदय की विशेषताएं :—

मानसकार के अनुसार भक्ति भाव की स्थिति सात्विक वृत्तियों से अन्वित अंतःकरण में ही संभव है, जैसा कि स्वयं श्री राम जी ने अपने श्री मुख से व्यक्त किया है–[1]

निःसन्देह ईश्वर के प्रति आस्थावान अंतःकरण विकृतियों के विकास से अपने को सुरक्षित कर लेता है। षट् मनोविकार स्वतः भक्त हृदय से बहुत दूर होते हैं। मानसकार ने भक्त हृदय को समस्त सद्गुणों का पुंज माना है। वस्तुतः सद्गुणों के विकास में सर्वाधिक बाधक अहंभाव भक्त हृदय से कोसों दूर रहता है। अहं की शून्यता स्वतः समस्त वृत्तियों को निर्मल और निर्विकार बना देती है। भक्त सर्वभाव से अपने राम को अपना सर्वस्व मानकर अपने अस्तित्व को उस विराट अस्तित्व में विलीन कर लेता है और फिर चराचर मय अखिल लोक सियाराम मय दर्शित होता है। तब भक्त हृदय सबके प्रति विनम्र व्यवहार करता हुआ सारे जगत से भावनात्मक तादात्म्य स्थापित करता है। मानसकार ने भक्त हृदय की प्रशस्ति उपर्युक्त कथन के आलोक में निम्नवत् प्रस्तुत की है।[2]

वसुन्धरा में इस प्रकार सद्भावी भक्त जनों का बाहुल्य स्वतः लोक कल्याण एवं विश्व बन्धुत्व के विशद भावों का उत्थान करता है। मानसकार ने समस्त भक्तों में सद्गुणों की पूर्ण पुष्टि करते हुए उन्हें लोक कल्याण पथ पर अग्रसर दर्शाया है। जिन भक्त जनों का मानस में चरित्रांकन हुआ है वे सभी अपने कार्यों द्वारा लोक कल्याण के किसी न किसी कार्य को सम्पन्न बनाने में समर्थ सिद्ध हुए हैं। मानस के अयोध्या काण्ड में महर्षि वाल्मीकि द्वारा भक्तों के विभिन्न सद्गुणों का सुन्दर

---

1. मोहि कपट छल छिद्र न भावा ।
   निर्मल मन जन सो मोहि पावा ।। रा.च.मा. 5/43/5

2. उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध ।
   निज प्रभु मय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध ।।

   रा.च.मा. 7/112(ख)

<u>विशिष्ट भक्तों के प्रति तुलसी की आस्था :</u>

भक्ति पथ में अग्रसर विभिन्न विभूतियों के भगवद् प्रेम से भक्ति का प्रेरक तत्व हृदय की वृत्तियों को उस पथ पर दृढ़ रहने की भावना और क्षमता प्रदान करता है। सभी मतानुयायियों ने भक्तों की महिमा को एकमत होकर स्वीकार किया है। तुलसी भी इस पंक्ति से अलग नहीं हैं। उनके मानस में राम भक्तों की महिमा के विशद बहुधा से प्राप्त होते हैं। मानस के प्रारम्भ से और अंत तक भक्त-वृन्दों के द्वारा ही कथा का आदि तथा इति भी दर्शायी गयी है। परम भागवत् मुनिवर याज्ञवल्क्य एवं भरद्वाज, राम भक्त भगवान शंकर एवं अम्बा पार्वती तथा राम प्रेम के साकार रूप काकभुशुण्डि तथा कथा रसिक गरुड़ मानस में कथा के मूल वक्ताओं और श्रोताओं के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। राम भक्त ध्रुव और प्रह्लाद की महत्ता को मानस में स्थान-स्थान पर प्रतिपादित किया गया है। राम भक्ति के द्वारा ही विषम समस्याओं से पतित प्रह्लाद आत्माह्लाद के सुयोग को प्राप्त कर सके।[1]

विधाता के द्वारा अपमानित ध्रुव राम भक्ति के माध्यम से ही अटल पद के भागी बने।[2]

मानसकार के परमिष्ट स्वामी श्री राम के कृपा पात्र उनके सहायक साथी एवं हनुमान भी अपने दृढ़ भक्ति भाव श्री राम को समर्पित करके अपने को कृतार्थ बना सके ये सभी मानसकार के ध्येय, वन्दनीय एवं पूज्य बन गये। सभी भक्तों के प्रति तुलसी की गहरी आस्था मानस में पूर्णतः स्पष्ट होती है। मानस कार का यह दृढ़ विश्वास है कि राम से भी अधिक राम के भक्त मान्य हैं।[3]

---

1. नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू ।
   भगत सिरोमनि भे प्रहलादू ।।   रा.च.मा. 1/25/4

2. ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ।
   पायउ अचल अनूपम ठाऊँ ।।   रा.च.मा. 1/25/5

3. मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा ।

राम के सान्निध्य में आने वाले सभी वन्दनीय भक्त जनों की वन्दना करते हुए मानसकार का भाव मुग्ध-मुग्धकारी अंतःकरण तृप्ति के लिये सदैव बेचैन स्पष्ट होता है। भरत, लक्ष्मण, हनुमान, अंगद, सुतीक्ष्ण, गीध और शबरी, वानरराज सुग्रीव एवं राक्षसराज विभीषण सभी के प्रति तुलसी की आस्था एवं श्रद्धा भावना अत्यन्त उच्च स्तर पर स्थित है। लक्ष्मण की सराहना करते हुए उन्होंने मानस के बालकाण्ड में ही उन्हें राम की यश गाथा का मूलाधार स्वीकृत किया है।

साधक भक्ति से भरपूर भरत की महिमा से तो मानस का अयोध्याकाण्ड पूर्णरूपेण आपूर्ण है। सभी सिद्ध, ज्ञानी गुरु वशिष्ठ, योगी, जनक, तपोनिष्ठ महर्षि भरद्वाज, एवं स्वयं श्री राम भरत की महान महिमा के महा सिंधु में निमग्न से प्रतीत होते हैं। इस प्रकार से मानसकार ने भक्त शिरोमणि भरत का गौरवगान करके इस भक्ति महाकाव्य में भक्तिभाव का भावात्मक पोषण किया है। भरत के महिमोदधि को पार करने में ज्ञानी गुरु वशिष्ठ की बुद्धि स्नोतस्व की कोटि में मानसकार द्वारा स्थित की गयी है।[2]

भक्त शिरोमणि हनुमान के गौरव के प्रति तो मानसकार का अद्भुत व्यक्तित्व सा अनुभव होता है। भक्ति के पुंज हनुमान की प्रशंसा करते हुए मानसकार भाव की सर्वोच्च सीमा पर आसीन होते हैं और स्वयं श्री राम जी के श्री मुख से उनकी प्रशस्ति का उद्घोष कराते हैं।[3]

---

1. बन्दउँ लछिमन पद जल जाता।
   सीतल सुभग भगत सुख दाता॥
   रघुपति कीरति बिमल पताका।
   दण्ड समान भयउ जस जाका॥ रा.च.मा. 1/16/5,6

2. भरत महा महिमा जल रासी।
   मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी॥ रा.च.मा. 2/256/2

3. सुनु कपि तोहि उरिन मैं नाहीं।
   करि विचारि देखेउँ मनमाहीं॥ रा.च.मा. 5/31/7

राम प्रेम-रस-रसिक मुनि सुतीक्ष्ण की प्रेम भावना की प्रशंसा करते हुए मानसकार ने स्पष्ट किया है कि मुनि के प्रेमाधिक्य से प्रभावित होकर श्री राम को मुनि के भाव पूर्ण अंतःकरण में अपनी स्थिति दृढ़ करनी पड़ी ।[1]

भक्त हृदय केवट भक्ति भाव के प्रभाव से ही अपने अस्पृश्यत्व के दोष से मुक्त होकर वशिष्ठके सदृश पुण्य द्विजवर के हार्दिक मिलन का सुयोग पा सका ।[2]

अपनी अगाध भक्ति भावना के कारण आमिष भोगी जटायु राम का परम कृपा पात्र बन सका और उसकी भक्ति भावना से प्रभावित होकर श्री राम ने उसे अपने पूज्य पिता दशरथ के समान आदर प्रदान किया तथा अंत में उसे सारूप्य मुक्ति प्रदान की।[3]

राम भक्ति रस की रसिका भीलनी शबरी के महिमामय भाव में स्वयं श्री राम आत्म विस्मृत होकर खो से गये और उसके अकिंचन बेरों में उन्हें सुधा रस के आस्वादन की अनुभूति हुई।[4]

श्री राम ने स्वयं उसकी भक्ति भावना की प्रशंसा करते हुए नवधा भक्ति की स्थिति उसमें स्वयं स्वीकृत की।[5]

---

1. अतिशय प्रीति देखि रघुबीरा ।
   प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा ।। रा.च.मा. 3/9/14

2. राम सखा रिषि बरबस भेंटा ।
   जनु महि लुठत सनेह समेटा ।। रा.च.मा. 2/193/4

3. गीध देह तजि धरि हरि रूपा ।
   भूषन बहु पट पीत अनूपा ।। रा.च.मा. 3/31/1

4. कंदमूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि ।
   प्रेम सहित प्रभु खाये बारंबार बखानि ।। रा.च.मा.3/34

5. नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई।।
   सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।।
   जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहुँ आज सुलभ भइ सोई।।

   रा.च.मा. 3/35/6,7,8

इस प्रकार मानसकार ने अपने इस भक्ति महाकाव्य में राम भक्तों की महिमा का मुक्त कण्ठ से अनुमोदन किया है तथा उनके प्रति अपनी गहरी श्रद्धा समर्पित करके अपने दैन्य भाव अपने परमेष्ट स्वामी श्री राम तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया है।

<u>मानस में भक्ति मार्ग और लोक कल्याण :—</u>

वस्तुतः भक्त हृदय लोककल्याण के लिये ही अपनी सारी साधना समर्पित करता है। मानसकार ने काव्य के प्रारम्भिक स्थल पर माँ पार्वती के द्वारा लोक कल्याण कारिणी राम कथा सुनने के लिये अपनी अभिलाषा स्पष्ट करायी है।[1]

मानस के अंतर्गत वर्णित समग्र राम कथा श्री राम के प्रति भक्ति भाव समर्पण के रूप में ही है। लोक कल्याण के अनेकानेक तत्व इस कथा के अन्तराल में निहित है। राम भक्ति स्वयं अंतःकरण के सद्भावों की जागृति का दूसरा नाम है। मानसकार ने भक्ति के विवेचन में यह स्पष्ट कर दिया है कि जितने भी सत्कार्य हैं वे सभी भक्ति भाव के ही रूप हैं। राम का जीवन सत्कार्यों का पुंज है। अतः यह स्वयं सिद्ध है कि राम के प्रति भक्ति भाव सत्कार्यों के प्रति सच्ची निष्ठा का ही प्रतिरूप होगा। भक्ति मार्ग का मार्गी संकीर्ण स्वार्थ वृत्तियों को तृण के समान त्याग कर समग्र अग- जग-मय जनता को सियाराम मय मानते हुए सबके कल्याण का कांक्षी होता है। मानसकार ने लोक कल्याण के मौलिक तत्व सत्य, अहिंसा, परहित, दया, क्षमा, मैत्री, दीन वत्सलता आदि को भक्तिभाव का ही रूप माना है। इस प्रकार मानसकार का यह अटूट विश्वास है कि राम का भक्त लोकहितैषी एवं लोकहित कारक समग्र गुण एवं क्षमताओं का पुंजीभूत महान व्यक्तित्व सम्पन्न महापुरुष होगा।

---

1. कथा जो सकल लोक हितकारी ।
   सोइ पूछन चह सैल कुमारी ॥

   रा॰च॰मा॰ 1/106/6

सभी राम भक्त लोक कल्याण के काम में ही संलग्न दर्शित होते हैं। अनाचार का विरोध लोक कल्याण का ही रूप है। राम भक्त हनुमान, गुरु अनाचार के उन्मूलन के लिये कटिबद्ध दर्शित हुए हैं। बड़ी से बड़ी कठिनाइयों के समक्ष ये भक्त जन अपने शक्ति-कोष को नियोजित कर देते हैं तथा किंचित मात्र भयभीत न होते हुए अनाचारी को परास्त एवं विनष्ट करके लोक कल्याण के पुण्य पथ को प्रशस्त करते हैं। ऋषि, मुनि जो भी राम की भक्ति में लीन हैं उनका उद्देश्य लोकहित ही है। त्याग व तपस्या भक्त के अभिन्न साधना क्षेत्र हैं। ये ही लोक कल्याण के हेतु हैं। अतः राम भक्ति के पथ में लोक कल्याण की अक्षय सुरभि से सुरभित कल्प पादपों का पुंज आरोपित है। मानसकार का विश्वास है कि समस्त दुखों का उन्मूलन भक्ति के द्वारा ही संभव है।[1]

नवधा भक्ति के अंतर्गत मानसकार ने स्वयं स्वीकार किया है कि लोक कल्याण के समस्त कार्य राम के प्रति भक्ति भाव का सच्चा समर्पण है। त्याग, सेवा, परोपकार की भावना, प्राणि दया आदि समग्र गुण राम भक्त के अभिन्न सहचर हैं और ये गुण ही लोक कल्याण के साधक हैं। त्याग के द्वारा भरत, सेवा के द्वारा हनुमान, परोपकार वृत्ति के द्वारा गीध लोक कल्याणकारी सिद्ध होते हैं। अतः यदि यह कहा जाय कि राम भक्ति पथ ही लोक कल्याण पथ है तो कोई अनुचित नहीं होगी। राम चरित मानस भक्ति भाव का पोषण करने वाला महाकाव्य है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यह महान काव्य ग्रन्थ लोक कल्याण का साधक ग्रन्थ रत्न है।

---

1. राम भजन बिनु सुनहु खगेसा ।
   मिटइ न जीवन केर कलेसा ।।

   रा.च.मा. 7/88/5

मानस में भक्ति के आलम्बन श्री राम में शील शक्ति व सौन्दर्य की पूर्णता का दिग्दर्शन -

मानव हृदय में किसी विशिष्ट के प्रति किन्हीं विशिष्ट गुणों के कारण विभिन्न भाव उत्पन्न सम्बर्धित एवं स्थिरहोते हैं। भाव की स्थिरता इस तथ्यका प्रमाण होती है कि वह विशिष्ट व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति आकर्षक गुणों का अक्षुण्ण कोष है। मानसकार ने अपने राम में आकर्षण के जिन विशिष्ट तत्वों का निदर्शन किया है वे हैं उनके परा-काष्ठा पर प्रतिष्ठित - शील, शक्ति और सौन्दर्य। व्यक्तित्व की ये तीनों विशेषतायें क्रमशः मानव,महामानव, देवता और ईश्वर की कोटि तक व्यक्तित्व का व्यापक विस्तार करने में सक्षम हैं। मानसकार ने राम के उदात्त चरित्र में इन तीनों विशेषताओं का उच्चतम सीमा पर अंकन किया है। इसी कारण राम का रामत्व सहज रूप से ईश्वरत्व के महत्व को आत्मसात कर सका है। उनके प्रति अनायास भावुक हृदयों का भक्ति भाव समर्पण का साज सजाकर भाव मग्न स्थिति में पहुँचा हुआ आभासित होता है।

राम के उदात्त व्यक्तित्व में शील,शक्ति व सौन्दर्य की पुनीत त्रिवेणी का पावन संगम ही लोकाभिराम, लोकपावन एवं लोककल्याण कर सर्वमान्य है। मानस में उनके इस विशद व्यक्तित्व की अलौकिक झाँकियाँ प्रस्तुत करके मानसकार ने हम सब की उनके प्रति भाव भक्ति अभिमंत्रित की है। निःसन्देह उक्त तीनों तत्व मानव अंतःकरण को आह्लादित आकर्षित एवं प्रभावित करने वाले तत्व हैं। मानव के शारीरिक आकर्षण में सौन्दर्य व शक्ति तथा आंतरिक आकर्षण में शील अपनी स्थिति के अनुरूप मानव चित्त में स्थान प्राप्त करते हैं। राम के व्यक्तित्व में इन तीनों को मानसकार ने पराकाष्ठा प्रतिष्ठित किया है।

राम के व्यक्तित्व में शील -

हृदयगत भावों के उदात्त रूप को शील की संज्ञा दी जाती है।

सार्वभौमिक प्रेम, विनय, कल्याण, दया, सहानुभूति, सहिष्णुता एवं निर-भिमानता के भव्य भाव शील के परिचायक है। राम में इन सबका समन्वित कोष व्याप्त है। प्रेम तत्व राम हृदय का सर्वाधिक प्रिय तत्व है। मानसकार ने इसकी स्पष्ट घोषणा की है।[1]

अपने प्रिय परिवार, परिजन, पुरजन, सखा, दीनजन एकाएक मिले हुए अपरिचित जन, कोलभील केवट, बन्दर, भालु, गीध सभी के प्रति राम का प्रेम भाव असीम है। इस प्रेम भाव के कारण राम के प्रति सबके आन्तरिक प्रेम का सम्बन्ध स्वाभाविक हो गया है।

नम्रता भी राम के व्यक्तित्व में सीमातीत रूप में समाहित है। शत्रु के प्रति भी वे नम्र हैं। यही कारण है कि मानसकार ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की है।[2]

गुरु, पिता, माता, कुटुंब, ऋषि, मुनि आदि के प्रति तो नम्रता सार्वभौमिक देखी जाती है। किन्तु वध की धमकी देने वाले परशुराम[3] वनवास का कष्ट देने वाली कैकेयी[4] तथा पथावरोध करने वाले सागर के प्रति भी राम विनत हैं। यह विनम्रता अत्यन्त मधुर एवं मनुष्य के हार्दिक भक्ति भाव को अभिप्रेरित करने वाली है।

राम की सहानुभूति सच्ची सहानुभूति है। वे अपने अनुजों के प्रति अटूट ममत्व का भाव रखते हैं। बाल्यावस्था से ही भोजन एवं क्रीड़ा आदि के दैनिक कार्यकलापों में अनुजों का सच्चा साथ देते हैं। इतना ही नहीं अनुज भरत का तो यहाँ तक अनुभव लिखा हुआ है कि उन्हें आनंदित करने के लिये राम खेल में स्वयं हार अंगीकार करके उन्हें विजयी बनाते थे।

---

1. रामहिं केवल प्रेम पियारा ।
   जान लेहु जो जाननिहारा ।। रा.च.मा. 2/136/1

2. बैरिउ राम बड़ाई करहीं ।
   बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं ।। रा.च.मा. 2/199/7

3. कृपा कोप बधु बंधब गोसाईं ।
   मो पर करिय दास की नाईं ।। रा.च.मा. 1/278/5

4. प्रथम राम भेंटी कैकेयी । सरल सुभायँ भगति मति भेईं ।
   '243/7

अनुज लक्ष्मण को शक्ति बाण लगने पर उनकी सहानुभूति का जो रूप देखने को मिलता है वह अद्वितीय है। ऐसा अनुभव होता है कि लक्ष्मण नहीं राम ही शक्ति बाण से आहत हुए हैं।[1]

उनकी यह सहानुभूति केवट, गीध, शबरी एवं सखा बन्दर-भालुओं के प्रति अनेक स्थलों पर स्पष्ट देखने को मिलती है।

सहिष्णुता भी राम के व्यक्तित्व में अतुलनीय समाविष्ट है। कठिन से कठिन परिस्थितियों को सहर्ष स्वीकृत करने में उनकी सहिष्णुता की पुष्टि का ही परिचय मिलता है। राज्याभिषेक के मंगल संवाद के तुरन्त बाद वनोवास की सूचना उनके चित्त को तनिक भी विक्षुब्धकरने में समर्थ नहीं हुई। इससे उनकी सहिष्णुता स्पष्ट होती है।[2]

परशुराम के कठोर वचन, वनवासी जीवन के अनेकानेक कठोर अनुभव तथा राक्षसों से निर्गत अनेक कटु वचन राम के उन्नत भाव जगत में कोई हलचल पैदा नहीं कर सके। ये सभी तथ्य उनकी महत् सहिष्णुता के परिचायक हैं।

अभिमान तो राम के चरित्र में कहीं स्पर्श तक नहीं हुआ है। वे स्वाभाविक रूप से अभिमानशून्य हैं। सबसे अत्यन्त प्रेम पूर्वक मिलना, उनकी बातें सुनना, उनके प्रश्नों का उत्तर देना, उनके अभिमान शून्य अंतःकरण का दिग्दर्शन कराते हैं। जनक पुरी के अवलोकन हेतु जब वे जाते हैं तो छोटे छोटे बालक एवं नगर के नागरिक सब उन्हें अपने निकट बुलाते हैं और राम उनके पास जाकर अपने अभिमानशून्य व्यवहार द्वारा उन्हें आकर्षित करते हैं।[3]

---

1. जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना।।
   अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जियावै मोही ।।
   रा.च.मा. 6/60/9,10

2. राव सुनाई दीन्ह बनवासू ।
   सुनि मन भयउ न हरषु हरासू।। रा.च.मा. 2/148/7

3. निज निज रुचि सब लेहिं बुलाई ।
   सहित सनेह जाहिं दोउ भाई ।। रा.च.मा. 1/224/1

अनुज लक्ष्मण को शक्ति बाण लगने पर उनकी सहानुभूति का जो रूप देखने को मिलता है वह अद्वितीय है। ऐसा अनुभव होता है कि लक्ष्मण नहीं राम ही शक्ति बाण से आहत हुए हैं।[1]

उनकी यह सहानुभूति केवट, गीध, शबरी एवं सखा बन्दर-भालुओं के प्रति अनेक स्थलों पर स्पष्ट देखने को मिलती है।

सहिष्णुता भी राम के व्यक्तित्व में अतुलनीय समाविष्ट है। कठिन से कठिन परिस्थितियों को सहर्ष स्वीकृत करने में उनकी सहिष्णुता की वृत्ति का ही परिचय मिलता है। राज्याभिषेक के मंगल संवाद के तुरन्त बाद वनोवास की सूचना उनके चित्त को तनिक भी विचलितकरने में समर्थ नहीं हुई। इससे उनकी सहिष्णुता स्पष्ट होती है।[2]

परशुराम के कठोर वचन, वनवासी जीवन के अनेकानेक कठोर अनुभव तथा रावणों से निरर्थक अनेक कटु वचन राम के उन्नत भाव जगत में कोई हलचल पैदा नहीं कर सके। ये सभी तथ्य उनकी महत् सहिष्णुता के परिचायक हैं।

अभिमान तो राम के चरित्र में कहीं स्पर्श तक नहीं हुआ है। वे स्वाभाविक रूप से अभिमानशून्य हैं। सबसे अत्यन्त प्रेम पूर्वक मिलना, उनकी बातें सुनना, उनके प्रश्नों का उत्तर देना, उनके अभिमान शून्य अंतःकरण का दिग्दर्शन कराते हैं। जनक पुरी के अवलोकन हेतु जब वे जाते हैं तो छोटे छोटे बालक एवं नगर के नागरिक सब उन्हें अपने निकट बुलाते हैं और राम उनके पास जाकर अपने अभिमानशून्य व्यवहार द्वारा उन्हें आकर्षित करते हैं।[3]

---

1. जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना।।
   अस मम जिवन बंधु बिनु तोही । जौं जड़ दैव जियावै मोही ।।
   रा.च.मा. 6/60/9,10
2. राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू ।
   सुनि मन भयउ न हरषु हरासू।। रा.च.मा. 2/148/7
3. निज निज रुचि सब लेहिं बुलाई ।
   सहित सनेह जाहिं दोउ भाई ।। रा.च.मा. 1/224/1

केवल बड़ों के ही साथ नहीं अपितु अपने अनुचरों के प्रति भी राम अभिमान शून्य हैं। वानर वृक्ष की डालों पर विराजमान हैं और राम वृक्ष के नीचे आसीन हैं। कभी उनके अंतःकरण में यह भाव ही नहीं है कि मैं इनका स्वामी हूं या इनसे बड़ा हूं।[1]

इन सब विवेचनों से राम के महत् व्यक्तित्व में समाहित शील का सम्यक् स्पष्टीकरण हो जाता है।

राम के व्यक्तित्व में शक्ति -

किसी भी कार्य को व्यवस्थित ढंग से संचालित करके उसे निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुंचाने का कार्य शक्ति पर अवलंबित होता है। शक्ति की पुष्कलता और कार्य की पुष्कलता का जहां सामंजस्य होता है वहां निर्बाध रूप से कार्य गतिशील रहता है और शक्ति सम्पन्नकार्य कर्ता विघ्न बाधाओं के बड़े बड़े पर्वतों को टालता हुआ अपने पथ को प्रशस्त बनाता जाता है। और अंत में लक्ष्य पर पहुंचकर अपने को कृतार्थ बनाता है। राम ~~की~~ के महत् व्यक्तित्व में शक्ति का समावेश इस रूप में मिलता है कि हमें उनकी अलौकिकता स्वतः सिद्ध अनुभव होती है। कायिक, बौद्धिक, आत्मिक, शक्तियों का राम के व्यक्तित्व में पूर्ण समावेश मिलता है। उनके बलिष्ठ शरीर का इससे बड़ा दूसरा क्या प्रमाण हो सकता है कि देशदेशान्तर के नरेशों को नत मस्तक बना देने वाला भगवान शंकर का धनुष उनके द्वारा सहज ही टूट जाता है। कठिनाइयां सहन करने की क्षमता उनके शरीर में उनके वनोवास अवधि के कठिनाई साध्य जीवन से स्वतः झलकती है। शरीर के बल विक्रम का आभास दुर्दान्त दनुजों के पराभव करने में स्वतः स्पष्ट होजाता है।

---

1. प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान ।
   तुलसी कहूं न राम से साहिब सील निधान ॥

   रा.च.मा. 1/29/(क)

इस प्रकार यह निर्विवाद है कि वे शारीरिक शक्ति के पुंज थे। उनके सम्बन्ध में मानस कार का निम्नलिखित कथन अक्षरशः सत्य है।[1]

जहाँ तक बौद्धिक शक्ति का सम्बन्ध है वह राम के प्रत्येक कार्य में स्पष्ट लक्षित होती है। शिक्षा ग्रहण में ही उनकी बौद्धिक शक्ति का पूरा आभास तुलसी ने दे दिया है।[2]

उनके पूरे वृत्त में कोई भी ऐसा कार्य नहीं दिखायी पड़ता जो विवेक और विचार से शून्य हो। उनके कार्यों को इतनी बड़ी लोक सम्मति इसीलिये उपलब्ध हुई कि वे बौद्धिक दृष्टि से अत्यन्त उच्च प्रतिभाओं से सम्पन्न थे। उत्तर और दक्षिण का समन्वय, दक्षिण में दुर्दान्त दैत्यों का सफाया तथा समस्त सम्बन्धित लोगों में अपने प्रति अटूट आस्था स्थिर करने का कार्य उनकी बौद्धिक क्षमता द्वारा ही संभव हो सका है। उचित और अनुचित के प्रश्नों में उनकी सारग्राही बुद्धि सदैव उचित को ग्रहण करती हुई मिलती है। अतः उनका बौद्धिक बल शारीरिक बल की भाँति ही स्तुत्य है। राम की शक्ति का सर्वोत्कृष्ट निदर्शन उनकी आत्मिक शक्ति में मिलता है। वस्तुतः वे लोकोत्तर आत्मिक शक्ति से सम्पन्न थे। सत् के प्रति अडिग और अटूट आस्था उनकी उच्च आत्मिक शक्ति द्वारा ही संभव हो सकी है। राज्याभिषेक का हर्ष और वनोवास का दुख दोनों उन पर प्रभावी नहीं हो सके। यह उनकी उच्च आत्मा का ही बोधक है। वनवास के कठोरतम क्षणों में अपनी स्वाभाविक प्रसन्नता को अक्षुण्ण बनाये रखना आत्मिक शक्ति पर ही अवलम्बित है। राज्याभिषेक के बाद एक ऐसे सुखद और सुखी राज्य का निर्माण करना जिसमें समस्त प्रजा धर्म

---

1. सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई॥
   बिष्नु कोटि सम पालन कर्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्ता॥

   रा॰च॰मा॰ 7/91/5,6

2. गुरु गृहँ गए पढ़न रघुराई।
   अलप काल बिद्या सब आई॥ रा॰च॰मा॰ 1/203/4

दैहिक, दैविक, भौतिक त्रय तापों से मुक्त ही राम की उच्च आत्मिक शक्ति का ही विधान है। अतः राम का आत्म बल सर्वथा श्लाघ्य है। राम की शक्ति का चौथा रूप मानसकार ने उनकी अलौकिकता को स्थान-स्थान पर चित्रित करके प्रस्तुत किया है। बाल्यावस्था में ही माता कौशल्या उन्हें पालने पर सुलाके दुबारा फिर भोजनालय में भोजन करते हुए पाती हैं और बालक के लोकोत्तर व्यक्तित्व में अपनी आस्था स्थिर करती हैं।[1] गौतम पत्नी अहिल्या के शाप शापित शिला रूप का उनकी पद रज स्पर्श से पुनः पूर्व रूप में आ जाना उनकी दिव्य शक्ति का द्योतक है।[2] अखिल विश्व के वीरों को पराङ्मुख करने वाला अजगव मृणालिका की भाँति उनके द्वारा टूट जाता है। यह उनकी अलौकिक शक्ति का ही प्रतीक है। सागर पर सेतु का निर्माण उनकी अलौकिकता का परिचायक है। अखिल विश्व को अपनी शक्ति से त्रस्त करने वाले राक्षसराज रावण का वध उनकी अलौकिक शक्ति का ही दिग्दर्शन कराता है। अस्तु उनकी शक्ति सभी रूपों में मानसकार ने अतुलनीय प्रमाणित की है।

राम के व्यक्तित्व में सौन्दर्य -

शील अंतः चक्षुओं का तथा सौन्दर्य बाह्य चक्षुओं का आनन्द तत्व है। आकर्षण के ये दोनों केन्द्र व्यक्तित्व के निखारने के लिये सदैव अपेक्षित हैं। राम के व्यक्तित्व में जहाँ शील अपनी पराकाष्ठा पर है-

---

1. तन पुलकित मुख बचन न आवा ।
   नयन मूदि चरनन सिर नावा ।।
   विस्मय वंत देखि महतारी ।
   भए बहुरि सिसु रूप खरारी ।।

   रा.च.मा. 1/201/5,6

2. रा.च.मा. 1/210/छंद ।

विरोधी राक्षस भी उनकी रूप माधुरी पर मुग्ध हैं।[1]

उक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि राम का दिव्य सौन्दर्य नेत्रों में अपनी चिर स्थिति स्थिर करने में पूर्ण सक्षम है। जगत के विनाशी सौन्दर्य से इस अटल और अविनाशी सौन्दर्य के प्रति भक्त हृदय की अटूट आस्था स्थिर होना स्वाभाविक है। इस प्रकार तुलसी ने मानस में राम के अलौकिक व्यक्तित्व में शील, शक्ति व सौन्दर्य की अद्वितीय प्रतिष्ठा करके हृदय की सहज भक्ति भावना उनके प्रति चिर स्थायी बनाने का सफल प्रयास किया है।

आनन्द रामायण में भक्ति -

भक्त के समग्र स्वत्व का विसर्जन करते हुए उसे उसी में विलीन करने का समर्पण भाव, जिसमें राग की समग्रता पूर्ण रूप से एक ही आराध्य को निवेदित हो, भक्ति की संज्ञा से अभिहित होता है। अंतःकरण की भावना जब एक निष्ठ होकर अखिल विश्व के राग को समग्र अपने आराध्य भक्त को समर्पित कर देती है तब जिस परम आनंद का आभास अभीप्सित है उसकी उपलब्धि होती है। आनंद की इसी सीमा पर पहुंचना भक्ति का उद्देश्य है। भक्ति की उत्कृष्टता समर्पण की ही उत्कृष्टता पर अवलंबित है। निरपेक्ष भाव से अन्य सभी आकांक्षाओं को इस समर्पण के समक्ष विसर्जित करके इसी में एकात्म भाव से लीन होना भक्ति का विशुद्ध रूप है। भक्ति का यह भाव अविनाशी परम तत्व परमात्मा के प्रति ही निवेदित होता है। रामत्व के प्रति यह निवेदन सनातन है। समस्त राम काव्य ग्रन्थ इस समर्पण के कारण ही भक्ति काव्य ग्रन्थों के रूप में मान्य हैं। आनन्द रामायण भी इसी कोटि का ग्रन्थ है।

---

1. प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी ॥
   जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ॥

   रा.च.मा. 3/18/1 से 5 तक

भक्ति और रामकाव्य-

व्यक्तित्व की व्यापकता के कारण राम का ईश्वरत्व लोकमान्य हुआ। उनके व्यक्तित्व में समस्त मानवीय सद्गुण पुंजीभूत है। नरत्व को ईश्वरत्व की कोटि तक ले जाने में सद्गुणों का सम्बल अनिवार्यतः अपेक्षित है। राम के चरित्र में समस्त सद्गुण पराकाष्ठा पर प्रतिष्ठित अनुभूत होते हैं। शक्ति और सौन्दर्य की अद्वितीयता के मध्य शीलता की अनुपमता उनके व्यक्तित्व का अपना निरालापन है। अतः वे अंतःकरण की भक्ति भावना को हठात् आकर्षित कर लेते हैं। हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य "साकेत" में कविवर श्री मैथिलीशरण जी गुप्त तो रामत्व के समक्ष ईश्वरत्व को भी उपेक्षित कर देते हैं।[1]

इन्हीं व्यापक गुणों के कारण राम भक्ति भाव के परम आश्रय मान्य हुए हैं। अतः आदि काव्य वाल्मीकि रामायण से आधुनिक काव्य तक के सभी राम काव्य साधकों ने राम को अपना आराध्य मानकर भक्ति भाव समर्पित किये हैं। इस प्रकार राम काव्य ग्रन्थ भक्ति काव्य ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। वाल्मीकि- रामायण अध्यात्म रामायण, प्रसन्न राघव, हनुमन्नाटक, रघुवंश, उत्तर - रामचरित, रामचन्द्रिका एवं राम चरित मानस, वैदेही-वनवास व साकेत इत्यादि सभी संस्कृत तथा हिन्दी राम काव्य ग्रन्थों में राम के प्रति असीम भक्ति भाव का समर्पण हुआ है। अतः आनन्द रामायण भी इस सनातन शृंखला की एक कड़ी है।

---

1. राम, तुम मानव हो ? ईश्वर नहीं हो क्या ?
   विश्व में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या ?
   तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करे,
   तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे।

   - "साकेत" - (प्राक्कथन)

आनन्द रामायण में सगुण ब्रह्म की मान्यता -

लोक मंगल के महान साधकों के सम्बन्ध में लोक मत उनके प्रति प्रेम और श्रद्धा की चरम सीमा पर पहुंच जाता है। ये लोक मंगल साधक महामानव अपनी अलौकिक शक्ति, सुन्दरता और शीलता के कारण ईश्वरत्व की कोटि में अभिषिक्त हो जाते हैं। राम व कृष्ण के सम्बन्ध में इन्हीं अलौकिक गुणों के कारण ईश्वरत्व की लोकमान्यता स्थिर हुई। हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ मनीषी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी निम्नलिखित शब्दों द्वारा इस तथ्य की पुष्टि की है -

" भगवान जब अनुग्रह करते हैं तो अपनी दिव्य ज्योति ऐसे महान संतों में उतार देते हैं। एक बार जब यह ज्योति मानव देह को आश्रय करके उतरती है तो चुपचाप नहीं बैठती। वह क्रियात्मक होती है। नीचे गिरे हुए अभाजन जनों को वह प्रभावित करती, ऊपर उठाती है। वह उतरती है और ऊपर उठाती है। इसे पुराने पारिभाषिक शब्दों में कहें तो कुछ इस प्रकार होगा कि एक ओर उसका अवतार होता है दूसरी ओर औरों का उद्धार होता है। अवतार और उद्धार की यह लीला भगवान के प्रेम का सक्रिय रूप है जिसे पुराने भक्त जन अनुग्रह कहते हैं।"[1]

साहित्य साधकों ने अपने भाव- कुसुम सदैव लोकमंगल साधक महान पुरुषों के पद-पद्मों पर अर्पित किए हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के अलौकिक व्यक्तित्व ने लोक मानस में परम व सत्य परमात्मा के साकार रूप में उसे से मान्यता प्राप्त कर ली है। आनन्द रामायणकार ने भी अपने काव्य-ग्रन्थ में राम को सगुण साकार ब्रह्म का अवतार माना है।

राक्षसों के अत्याचार से पीड़ित पृथ्वी द्वारा गाय का रूप धारण करने तथा ब्रह्मा इत्यादि समस्त देवताओं के सहित भगवान विष्णु के पास जाने का चित्रण ग्रन्थकार ने सार काण्ड में प्रस्तुत किया है। श्री विष्णु

---

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ("गुरु नानक" - निबन्ध से)

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने लोककल्याणार्थ ईश्वर के मनुष्य रूप में अवतरित होने की मान्यता को बल प्रदान किया है। अतुलित शील, शक्ति व सौन्दर्य से युक्त श्री राम को साकार ब्रह्म मानकर ग्रन्थकार ने उन्हें भक्ति के परम् आश्रय के रूप में स्वीकार किया है।

<u>आनन्द रामायण में वैधी भक्ति :</u>

किसी व्यक्तित्व पर जब मानव अंतःकरण पूर्ण रूपेण समर्पित हो जाता है तब उसके मन, वचन और कर्म उसी व्यक्तित्व में लीन हो जाते हैं। परम तत्व के प्रति यह आस्था भक्ति की सारी क्रियाओं को समर्पण के इसी क्रम में स्थिर करती है। अतः एक ओर वह अपने अंतःकरण की निष्काम प्रेम भावना अपने आराध्य को समर्पित करता है तथा दूसरी ओर अपनी भावनात्मक समर्पण भावना को मूर्त रूप में विभिन्न अर्चन विधियों के द्वारा सम्पुष्ट करता है। वह अपने आराध्य की पुनीत प्रतिमा के समक्ष मांगलिक द्रव्यों को सुसज्जित करके वन्दन, माल्यार्पण, नीराजन आदि अर्चन विधियों द्वारा अभिनंदित करता है। उसके भोजन-ग्रहण, पट धारण एवं जगत के समस्त जीवनोपयोगी भोगों में अपने आराध्य द्वारा प्रदत्त प्रसाद का भाव समाहित होता है। इस प्रकार विधि विधान से आराध्य के अर्चन तथा उसके प्रति समर्पण के साथ जीवन यापन की पद्धति वैधी भक्ति के नाम से अभिहित है। भक्त कवियों ने अपने काव्य-ग्रन्थों में इस पद्धति को विविध रूपों में प्रस्तुत किया है। आनन्द रामायण भी इस भक्ति पद्धति के विभिन्न चित्रों से परिपूर्ण काव्य ग्रन्थ है।

आनन्द रामायणकार ने ग्रन्थ के मनोहर काण्ड में अनेकानेक अनुष्ठानों का वर्णन प्रस्तुत करते हुए उनकी क्रियाविधि का विस्तृत विवेचन किया है। समग्र काण्ड में वैधी भक्ति का भावपूर्ण चित्रण करके कवि ने अपने आराध्य श्री राम की महती कृपा प्राप्त करने का सदुपदेश प्रदान किया है। काण्ड के तृतीय सर्ग में श्री रामकी मानसी

काण्ड के षष्ठ सर्ग में रामतीर्थान्तर्गत देवताओं की स्थापन विधि का एवं शास्त्रिक विवेचन प्रस्तुत हुआ है। सप्तम् सर्ग में लक्षराम नाम लेखन तथा उसके उद्यापन की विधि के विधान से भी ग्रन्थकार के वैधी भक्ति की सम्पन्न भावुक हृदय का स्वाभाविक परिचय प्राप्त हो जाता है। काण्ड के नवम सर्ग में तो कवि ने श्री राम की विविध-कालीन पूजा का विस्तृत वर्णन करके वैधी भक्ति का उत्तम आदर्श प्रस्तुत किया है। इस विविधकालीन पूजा के अन्तर्गत कवि ने माघ मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी से लेकर वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी तक अनेक उत्सवों के साथ श्री राम जी के पूजन की विधि का विशद व भावपूर्ण चित्रण किया है।

आनन्द रामायण कार ने विभिन्न देवस्थानों पर ध्वजारोपण के व्रत की विधि तथा उसके माहात्म्य का भी सुन्दर वर्णन अपने ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। याग काण्ड के सप्तम सर्ग में कवि ने ध्वजारोपण व्रत को अति पुण्योत्पादक बतलाया है। विष्णु मंदिर के ऊपर ध्वजारोपण करने वाले प्राणी की पूजा ब्रह्मादिक देवता भी करते हैं। यह व्रत समस्त पापों को नष्ट करने वाला है।[1]

इसी प्रकार मनोहर काण्ड के चौथा सर्ग में श्री हनुमान जी की विस्तृत पूजन विधि का वर्णन करके ग्रन्थकार ने हनुमत्पताकारोपण व्रत का विधान किया है।

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने अपने इष्ट   के प्रति समर्पण भावना को विभिन्न अर्चन-वन्दन विधियों द्वारा निवेदित करके वैधी भक्ति का भावात्मक एवं उत्कृष्ट आदर्श उपस्थित किया है।

---

1. यः कुर्याद्विष्णुभवने ध्वजारोपण मुत्तमं ।
   सर्वं पापहरं एवं ध्वजारोपण सँज्ञितम् ॥

   आ॰रा॰ 3/7/10 से 13 तक

आनन्द रामायण में प्रेमा भक्ति :

अंतःकरण के राग का एकात्म भाव से स्वतः समर्पण प्रेम है। समस्त सम्बन्ध, संसर्ग, समन्वय, सम्पर्क, संहति, संगति, संगठन और सहयोग का योग इसी राग तत्व के बल पर आधारित है। आराध्य के प्रति किये गये अनन्य समर्पण में तन्मयता व तादात्म्य की स्थिति इसी राग तत्व के बल पर स्थिर होती है। इस स्थिति में पहुँचकर अन्तर समाप्त प्रायः हो जाता है। आराधक और आराध्य दोनों का आत्म मिलन अंतःकरण को आनन्द की परम कोटि पर स्थिर करता है। यह वह आनन्द सुधा है जिसके लिए प्रत्येक भक्त अंतःकरण पिपासु है। सगुण भक्ति में जहाँ इस राग तत्व की स्थिति के लिए परम तत्व की साकार अवतारणा मान्य है, वहाँ तो केवल राग की यह गरिमा ही भक्त का अभीष्ट लक्ष्य होती है। इसी सीमा पर पहुंचने के लिए भक्त सुकव तुलसी ने "रामहिं केवल प्रेम पियारा" की स्पष्ट घोषणा की है। अष्ट कवि सूर की गोपिकायें इसी राग के लिए व्यथित होकर ऊधव के द्वारा दिये गये योग तत्व की उपेक्षा करती हैं तथा इसी राग तत्व को अपना सर्वस्व मानती हैं।

> "केहि अपराध योग लिखि पठवत प्रेम भजति से करत उदासी।
> सूरदास ऐसी को विरहिन मांगे मुक्ति छाँड़ि अविनासी ।।

इसी राग तत्व पर अपने एकात्म समर्पण का निवेदन करती हुई मीरा गा उठतीं हैं –

> "ए री मैं तो प्रेम दिवाणी मेरा दरद न जाणै कोय ।"

वस्तुतः इस राग तत्व की उपासना बहुत कवियों का परम प्रेय और श्रेय रहा है। सभी भक्त कवियों ने अपने काव्य ग्रन्थों में इसकी अत्यंत भावपूर्ण व्यंजना की है। यह रागात्मक समर्पण ही सच्ची भक्ति है। आनन्द रामायणकार ने भी अपने ग्रन्थ में इसे अत्यन्त भावपूर्ण रूप से व्यंजित किया है।

श्री राम जी के तत्व स्वरूप को जानने के बाद श्री परशुराम

है कि नर स्वधारी साक्षात् नारायण श्री राम के द्वारा वध किये जाने पर उसे अवश्य ही परम पद प्राप्त होगा।[1]

गीधराज जटायु की प्रेमा भक्ति का चित्रण भी ग्रन्थकार ने अतीव भावुक रूप में प्रस्तुत किया है। श्री राम- प्रेम में अपने प्राणों को बलिदान कर देने वाले भक्तराज जटायु की निष्काम भक्ति भावना सर्वथा अभिनंदनीय है।[2]

राम भक्त शिरोमणि श्री हनुमान जी के चरित्र में भी ग्रन्थकार ने प्रेमा भक्ति के स्वरूप को निखार दिया है। राक्षसराज रावण को दिया गया उनका उपदेश प्रेमा भक्ति से परिपूर्ण है। वे रावण को अनुभाव त्याग कर शरणागत वत्सल श्री राम का स्मरण करने के प्रेरणा प्रदान करते हैं। अपनी प्रेमा भक्ति के बल से ही वे रावण को विश्वास दिलाते हैं कि उक्त कार्य से वह अवश्यमेव अभय हो जायेगा।[3]

---

1. बाणाभ्यां राघवं तं नरस्वरूपं हरिम् ।
   तस्य हस्तान्मृतिर्मे स्ति गच्छामि परमं पदम् ।।
   x x x
   अथ धन्यो स्म्यहं तात धन्यो सौ पितरौ मम् ।
   योऽहं श्रीराम हस्तेन मरिष्यामि रणांगणे ।।

   आ.रा. 1/8/ 54 से 57 तक

2. जटायो: कीर्तिं चक्रु रामकार्ये कृतं पुरा ।

   आ.रा. 1/8/111

3. विसृज्य मौढ्यमतिदूषित भावनां
   भजस्व रामं शरणागत प्रियम् ।।
   सीतां पुरस्कृत्य सपुत्र बान्धवो
   रामं नमस्कृत्य विमुच्यसे भयात्।।

   आ.रा. 1/9/164

श्री सुमित्रा जी भी श्री राम से ज्ञानोपदेश प्राप्त करने हेतु अपना विनम्र निवेदन प्रस्तुत करती है।[1]

इसी प्रकार माता कौशल्या भी श्री राम को परात्पर विष्णु मानकर भक्ति पूर्वक नमस्कार करती हैं तथा उनसे ज्ञानोपदेश सुनाने के लिए प्रार्थना करती है।[2]

इस प्रकार आनन्द रामायण में अनेक स्थलों पर ग्रन्थकार ने प्रेमा भक्ति से युक्त अनेक भावुक चित्र अंकित किए हैं। कवि ने इस निर्मल तथा निश्छल प्रेम को ही ईश्वर प्राप्ति के सुगम साधन के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

आनन्द रामायण में नवधा भक्ति :

परम तत्व के लिए रागात्मक समर्पण विभिन्न प्रकार से निवेदित होने का प्रकरण सभी भक्ति प्रधान ग्रन्थों में मिलता है। उस सत्ता के प्रति आत्म निवेदन की स्थिति तक पहुंचते-पहुंचते अंतः प्रवृत्तियाँ स्वयमेव विभिन्न विधियों से उसी में अन्तर्भुक्त होने हेतु समुत्सुक हो उठती हैं। इसी कारण उसी का कीर्तन उसी का मनन, उसी का स्मरण, उसी का अर्चन-वन्दन, उसी के प्रति सेवा का समर्पण, उसी से आत्म रंजन और उसी के प्रति आत्म निवेदन की भावनाएं स्वाभाविक रूप से जुड़ जाती है। भक्तिशास्त्र के मनीषियों ने निवेदन की इन विधियों को नव रूपों में बाँटकर नवधा भक्ति की संज्ञा से अभिहित किया है। अन्य भक्त कवियों की भाँति आनन्द रामायणकार ने भी अपने ग्रन्थ में भक्ति की इन विधियों का सम्यक विवेचन किया है।

---

1. सुमित्रा स्वेष्टदं रामं सीतया सहितं स्थितम् ।
   निरीक्ष्य नत्वातं प्राह राम राजीव लोचन ।
   किंचित् प्रार्थयाम्यद्य किंचिदुपदिशस्व माम् ॥

   आ. रा. 8/2/102-103

2. पप्रच्छ नत्वा श्रीरामं ज्ञात्वा विष्णुं परात्परम् ।
   राम राम महाबाहो किंचिद्वद [illegible] ॥

   आ. रा. 8/2/123

श्री मद्भागवत महापुराण में नवधा भक्ति का निम्नलिखित रूप में वर्णन हुआ है।[1]

आनन्द रामायण में भक्ति के इन्हीं नव लक्षणों का सुन्दर चित्रण हुआ है। उनका क्रमिक विवेचन निम्नवत है।—

श्रवण् -

भगवद् चरित्रों का श्रवण करना भक्ति का प्रथम लक्षण है। आनन्द रामायण में अनेक स्थलों पर इस श्रवण भक्ति का निरूपण किया गया है। आनन्द रामायण का शुभारम्भ ही श्रवण भक्ति का द्योतक है। श्री राम की भक्ति में तत्पर देवी पार्वती भगवान शंकर से प्रभु के आनन्द दायक चरित्र सुनाने के लिए विनम्र निवेदन करती हैं तथा उनकी प्रार्थना पर ही श्री शिव जी प्रभु की पावन कथा प्रस्तुत करते हैं।[2]

आनन्द रामायणकार ने इस श्रवण भक्ति को समस्त अमंगलों का नाश करने में सक्षम बताया है।[3]

---

1. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
   अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥
   इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
   क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥

   श्री मद्भागवत पुराण, स्कन्ध 7/
   अध्याय 5/श्लोक23 व 24

2. एकदा पार्वती देवी शंकरं प्राह हर्षिता ।
   कैलासवासिनं नत्वा रामभक्त्येक तत्परा॥

   x x x

   कथयस्वाधुना देव मम प्रीति विवर्धनम् ।
   आनन्द दायकं शर्म रघुवीरस्य पावनम् ॥ आ० रा० 1/1/3से5

3. ये शृण्वंति नराभक्त्या न तेषाममंगलम् ॥

   आ० रा० 1/5/138

भक्त शिरोमणि श्री हनुमान जी भी अपने परमेष्ट श्री राम जी से श्रवण भक्ति का सुन्दर वरदान मांगते हुए कहते हैं कि हे प्रभो लोक में जहाँ जहाँ भी आपकी पवित्र कथा हो वहाँ कथा श्रवणार्थ जाने के लिए मेरी अप्रतिहत गति हो।[1]

इस प्रकार आनन्द रामायण में श्रवण भक्ति का सुन्दर विधान दर्शित होता है। स्थान-स्थान पर इस भक्ति का माहात्म्य प्रदर्शित किया गया है। यह भक्ति समस्त पापों का नाश करने वाली तथा महा मंगलकारिणी है।[2]

<u>कीर्तनम्</u> -

प्रभु के पावन गुणों का संकीर्तन भक्ति का द्वितीय लक्षण है। आनन्द रामायण में इस संकीर्तन का माहात्म्य अनेक स्थलों पर वर्णित हुआ है। राज्यकाण्ड के चतुर्थ सर्ग में कवि ने इस भक्ति को समस्त पातक नाशिनी कहा है।[3]

अयोध्या के निवासी जन सदैव प्रभु की इसी भक्ति में मग्न रहते हैं। वे कीर्तन में इतने तल्लीन रहते हैं कि स्वयं श्री राम के बुलाने पर भी कीर्तन को पूरा किये बिना नहीं जाते।[4]

---

1. यत्र यत्र कथा लोके प्रवर्तिष्यति ते शुभा ।
   तत्र तत्र गति में स्तु श्रवणार्थं सदैव हि ॥

   आ॰ रा॰ 1/12/143

2. श्रवणात्सर्वपापघ्नं महा मंगलकारकम् ।

   आ॰ रा॰ 1/13/209

3. सेयिद्धपुरिदं तस्यकीर्तनं मंगलप्रदम् । आ॰ रा॰ 7/4/58

4. रामहूतास्तथोत्थान् कर्म श्री राम कीर्तनम् ।
   समाप्य विधिवत् प्रतस्थुः स्वामिनं प्रति ॥

   आ॰ रा॰ 7/4/56, 57

सारकाण्ड के पंचम सर्ग में आनन्द रामायणकार ने भगवान विष्णु के स्मरण का माहात्म्य वर्णन करते हुए उन्हें सर्व सिद्धि प्रदाता माना है। परम प्रभु का नाम स्मरण मनुष्य को सद्गति प्रदान करता है। इस संबंध में कवि ने ध्रुव के अटल पद प्राप्त करने तथा गजेन्द्र को मुक्ति प्रदान करने आदि के प्रमाण प्रस्तुत करके अपनी मान्यता की पुष्टि की है। विष्णु नाम स्मरण करने वाले भक्तों के जीवन को कवि ने सफल तथा धन्य माना है।[1]

आनन्द रामायणकार ने श्री राम को साक्षात् विष्णु माना है। सीता की खोज के बाद वापस आए हुए श्री हनुमान जी की पुण्य शीलता तथा महत्ता का वर्णन करते समय ग्रन्थकार ने इस तथ्य को स्पष्ट किया है। श्री राम द्वारा हनुमान का आलिंगन करने पर कवि ने स्पष्ट कहा कि जिन विष्णु के चरणारविन्दों का तुलसी-दल तथा जल से पूजन कर मानव मात्र उनके अनुपम पद को प्राप्त करने में सफल होजाता है, उन्हीं साक्षात् राम के द्वारा जब आलिंगित होकर श्री हनुमान जी यदि महान पुण्यशाली हो गये तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?[2]

लंका विजय के पश्चात् श्री राम का राज्याभिषेक होने पर समस्त वानर-भालुओं को विभिन्न उपहार प्रदान किये जाते हैं। श्री हनुमान जी को भी श्री राम जी वरदान मांगने के लिए कहते हैं।

---

1. सम्यगाराधितो विष्णुः किं न यच्छति देहिनाम् ।
   x x x
   ध्रुवो यं विषयो नाम्ना श्री विष्णोर्विकर्मनायकम्।।

   आ०रा० 1/5/22 से 24

2. यत्पादपद्म युगलं तुलसीदलाद्यैः सम्पूज्य
   विष्णु पदमीय तुलां प्रयाति । तेनैव किं पुनरसौ परिरब्धमूर्तिः
   रामेण वायुतनयः कृत पुण्य पुंजः ।।

   आ०रा० 1/9/3।।

इस अवसर पर श्री हनुमान जी इसी नाम स्मरण भक्ति की ही याचना करते हैं।[1]

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने श्री हरि स्मरण को भक्ति का महत्वपूर्ण अंग मानते हुए उसकी महती महिमा को प्रतिष्ठित किया है।

पादसेवनम् -

अपने मन को प्रभु पद पंकज का भ्रमर बना देना नवधा भक्ति का चतुर्थ लक्षण है। आनन्द रामायण में अनेक भक्तों ने परम प्रभु श्री राम के चरणों की विमल भक्ति का सुन्दर आदर्श प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार राम चरित मानस में समस्त साधनों का फल श्री राम चरण-रति माना गया है उसी प्रकार आनन्द रामायण में भी सभी भक्त प्रभु- पद्म पराग के लिए मधुप बने हुए से चित्रित हुए हैं।

जामदग्नेय श्री परशुराम जी अपने आराध्य श्री राम के चरणों की भक्ति का वरदान माँगते हुए अपने प्रणति निवेदित करते हैं।[2]

राज्य काण्ड के छठे सर्ग में श्री ब्रह्मा जी द्वारा श्री राम की प्राणप्रिया भार्या सीता के पद- पद्मों का मनोरम स्तवन किया गया है। पितामह श्री ब्रह्मा जी ने बार बार अपनी भाव भीनी अभ्यर्थना व्यक्त करते हुए कहा है कि हे परात्मने , तुम ऐसी कृपा करो कि हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे चरण-कमल का भ्रमर बना रहे।[3]

---

1. त्वन्नाम स्मरतो राम मनस्तुष्यति नो मम ।
   अतस्त्वन्नाम सततं स्मरन्स्थास्यामि भूतले ॥
   आ.रा. 1/12/141
2. ..... त्वत्पादे मम भक्तिः स्थिरा स्तु मे ।
   आ.रा. 1/3/377
3. .... तव पदाम्बुजालिः शिरो स्तु मे ।
   आ.रा. 7/6/26 से 33 तक

निषादराज गुह द्वारा प्रदर्शित प्रभु के पद-प्रक्षालन की हठ इसी पादसेवन भक्ति का सुन्दर आदर्श है।[1]

परम भागवत श्री विभीषण जी भी प्रभु के श्री चरणों में अपना सर्वस्व समर्पित करके उनकी बार-बार वन्दना करते हैं।[2]

श्री राम जी के अनन्य परम किंकर श्री अंगद जी ने लंका-पति रावण को पादसेवन भक्ति का सुन्दर उपदेश दिया है। महान ज्ञानी जन भी प्रभु के चरणों का आश्रय लेकर ही भव सागर को पार करने में समर्थ हो पाते हैं।[3]

इस प्रकार समग्र ग्रन्थ में कवि ने श्री राम चरणों में निर्मल भक्ति का सुन्दर आदर्श प्रस्तुत किया है।

<u>अर्चनम्</u> -

विभिन्न मांगलिक द्रव्यों के द्वारा आराध्य का अभिनंदन नवधा भक्ति का पंचम लक्षण है। आनन्द रामायण में ग्रन्थकार ने अनेक स्थलों पर अपने आराध्य श्री राम को स्नान, चन्दन, माल्यार्पण तथा नीराजन इत्यादि अर्चन विधियों से पूजित किया है। मनोहर काण्ड के तृतीय सर्ग में कवि ने इस भक्ति का अतीव सुन्दर चित्रण किया है। अपने आराध्य को मधुपर्क समर्पित करते हुए कवि [illegible]पा-वनत है।[4]

---

1. आदायाहं क्षालयित्वा पादरेणूंस्तव प्रभो । आ०रा० 1/3/24

2. रघुवर पद पद्मं वंदयामास भूयः । आ०रा० 8/13/37

3. यत्पादपद्मसमाश्रित्य ज्ञानिनो भव सागरम् ।
   तरन्ति भक्ति पूतास्ते .... ।।

   आ०रा० 1/10/223

4. ओं म नमो वासुदेवाय तत्त्व ज्ञान स्वरूपिणे ।
   मधुपर्कं गृहाणेमं राघवाय ते नमः ।।
   आ०रा० 8/3/80

भक्त अपने भगवान को तीर्थोदक से स्नान कराते हुए स्नेह विह्वल हो उठता है।[1]

भक्त की अनिर्वचनीय भावना अपने प्रभु को समस्त आभूषणों से सुसज्जित करने में संलग्न है।[2]

तुलसी दल, कुन्द, मन्दार, चम्पक, नीलकमल, बिल्वपत्र तथा विभिन्न पुष्पमाल्यों को अर्पित करके अपने प्रभु की कृपा दृष्टि प्राप्त करना भक्त का परम ध्येयहोता है। वह अपने प्रभु को धूप, दीप, नैवेद्य तथा ताम्बूल इत्यादि समर्पित कर समस्त मंगलार्थ नीराजन प्रस्तुत करता है।[3]

इस प्रकार आनन्द रामायण में नवधा भक्ति के अंतर्गत अर्चन भक्ति का भी भावपूर्ण चित्रण प्रस्तुत हुआ है।

<u>वन्दनम्</u> -

विविध गीतों के द्वारा अपने इष्ट का स्तवन नवधा भक्ति के षष्ठ महत्व के रूप में मान्य है। आनन्द रामायणकार ने अपने आराध्य श्री राम की वन्दनार्थ अनेक गीतों की रचना की है। इन गीतों में प्रभु श्री राम जी की प्रशस्ति का अनेक तरह से गायन किया गया है।

---

1. स्नापयिष्याम्यहं भक्त्या त्वं गृहाण जनार्दन ।
आ. रा. 8/3/82

2. ..... सर्वाणि भूषणानि रघूत्तम ।
अलंकरिष्यामि ते भक्त्या तद्गृहाण जनार्दन ।।
आ. रा. 8/3/86

3. मंगलार्थं महीपाल नीराजनमिदं हरे ।
संगृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमो स्तु ते ।।
आ. रा. 8/3/94

श्री राम के राज्याभिषिक्त होने पर भगवान शंकर द्वारा उनकी स्नेहसिक्त वन्दना का विधान करके ग्रन्थकार ने वन्दन भक्ति का ही रूप प्रदर्शित किया है।[1]

याग काण्ड के पंचम सर्ग में कवि ने श्री राम जी को विष्णु स्वरूप, दीनानाथ तथा मधुसूदन कहकर उनकी वन्दना की है।[2]

इसी प्रकार विलास काण्ड के प्रथम सर्ग में कवि ने श्री राम जी की भावुक वन्दना प्रस्तुत की है। श्री राम जी संसार रूपी महासागर के लिए जहाजवत हैं; वे भक्त प्रिय, कुलाधिनाथ, सूर्यकुल के प्रदीप तथा भव रूपी रोग के लिए वैद्य हैं।[3]

इसी प्रकार की अनेक भाव प्रधान वन्दनाओं से यह महान ग्रन्थ भरा पड़ा है।

<u>दास्यम्</u> -

अपने आराध्य को चराचर का अधिपति तथा स्वयं को उनका अनन्य सेवक मानना नवधा भक्ति का सप्तम लक्षण है। आनन्द रामायण में दास्य भक्ति का भी सुन्दर निरूपण हुआ है। श्री हनुमान जी, भरत, अंगद तथा परम भक्ता शबरी इत्यादि में दास्य भक्ति का वंदनीय रूप विद्यमान है।

---

1. संसार सारं निगम प्रचारं धर्मावतारं हृतभूमिभारम् ।
सदा निर्विकारं सुखसिन्धुसारं श्री रामचन्द्रं सततं नमामि ।।
आ. रा. 1/12/117

2. नमस्ते विष्णुस्वरूपाय रघुनाथाय ते नमः ।
नमस्ते दीनानाथाय नमस्ते मधुसूदन ।। आ. रा. 3/5/26

3. भवाब्धिपोतं भरताग्रजं तं भक्तप्रियं भानुकुल प्रदीपम् ।
भूतादिनाथं भुवनाधिपत्यं भजामि रामं भवरोग वैद्यम् ।।
आ. रा. 4/1/52

सख्यम् -

अपने आराध्य के प्रति सखावत् सुहृद भाव रखकर अपनी भक्ति समर्पित करना सख्य भक्ति का अष्टम अंग है। आनन्द रामायणकार ने सख्य भक्ति के स्वरूप का निरूपण भी अपने ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। निषादराज गुह, विभीषण तथा सुग्रीव आदि की भक्ति इसी कोटि की है।

गंगावतरण प्रसंग में केवट प्रभु श्री राम के पद-प्रक्षालनार्थ हठ प्रकट करता है। वह श्री राम जी से मित्रवत आमोद-प्रमोद करता है। वह कहता है कि हे प्रभु यदि मेरी नौका स्त्री बन गयी तो यह ठीक न होगा क्योंकि मैं सपत्नीक हूं।[1]

परम भागवत श्री विभीषण जी की भक्ति भी सख्य भक्ति है। प्रभु श्री राम जी विभीषण के हार्दिक भाव को समझ कर स्वमेव उससे सख्य भाव स्थापित करते हैं।[2]

श्रीविभीषण जी के सख्य भक्ति ने ही उन्हें लंकापति के पद पर प्रतिष्ठित किया है।[3]

श्री विभीषण जी श्री रामको ही अपना सखा तथा स्वामी मानते हैं। उन्हें अपने इष्ट की अद्वितीय शक्ति पर अटूट विश्वास है। वे अपने अग्रज रावण को सन्मंत्रणा देते हुए उसे श्री राम की भक्ति करने के लिए प्रेरित करते हैं। रावण से उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि श्री राम से विरोध करने पर तुम्हें इन्द्र तथा शंकर भी नहीं बचा सकते हैं।[4]

---

1. अस्ति मे गृहिणी गेहे किं करोम्यपरस्त्रियम् ।
   आ०रा० 1/3/29

2. राघवश्चापि तं ज्ञात्वा तेन सख्यं चकार सः।
   आ०रा० 1/10/41

3. कारयित्वा स्वहस्तेन मित्रं विभीषणम्।
   लंकाया स्थिर राज्यार्थं ...... ॥ आ०रा० 1/10/42

4. सीतां च सत्कृत्य महाबलेन, दत्त्वा विरामाय सुखी भव त्वम्।

बालि पुत्र अंगद द्वारा लंका का रत्नमहल उखाड़कर ले आने पर श्रीराम जी उसे केवल इसीलिए वापस करवा देते हैं कि वह रत्नप्रासाद उनके परम प्रिय सखा विभीषण का हो चुका है। अपने मित्र विभीषण की कोई भी वस्तु वे इस ढंग से स्वीकार नहीं कर सकते हैं।[1]

वानर राज सुग्रीव की सख्य भक्ति का चित्रण भी ग्रन्थकार ने अतीव मनोहर ढंग से प्रस्तुत किया है। सुग्रीव श्री राम जी के कृपा पात्र हैं। राम स्वयं उनसे मित्रता स्थापित करने जाते हैं।[2]

सुग्रीव जी भी श्री राम जैसे सखा को प्राप्त कर अपने को धन्य मानते हैं। वे अग्नि को साक्षी बनाकर श्री राम जी से मित्रता स्थापित करते हैं। श्री राम का आलिंगन प्राप्त कर वे अपनी सख्य भावना श्री राम जी के चरणों में समर्पित कर देते हैं। वानरराज स्वयमेव वृक्ष की शाखा तोड़कर अपने सखा श्री राम को आसन देते हैं।[3]

इस प्रकार आनन्द रामायण में अनेक स्थलों पर सख्य भक्ति का श्लाघ्य स्वरूप प्रस्तुत हुआ है।

---

1. समानीतो न लंकाया मित्रार्थेयं पुरी मया ।

   आ.रा. 1/10/239

2. अवरोहयनाद्रामः सख्यं कर्तुं समागतः ।

   आ.रा. 1/8/8

3. उवाच सख्यं तेनैव समालिंग्य परस्परम् ।
   वृक्षशाखां स्वयं छित्वा विष्टरार्थं ददौ कपिः ॥

   आ.रा. 1/8/13

आत्म निवेदनम् -

अपने इष्ट के प्रति भक्त का सर्वभाव से समर्पित हो जाना नवधा भक्ति का अंतिम तथा महत्वपूर्ण लक्षण है। अपनी समस्त त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थी बनकर प्रभु की शरण में जाना ही आत्म निवेदन की स्थिति है। आनन्द रामायणकार ने प्रस्तुत भक्ति का सम्यक् स्वरूप अपने ग्रन्थ में रखा है।

चित्रकूट से वापस लौटते समय अम्बा कैकेयी जी श्री राम जी के समक्ष क्षमायाचक होकर आत्म निवेदन करती हैं। वे पुरुषोत्तम श्री राम जी से अपने अपराधों के क्षमा याचना करती है।[1]

सेतुबन्ध प्रसंग में विप्र वेषधारी समुद्र ने आत्म निवेदन द्वारा ही प्रभु श्री राम को प्रसन्न करके यथा अभिलषित वरदान प्राप्त किया है। वह श्री राम जी को अनेक बहुमूल्य रत्नों की भेंट समर्पित कर अत्यधिक दीन-हीन भाव से अपनी प्रार्थना प्रस्तुत करता है। अपनी ढीठता के लिए क्षमा प्रार्थी बनकर वह प्रभु से अभयदान प्राप्त कर लेता है।[2]

इसी प्रकार राज्य काण्ड के द्वादश सर्ग में कालिन्दी इत्यादि स्त्रियों द्वारा आत्म निवेदन भक्ति का अनुकरणीय स्वरूप सामने आया है। वे समस्त ललनाएँ अज्ञानता या प्रमादवश हुए समस्त अपराधों के लिए प्रभु से क्षमा याचना करके उनके दर्शनों की भिक्षा माँगती हैं।[3]

---

1. संप्रार्थयत्कैकेयी सा रामचन्द्रं पुनः पुनः ।
   मया पराधितं राम तत्क्षन्तव्यं रघूत्तम ॥

   आ० रा० 1/6/112-113

2. रत्नैरथार्च्य रामं समर्प्य प्रणनाम सः ।
   अथ कृताञ्जलि दीनात्मा प्रार्थयामास राघवम्।
   अभयं देहि मे राम लंकामार्गं ददामि ते ॥

   आ० रा० 1/10/60 से 61

3. अज्ञानान्निर्भयत्वाद्वा प्रमादादपराधं तत्क्षम्यतां मा स्मर ••• ।

वे बारम्बार प्रभु को प्रणाम करके अपनी रक्षा तथा अपने उद्धार हेतु प्रभु की शरण में जाती हैं।[1]

स्पष्ट है कि आनन्द रामायण आत्म निवेदन के अनेक भाव भीने चित्रों से परिपूर्ण काव्य ग्रन्थ है।

इस प्रकार श्री मद् भागवत में वर्णित नवधा भक्ति के समस्त लक्षणों का सम्यक विवेचन आनन्द रामायण में अति सरस तथा प्रभावोत्पादक रूप में प्रस्तुत हुआ है।

<u>आनन्द रामायण में भक्ति के विभिन्न आश्रय -</u>

महत्व के समक्ष सहज समर्पण भारतीय संस्कृति की अपनी प्रवृत्ति है। भारतीय चिन्तक, कवि एवं दार्शनिक अपने आराध्य के प्रति तो निष्ठावान होता ही है, साथ ही आराध्य के प्रति समर्पित भाव वाले अथवा आराध्य के पूज्य अन्य महिमावान व्यक्तियों के प्रति भी उसकी श्रद्धापूर्ण भक्ति भावना समर्पित होती है। इस प्रकार भक्ति के विभिन्न आश्रयों को समर्पित की गयी उसकी भक्ति भावना आराध्य के प्रति ही समर्पित मानी जाती है। अतः कवियों ने अपने काव्य-ग्रन्थों में इस पद्धति का अनुगमन किया है। आनन्द रामायण में भी कवि की भक्ति भावना विभिन्न आश्रयों को समर्पित हुई है।

मनोहर काण्ड में शोकातुर जनों की रक्षार्थ आनन्द रामायणकार ने श्री हनुमत्कवच प्रस्तुत किया है। घोर संग्राम में, संकट में, विवादादि बाधाओं में तथा महान दुःख की स्थिति में श्री हनुमान जी की आराधना कल्याणकारिणी है। हनुमत्कवच की रचना करके ग्रन्थकार ने अपनी श्रद्धा-भक्ति श्री राम जी के अनन्य सेवक वायु पुत्र हनुमान के श्री चरणों में समर्पित की है।[2]

---

1. पाहिं त्वं राम कृपया पातकात् सर्वस्मात्त्वं नः प्रभवः ।
   आ.रा. 7/12/64

2. संग्रामे संकटे घोरे भूतप्रेतादिके भये । आ.रा.8/13/3 से 5

धन तथा पुत्र इत्यादि समस्त कामनाओं की पूर्ति हेतु ग्रन्थकार ने महामाया जानकी जी की विविध स्तोत्र तथा सीता की सुन्दर स्तुति की है। यह सीता कवच, समस्त पातकों का नाश करने वाला तथा महान पुण्य प्रदाता है।[1]

श्री राम जी की भक्ति लक्ष्मण जी की भक्ति के साथ ही पूर्णता को प्राप्त होती है। अतः ग्रन्थकार ने श्री लक्ष्मण जी की उपासनार्थ लक्ष्मण कवच भी प्रस्तुत किया है। यह लक्ष्मण कवच पुत्र, वित्त, धन, धान्य तथा राज्य इत्यादि समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाला है। लक्ष्मण कवच के बिना श्री राम कवच का पाठ भी पुष्प विहीन नैवेद्य की तरह अधूरा है।[2]

श्री राम भक्ति की आकांक्षा रखने वाले भक्तों के हितार्थ आनन्द रामायणकार ने श्री भरत कवच प्रस्तुत किया है। श्री भरत जी की उपासना से श्री राम जी जितने अधिक प्रसन्न होते हैं उतने स्वयं अपनी उपासना से नहीं होते। अतः ग्रन्थकार ने समस्त कामनाओं की पूर्ति तथा श्री राम पदारविन्दों में निर्मल भक्ति की प्राप्ति हेतु श्री भरत जी की उपासना को अत्यावश्यक माना है।[3]

इसी प्रकार ग्रन्थकार ने शत्रुघ्न कवच की रचना करके अपनी भक्ति श्री शत्रुघ्न जी को समर्पित की है। इस शत्रुघ्न कवच को कवि ने पुत्र सौभाग्य दाता तथा सर्वमंगल प्रदाता माना है।[4]

---

1. जानकीं पूजयित्वा स सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
   x x x
   सीतायाः कवचं चेदं पुण्यं पातक नाशनम् ॥
   आ.रा. 8/14/28 से 31 तक

2. पठितं रामकवचं सौमित्र कवचं विना ।
   पुष्पेण हीनो नैवेद्य स्तनो दत्तो न संशयः ॥
   आ.रा. 8/12/23

3. पठित्वा भरतस्येदं कवचं रघुनन्दनः ।
   यथा याति परंतोषं तथा स्वकवचेन न ॥
   x x x
   तस्मात्सदा पठनीयं रामोपासक मानवैः ॥
   आ.रा. 8/15/49 से 53 तक

4. शत्रुघ्नस्य वरं चेदं कवचं मंगल प्रदम् ।
   पठनीयं नरैर्भक्त्या पुत्र पौत्र प्रवर्धनम् ॥
   आ.रा.

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने अपने आराध्य श्री राम के प्रति अटूट निष्ठावान समस्त महामहिम व्यक्तियों को भी अपनी भक्ति का आश्रय बनाया है।

भक्ति के प्रमुख आश्रय – श्रीराम :-

भक्ति काव्य में भक्ति भाव का समर्पण विभिन्न वन्दनीय आलम्बन एवं इष्ट आराध्य से सम्बद्ध व्यक्तियों को अर्पित अवश्य होता है किन्तु इस भाव का प्रमुख केन्द्र अभीष्ट आराध्य ही होता है। आत्म निवेदन की महनतम भावनाएँ उसी आराध्य को समर्पित होती हैं जो उसकी भक्ति का प्रमुख केन्द्र होता है। आनन्द रामायण एक राम भक्ति काव्य ग्रन्थ है। अतः यह स्वाभाविक है कि ग्रन्थकार भक्ति के प्रमुख आश्रय के रूप में राम को प्रतिष्ठित करे। इसीलिए इस भक्ति काव्य के प्रमुख आश्रय सगुण साकार भगवान राम ही हैं। कवि ने अपनी भक्ति भावनाएँ उनके प्रति आत्म समर्पण, चिन्तन, वन्दन, स्तवन, अर्चन एवं भजन के रूप में प्रस्तुत की है। ग्रन्थकार ने विभिन्न महात्माओं के प्रति अपनी श्रद्धा केवल इसीलिए समर्पित की है कि वे श्री राम भक्ति के प्रदाता हैं। श्री राम भक्ति की पूर्णता के लिए ही उन समस्त आश्रयों की भक्ति को आवश्यक माना है।

आनन्द रामायणकार ने अपने इष्ट श्री राम को सर्व देवमय स्वीकार किया है। अतः प्रत्येक देवता का पूजन श्री राम जी का ही पूजन है। विलास काण्ड में श्री राम जी के विश्वव्यापक रूप का चित्रण ग्रन्थकार की अनन्य भक्ति का परिचायक है। कवि ने ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, देवेन्द्र, देवता तथा आदित्यादि समस्त ग्रहों में श्री राम के ही दर्शन किये हैं। तपस्वी, ऋषि, सिद्ध, साध्य, मुनि, पितृ, वेद, यज्ञ, पुराण तथा वर्णों की संहिता– सभी श्री राम के ही स्वरूप हैं। वर्ण, आश्रम, नाग, यक्ष, गंधर्व, दिग्गज, वसु, एकादश रुद्र तथा द्वादशादित्य में भी कवि ने अपने इष्ट श्री राम के ही दर्शन किये हैं। सप्त द्वीप, समुद्र नदियाँ तथा वृक्ष आदि स्थावर वस्तुएँ भी ग्रन्थकार को राम मय

दिखायी देती है। अधिक क्या ? ग्रन्थकार ने तो माता, पिता, भ्राता तथा सर्वस्व एकमात्र राम को ही स्वीकार किया है।[1]

इस प्रकार आनन्द रामायण में भक्ति के प्रमुख आश्रय श्रीराम ही हैं। कवि ने अपने भक्त हृदय की समस्त भाव भावना अपने एक मात्र आराध्य श्री राम जी के ही श्री चरणों में समर्पित की है। आनन्द रामायण कार के राम शांति-सिंधु, सर्वगत, ब्रह्म, परब्रह्म, सनातन तथा समस्त जगत के एकमात्र पति हैं।[2]

आनन्द रामायण में राम भक्ति के विविध स्तोत्र :—

भावना की अभिव्यक्ति आराध्य के प्रति सर्वभाव से समर्पित रहती है। सभी भक्ति भाव सम्पन्न काव्य-ग्रन्थों में आराध्य की प्रशस्ति भक्त हृदय से स्वतः प्रस्फुटित हो उठती है। आनन्द रामायणकार ने भी अपने इस ग्रन्थ में प्रशस्ति युक्त विभिन्न स्तोत्र अपने आराध्य को समर्पित किये हैं। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

(क) सार काण्ड के द्वादश सर्ग में कवि ने श्री राम पंचाष्टक प्रस्तुत किया है। यह अष्टक पाठकों को समस्त सिद्धियों का प्रदाता है।[3]

(ख) याग काण्ड के पंचम सर्गान्तर्गत ग्रन्थकार ने "श्री रामनामाष्टोत्तर शतनाम स्तोत्र" का सुन्दर विधान किया है। इसके महात्म्य का प्रतिपादन करते हुए कवि ने समस्त श्रुति स्मृति- पुराण आदि को प्रस्तुत स्तोत्र की सोलहवीं कला से भी न्यून बतलाया है।[4]

---

1. ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवेन्द्रो देवतास्तथा ।
   x x x
   सर्वोत्तत्वं परं ब्रह्म त्वमूर्तं विग्रहमेव च ॥
   आ.रा. 4/1/63 से 69 तक
2. शांतं सर्वगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम् । आ.रा. 4/1/70
   राजीव लोचनं रामं प्रणमामि जगत्पतिम्॥
3. आ.रा. 1/12/116 से 124 तक

(ग) विलास काण्ड के प्रथम सर्ग में कवि ने विस्तृत " राम स्तवराज " को प्रस्तुत किया है।[1] इस स्तवराज के श्रवण मात्र से मनुष्य के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

(घ) जन्म काण्ड के पंचम सर्ग में कवि ने " राम रक्षा महामंत्र स्तोत्र " प्रस्तुत किया है। इसी महामंत्र के द्वारा महर्षि वाल्मीकि ने राजकुमार कुश का अभिमंत्रण किया था। यह समस्त भय निवारक महामंत्र है। इसी मंत्र के बल से षडानन ने तारकासुर जैसे प्रबल शत्रु पर विजय प्राप्त की थी।[2]

(ङ) राज्य काण्ड के प्रथम सर्ग में कवि ने "श्री राम सहस्रनाम स्तोत्र" प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत स्तोत्र श्री गणेश जी द्वारा सनत्कुमार को बतलाया गया था। यह स्तोत्र समस्त समृद्धियों एवं सिद्धियों को करने वाला तथा भुक्ति-मुक्ति प्रदाता है।[3]

(च) मनोहर काण्ड के तृतीय सर्ग में ग्रन्थकार ने " नमस्कारा-ष्टक मंत्र " प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत स्तवन में आठ मंत्रों द्वारा श्री जानकी जी सहित प्रभु राम जी को नमन निवेदित किया गया है।[4]

(छ) इसी काण्ड के त्रयोदश सर्गान्तर्गत कवि ने "श्री राम कवच" प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत कवच को ग्रन्थकार ने परम पवित्र, परम, गुह्य तथा समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला बतलाया है।[5]

(ज) पूर्ण काण्ड के षष्ठ सर्ग में प्रभु श्री राम द्वारा वैकुण्ठारोहण करते समय भगवान शंकर द्वारा उनके विष्णु स्वरूप की भाव भीनी स्तुति की गयी है। प्रस्तुत स्तुति को ग्रन्थकार ने विस्तृत "सहस्रनाम - स्तोत्र" के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत स्तोत्र के पाठ से पाठकर्ता

---

1. स्तवराजो रामचन्द्रस्य सर्वपापप्रणाशनः ।
   आ.रा. 4/1/24 से 70 तक
2. आ.रा. 5/5/6 से 45 तक ।
3. आ.रा. 7/1/31 से 175 तक
4. आ.रा. 8/3/95 से 102 तक
5. आ.रा. 8/13/46 से 82 तक

जन्म-मृत्यु- बन्धन से रहित सामीप्य मुक्ति प्राप्त करता है।[1]

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने अपने आराध्य श्री राम जी की प्रशस्ति युक्त अनेकानेक भाव भीनी स्तुतियाँ अपने ग्रन्थ में प्रस्तुत की हैं। इन स्तोत्रों के स्तवन द्वारा हर भावुक भक्त अपने जीवन को कल्याणमय बना सकता है।

आनन्द रामायण में भक्ति का माहात्म्य :-

भाव की जो धारा अंतःकरण को अपने प्रवाह में उन्मज्जित कर लेती है उसी की प्रशस्ति अंतःकरण का प्रमुख उद्देश्य हो जाता है। भक्ति भाव अपने आप में आराध्य के प्रति समर्पण का सर्वोच्च रूप है। अतः इस भाव में डूबा हुआ कवि हृदय इसकी महिमा के अथाह सागर में अनन्त निधियों की प्राप्ति का अनुभव करता है। उसका यह अनुभव इस भाव की अपूर्व महिमा के यशोगान में अन्तर्लीन हो जाता है। आनन्द रामायण में भी भक्ति भाव की प्रशस्तियाँ इसी प्रकार देखने को मिलती हैं। अनेक भक्त इसी भक्ति के प्रभाव से ही महनीय कार्य सम्पादित करने में सफल हो सके हैं। श्री राम मंत्र के जप द्वारा ही श्री हनुमान लंका जाने के लिए अतुल सामर्थ्य प्राप्त कर सके हैं।[2]

भक्ति से ही मानव अंतःकरण महानता को प्राप्त होता है। आनन्द रामायणकार ने श्री हनुमान जी को महान पुण्य शाली तथा प्रातः स्मरणीय बनाने में भक्ति की महती भूमिका को स्वीकार किया है।[3]

---

1. आ.रा. 9/6/32 से 41 तक
2. त्वन्नामस्य महायित्वे कृत्वा तु जपते जने ।
   सकल्या समर्थेऽतुलं लंकां गन्तुं स मारुतिः ॥

   आ.रा. 1/8/94-95
3. तेनैव त्वं पुनर सौ धारयस्य मूर्ति ,
   रामेण वायु तनयः कृत पुण्य पुंजः ॥

   आ.रा. 1/9/31

श्री राम भक्ति को ग्रन्थकार ने भव सागर संतरण हेतु जहाज रूप माना है। यह भक्ति मानव- मनको पवित्र बना देने में पूर्णतः सक्षम है।[1]

ग्रन्थकार ने श्री राम भक्ति को ही सर्वोपरि माना है। भगवान शंकर अपने आराध्य श्री राम जी को प्रसन्न करके केवल प्रभुपदाब्ज भक्ति की ही याचना करते हैं। उन्हें इस महानतम उपलब्धि के अतिरिक्त अन्य कुछ भी न चाहिये।[2]

इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने भक्ति के अप्रतिम माहात्म्य का प्रतिपादन अपने इस गौरव ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर किया है। प्रस्तुत वर्णन से कवि ने मानव अंतःकरण को भक्त्योन्मुख करनेका सफल प्रयास किया है।

<u>साम्य और वैषम्य :</u>

दोनों भक्त कवियों के तत्पक्ष अनुशीलन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि आराध्य राम के प्रति दोनों की निष्ठा और समर्पण भावना तुल्य है, किन्तु भक्ति विषयक अनेकानेक मान्यताओं के प्रति जहाँ एक दूसरे के विचारों में समता है वहाँ कतिपय विषमतायें भी हैं। इस संबंध में उनके साम्य व वैषम्य का विवेचन निम्नवत् प्रस्तुत है :-

---

1. यत्पाद पोतमाश्रित्य ज्ञानिनो भवसागरम् ।
   तरन्ति भक्ति पूतास्ते .... ॥

   आ० रा० 1/10/223-224

2. वरं न याचे रघुनाथ युष्मत्पदाब्ज भक्तिः सततं ममास्तु ।
   x x x
   इदं प्रियं नाथ वरं प्रयच्छ पुनः पुनस्त्वामिदमेव याचे ॥

   आ० रा० 6/1/77

साम्य -

1. दोनों ही कविआराध्य राम के सगुण साकार रूप के प्रति आस्थावान हैं।

2. विभिन्न राम भक्तों के प्रति दोनों कवियों ने अपनी श्रद्धा समर्पित की है।

3. दोनों ही काव्यों में विभिन्न देवी-देवताओं को मान्यता प्रदान की गयी है।

4. नवधा भक्ति के प्रति दोनों कवि आस्थावान हैं।

5. भक्ति भाव से पूर्ण स्तोत्रों का बाहुल्य दोनों काव्य ग्रन्थों में प्राप्त है।

6. प्रेमा भक्ति को दोनों कवियों ने महत्व दिया है।

7. कल्याण के लिए दोनों काव्यों में भक्ति के महत्व को स्वीकार किया गया है।

8. दास्य भक्ति के प्रति अपनी सर्वाधिक श्रद्धा दोनों ही कवियों ने समर्पित की है।

9. भक्ति के साथ - साथ ज्ञान को भी दोनों कवियों ने मुक्ति के साधन रूप में स्वीकार किया है।

वैषम्य -

1. आनन्द रामायण में वैधी भक्ति और प्रेमा भक्ति दोनों का विवेचन मिलता है किन्तु मानस में प्रेमा भक्ति का ही निदर्शन हुआ है। मानसकार ने "रामहिं केवल प्रेम पियारा" के सिद्धान्त का ही पोषण अपने भक्ति भाव के संदर्भ में किया है।

2. नवधा भक्ति के संदर्भ में आनन्द रामायणकार स्मृति और पुराणों का आश्रय लेते हैं किन्तु तुलसी की नवधा भक्ति में पर्याप्त मौलिकता आभासित होती है। आनन्द रामायणकार ने भी श्रीमद्भागवत पुराण के आधार पर नवधा भक्ति का विवेचन किया है किन्तु मानस-

कार ने इस विवेचन को स्वीकारते हुए अपने मौलिक विचार नवधा भक्ति के अंतर्गत प्रस्तुत किये हैं। सत्संग, गुरु- भक्ति, इन्द्रियनिग्रह, शमविरत, संतोषवृत्ति, परदोषोपेक्षा, सरलता तथा निष्कपटता आदि मौलिक तथ्यों को भी तुलसी ने नवधा भक्ति के अंतर्गत समायोजित किया है। इस प्रकार मानसकार की नवधा भक्ति लोक मंगल के अधिक निकट है।

3- आनन्द रामायणकार ने ज्ञान और भक्ति दोनों को मुक्ति के साधन रूप में मान्यता दी है। उन्होंने इन दोनों का कोई तुलनात्मक विवेचन नहीं दिया है किन्तु मानसकार ने ज्ञान और भक्ति दोनों का विशद विवेचन देते हुए भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। इस प्रकार मानसकार का लक्ष्य मात्र भक्ति है।

4. भक्ति के आश्रय राम के व्यक्तित्व का मर्यादा से पुष्ट जो अंकन मानसकार ने प्रस्तुत किया है। आनन्द रामायणकार ने उसे उस मर्यादा से च्युत कर दिया है। मानसकार के राम अपने प्रत्येक कार्य में पूर्ण मर्यादित हैं। उन्हीं मानसकार के शब्दों में -

" रिपु रन लहहिं न जिनके पीठी ।
नहिं लावहिं पर तिय मन दीठी ।।
मंगन लहहिं न जिनके नाहीं ।
ते नर बर थोरे जग माहीं ।।

उक्त को राम के व्यक्तित्व में इस प्रकार समाहित कर दिया है कि वस्तुतः वे मर्यादा पुरुषोत्तम पद के एक मात्र अधिकारी बन गये हैं। आनन्द रामायणकार के राम अनेक स्थलों पर लौकिक लोलु - पताओं में गुम्फित दृष्टिगोचरित होते हैं।

5. मानसकार ने अपने गौरव ग्रन्थ में भक्ति भाव से सम्पन्न अंतःकरण के दिव्य गुणों का सम्यक स्पष्टीकरण किया है। उन्होंने सद्गुण प्रवृत्ति को भक्ति के अंतर्गत स्वीकार किया है। किन्तु इस विवेचन में आनन्द रामायणकार मौन प्रतीत होते हैं। मानसकार ने

भक्त, भक्ति और भगवान तीनों की मीमांसा इस प्रकार प्रस्तुत की है कि अंतःकरण की राग वृत्ति स्वतः भक्ति की ओर प्रस्थित हो जाती है। आनन्द रामायणकार इस ओर से पूर्णतः पराङ्मुख हैं।

साम्य और वैषम्य की उपर्युक्त स्थितियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी का काव्य भक्ति को प्रेरित करने में तथा पूर्ण निष्ठा के साथ आराध्य के प्रति आत्मार्पित होने में आनन्द रामायणकार से बहुत आगे है। यद्यपि राम भक्ति की ओर प्रवृत्त करने में अन्य रामकाव्यग्रन्थों के साथ आनन्द रामायण भी तुलसी के लिए एक प्रेरक ग्रन्थ है किन्तु तुलसी की मौलिक उद्भूतियों ने मानस को राम भक्ति काव्य ग्रन्थों में सर्वोच्च स्थान पर अभिषिक्त कर दिया है।

-=-=-=-=-=-= समाप्त -=-=-=-=-=-=

xxxxx

सप्तम अध्याय

(दार्शनिक - विवेचन)

सप्तम अध्याय

दार्शनिक विवेचन

"दर्शन" शब्द "दृशिर" प्रेक्षणे धातु में ल्युट् प्रत्यय का योग करने पर सिद्ध होता है। "दृश्यतेऽनेनेति दर्शनम्" अर्थात् जिसके माध्यम से देखा जाय उसे दर्शन कहते हैं। यह दर्शन या तो इन्द्रिय जन्य निरीक्षण हो सकता है या प्रत्यक्ष ज्ञान अथवा अन्तर्दृष्टि द्वारा अनुभव हो सकता है। ज्ञान दृष्टि या दिव्य दृष्टि से यथार्थ तत्व को देखना ही दर्शन शब्द का अभिप्राय है। जिसके द्वारा आत्म दर्शन हो, वह दर्शन है। दर्शन का अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द "फिलासफी" ग्रीक भाषा के दो शब्दों के मेल से बना है, फिलास = प्रेम या अनुराग तथा सोफिया = विद्या। अतः फिलासफी का अर्थ हुआ विद्या का प्रेम। किन्तु व्यवहार की दृष्टि से फिलासफी शब्द का प्रयोग दर्शन से भिन्न अर्थ में होता है। व्युत्पत्ति के अनुसार दर्शन ज्ञान के प्रति अनुराग का नाम है। यहाँ ज्ञान का अर्थ तथ्यों की जानकारी नहीं, वरन् विश्व और मानव जीवन के महानतम प्रश्नों के सम्बन्ध में अभिज्ञता है। सुकरात ने दर्शन को आन्तरिक अध्ययन कीओर मोड़ा और कहा कि "आत्म ज्ञान ही दर्शन का मुख्य उद्देश्य है।" दर्शन अस्तित्व और जीवन के मूल तथा विश्व व्यापी प्रश्नों और मूल्यों का व्यवस्थित अध्ययन है।

डा० चटर्जी का मत है कि युक्ति पूर्वक तत्वज्ञान प्राप्त करने के प्रयत्न को दर्शन कहते हैं। डा० विश्वम्भर दयालु अवस्थी अपनी कृति -"गोस्वामी तुलसीदास: दर्शन और भक्ति" में लिखते हैं-[1]

"भारत वर्ष में पारिभाषिक अर्थ में दर्शन तत्वज्ञान, आत्मज्ञान या ब्रह्मात्मज्ञान का वाचक है। यहाँ आत्मा को ही दर्शन, मनन और चिन्तन का विषय बतलाया गया है।"

---

1. गोस्वामी तुलसीदास: दर्शन तथा भक्ति
   लेखक- डा० विश्वम्भर दयालु अवस्थी

भारतीय दर्शन -

भारतीय दर्शन पाश्चात्य दर्शन से अनेक बातों में भिन्न है। पाश्चात्य दर्शन में भौतिकता तथा तर्क पर विशेष बल दिया गया है, जब कि भारतीय दर्शन में आध्यात्मिकता का विशेष महत्व है। भारत वर्ष में सम्पूर्ण विद्याओं को दो वर्गों में विभक्त किया गया है।

1. परा विद्या
2. अपरा विद्या

आत्मा संबंधी ज्ञान - आध्यात्मिक ज्ञान - परा विद्या का विषय है, जब कि शेष सम्पूर्ण ज्ञेय विषय अपरा विद्या के अंतर्गत परिगणित होते हैं। इन अनेक नामात्मक, क्षण-क्षण में विनाश रूप धारण करने वाले पदार्थों के अन्तस्तल में विद्यमान रहने वाली एक सत्ता और अनेकता के भीतर एकता को खोज निकालना प्राचीन वैदिक ऋषियों की दर्शन शास्त्र को महत्वपूर्ण देन है। जिस प्रकार परिवर्तनशील ब्रह्माण्ड के भीतर एक अपरिवर्तनशील तत्व की सत्ता विद्यमान है, उसी प्रकार इस पिण्ड के भीतर भी एक अपरिवर्तनशील तत्व की सत्ता विद्यमान है। ब्रह्माण्ड की नियामक सत्ता का नाम है ब्रह्म, व तथा पिंडांड की नियामक सत्ता की संज्ञा है आत्मा। प्राचीन दार्शनिकों ने ब्रह्माण्ड, पिंडांड का ऐक्य सर्वतोभावेन स्वीकार किया है और ब्रह्म तथा आत्मा की एकता प्रतिपादित की है।

भारतीय दर्शन की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत हैं :-

1. भारतीय दर्शन आध्यात्मिकता से ओत प्रोत है। "आत्मानं विद्धि" अर्थात् आत्मा को जानो, यही भारतीय दर्शन का मूल वाक्य है।

2. भारतीय दर्शन में धर्म की प्रधानता है। भारत वर्ष में सदाचार पालन को आध्यात्मिक ज्ञान का प्रथम सोपान माना गया है। दर्शन और धर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध है। दर्शन विचारों का प्रतिपादन है और उन्हीं प्रतिपादित विचारों के अनुसार आचार की व्यवस्था करना धर्म

का काम है। यही है सहयोग से भारतीय दर्शन की दृष्टि व्यापक और व्यावहारिक है।

3. पुरुषार्थ-चतुष्टय में मोक्ष सर्वश्रेष्ठ है। भारतीय दर्शन का आरम्भ ही संसार बन्ध मुमुक्षा से होता है। इसमें मोक्ष को जीवन का परम लक्ष्य कहा गया है।

4. भारतीय दर्शन चिकित्सा शास्त्र की तरह चतुर्व्यूहात्मक है। जिस प्रकार आयुर्वेद में रोग, रोग हेतु, आरोग्य और भैषज्य पर विचार किया जाता है, उसी प्रकार दर्शन में संसार, संसार- हेतु मोक्ष और मोक्ष के उपाय पर विचार किया गया है।

5. सम्पूर्ण दार्शनिक सम्प्रदाय इस विषय में एकमत हैं कि यह जगत् दुःखमय है। जन्म और मृत्यु का चक्र ही सबसे बड़ा दुःख है और इसका कारण अविद्या है।

6. भारतीय दर्शन में बाह्य दृष्टि से विरोधी प्रतीत होने वाले विविध विचारों और सिद्धान्तों में समन्वय स्थापित किया गया है।

श्री मद्भगवद् गीता में कहा गया है कि शरीर की अपेक्षा इन्द्रियाँ श्रेष्ठ हैं और इन्द्रियों की अपेक्षा मन। मन से श्रेष्ठ बुद्धि है, तथा जो बुद्धि से भी उत्तम है, वह आत्मा है।[1]

आत्मा से भी श्रेष्ठ परमात्मा है। इस आत्म तत्व और परमात्म तत्व का विवेचन ही भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक सम्पत्ति है। अतः प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत, ब्रह्म, जीव, जगत, माया तथा मोक्ष के सम्बन्ध में ही विचार किया गया है।

---

1. इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥

गीता 3/42

ब्रह्म–

श्री मद्भागवत में कहा गया है कि ज्ञानमय और अद्वय परम शक्ति को ज्ञानी ब्रह्म, योगी परमात्मा और भक्त भगवान कहते हैं।[1]

ब्रह्म शब्द "बृह् वर्धने" धातु में मनिन् प्रत्यय का प्रयोग करने पर सिद्ध होता है। ब्रह्म का अर्थ होता है, वर्धन शील। ब्रह्म सबसे महान है और वह सम्पूर्ण जगत् में अनुस्यूत है।

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में परमेश्वर को अनन्त सिर, अनन्त नेत्र तथा अनन्त पाद कहा गया है।[2]

मंत्र द्रष्टा ऋषि परमेश्वर की अनंतता का उल्लेख करते हुए कहता है कि वे सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त कर उससे भी दस अंगुल बड़े हैं। वे इस विश्व में भूत, वर्तमान और भविष्य – तीनों कालों, मोक्ष व सम्पूर्ण प्राणियों के स्वामी हैं। परमेश्वर की महिमा इससे भी अधिक है। सम्पूर्ण प्राणी परमेश्वर के एक अंश में स्थित हैं।

गीता में कहा गया है कि परमेश्वर अव्यय, अविनाशी और अन्तर्यामी है।[3]

---

1. वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
   ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ।।

   भागवत– 1/2/11

2. सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

   ऋ0 10/90/1

3. अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
   विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ।।

   गीता 2/17

जीव-

जो सर्वत्र व्याप्त है, सबको अपने में ग्रहण कर लेती है और जिसकी सत्ता निरन्तर बनी रहती है, उसे आत्मा कहते हैं। यही आत्मा जब प्रकृति या शरीर से सम्बंधित हो जाती है, तब उसे जीव कहते हैं। मनु के मत से दुःख का अनुभव करने वाली शरीरस्थ आत्मा को जीव कहते हैं।[1]

वेद में मनुष्य शरीर को पीपल का वृक्ष बतलाते हुए कहा गया है कि जीवात्मा और परमात्मा रूपी दो पक्षी इस शरीर रूपी वृक्ष में निवास करते हैं। जीव रूपी पक्षी इस वृक्ष के फलों का उपभोग करता है, अर्थात् कर्म करता है और उनके फलों को भोगता है। दूसरा पक्षी परमात्मा साक्षी रूप में स्थित रहता है। आत्मा इन्द्रियों के वश में होकर संसार- चक्र में पड़कर चक्कर काटती रहती है। जब तक जीव को आत्मा तथा परमात्मा के स्वरूप का तात्त्विक ज्ञान नहीं हो जाता, तब तक वह द्वैताद्वैत की संदेह युक्त ग्रंथियों में आबद्ध होकर जन्म-मरण का दुःख भोगता रहता है।

कठोपनिषद् में आत्मा को रथी और शरीर को रथ कहा गया है। बुद्धि सारथी, मन लगाम और इन्द्रियाँ घोड़े हैं.

जो जीव विवेकशील बुद्धि रूप सारथी से सम्पन्न होकर मन रूप लगाम को वश में रखता है, वह संसार- सागर के पार पहुँच कर सर्व व्यापी परमात्मा के प्रसिद्ध परम पद को प्राप्त करता है।

जगत्-

गत्यर्थक गम् धातु से क्विप् प्रत्यय का योग करने पर जगत् शब्द निष्पन्न होता है। जगत् का अर्थ है- गमनशील, गच्छति इति

---

1. जीव संज्ञोऽन्तरात्मान्यः सहजः सर्वदेहिनाम् ।
येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ॥ मनु 12/13

जगत्।

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में कहा गया है कि आदि पुरुष से विराट की उत्पत्ति हुई। उस विराट से देव पशु,पक्षी और मनुष्य आदि प्राणियों तथा भूमि की सृष्टि हुई। उसके पश्चात् ग्राम्य और जंगली पशु उत्पन्न हुए। ब्राह्मण इस पुरुष का मुख था। क्षत्रिय बाहुरूप तथा वैश्य जंघा स्वरूप थे। शूद्र इस पुरुष के चरणों से उत्पन्न हुआ। पुरुष के मन से चन्द्रमा, नेत्र से सूर्य, प्राणों से वायु तथा मुख से इन्द्र और अग्नि का जन्म हुआ। उसकी नाभि से अन्तरिक्ष, सिर से स्वर्ग, चरणों से भूमि, कानों से दिशाएं—इस क्रम से लोकों की उत्पत्ति हुई।[1]

माया—

माया ईश्वर की उपाधि का नाम है। वेदान्त सार में माया की निम्नांकित दो शक्तियों का उल्लेख हुआ है।

1. आवरण शक्ति
2. विक्षेप शक्ति

आवरण शक्ति जीव के ज्ञान नेत्रों के सामने आकर ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को उसी प्रकार ढक लेती है, जिस प्रकार एक छोटा सा मेघ का टुकड़ा द्रष्टा के नेत्रों को ढंककर अनेक योजन विस्तृत सूर्य को छिपा देता है।

जब ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप छिप जाता है, तब विक्षेप शक्ति नाना प्रकार के जगत प्रपंचों की उद्भावना करके उनमें जीव को उसी प्रकार भ्रमित कर देती है, जिस प्रकार रज्जु में सर्प का भ्रम हो जाता है।

---

1. चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत।।
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्।।

ऋ० 10/90/13-14

शंकराचार्य ने ईश्वर की सृष्टि विधायिनी शक्ति तथा त्रिगुणात्मिका माया को प्रकृति कहा है।[1]

गीता में कहा गया है कि भगवान की दैवी शक्ति का नाम माया है। वह गुणमयी और दुरत्यया है। भगवत्प्रपन्न जन ही उससे निस्तार पा सकते हैं।[2]

<u>मोक्ष-</u>

मोक्ष शब्द मुच् "प्रमोक्षणे मोदने च" धातु से निष्पन्न हुआ है। इस प्रकार मोक्ष शब्द के दो अर्थ होते हैं- प्रथम माया के बन्धनों से छुटकारा तथा द्वितीय परमानंद की प्राप्ति। मोक्ष शब्द का द्वितीय अर्थ ही परमानंद की प्राप्तिरूपात्मक सत्ता का द्योतक है।

शांकर मत से प्रपंच का विनाश ही मोक्ष है।[3]

अप्पय दीक्षित के मत से जीव में ब्रह्म के गुणों का संक्रमित होना मोक्ष है।[4]

प्रभाकर के मत से जीव की धर्म में स्थिति और अधर्म के त्याग की दशा का नाम मोक्ष है।[5]

शास्त्रों में अविद्या के नाश[6] और आत्मा का अपने स्वरूप में स्थिति[7] को मोक्ष कहा गया है।

<u>मोक्ष के साधन-</u>

अध्यात्म रामायण में मोक्ष के निम्नलिखित तीन साधन बतलाये गये हैं।

1. ज्ञान
2. कर्म
3. भक्ति

---

1. प्रकृतिः ईश्वरस्य विकार कारण शक्तिः त्रिगुणात्मिका माया ।
2. दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
   मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।।गीता13/19 का शांकरभाष्य
3. प्रपंच विलयो मोक्ष इति शांकराः । गीता 7/14
4. "ब्रह्म प्राप्तिः मोक्षः। ब्रह्मणः सह [illegible] .."

मार्गास्त्रयो मया प्रोक्ताः पुरा मोक्षाप्ति साधकाः ।
कर्म योगो ज्ञान योगो भक्ति योगश्च शाश्वतः ॥ 1

जो पुरुष कर्म और उनके फल से विरक्त हो चुके हैं, वे ज्ञान योग के अधिकारी हैं। जिनके-जिनके चित्त में कर्म के प्रति वैराग्य नहीं उत्पन्न हुआ है, वे कर्म योग के अधिकारी हैं। जो पुरुष न अत्यन्त आसक्त हैं और न अत्यन्त विरक्त वे भक्ति योग के अधिकारी हैं।

अब राम चरित मानस तथा आनंद रामायण में ब्रह्म, जीव जगत माया तथा मोक्ष के स्वरूप का क्रमिक विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है-

सत्य तक पहुंचने के विचारों का प्रतिपादन दर्शन का प्रमुख कार्य है। अनादि काल से मानव चिन्तन के द्वारा अपने सत्य के सान्निध्य के लिये प्रयत्नशील है। इस अन्वेषण के मार्ग में अगणित मनीषी अपने विचार पुष्प बिखेर पथ को प्रशस्त कर गये हैं। भारतीय संस्कृति के उन्नायकों ने इस संबंध में जो विचार प्रस्तुत किये हैं उनके पुंजीभूत कोष को ही भारतीय दर्शन की संज्ञा दी जाती है। आराध्य राम के अनन्य भक्त तुलसी ने भी विभिन्न दार्शनि ग्रन्थों का दोहन करने के पश्चात् अपना एक विशिष्ट दर्शन अपने काव्य-ग्रन्थों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उनके दर्शन के विशद दर्शन हमें रामचरित मानस में प्राप्त होते हैं।

मानस में दर्शन-

ब्रह्म-

अखिल विश्व के कारण रूप अग जग में व्याप्त तथा

---

1. अध्यात्म रामायण 7/7/59

समस्त जग जन को अपने में समाहित किये हुए विराट विश्व नियन्ता को अनादि, अनन्त, अज, अगोचर, अकाम और अनीह गुण बोधक विविध संज्ञाओं से अभिहित परम शक्ति के पुंज को तत्व वेत्ताओं ने ब्रह्म कहकर पुकारा है। मानसकार ने ब्रह्म की उपर्युक्त समस्त विशेषताओं से सम्पन्न अपने परमेष्ट स्वामी श्री राम को माना है। उन्होंने इस तथ्य को सकल मानस के अनेक स्थलों में स्पष्ट की है। राम जन्म के पूर्व ही मानसकार ने यह स्पष्ट कर दिया है कि मनु शतरूपा के तप बल से प्रभावित होकर स्वयं ही ब्रह्म साकार रूप में प्रकट हुए और उन्होंने अपने सुदर्शन से दम्पति को परमानन्द की अनुभूति प्रदान की।[1]

ब्रह्म के साथ में उनकी महा शक्ति भी दम्पति को दर्शित हुई।[2]

मानसकार ने यहीं यह स्पष्ट कर दिया है कि यह ब्रह्म और ब्रह्म की शक्ति राम और सीता ही हैं, अन्य कोई नहीं।[3]

राम जन्म के पूर्व विश्व की विषम भयद स्थिति के निवारण हेतु समस्त देवताओं ने ब्रह्म के साकार रूप में अवतरित होने की महती आवश्यकता अनुभव की है और सभीने अपने समवेत स्वर में उस अलौकिक शक्ति से भूमि भार हरण हेतु अवतरित होने की अभ्यर्थना की थी। तब ब्रह्म वाणी के द्वारा ही देवगण सान्त्वनान्वित हो गये थे।[4]

---

1. भगत बछल प्रभु कृपा निधाना। रा.च.मा. 1/145/8
   बिस्व बास प्रगटे भगवाना॥

2. बाम भाग सोभति अनुकूला ।
   आदि शक्ति छबि निधि जगमूला॥
   जासु अंस उपजहिं गुन खानी । रा.च.मा. 1/147/2,3
   अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥

3. भृकुटि बिलास जासु जग होई । रा.च.मा. 1/147/4
   राम बाम दिसि सीता सोई॥

4. गगन ब्रह्मबानी सुनिकाना ।
   तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना॥ रा.च.मा. 1/149/6

मनु ने स्वयं उनको ब्रह्म कहकर अभिहित किया।[1]

राम जन्म पर मानसकार ने उन्हें माया, गुण और इन्द्रियों से परे कहकर उनके ब्रह्म रूप का संकेत दिया है।[2]

तुलसी के राम परमेश्वर तथा परात्पर नाथ हैं भगवान शंकर श्री पार्वती जी से श्री राम महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि श्री राम जी व्यापक ब्रह्म परमानंद स्वरूप, परमेश के स्वामी तथा पुराण स्वरूप हैं वे परम पुरुष, प्रकाश पुंज तथा प्रत्यक्ष प्रभु हैं।[3]

समस्त विश्व उन्हीं की चेतना से चैतन्य है। इन्द्रियाँ उनके विषय, इन्द्रियों के देवता तथा जीवात्मा- इन सबको प्रकाश देने वाले अनादि ब्रह्म श्री राम जी ही हैं। वे ही समस्त जगत के प्रकाशक, मायापति तथा ज्ञान-गुण-धाम हैं।[4]

---

1. तुम ब्रह्मादि जनक जग स्वामी ।
   ब्रह्म सकल उर अंतरजामी ॥ रा.च.मा. 1/149/6

2. विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार ।
   निज इच्छा निर्मित तन माया गुन गो पार ॥

   रा.च.मा. 1/192

3. राम ब्रह्म व्यापक जग जाना ।
   परमानंद परेश पुराना ॥
   पुरुष प्रसिद्ध प्रकाश निधि प्रगट परावरनाथ।
   रघुकुल मनि मम स्वामि सोई कहि शिव नायउ माथ।

   रा.च.मा. 1/116

4. विषय करन सुर जीव समेता ।
   सकल एक तें एक सचेता ॥
   सब कर परम प्रकाशक जोई ।
   राम अनादि अवधपति सोई॥

   रा.च.मा. 1/116/5-6

ब्रह्म को वेद अलौकिक क्रियाओं का कर्ता कहते हैं। वह पग रहित होकर भी चलता है, कर्ण रहित होकर भी सब कुछ सुनता है, हाथों के बिना भी विभिन्न कर्म करता है, मुख रहित होकर भी समस्त रसों का रसास्वादन करता है, वाणी न होते हुए भी महान वक्ता तथा योगी है, अशरीरी होकर भी स्पर्श करता है, नेत्रों के बिना भी देखता है तथा नाक न होते हुए भी सब प्रकार की सुगन्धियों को ग्रहण करता है। वही ब्रह्म भक्त जनों के हित के लिये अयोध्या में चक्रवर्ती सम्राट दशरथ के यहाँ अवतरित हुआ है।[1]

इसी ब्रह्म की प्राप्ति के लिये योगीजन क्रोध, मोह, ममता तथा मद को त्याग कर योग करते हैं। अष्टांग योगी महाराज जनक ने विदाई बेला पर राम के इसी ब्रह्म स्वरूप को पहिचाना है। वह मन व वाणी से परे है। उसका अनुमान तो किया जा सकता है किन्तु उसे तर्क से सि.. नहीं किया जा सकता। उसकी महिमा का गायन वेदों की क्षमता से भी परे है। वह भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों में सम रहने वाला है।[2]

---

1. बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु कर्म करइ विधि नान
   जेहि इमि गावहिं वेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।
   सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान ॥

   रा.च.मा. 1/117/5 से 1/118

2. करहिं जोग जोगी जेहि लागी ।
   कोहु मोह ममता मद त्यागी ॥
   व्यापक ब्रह्म अलख अविनासी ।
   चिदानंदु निरगुन गुन रासी ॥
   x x x
   महिमा निगम नेति कहि कहई ।
   जो तिहुंकाल एक रस रहई ॥

   रा.च.मा. 1/340/5 से 8 तक

[illegible] श्री लखन लाल जी द्वारा निषादराज गुह को दिये गये उपदेश में भी श्री राम को परम ब्रह्म कहकर उन्हें अविगत, अलख अनादि, अनुपम तथा समस्त विकारों से रहित कहा गया है। परमार्थ स्वरूप वही पर ब्रह्म भक्त, पृथ्वी, ब्राह्मण, गौ तथा देवताओं के हितार्थ मानव देह धारण कर अवतरित होता है।[1]

भक्त शिरोमणि श्री विभीषण जी भी रावण को उचित परामर्श देते हुए राम के इसी रूप का वर्णन करते हैं। वे रामको समस्त लोकों के नायक तथा काल के भी काल कहकर उन्हें विकार रहित, जन्म रहित, सर्व व्यापक, अजेय, अनादि तथा अनन्त ब्रह्म कहते हैं। वे कृपा के सिंधु तथा भक्त जनों को आनन्द प्रदान करने वाले हैं। दुष्टों के विनाश तथा वेद व धर्म की रक्षार्थ उनका अवतार हुआ है।[2]

---

1. राम ब्रह्म परमारथ रूपा ।
अविगत अलख अनादि अनूपा ।।
सकल बिकार रहित गत भेदा ।
कहि नित नेति निरूपहिं बेदा ।।

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुरहित लागि कृपाल ।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जग जाल ।।

रा. च. मा. 2/93

2. तात राम नहिं नर भूपाला ।
भुवनेश्वर कालहु कर काला ।
ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता ।
व्यापक अजित अनादि अनन्ता ।।
x x x
जन रंजन भंजन खल ब्राता ।
बेद धर्म रक्षक सुनु भ्राता ।।

रा. च. मा. 5/38/1 से 4 तक

लंकापति रावण के वध के पश्चात् देवताओं द्वारा की गयी श्री राम जी की स्तुति में श्री तुलसी ने ब्रह्म के इसी रूप की झलक प्रस्तुत की है। वह ब्रह्म समरूप, अविनाशी, एक रस तथा स्वाभाविक उदासीनता से युक्त है। वह अखण्ड निर्गुण, अजन्मा, निर्विकार, अजेय, दयामय तथा अमोघ शक्ति सम्पन्न है। देवताओं को कष्ट से छुड़ाने के लिये वह समय-समय पर मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन तथा परशुराम आदि अनेक रूपों में अवतरित होता है।[1]

श्री काक भुशुण्डि जी भी महान ज्ञानी श्री गरुड़ जी से राम के इसी परमब्रह्म स्वरूप का विवेचन प्रस्तुत करते हैं। वे श्री राम जी को सच्चिदानंद घन, अजन्मा, विज्ञान स्वरूप तथा रूप व बल का धाम कहते हैं। श्री राम जी सर्व व्यापक, सर्वरूप, अखण्ड, अनंत, पूर्ण तथा अमोघ शक्ति सम्पन्न हैं। वे प्रकृति से परे, सर्व समर्थ तथा सर्व-उरवासी एवं इच्छा रहित हैं।[2]

तुलसी ने ब्रह्म के सगुण तथा निर्गुण दोनों रूपों का समन्वय प्रस्तुत किया है। उन्होंने सगुण तथा निर्गुण में कोई भेद नहीं माना। उनके अनुसार जो ब्रह्म निर्गुण है वही भक्त प्रेम वश सगुण हो जाता है। सगुण तथा निर्गुण उसी प्रकार अभिन्न है जिस प्रकार जल तथा बर्फ।

---

1. अकल अगुन अज अनघ अनामय।
   अजित अमोघ शक्ति करुनामय।।
   मीन कमठ सूकर नरहरी।
   बामन परशुराम वपुधरी।। रा.च.मा.6/109/ 6 व 7

2. सोइ सच्चिदानंद घन रामा।
   अज विज्ञान रूप बल धामा।।
   x x x
   प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी।
   ब्रह्म निरीह विरज अविनासी।। रा.च.मा. 7/71/3 से 7

3. अगुन अरूप अलख अज जोई।
   भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।
   जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे।
   जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे।।
   रा.च.मा. 1/115/2-3

महामुनि सुतीक्ष्ण जी श्री राम जी की स्तुति करते हुए उन्हें निर्गुण तथा सगुण दोनों स्वीकार करते हैं।[1]

भक्त राज जटायु भी सारूप्य मुक्ति प्राप्त करके श्री राम जी की स्तुति करता हुआ उन्हें सगुण तथा निर्गुण दोनों रूपों में स्वीकार करता है। वह उन्हें सद्गुणों का प्रेरक भी मानता है।[2]

श्री राम जी के राज्याभिषेक के बाद वेदों ने भी उनकी स्तुति करते हुए उन्हें सगुण तथा निर्गुण रूप कहकर अप्रतिम रूपवान तथा भूपाल शिरोमणि कहा है।[3]

प्रभु की सगुण लीला उनके स्वरूप को यथावत समझने में भ्रम उत्पन्न कर देती है। इसीलिये मानसकार ने सगुण की अपेक्षा निर्गुण रूप के समझने को अधिक सरल कहा है। श्री काकभुशुण्डि जी गरुड़ जी से यह तथ्य स्पष्ट रूप से प्रकट कर देते हैं। प्रभु की माधुर्य लीला को देखकर मुनियों के मन में भी भ्रम उत्पन्न हो जाता है। परिणामतः वे उन्हें परम ब्रह्म मानने में असमर्थ हो जाते हैं।[4]

---

1. निर्गुन सगुन बिषम सम रूपं ।
   ज्ञान गिरा गोतीत मनूपं ।।   रा.च.मा. 3/10/11

2. जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही ।
   दससीस बाहु प्रचण्ड खंडन चंडसर मंडन मही ।।

   रा.च.मा. 3/31/छंद (1)

3. जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने ।

   रा.च.मा. 7/12/छंद (1)

4. निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोई ।
   सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होई ।।

   रा.च.मा. 7/73/(क)

उपर्युक्त विवेचन से राम के ब्रह्मत्व के सम्बन्ध में मानसकार की दृढ़ आस्था व्यक्त होती है। इस तरह उनका ब्रह्म विवेचन वेदान्त के "एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति " से भिन्न हो जाता है। तुलसी का ब्रह्म धर्म संस्थापन और अधर्म विघटन के लिये सगुण साकार होकर राम रूप में प्रस्तुत हुआ है। श्री मद भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण के श्री मुख से कथित – "यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।[1]

के अनुसार मानसकार ने भी स्पष्ट किया है कि जब धरा मण्डल में धर्म की अवमानना तथा अधर्म की वृद्धि होती है तब ब्रह्म का साकार अवतार होता है।[2]

इस प्रकार मानसकार ने राम को पूर्ण ब्रह्म मानते हुए निर्गुण और सगुण ब्रह्म के दोनों रूपों को मान्यता प्रदान करके ब्रह्म के संबंध में अपनी नवीन मौलिक उद्भावना प्रस्तुत की है। तुलसी के इस नूतन ब्रह्मवाद ने उत्तर भारत के हृदय-हृदय को रामत्व के प्रति गंभीर और अटूट आस्था से सम्पन्न बना दिया है।

---

1. गीता 4/ 7 व 8

2. जब जब होय धरम कै हानी ।
बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।।

x x x

तब तब धरि प्रभु विविध सरीरा ।
हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा ।।

रा.च.मा. 1/120/6 से 8 तक

जीव-

नाशवान जगत समस्त जड़ जंगम का अपना घर है। इसके प्रति आत्मा और अनात्मा का विवेक केवल मनुष्य की निधि है। अपनी गति से इस धरा को स्पंदित तथा अपनी वाणी से इसे ध्वनित एवं अपनी विभिन्न चेष्टाओं से इसे क्रियान्वित बनाने वाला जीव की कोटि में मान्य है। इस जीव को वेदान्त विदों ने अखिल नियन्ता ब्रह्म की विभिन्न लीलाओं का केन्द्र माना है। ब्रह्म ही लीला मय बनने के लिये अगणित जीवों के रूप में नाशवान जगत के कोने कोने में दृष्टि गोचरित हो रहा है। ब्रह्म की " एको हम् बहुस्यामि " की प्रवृत्ति का विस्तार ही निखिल जीव मण्डल है। मानस कार ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है -[1]

माया से आवृत्त जीव ब्रह्म के ही समरूप मान्य है। गोस्वामी जी ने जीव से ब्रह्म का और ब्रह्म से जीव का विच्छेदन माया जन्य माना है -[2]

जीव और ब्रह्म की विवेचना के तारतम्य में मानसकार ने जीव को मायाधीन और ब्रह्म को स्वाधीन, जीव को नानात्व और ब्रह्म को एकत्व की विशेषताओं से सम्पन्न बताया है।[3]

---

1. ईश्वर अंस जीव अविनासी ।
   चेतन अमल सहज सुखरासी ।। रा.च.मा. 7/116/[ख]/2

2. सो मायाबस भयउ गोसाईं ।
   बंध्यो कीर मरकट की नाईं ।।
   रा.च.मा. 7/116/3

3. परबस जीव स्वबस भगवंता ।
   जीव अनेक एक श्रीकंता ।।
   रा.च.मा. 7/77/7

ब्रह्म की भाँति जीव भी शाश्वत नित्य और अविनाशी है। नाशवान शरीर के साथ इसका सम्बन्ध अस्थाई है। बालि के निधन पर विधुवातारा को प्रबोधन देते हुए स्वयं श्री राम ने इस तथ्य का उद्घाटन किया है।[1]

महान दर्शन शास्त्री डॉ० राधाकृष्णन द्वारा भी अपने " भारतीय दर्शन " ग्रन्थ में जीव और ब्रह्म के पार्थक्य का स्पष्टी-करण किया गया है। उन्होंने लिखा है –[2]

" जिस प्रकार एक संकुल अपनी सीमाओं से घिरा हुआ आकाश नहीं है उसी प्रकार ऐसे जीव जो मन तथा इन्द्रियों से बद्ध हैं, ब्रह्म नहीं है।"

वस्तुतः मानसकार ने ब्रह्म और जीव के पार्थक्य को माया जन्य माना है। माया से मुक्त जीव आत्म स्वरूप को जान लेता है और स्वयं ब्रह्म रूप हो जाता है।[3]

माया के मायावी तंत्र में आबद्ध जीव अपने को एक ऐसी स्थिति में केन्द्रित कर लेता है जहाँ वह चेतना की तपु की ओर प्रवृत्त शक्ति से शून्य हो जाता है। अतः वह नहीं अपने को , न अपने ऊपर सबल शासिका माया को और न ही अखिल नियन्ता ब्रह्म को अपनी ज्ञान धारणा में अन्तर्भूत कर पाता है। जीव की यह स्थिति उसे निर्वाध के आत्म तंत्र का स्वान्तः सुख पाने में अक्षम बना देती है। तुलसी ने इस तथ्य की स्पष्ट घोषणा की है।[4]

---

1. छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा।।
   प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा।।

   रा०च०मा० 4/10/4 व 5
2. "भारतीय दर्शन" पृष्ठ 605 । डॉ० राधाकृष्णन ।
3. सोइ जानइ जेहि देहु जनाई ।
   जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होई जाई।। रा०च०मा० 2/126/3
4. माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव ।
   [illegible] कै

   रा०च०मा० 3/15

गोस्वामी जी ने जीव की मायाछन्न स्थिति को सुषुप्त अवस्था के रूप में स्वीकार किया है। जिस प्रकार से सुषुप्त अवस्था में प्राणी की अचेतना अपने नितान्त मिथ्या स्वप्नों के व्यवहार तंत्र में इस प्रकार आबद्ध हो जाती है कि तत्काल उसकी अपनी वह स्थिति सत्य स्वरूप प्रतीत होती है। ठीक इसी प्रकार माया के तंत्र में बंधे हुए सभी मनुष्यों की यही स्थिति है। इस स्थिति से हम इतने प्रलोभित हैं कि इससे बाहर जाने की कल्पना भी कष्टकर प्रतीत होती है। हम जगत के भोग और मोह के जटिल बंधनों में अपने को इतनी दृढ़ ग्रन्थि से आबद्ध कर लेते हैं कि मोक्ष हमारे लिए आकाश कुसुम सा अनुभव होने लगता है। मानसकार ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए ही जीव को जागृत स्थिति की ओर उन्मुख होने का प्रेरक संदेश दिया है। जागृत स्थिति ही वह स्थिति है जब कि जीव आत्म स्वरूप का ज्ञाता होकर ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। तुलसी ने अपने दार्शनिक ग्रन्थ विनय- पत्रिका में जीव को इस तथ्य की स्पष्ट चेतावनी दी है।[1]

जगत को अज्ञान की रात्रि के रूप में देखते हुए दृष्टा का सुषुप्त हो जाना स्वाभाविक है। जब इस नश्वर जगत की असत्यता का आभास हो जाये तभी यह रात्रि और रात्रि के सर्वथा स्वाभाविक शयन व स्वप्न के कार्य समाप्त होंगे। असत् से सत् की ओर प्रवृत्त होने की हमारी वैदिक कामना तभी सफल होगी। तुलसी ने जीव के विषय-पराङ्मुख होकर चेतना से सम्पन्न आत्म स्वरूप को ज्ञाता जीव की इस जागृति को ही अभीष्ट और श्रेयस्कर माना है। मानस के अयोध्या काण्ड में लक्ष्मण के द्वारा उक्त दार्शनिक तथ्य का उद्घाटन कराया है।[1]

---

1. जाग जाग जीव जड़ जोहै जग जामिनी ।
   देह गेह नेह जान जैसे घन दामिनी ।।
2. सपने होइ भिखारि नृप रंक नाकपति होइ ।   रा. च. मा. 2/92
   जागे लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जिय जोइ।।
   × × ×
   जानिय तबहिं जीव जग जागा ।
   जब सब विषय विलास विरागा।।

मानसकार ने विभिन्न ब्रह्माण्डों में प्रसुप्त जीव राशि और उनकी अबोधता की सीमा का पूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है। अबोध से आत्म बोध तक की वास्तविक शक्ति के अर्जन की प्रवृत्ति सामान्य जीवों में सम्भव नहीं है। इसी कारण वह मोक्ष का कामी होते हुए भी सीमाबद्ध है। इस तथ्य के प्रस्तुतीकरण हेतु मानसकार ने अखिल लोक के समस्त जीवों को ऊमर के फल में निवास करने वाले जीवों के तुल्य बताया है। जग- नियन्ता की महाबली माया उन ऊमर फलों की जननी है। जो स्थिति उन ऊमर के फलों में फैली हुई जीव राशि की है वही स्थिति लोकान्तर्गत समस्त जीवों की है। जिस प्रकार ऊमर का फल भोज्य है उसी प्रकार यह नाशवान जगत भी विक्रान्त काल का कवल है। जीव मोक्ष की आकांक्षा रखते हुए भी ऐसे जटिल बन्धन में आबद्ध है जहाँ मोक्ष उसके लिए केवल कल्पना का विषय बन गया है।[1]

तुलसी ने माया से सृजित जटिलतम समस्या के रूप में परखी है। जीव बेचारा अपनी अतिसीमित शक्ति से इस जटिलतम समस्या के सरलीकरण का कोई विकल्प नहीं रखता है। इस तथ्य के लिए मानसकार का उक्त रूपक पूर्ण रूप से सटीक है। ऊमर के फल से जीव की विस्तृति एवं लोक के मोह जाल से इस सब की विस्तृति को तुलनात्मक स्थिति में दर्शाते हुए तुलसी ने जग-जाल की जटिलता का सम्यक स्वरूप स्थिर किया है। वस्तुतः जीव का आत्म बोधत्व और तज्जन्य ब्रह्मत्व अतीव दुष्प्राप्य है।

---

1. ऊमर तरु विसाल तव माया ।
   फल ब्रह्माण्ड अनेक निकाया ।।
   जीव चराचर जंतु समाना ।
   भीतर बसहिं न जानहिं आना।।
   ते फल भच्छक कठिन कराला ।
   तव भय डरत सदा सोउ काला।।

   रा.च.मा. 2/92

जीव और ब्रह्म के पार्थक्य को बल प्रदान करने में कारण रूप विभिन्न मानस रोग मानसकार ने इंगित किए हैं। इन रोगों से जीव का राम सहज सा हो गया है। इनसे विमुक्ति का विचार केवल ज्ञानियों के अंतराल में उदित होना संभव है। सामान्य जीव इन रोगों से सतत् रोगी हैं। जिस प्रकार तन के रोग शारीरिक दुर्बलता के हेतु होते हैं उसी प्रकार ये मन के रोग मानसिक दौर्बल्य के हेतु हैं। इन मानस रोगों के उग्र होने पर विवेक को जागृत करने वाली मनन और चिन्तन की शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। तत्पश्चात जीव उन सभी कार्यों को करने के लिए विवश होजाता है जिन्हें अज्ञान की संज्ञा दी गयी है। तुलसी ने जीव को बाधित करने वाले इन मानस रोगों को कायिक रोगों की भाँति ही पीड़ा जनक बताया है।[1] इन मानस रोगों का मूल मोह है। मोह जनित काम, क्रोध, लोभ वात- पित्त और कफ के रूप में वर्णित है, यदि काम, क्रोध और लोभ तीनों प्रबल हो उठे तो जीव उसी प्रकार कष्टित हो जायेगा जिस प्रकार वात, पित्त और कफ के प्राबल्य से कायिक कष्ट बढ़ जाता है। समस्त मानस रोगों की वृद्धि विषय वासनाओं से उद्भूत है। ममता, ईर्ष्या, हर्ष, विषाद, कुटिलता, अहंकार, दंभ, तृष्णा, त्रिविध ईषणा आदि मानस रोग जीव को प्रपीड़ित किए हुए हैं। जीव के आत्म बोध में एक ही रोग बाधक बन सकता है फिर जब जीव अनेकों व्याधियों से प्रपीड़ित है तो उसके लिए आत्म बोध और ब्रह्मत्व प्राप्ति को सम्भव कर पाना टेढ़ी खीर है।[2] मानस रोगों के शमन का उपाय ज्ञान बताया है। गोस्वामी जी ने यह स्पष्ट किया है

---

1. सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्हते दुख पावहिं सब लोगा॥

   ×　　　　×　　　　×

   जुग विधि ज्वर मत्सर अविवेका। कहँ लग कहौं कुरोग अनेका॥

   रा.च.मा. 7/120/28 से 37 तक

2. एक व्याधि वश नर मरहिं एअसाधि बहु व्याधि।
   पीड़हिं संतत जीव कहँ सो किमि लहै समाधि ॥

   रा.च.मा. 7/121 (क)

कि जीव को परितप्त करने वाले ये मानस रोग ज्ञान से कमजोर अवश्य पड़ते हैं किन्तु पूर्ण रूपेण नष्ट नहीं होते।[1] रोगों के विनष्ट होने का उपाय केवल ईश्वर की कृपा को बताया गया है।[2] सद्गुरु के वचनों पर विश्वास, इन्द्रिय संयम, विषयों के प्रति उदासीनता, राम की भक्ति से ही इन मानस रोगों को समूल नष्ट करने वाली औषधियाँ मानसकार ने इंगित की है। मानस रोगों से विमुक्त जीव मायावी रागों से मुक्त हो जाता है। सद्बुद्धि और राम के प्रति अटूट भक्ति भावना की अनुभूति का आनन्द प्राप्त करता है और तभी जीव ब्रह्मत्व के पथपर अग्रसर होता है।

द्वन्द्व जगत का धर्म है और जीव इस लौकिक धर्म की जटिलता से आबद्ध है। ज्ञानोदय पर मुक्ति संभव है किन्तु ज्ञान शाश्वत और चिरन्तन होना चाहिए। ज्ञान के पश्चात अज्ञान की प्रवृत्ति वर्जित होना चाहिए। प्रकाश सनातन और अनन्त हो तभी परम प्रकाश का आभास और एकीकरण संभव है। मानसकार ने इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए लिखा है।[3]

यदि एक रस ज्ञान प्राप्त हो जाय तो जीव ब्रह्मत्व की स्थिति में पहुंच सकता है।[4]

---

1. जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी ॥
   रा.च.मा. 7/12/3

2. राम कृपा नासहिं सब रोगा ।
   जौं एहि भाँति बनै संयोगा ॥
   रा.च.मा. 7/121/5

3. हरष विषाद ज्ञान अज्ञाना ।
   जीव धरम अहमिति अभिमाना ॥
   रा.च.मा. 1/115/7

4. जो सबके रह ज्ञान रस ।
   ईश्वर जीवहिं भेद कहहु कस ॥
   रा.च.मा. 7/77/5

शाश्वत ज्ञान की उपलब्धि और अज्ञान के गहन तिमिर से निवृत्ति मानसकार ने केवल राम की कृपा से ही संभव मानी है।[1]

गोस्वामी जी ने जीव को ब्रह्म -य माना है। निर्गुण वादी संतों की भांति उन्होंने प्रत्येक जीव के अंतःकरण में ब्रह्म की शाश्वत स्थिति को स्वीकार किया है। कबीर, नानक, दादू सभी निर्गुण पंथी कवियों ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। कबीर ने स्पष्ट कहा है-

" ज्यों तिल माहीं तेल है ज्यों चक मक में आग ।
तेरा साईं तुज्झ में जागि सके तो जाग ॥

मानसकार ने भी अखिल लोक में गति शील विभिन्न आकरों एवं योनियों में विभक्त अखिल जीव मण्डल को राम मय अनुभव किया है और इसी से जीव राशि से सम्पन्न यह जगत वन्दनीय माना है।[2]

जीव ही ब्रह्म की लीला का केन्द्र है द्वन्द्वात्मक जगत में " एकोऽहम् बहुस्यामि " की लीला विस्तारण उद्घोषणा के क्रियान्वयन हेतु अखिल जीव राशि का उद्भव हुआ। लोक की आलोकमय स्थिति का हेतु यही जीव मण्डल है। माया के तिमिर से इस आलोक के तिरोहित होने और ज्ञानोदय से इसके पुनः उदित होने का शाश्वत कार्य अनादि काल से निरन्तरित है। ब्रह्म के साथ अंशी-अंश के सम्बन्ध में बंधा हुआ यह जीव उस ब्रह्म तक पहुंचने के लिए सतत् प्रयत्नशील है। माया के व्यवधान और उन व्यवधानों को पार करने का उपक्रम जीव मण्डल के सतत् क्रिया कलापों का अंग है। मानसकार ने अनन्त जीव राशि से सम्पन्न इस जगत को राम मय और माया मुक्त हो जाने पर राम रूप मानकर अपनी श्रद्धा पूर्ण प्रणति स्थान स्थान पर निवेदित की है।[3]

---

1. नाथ जीव तव माया मोहा । रा.च.मा. 4/2/2
   सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा ॥
2. आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ वासी ॥
   सीय राम मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥
   रा.च.मा. 1/7/1 व 2
3. जड़ चेतन जग जीव जत सकल राम मय जानि ।
   बन्दउँ सब के पद- कमल सदा जोरि जुग पानि ॥
   रा.च.मा. 1/7/[illegible]

इस प्रकार मानसकार ने लोक मंगल के लिए यह अपेक्षा की है कि मायावी तिमिर को नष्ट करके जीव मण्डल ब्रह्म की अखण्ड ज्योति से उद्भासित हो।

माया-

वैदिक उद्घोष "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" को आत्मसात करते हुए ज्ञानी संतों ने सत्य को ग्राह्य एवं असत्य को त्याज्य बताया है। जगत गुरु शंकराचार्य तथा परवर्ती अन्य सिद्ध साधकों ने मिथ्या भासित समस्त भौतिक तत्वों को तथा उन तत्वों के प्रति जीव की सत्यवत् प्रतीति को माया की संज्ञा प्रदान की है। मानसकार ने भी जगत के अन्तराल में इन्द्रिय- अनुभव गम्य तथा मानसिक चिन्तन आप्त समस्त विनाशी तत्वों को माया कह कर अभिहित किया है।[1]

इस प्रकार निखिल विश्व में प्रसारित माया के विशाल परिवार से सम्बद्ध तन्तु से स्वतः आबद्ध होना जीव की अपनी विवशता है। असत्य को सत्य के रूप में स्वीकार करते हुए जीव को मायावी और माया मुग्ध बनने के लिए विवश होना पड़ता है। माया की विराट परिधि के अन्तराल में समस्त इन्द्रिय गम्य मनन लभ्य तत्वसमाहित होते हैं। अस्तु विनाशी, अल्पजीवी एवं अस्थाई समस्त लोक प्रसरित बहुरंगमय माया के रूप हैं। इन मायावी तत्वों की सत्य प्रतीति भ्रान्ति है और इनके प्रति स्थिर आस्थाएं प्राणी में विभेदकारी हैं। परम सत्ता के प्रति अनास्था को प्रेरित करने वाले मेरे-तेरे की भावना माया कहलाती है। मानसकार ने इसीलिए माया का स्वरूप प्रभु श्री राम के श्री मुख से स्पष्ट कराते हुए लिखा है।[2]

---

1. गो गोचर जहँ लगि मन जाई।
   सो सब माया जानहु भाई॥ — रा.च.मा. 3/14/3

2. मैं अरु मोर तोर तैं माया।
   जेहि बस कीन्हे जीव निकाया॥

   रा.च.मा. 3/14/2

मानसकार ने इस मिथ्या प्रतीति में भ्रमित जीव लोक को आत्म नियन्त्रण से मुक्त एवं जटिल माया के नियन्त्रण से आबद्ध बताया है। उन्होंने माया के उस स्वरूप को जिसके अंतर्गत मनोविकारों को प्रश्रय देने वाले आकर्षण पुष्ट होते हैं, और जिसके कारण जीव परम तत्व एवं उसके कल्याण मय विधान से अनभिज्ञ बना रहता है, परिणामतः जगत के भव तापों का कोप भाजन बनता है, अविद्या कहा है। माया का एक रचनात्मक रूप है जो त्रिगुणात्मक एवं माया-धीश परमतत्व से शक्ति पाने वाला और उस शक्ति से अनेकानेक मायावी गोचर तत्वों का निर्माण करने वाला है। मानसकार ने इस रूप वाली माया को विद्या कहा है। इस प्रकार दो रूपों में जगत में विद्यमान माया जगत के विभिन्न द्वन्द्वों की हेतु है।[1]

मानसकार ने माया को अत्यधिक बलवती बतलाया है। सम्पूर्ण जगत, ब्रह्मादि देवता तथा सभी असुर इस माया के वशीभूत हैं –[2]

देवर्षि नारद जैसे ब्रह्म ज्ञानी भी इस माया के फन्दे से बच नहीं सके। नारद मोह प्रसंग में मानसकार ने माया की अपार शक्ति की ओर संकेत किया है।[3]

---

1. तेहिकर भेद सुनहु तुम्ह सोउ ।
   विद्या अपर अविद्या दोउ ।।
   एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा ।
   जा बस जीव परा भव कूपा ।।
   एक रचइ जग गुन बस जाके।   रा.च.मा. 3/14/4,5,6
   प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके।।

2. यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुराः ।

   रा.च.मा. 1/मंगलाचरण/6

3. अति प्रचण्ड रघुपति कै माया ।
   जेहि न मोह अस को जग जाया ।।

   रा.च.मा. 1/127/8

महा मायापति प्रभु राम की यह माया देवता, मुनि तथा मनुष्य सभी को क्षण मात्र में मोहित कर लेती है।[1]

माया के पाश में आबद्ध जीव अनेक तरह से प्रताड़ित होता है। माया के प्रभाव में आने पर विवेक विनाश ले लेता है। महामुनि नारद भी माया के प्रभाव में आकर विमूढ़ हो गये।[2]

परम प्रतापी राजा भानुप्रताप का विवेक भी माया ने क्षण में नष्ट कर दिया। माया के जाल में पड़ने से ही उसका सर्वनाश हो गया। ऐसा ज्ञानी भूपाल भी कपटी पुरोहित द्वारा निर्मित मायामयी रसोई को न समझ सका।[3]

माया जीव को भुलावे में डाल देती है। ब्रह्म तथा जीव के बीच में यह माया ही पर्दे के रूप में पड़ी हुई है। यही कारण है कि जो वह आत्म स्वरूप को नहीं पहिचान पाता। ज्ञानियों में अग्रगण्य श्री हनुमान जी स्वयं इस तथ्य का निवेदन प्रभु राम जी के सम्मुख करते हुए कहते हैं।[4]

---

1. सुर नर मुनि काउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल ।
   अस विचार मन माहिं भजिय महा माया पतिहिं ।।

   रा॰ च॰ मा॰ 1/140

2. माया विवश भए मुनि मूढ़ा ।
   समुझी नाहिं हरि गिरा निगूढ़ा ।।

   रा॰ च॰ मा॰ 1/132/3

3. मायामय तेहि कीन्हि रसोई ।
   बिंजन बहु गन सकै न कोई ।।

   रा॰ च॰ मा॰ 1/172/2

4. तव माया बस फिरेउँ भुलाना ।
   ताते मैं नाहिं प्रभु पहिचाना ।।

   रा॰ च॰ मा॰ 4/1/9

माया जीव को चौरासी लक्ष योनियों में भ्रमण कराती हुई उसे विविध प्रकार से भुलावे में डालती है। यह जीव माया की प्रेरणा से ही काल, कर्म, स्वभाव और गुणों से घिरा हुआ सदैव भ्रमित रहता है।[1]

यह माया ही जीव को बंधन में डालने वाली है। माया विमोहित जीव की विषयों में प्रगाढ़ आसक्ति हो जाती है। फलतः जीव नाना प्रकार से संसार बन्धन के कष्ट पाता है। प्रभु की माया अत्यधिक दुस्तर है। यह सहज ही में पार नहीं की जा सकती।[2]

यदि जीव आत्म स्वरूप को जानने की चेष्टा भी करता है तो भी माया उसके सामने अनेक विघ्न उपस्थित करती है। जड़ चेतन की मिथ्या ग्रन्थि के छूटने से ही जीव सहज स्वरूप को पहिचान पाता है। इस ग्रन्थि को छूटते हुए देखकर माया बाधक बनकर तुरन्त ही सम्मुख आ जाती है।[3]

यह माया अनेक ऋद्धि सिद्धियों को भेजती है जो आकर बुद्धि को लोभ दिखाती है। वे छल बल से ज्ञान-दीपक के पास जाकर आँचल की वायु से उसे बुझा देती है। इस प्रकार जीव पुनः अज्ञान के गहन अन्धकार में पड़कर ग्रन्थि को छुड़ाने में असमर्थ हो जाता है।[4]

---

1. आकर चारि लक्ष चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी।।
   फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा ।।

   रा.च.मा. 7/43/4-5

2. तब फिर जीव विविध विधि, पावइ संसृति क्लेस ।
   हरि माया अति दुस्तर, तरि न जाइ बिहगेस ।।

   रा.च.मा. 7/118

3. छोरत ग्रन्थि जान खगराया ।
   विघ्न अनेक करै तब माया ।। रा.च.मा. 7/117/6

4. रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई ।
   बुद्धिहिं लोभ दिखावहिं आई।।
   कल बल छल करि जाहिं समीपा ।
   अंचल बात बुझावहिं दीपा ।। रा.च.मा. 7/117/7-8

माया का प्रचण्ड बल समस्त विश्व में व्याप्त है। श्री शिव तथा श्री ब्रह्मा जी भी इस माया का लोहा मानते हैं, अन्य जीवों की तो बात ही क्या है ?[1]

मानसकार ने इस माया को ब्रह्म की दासी के रूप में माना है। जो माया समस्त विश्व को नाना प्रकार से प्रताड़ित करती है तथा जिसके रहस्य को बड़े-बड़े मनीषी भी नहीं समझ पाते हैं, वहीं माया परम प्रभु के संकेत मात्र से अपने समाज सहित नटी के समान नृत्य करती है।[2]

भगवत् कृपा से ही जीव इस माया के जाल से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। माया से मुक्ति प्राप्त करने के दो उपाय मानसकार ने इंगित किए हैं – ज्ञान तथा भक्ति । ज्ञान का रास्ता कठिन है तथा भक्ति का रास्ता अत्यधिक सुगम है। ज्ञान भी भगवत् कृपा से ही प्राप्त होता है। बालि की मृत्यु पर विलाप करती हुई मोह विमुग्धा तारा को प्रभु ने ज्ञान प्रदान करके अपनी माया का हरण कर लिया ।[3]

---

1. शिव चतुरानन जाहि डेराहीं ।
   अपर जीव केहि लेखे माहीं ।।

   रा.च.मा. 7/70/8

2. जो माया सब जगहिं नचावा ।
   जासु चरित लखि काहु न पावा।।
   सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा ।
   नाच नटी इव सहित समाजा ।।

   रा.च.मा. 7/71/1,2

3. तारा बिकल देखि रघुराया ।
   दीन्ह ज्ञान हर लीन्हीं माया ।।

   रा.च.मा. 4/10/3

प्रभु के अनन्य भक्तों पर माया अपना प्रभाव नहीं डाल पाती। जिस प्रकार से किसी नट द्वारा किया हुआ मायावी नाटक दर्शकों को तो अत्यधिक भ्रमोत्पादक सिद्ध होता है। किन्तु नट के सेवक को उसमें तनिक भी भ्रम उत्पन्न नहीं होता, ठीक उसी प्रकार प्रभु के भक्तों को माया भ्रम में नहीं डाल पाती।[1]

मानसकार ने भक्ति को ही माया मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय बतलाते हुए समस्त जीव राशि को निष्काम होकर भगवद् भजन का उपदेश दिया है। माया संभव दोष तथा गुण हरि भक्ति के बिना समाप्त ही नहीं हो सकते।[2]

स्वयं ब्रह्मा जी भी महान ज्ञानी गरुड़ को माया में भ्रमित देखकर उन्हें राम भक्त शिरोमणि भगवान शंकर के समीप भेजते हैं। प्रथम तो वे माया के अमित प्रभाव को स्वीकार करते हैं और फिर गरुड़ जी को भक्ति मार्ग पर प्रशस्त करते हैं।[3]

श्री राम जी को ~~की~~ भक्ति ही प्रिय है। माया तो एक मात्र नाचने वाली नर्तकी है। माया भक्ति से अत्यधिक भयभीत रहती है। जब हृदय में अबाध गति से भक्ति का निवास हो जाता है तब माया

---

1. नट कृत विकट कपट खगराया ।
   नट सेवकहिं न व्यापइ माया।।

   रा॰च॰मा॰ 7/103/8

3. मन महुँ करइ बिचार बिधाता।
   माया बस कवि कोबिद ग्याता।।
   हरि माया कर अमित प्रभावा।
   बिपुल बार जेहि मोहि नचावा।।
   ×　　×　　×
   तहँ होइहि तव संसय हानी । रा॰च॰मा॰ 7/59/3 से 8 तक
   चलेउ बिहंग सुनत बिधि बानी।।

2. हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।
   भजिय राम तजि काम सब अस बिचार मन माहिं।।

   रा॰च॰मा॰ 7/104

का प्रभाव समूल नष्ट हो जाता है। इसी कारण से विशिष्ट ज्ञानी जन सर्व सुखकारी भक्ति की ही याचना करते हैं।[1]

हरि भक्त पर यदि माया हठात भी डाली जाय तो भी वह उसका लेशमात्र भी अनिष्ठ नहीं कर सकती। देव गुरु बृहस्पति जी ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए देवताओं को तात्त्विक उपदेश दिया है। श्री राम जी के अनन्य उपासक श्री भरत जी की बुद्धि को देवगण माया से विमोहित करना चाहते थे। इस प्रसंग में श्री बृहस्पति जी ने देवताओं को सचेत किया कि यदि मायापति श्री राम के सेवक पर माया जाल फैंकोगे तो वह माया उलटकर तुम्हारे ही ऊपर पड़ेगी।[2]

माया के विनाश के लिए भक्ति की उपस्थिति अंतःकरण में अनिवार्यतः होनी चाहिए। यदि हृदय में प्रभु की अनन्य भक्ति का उदय हो गया तब वह हृदय ही प्रभु का भवन हो जाता है। माया मुक्त जीव के हृदय में ही प्रभु का वास होता है। महर्षि वाल्मीकि ने प्रभु राम को उपयुक्त निवास स्थान बतलाते हुए इस तथ्य की ओर संकेत किया है।[3]

---

1. पुनि रघुवीरहिं भगति पियारी ।
   माया खलु नर्तकी बिचारी ॥
   भगतिहिं सानुकूल रघुराया ।
   ताते तेहि डरपत अति माया ॥

   × × ×

   तेहि बिलोकि माया सकुचाई । रा.च.मा. 7/115/6 से 7
   करि न सकइ कछु निज प्रभुताई ॥

2. माया पति सेवक सन माया ।
   करइ त उलटि परइ सुर राया ॥ रा.च.मा. 2/217/2

3. जिनके कपट दंभ नहिं माया ।
   तिन्हकें हृदय बसहु रघुराया ॥ रा.च.मा. 2/129/2

वैसे तो जीवात्मा से माया अत्यधिक प्रगाढ़ता से लिपटी हुई है। जिस प्रकार से वर्षा का जल पृथ्वी पर पड़ते ही मटमैला हो जाता है उसी प्रकार माया भी जीव को विकार ग्रस्त कर देती है।[1]

तथापि शाश्वत शान्ति की प्राप्ति के लिए माया का त्याग भी परमावश्यक है। माया को त्यागकर परलोक का सेवन करना चाहिए। संसार जन्य समस्त शोकों की समाप्ति का यह ही सुन्दर उपाय है।[2]

राम भक्ति रत, माया मुक्त प्राणी संसार में अत्यधिक दुर्लभ है। मानस के उत्तर काण्ड में गोस्वामी जी ने मायामुक्त जीव को संसार में दुष्प्राप्य बतलाया है। सहस्रों मनुष्यों में कोई एक धर्मव्रत धारी होता है। करोड़ों धर्मशीलों में कोई एक विषय) में अनासक्त तथा वैराग्य परायण होता है। करोड़ों वियोगियों में कोई एक यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर पाता है। करोड़ों ज्ञानियों में विरला ही जीवन मुक्त होता है। सहस्रों जीवन मुक्तों में भी ब्रह्म लीन विज्ञानी पुरुष दुर्लभ है।किन्तु सब में भी वह प्राणी दुर्लभ है जो मद और माया से रहित होकर प्रभु श्री राम जी की भक्ति में तत्पर हो।[3]

---

1. भूमि परत भा ढाबर पानी ।
   जनु जीवहिं माया लपटानी ।। रा.च.मा. 4/13/6

2. तजि माया सेइअ परलोका ।
   मिटहिं सकल भव संभव सोका।। रा.च.मा. 4/22/5

3. धर्मशील विरक्त अरु ज्ञानी ।
   दुर्लभ ब्रह्म लीन विज्ञानी ।।
   सबते सो दुर्लभ सुरराया ।
   राम भगति रत गत मद माया।।

   रा.च.मा. 7/53/7 व 8

जगत-

लीला का हेतु और लीला का क्षेत्र अपने अस्थाई अस्तित्व में सीमिततत्व जगत है। वेदान्त के "जगन्मिथ्या" की प्रतीति सगुण और निर्गुण दोनों के भक्तों को विभिन्न रूपों में हुई है। जिस जगत को निराकारवादियों ने असत्य एवं असत्य मानकर त्याज्य घोषित कर दिया है, सगुण मार्गियों ने निरासक्त भाव से उसे आत्मान्वित किया है। कबीर संसार को झाड़ और झंखर कहकर अनाकुल करते हैं। इस आधार पर उन्होंने जगत से विरक्त होकर आत्म शांति का मार्ग ग्रहण करने की प्रेरणा दी है। किन्तु साकार लीला पर ब्रह्म की उपासना में तन्मय भक्तों ने जगत को परम तत्व की लीला भूमि के रूप में देखते हुए इसके प्रति अपनी आसक्ति रहित आस्था को स्थिर किया है। यही कारण है कि इन भक्तों ने मुक्ति की आकांक्षा न करके जन्म-जन्मान्तर में अपने प्रभु की भक्ति की अभिलाषा व्यक्त की है।

जहाँ तक जगत के सम्बन्ध में मानसकार की मान्यता का प्रश्न है, उन्होंने इसे मिथ्या एवं बन्धन का हेतु मानते हुए इसके प्रति अनासक्ति की स्थिति बनाए रखने की प्रेरणा दी है। संसार रात्रि है और संसार के प्रति आसक्ति रखने वाले निद्रा निमग्न हैं। जगत के कार्य व्यापार स्वप्न तुल्य हैं। योगी जागृत स्थिति में हैं और भोगी सुषुप्त स्थिति में है जो जागृत हैं वे आनन्दमय हैं तथा जो सुषुप्त हैं वे प्रपंच के बन्धन में पतित हैं।[1]

जहाँ निर्गुण पंथियों ने जगत को झूठा मानकर इसे त्याग कर आत्म शांति का फल प्राप्त कर पाया है वहीं साकार उपासकों

---

1. मोह निशा सब सोव निहारा।
   देखिय सपन अनेक प्रकारा ।।
   एहि जग जामिनी जागहिं जोगी।
   परमारथी प्रपंच वियोगी ।।

   रा.च.मा. 2/92/2,3

ने इस जगत के समस्त कार्यों को प्रभु को समर्पित करते हुए करने का उपदेश दिया है। अतः मानसकार [illegible] ने भी लौकिक कार्यों की हरि अर्पण स्थिति को मान्यता दी है। लौकिक कार्य अनासक्त भाव से किए जायें। जल में रहा अवश्य जाय तथा उसके पोषक तत्व भी लिए जायें किन्तु कमल पत्र की तरह निर्लिप्त ।[1]

अपने प्रभु की भक्ति के आनन्द में पुन की इच्छा अनन्त हो, इसी लिए साकार उपासकों ने बार बार जगत में आकर प्रभु की लीला में रत रह कर तज्जनित आनंद की शाश्वत प्राप्ति के सुख को कांक्षित किया है। मानसकार के भरत जन्मजन्मान्तर में राम भक्ति की कामना करते हैं।[2]

वानर राज बालि ने भी अपने अगले जन्म में राम भक्ति की कामना की है।[3]

स्पष्ट है कि मानसकार प्रभु भक्ति के साधन के रूप में जगत का स्वागत करते हैं। इसी कारण उन्होंने भक्ति को मुक्ति से श्रेष्ठ बताया है।

---

1. जे बिरंचि निर्लिप्त उपाए ।
   कमल पत्र जिमि जग जल जाए ।।   रा.च.मा. 2/316/8

2. अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान ।
   जनम जनम रति राम पद यह बरदान न आन ।।

   रा.च.मा. 2/204

3. अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ ।
   जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ ।।

   रा.च.मा.4/9/छंद[2]

जगत के मोहक रूप में झुककर उसकी सीमाओं में सीमित होने से मनोवृत्ति को बचाने के लिए मनीषियों ने परम तत्व के व्यापक असीम और विराट रूप में ससीम जगत का समाहार करते हुए मनोवृत्ति को उसी में रमाने की प्रेरणा दी है। गीता में भगवान कृष्ण ने जिस विश्व व्यापकता का रूप अर्जुन के समक्ष प्रस्तुत किया है मानसकार ने भी अपने ग्रन्थ में उसका पूर्ण अनुमोदन किया है। राम के विराटत्व का परिचय देकर राक्षस पति रावण की प्रिया मंदोदरी रावण की मनोवृत्ति को उस असीम की ओर प्रवृत्त करने का प्रयास करती है। अपने पति को राम के समक्ष नत मस्तक करने का उसका प्रयास इस भावना के साथ था कि वह इस ससीम जगत के आकर्षण को उस अखिल विश्व मय राम के परम आकर्षण में विलीन कर दे। अखिल ब्रह्माण्ड, ब्रह्माण्ड नायक में ही अंतर्हित है। इसका स्पष्टीकरण ~~देते हुए~~ मानसकार ने मंदोदरी के द्वारा करवाया है। पाताल लोक उनके चरण तथा ब्रह्म लोक उनके शीश के रूप में है। काल के भयंकर कृत्य उनका भृकुटि विलास है। सूर्य उनके नेत्र हैं। मेघ मालाएँ उनके बाल हैं। अश्विनी कुमार उनकी नासिका है। अनन्त रात्रि और दिन उनकी पलकों का उत्थान-पतन हैं। दस दिशाएँ उनके कर्ण है। जगत में प्रवाहमान पवन उनकी श्वास है। ज्ञान के पुंज वेद उनके वचन हैं। अखिल जगत में प्रभावी लोभ का मनोविकार उनके अधर हैं। विनाश चक्र का प्रवर्तक यम उनके दांत हैं। विश्व विमुग्धकारी माया उनकी स्मिति है। दिग्पाल उनकी भुजाएँ हैं। अग्नि उनका मुख है। उनकी जीभ वरुण है। जगत की उत्पत्ति स्थिति औरविनष्टि उनकी इच्छा है। अष्टादश वनस्पति समुदाय उनकी रोमराजि हैं। पर्वत उनकी अस्थियाँ तथा सरिताएँ उनकी नसों का जाल है। सागर उनका उदर तथा नरक उनकी नीचे की इन्द्रियाँ है। उनका अहंकार शिव है तथा बुद्धि ब्रह्मा है। चन्द्रमा मन है तथा विष्णु ही उनका ~~मन~~ चित्त है। इस प्रकार उन्हीं चराचर रूप भगवान श्री राम जी ने मनुष्य रूप

में निवास किया है।[1]

इस प्रकार गोस्वामी जी ने अखिल विश्व को राम में अन्तर्भूत दर्शाते हुए निर्लिप्त विश्व प्रेम का आदेश दिया है। भगवान शंकर द्वारा तुलसी ने अपनी इस भावना का स्पष्टीकरण भी दिया है।[2]

मानसकार ने अखिल ब्रह्माण्ड को राम में अन्तर्भूत माना है। उनका यह दर्शन सूफी संतों के दर्शन से मेल खाता है। सूफी संत सारे जगत को राम मय देखते हैं। अपने इस दर्शन की पुष्टि उन्होंने मानस के उत्तर काण्ड में काक भुशुण्डि और गरुड़ के वार्तालाप के अन्तर्गत की है। भुशुण्डि जी के द्वारा बालक राम के मनोविनोद के समय राम के मुख में प्रवेश करने और उदर में भ्रमण करने का प्रसंग आया है। उदर के मध्य अखिल ब्रह्माण्ड, जगत के विभिन्न भू भाग, कार्य व्यापार, अनेकानेक नाग, नर व देवकोटि के महान विभवों को देखा गया। काग भुशुण्डि जी ने स्पष्ट किया है कि जितना भी कुछ गोचर और अगोचर है- सब कुछ राम के उदर में था। अनन्त समय की सीमाओं को पार करते हुए, अनन्त ब्रह्माण्डों का परि-भ्रमण करते हुए काग भुशुण्डि उदर अन्तराल जगत में ही आत्मलीन हो गए।[3] उनकी मोह मयी स्थिति पर कृपान्वित राम वैसे ही

---

1. पद पाताल सीस अज धामा ।
अपर लोक अँग अँग बिश्रामा ।।
× × ×
अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान ।
मनुज रूप सचराचर रूप राम भगवान ।।
रा.च.मा. 6/15 (क)

2. उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध ।
निज प्रभु मय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध।।
रा.च.मा. 7/103

3. उदर माँझ सुनु अंडज राया ।
देखेउँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया।। रा.च.मा. 7/79/3 से 7/82 तक
× × ×
देखि कृपाल बिकल मोहि बिहँसे तब रघुबीर ।
बिहँसत ही मुख बाहेर, आयउँ सुनु मतिधीर ।।

मुस्कराए, काकभुशुण्डि पुनः बाहर आ गए और बालक राम का पुनीत दर्शन करके भाव मग्न हो गए। प्रभु के प्रभुत्व का पूर्णाभास काग जी को हो गया। मानसकार ने एक महान भक्त होने के नाते जगत को राममय और जगत के बाहर राम को देखने का भावादेश इस प्रसंग के द्वारा दिया है। जगत भले ही झूठा है किन्तु जब इसे हम राम के भीतर देखेंगे तब हमें इसके बाहर भी राम का आभास मिलेगा। राम भक्त तुलसी ने इसी कारण से भक्त राज काकभुशुण्डि जी के माध्यम से जगत की अलौकिक झाँकी राम के अंतराल में सुसज्जित की है।

भक्त का प्रमुख ध्येय अपने प्रभु की विभिन्न लीलाओं में अनुरक्त होकर भाव मग्न रहने का होता है। लीला का क्षेत्र जगत है। जगत की मिथ्या स्थिति में सत्य की आभा उसी लीलामय प्रभु की सत्यता प्रकाशित करती है। अतः प्रभु के सत्य से सत्य भासित मिथ्या जगत भी वन्दना का पात्र है।[1] अतः इस जगत की मंगल कामनाओं से मानसकार का अंतःकरण भरा हुआ है। उनकी समस्त राम कथा लोकपावनी है।[2] उनकी कथा के नायक प्रभु राम लोक मंगल के विधायक हैं और इस नाते कवि ने इस जगत के समस्त सत् रज तम से जटित प्राणिमात्रों को नमन किया है। वस्तुतः मानसकार ने इस जगत को सियाराम मय देखा है। अतः उन्हें यह सततः प्रणम्य अनुभव होता है।[3]

---

1. यत्सत्वाद मृषैव भाति सकल रज्जौ यथाहेर्भ्रमः ।।

   रा.च.मा./1/मंगलाचरण/6

2. पूछेहु रघुपति कथा प्रसंगा ।
   सकल लोक जग पावन गंगा।।

   रा.च.मा. 1/111/7

3. सीय राममय सब जग जानी ।
   करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

   रा.च.मा. 1/7/2

इस प्रकार तुलसी का जगत दर्शन वेदान्त के जगत दर्शन और निर्गुण ब्रह्म के प्रति आस्थावान संतों के जगत दर्शन से बहुत अंशों में मेल रखते हुए भी भिन्न है।

<u>मोक्ष तथा मोक्ष के साधन –</u>

गोस्वामी जी का समस्त दार्शनिक चिन्तन विशिष्टा द्वैत सिद्धान्त के अनुसार है। इस सिद्धान्त के अनुसार मुक्तात्मा का ईश्वर के स्वरूप को प्राप्त कर लेना मोक्ष है। मोक्ष की स्थिति में आत्मा सर्वज्ञ हो जाती है। उसे सदैव ही ईश्वर का ज्ञान अन्तर्दृष्टि के द्वारा प्राप्त होता है। उसे अन्य किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं होती। इसीलिए उसकी संसार में वापस आने की कोई संभावना नहीं रहती है।

शारीरिक सम्बंधों के द्वारा जो पृथक्- पृथक् व्यक्तित्व निर्मित होता है वह अनादिकाल से न होने के कारण नित्य नहीं है उक्त सम्बन्धों का विच्छेद हो जाता है तो आत्मा ब्रह्म के स्वरूप को प्राप्त कर लेती है तथा अपने यथार्थ स्वरूप को व्यक्त करती है।

राम चरित मानस में मुक्ति के तीन स्वरूप प्रमुख रूप से हमारे सामने आते हैं ।

1. सायुज्य
2. सालोक्य
3. सारूप्य

रावण, कुंभकर्ण तथा शबरी आदि को सायुज्य मुक्ति प्राप्त हुई है। देहावसान होने पर रावण का तेज प्रभु के मुख में समाहित हो गया।[1]

कुंभकर्ण को भी यह मुक्ति सुलभ हुई है।[2]

---

1. तासु तेज समान प्रभु आनन ।
हरषे देखि संभु चतुरानन ।।

रा.च.मा. 6/102/9

2. तासु तेज प्रभु बदन समाना ।
सुर मुनि सबहिं अचंभव माना।।

रा.च.मा. 6/70/8

परम भक्ता शबरी भी योगाग्नि में देह त्याग कर सायुज्य मुक्ति प्राप्त करती है।[1]

बालि तथा विभीषण को सालोक्य मुक्ति प्राप्त हुई है। बालि शरीर छोड़कर प्रभु के परमधाम को प्राप्त होता है।[2]

श्री विभीषण जी भी प्रभु से इसी मुक्ति का वरदान प्राप्त करते हैं[3]

जटायु को सारूप्य मुक्ति प्राप्त होती है।[4]

किन्तु साथ ही उसे सालोक्य मुक्ति भी प्राप्त होती है। वह अंत में "हरिधाम" को जाता है।[5]

राम चरित मानस में गोस्वामी जी ने मोक्ष के अनेक साधनों का उल्लेख किया है। श्री राम जी के पारमार्थिक स्वरूप का साक्षात्कार करके वैष्णव जन मुक्त हो जाते हैं। श्री राम का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके

---

1. हरि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदयँ पद पंकज धरे ।
   तजि जोग पावक देह हरि पदलीन भइ जहँ नहि फिरे।।

   रा.च.मा. 3/35/छंद

2. राम बालि निज धाम पठावा ।
   नगर लोग सब व्याकुल धावा ।।

   रा.च.मा. 4/10/1

3. करेहु कल्प भरि राजु तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माहिं ।
   पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं ।।

   रा.च.मा. 6/116

4. गीध देह तजि धर हरि रूपा ।
   भूषन बहु पट पीत अनूपा ।।

   रा.च.मा. 3/31/1

5. तनु तजि तात जाहु मम धामा ।
   देहुँ काह तुम्ह पूरन कामा ।।

   रा.च.मा. 3/30/10

पर संसार इसी प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार जागने पर स्वप्न नष्ट हो जाता है।[1]

श्री राम के स्वरूप को जान लेने पर जीव आवागमन से मुक्त हो जाता है। इस स्थिति में जीव उसी प्रकार अचल हो जाता है जिस प्रकार सरिता सागर में पहुंच कर अचल हो जाती है।[2]

किन्तु राम के स्वरूप का यह बोध उनकी कृपा से ही होता है। महर्षि वाल्मीकि एवं राम के सम्वाद में तुलसी ने इस तथ्य को स्पष्ट किया है। भगवद्भक्त ही भगवद् कृपा से प्रभु के पारमार्थिक स्वरूप को जान पाते हैं।[3]

जीव और ब्रह्म के अभेद का ज्ञान होने पर भेद भ्रम और तज्जनित संसृति दोनों नष्ट हो जाते हैं।[4]

---

1. झूठेउ सत्य जाहि बिनु जाने ।
   जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने।।
   जेहि जाने जग जाइ हेराई ।
   जागे जथा सपन भ्रम जाई ।।

   रा.च.मा. 1/111/1 व 2

2. सरिता जल जलनिधि महुँ जाई ।
   होइ अचल जिमि जिव हरि पाई।।

   रा.च.मा. 3/13/8

3. सोइ जानइ जेहि देहु जनाई ।
   जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।
   तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनंदन ।
   जानहिं भगत भगतउर चंदन ।।

   रा.च.मा. 2/126/ 3 व 4

4. आतम अनुभव सुख सुप्रकासा ।
   तब भव मूल भेद भ्रम नासा ।।

   रा.च.मा. 7/117/2

मोक्ष के लिए "बोध ज्ञान" आवश्यक है। संसार एक मोह रात्रि के समान है। उस रात्रि में सभी सोए हुए हैं। जागने वाले केवल वे हैं जो परमार्थ में अनुरक्त उद्यत तथा मायिक प्रपंच से वियुक्त हैं।[1]

जीव को जगा हुआ अर्थात बोध ज्ञान के मार्ग में अग्रसर तभी समझना चाहिए जब उसे समस्त ऐन्द्रिक विषय वासनाओं से विरक्ति प्राप्त जाय।[2]

गोस्वामी जी ने भव चक्र तथा उससे उत्पन्न समस्त कष्टों से मुक्ति पाने के लिए माया के त्याग और परमार्थ चिन्तन को अत्यावश्यक माना है।[3]

चूँकि मानव शरीर में ही परमार्थ चिन्तन संभव है, अतः मानसकार ने मानव शरीर को मोक्ष का प्रवेश द्वार कहा है। यह देव दुर्लभ योनि है। तुलसी ने उन व्यक्तियों को मतिमंद तथा आत्महन्ता कहकर सम्बोधित किया है जो इस मानव शरीर को प्राप्त कर के भी भव नाश नहीं कर पाते।[4]

---

1. एहिं जग जामिनी जागहिं जोगी ।
   परमारथी प्रपंच वियोगी ।।

   रा.च.मा. 2/92/3

2. जानिय तबहिं जीव जग जागा ।
   जब सब विषय बिलास बिरागा।।

   रा.च.मा. 2/92/4

3. तजि माया सेइअ परलोका ।
   मिटहिं सकल भव संभव सोका।।

   रा.च.मा. 4/22/5

4. बड़े भाग मानुष तनु पावा ।
   सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा।।
   साधन धाम मोक्ष कर द्वारा ।
   पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।। रा.च.मा.7/42/7 से 7/43 तक

   x x x

   जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाई ।

मानस में मोक्ष के लिए कर्म - सन्यास की आवश्यकता पर बल दिया गया है। कर्म के संस्कारों का जो मल चित्त पर लगा हुआ है वह प्रवृत्ति मार्ग से नहीं छूटता।[1]

इसीलिए बुद्धिमान लोग शुभ और अशुभ सभी प्रकार के कर्मों को छोड़कर राम की भक्ति करते हुए संसृति-सागर को पार कर लेते हैं।[2]

मोक्ष का सुगम साधन भक्ति है। भक्ति जीव को माया के बन्धन से मुक्त कर देती है। इस तथ्य का संकेत मानस में माता कौशल्या द्वारा प्रभु के विराट रूप दर्शन के प्रसंग में मिलता है।[3]

तुलसी ने परमार्थ चिन्तन को मोक्ष का साधन बताया है तथा भक्ति को परम परमार्थ के रूप में स्वीकार किया है। अतः भक्ति से मुक्ति की अनिवार्यता सिद्ध हो जाती है।[4]

---

1. छूटै मल कि मलहि के धोएं ।
 घृत कि पाव कोउ बारि बिलोएं।।

 रा.च.मा. 7/48/5

2. अस बिचारि जे परम सयाने ।
 भजहिं मोहि संसृति दुख जाने।।
 त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक ।
 भजहिं मोहिं सुर नर मुनिनायक।।

 रा.च.मा. 7/40/ 6,7

3. देखी माया सब बिधि गाढ़ी ।
 अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी ।।
 देखा जीव नचावइ जाही ।
 देखी भगति जो छोरइ ताही।।

 रा.च.मा. 1/201/ 3,4

4. सखा परम परमारथ एहू ।
 मन क्रम बचन राम पद नेहू ।।

 रा.च.मा. 2/92/6

इसीलिए ~~अतः~~ भक्तों ने तो भक्ति पर मुक्ति को भी न्यौछावर कर दिया है।[1]

मोक्ष की प्राप्ति के लिए ज्ञान और भक्ति दोनों ही साधन सक्षम हैं। किन्तु ज्ञान मार्ग दुरूह है तथा भक्ति मार्ग सुगम।

भक्ति स्वतंत्र और निरपेक्ष है तथा ज्ञान और विज्ञान इसके आधीन है।[2]

यद्यपि योग से भी चित्त की शुद्धि होती है। योगाभ्यास के द्वारा ~~जिससे~~ वह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है जो मोक्ष का कारण होता है।[3]

किन्तु राम के भक्त राग, लोभ, मान तथा मद से रहित एवं संपत्ति विपत्ति में समत्व बुद्धि रखने वाले होते हैं। अतः उन्हें योग का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं होती है।[4]

शुष्क ज्ञान का मार्ग दुर्गम इसलिए है कि उसमें मन को कोई आश्रय नहीं मिलता है।[5]

---

1. अस बिचारि हरि भगत सयाने ।
   मुक्ति निरादर भगति लुभाने ।। रा.च.मा. 7/118/7

2. सो सुतंत्र अवलम्ब न आना ।
   तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना ।। रा.च.मा. 3/15/3

3. धर्म ते विरति योग ते ज्ञाना ।
   ज्ञान मोक्ष प्रद वेद बखाना ।। रा.च.मा. 3/15/1

4. नहिं राग न लोभ न मान मदा ।
   तिन्ह के सम वैभव व विपदा ।।
   ये हि तब सेवक होत मुदा ।
   मुनि त्यागत जोग भरोस सदा ।
   रा.च.मा. 7/13(13 व 14)पंक्ति

5. ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका ।
   साधन कठिन न मन कहुँ टेका।।
   रा.च.मा. 7/44/3

ज्ञान मार्ग की दुर्गमता का वर्णन मानस के उत्तर काण्ड में ज्ञान दीपक प्रसंग में अत्यधिक विस्तार से हुआ है। इस समस्त वर्णन के बाद निष्कर्ष रूप में ज्ञान के मार्ग को कृपाण की तीक्ष्ण धार कह कर कष्ट साध्य बतलाया गया है।[1]

अनेक कठिनाइयों को झेलने पर ज्ञान मार्ग से जो वस्तु प्राप्त होती है, भक्ति मार्ग से वही वस्तु अनायास ही प्राप्त हो जाती है।[2]

मानसकार ने "ज्ञान-दीपक" की तुलना में " भक्ति- मणि " का रूपक उपस्थित किया है। राम भक्ति को चिन्तामणि बतलाते हुए उसकी प्राप्ति को सुगम बतलाया है। तुलसी की मान्यता है कि अभागे मनुष्य स्वतः ही भक्ति-मणि की प्राप्ति का द्वार बन्द किए रहते हैं।[3]

प्रस्तुत रूपक में कवि ने दोनों की शक्तियों में भी अन्तर बतलाया है। ज्ञान का दीपक विषय की वायु का झोंका लगने पर बुझ सकता है। इन्द्रियाँ इन विषयों का स्वागत करने को सदैव तत्पर रहा करती हैं। अतः समस्त कठिनाइयों के बाद प्रज्ज्वलित होने पर भी यह दीपक बहुधा बुझ जाया करता है और जीव अपने अंतःकरण के अंधकार में पड़ी हुई माया कि ग्रन्थि को छुड़ा नहीं पाता है। दूसरी ओर भक्ति चिन्तामणि दिन-रात स्वतः प्रकाशित रहती है। अतः उस पर विषय वायु के झकोरों का कोई प्रभाव नहीं पड़ पाता है। इसलिए तो तुलसी ने इस संसार में सब से चतुर उनको ही माना है जो इस भक्ति मणि की प्राप्ति के लिए यत्न करते हैं।[4]

---

1. ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होत नहिं बारा ॥
   जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई । सो कैवल्य परम पद लहई ॥
   रा.च.मा.7/118/1 व 2
2. अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद ॥
   राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरियाईं॥
   रा.च.मा. 7/118/ 3 व 4
3. सुगम उपाय पाइबे केरे ।
   नर हत भाग्य देहि भट भेरे ॥ रा.च.मा. 7/119/12
4. चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं ।
   जे मनि लागि सुजतन कराहीं ॥ रा.च.मा. 7/119/10

इसके विरुद्ध जो ज्ञानाभिमानी साधक भक्ति का निरादर करते हैं, वे देव-दुर्लभ पदों को प्राप्त करके भी गिरते हुए देखे जाते हैं।[1]

गोस्वामी जी का मत है कि राम भक्ति के बिना मोक्ष की प्राप्ति असंभव है। जो मनुष्य बिना राम भक्ति के मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं वे ज्ञानी होते हुए भी पुच्छ विषाण हीन पशु ही हैं।[2]

मानसकार का दृढ़ विश्वास है कि राम से विमुख रहने पर चाहे कितना प्रयास किया जाय, भव से मुक्ति असंभव है।[3]

श्री राम जी के चरणारविन्द ही भव-सागर पार करने के लिए एक मात्र नाव हैं।[4]

जो राम जी के चरणों में अनुराग नहीं रखते वे भव सागर में पड़े ही रहते हैं।[5]

---

1. जे ग्यान मान बिमत्त तव भवहरनि भक्ति न आदरी ।
   ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी ॥

   रा.च.मा. 7/13/छंद (3)

2. राम चंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान ।
   ग्यान वंत अपि सो नर पसु बिनु पूंछ बिषान॥

   रा.च.मा. 7/78

3. रघुपति बिमुख जतन कर कोरी ।
   कवन सकइ भव बंधन छोरी ॥

   रा.च.मा. 1/199/3

4. यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां ।
   रा.च.मा. 1/मंगलाचरण 6वाँ श्लोक

5. भव सिंधु अगाध परे नर ते ।
   पद पंकज प्रेम न जे करते ॥

   रा.च.मा. 7/13/छंद 10वीं पंक्ति

संसार के सभी असंभव कार्य चाहे संभव हो जाये किन्तु बिना भक्ति के भव नाश किसी भी स्थिति में नहीं हो सकता है।[1]

मोक्ष सुख भी भक्ति के बिना उसी प्रकार नहीं टिक सकता जिस प्रकार जल बिना भूमि के नहीं टिकता।[2]

इस प्रकार निश्चित है कि मोक्ष के लिए हरिभक्ति आवश्यक है और इस भक्ति की प्राप्ति के लिए भगवद् कृपा की प्राप्ति आवश्यक है। अतः राम- कृपा के बिना जीव बंधनों से मुक्त नहीं हो सकता है।[3]

अत्यधिक सुगम हरि भक्ति तब ही प्राप्त हो सकती है जब जीव पर भगवत्कृपा हो।[4]

इस प्रकार गोस्वामी जी ने मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान तथा भक्ति दोनों ही साधनों को स्वीकार किया है किन्तु भक्ति पथ से मुक्ति प्राप्ति को उन्होंने सुगम तथा सुनिश्चित माना है।[5]

---

1. कमठ पीठि जामहिं बरु बारा ।
   बंध्यासुत बरु काहुहि मारा ।। रा.च.मा. 7/121/15 से

   बारि मथे घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल । 7/122 तक
   बिनु हरि भजन न भव तरिय यह सिद्धान्त अपेल।।

2. जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई ।
   कोटि भाँति कोउ करै उपाई ।। रा.च.मा. 7/118/5,6
   तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई ।
   रहि न सकै हरि भगति बिहाई ।।

3. नाथ जीव तव माया मोहा ।
   सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा।। रा.च.मा. 4/2/2

4. (क) सो मनि जदपि प्रगट जग अहई ।
   राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई।। रा.च.मा. 7/119/11

   (ख) सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई ।
   राम कृपा काहू एक पाई ।। रा.च.मा. 7/125/8

5. विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे। रा.च.मा.
   हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते ।। 7/122/श्लोक

आनन्द रामायण में दर्शन

ब्रह्म-

आनन्द रामायणकार ब्रह्म की सार्वभौम सत्ता के समर्थक हैं। उन्होंने ब्रह्म को नित्य शाश्वत और सनातन माना है। ब्रह्म के एकत्व, पूर्णत्व एवं व्यापकत्व को उन्होंने स्वीकार किया है। यह अनित्य जगत उसी के संकेत से क्रियाशील है। जगत के विस्तार की हेतु उस ब्रह्म की ही अभीप्सा है। समस्त जगत में वह कारण रूप है तथा समस्त जगत उसका लीला क्षेत्र है। जगत की उत्पत्ति, स्थिति और विनष्टि का हेतु वह ही है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव उसी के अंश रूप हैं। जगत के पूर्व केवल वह ही था और प्रलय के पश्चात भी केवल वही रहेगा। जगत का सारा कार्य-व्यापार उसके ही संकेत से तथा उसकी ही देख रेख में सम्पन्न होता है। इस प्रकार एक समग्र दृष्टा के रूप में जगत की समस्त गतिविधियों का वह ही साक्षी है। जगत के कार्य व्यापारों का हेतु होते हुए भी वह उनसे जल में कमल पत्र की तरह निर्लिप्त है। विश्व के समस्त पुण्य विभव उस अंशी के ही अंश हैं। वह परमानंद का मूल है। जगत को रमाने की अद्भुत शक्ति से सम्पन्न होने के कारण उसका नाम राम है। लोक रंजन और लोक रक्षण के उद्देश्य से वह लीलामय होने हेतु साकार होता है। इस प्रकार उसको जन्म मरण से परे, माया से परे, ज्ञानमय और द्वेष-प्रेम का हेतु अग जग नियन्ता के रूप में ग्रन्थकार ने स्वीकार किया है।

आनन्द रामायणकार के प्रस्तुत ब्रह्म विषयक दार्शनिक विवेचन का सोदरण प्रस्तुतीकरण निम्नवत है -

ब्रह्मा इत्यादि समस्त देवता ब्रह्म के अंश मात्र से नट की तरह विविध रूपों को धारण करते हैं।[1]

---

1. यस्यांशेन विधेयाँ ब्रह्माद्याः सकला वयम् ।।

आ० रा० 1/5/110

वह परमात्मा किसी में आसक्त नहीं होता है। जल में कमल पत्रवत वह अमल, नित्य और परम आनन्द स्वरूप ब्रह्म माया से निर्लिप्त रहता है।[1]

वह ब्रह्म विश्व व्यापी है। दृश्यमान जगत में सर्वत्र ब्रह्मकी ही सत्ता है।[2]

ब्रह्म की सत्ता शाश्वत है। जगत की स्थिति के पूर्व न कोई सद्वस्तु थी और न ही कोई असद् वस्तु। सबका कारण व सृष्टि का बीज रूप ब्रह्म ही है। प्रलय के पश्चात एक मात्र वह ही अवशिष्ट रहता है।[3]

जिस तरह पृथ्वी इत्यादि पंचमहाभूत अन्य भौतिक वस्तुओं में समाहित होने पर भी अलग दृष्टिगत होते हैं, उसी तरह पंच महाभूत में व्याप्त होने पर भी वह ब्रह्म संसार से निर्लिप्त रहता है।[4]

शैव, सौर, गाणेश, वैष्णव तथा शाक्त– सभी उस एक ब्रह्म के पास पहुंचने के मार्ग हैं। ये पंच पूज्य विग्रह उस अंशी के ही अंश हैं। वह अकेला ब्रह्म ही नाम और कर्म के प्रभाव से उक्त पांच रूपों में विभक्त हुआ है।[5]

---

1. यथा पद्मं न स्पृशति जलं मायां तथा मलः ।

आ. रा. 1/5/111

2. यत्किंचिद्दृश्यते च तत्तन्नारायणात्मकम् ।

आ. रा. 1/5/113

3. अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् ।
पश्चादहं यदेतच्चयो वशिष्येत सो स्म्यहम्।।

आ. रा. 2/2/59

4. यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ।
प्रविष्टान्य प्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्।।

आ. रा. 2/2/61

5. शैवाः सौराश्च गाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः ।
एकः सः पंच,धा जातः क्रियया नामभिः किलः ।।

आ. रा. 4/8/ 9,10

ब्रह्मेच्छा से ही जगत के समस्त कार्यों का संचालन होता है। ब्रह्म की दीप्ति से ही विश्व देदीप्यमान है तथा उसकी ही चेष्टा से वह सचेष्ट है। वह जीव मात्र को कर्मानुसार फल प्रदाता भी है।[1]

वह ब्रह्म इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि से परे, सर्वश्रेष्ठ तथा सर्व साक्षी है।[2]

आनन्द रामायणकार ने अथर्व वेद को प्रमाण मानते हुए ब्रह्म को अन्तरिक्ष में स्थित सभी भोक्ता तथा भोग्य वस्तुओं से विलक्षण स्वीकार किया है, कारण कि वह सर्वसाक्षी है।[3]

ब्रह्म केवल एक, सच्चिदानंद स्वरूप तथा समस्त गुणों का निधान है। वह समस्त प्राणियों का प्राण, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान तथा अमृत स्वरूप है।[4]

ब्रह्म एक, अद्वितीय तथा सर्वश्रेष्ठ है। वह अनन्त तथा प्रजा आदि लक्षणों से अप्रमेय है। समस्त प्राणियों के हृदय में उसका निवास है।[5]

---

1. प्रविष्टं दीप्यते यद्वत्तेन विश्वं विचेष्टते ।
   अनादि संसार तरु: कर्म मूल फलात्मक: ॥
   आ. रा. 8/4/83

2. तत्पर: परमात्मा च सर्वसाक्षी विनिश्चित: ।
   आ. रा. 8/4/86

3. त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत् ।
   तेभ्यो विलक्षण: साक्षी स्यादित्याह वार्थर्वणी श्रुति: ॥
   आ. रा. 8/4/88

4. एकं सनातनं सकल गुणनिधिं सच्चिदानंद कंद ।
   x x x
   सर्वज्ञं सर्वशक्तिं स्वयममृतं तन्महो भावये हम् ॥
   आ. रा. 8/4/133

5. ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशे संस्थितो मम: ।
   एको द्वितीय: परमो नात: प्रजादिलक्षण: ॥
   आ. रा. 8/5/269

ब्रह्म अक्षर, अजर, अमर तथा सच्चिदानंद विद्यमान है। वह निर्विकार निराकार तथा निरामय है।[1]

ब्रह्म का न कोई रूप है और न कोई लिंग। वह अकेला रहकर भी गणना से परे है। उसका लिंग रूप दीखना माया जन्य है।[2]

आनन्द रामायणकार ने उस सिद्ध स्वरूप ब्रह्म को पहचानने के लिए पुरुष, प्रकृति व्यक्त तथा अहंकार इत्यादि चिन्हों को स्वीकार किया है।[3]

ग्रन्थकार ने ब्रह्म से ही सृष्टि की उत्पत्ति को स्वीकार किया है। सृष्टि के पहले केवल एक तत्व ब्रह्म ही था। माया के योग से उसमें बहुत सी कामनाएँ उत्पन्न हुईं। तब उस अकेले ब्रह्म ने माया वश अपनी इच्छानुसार बहुत से रूप बना लिये।[4]

वह निराकार ब्रह्म सगुण साकार रूप में भी अवतरित होता है। परशुराम, बलराम, कृष्ण, मत्स्य, कूर्म, वराह आदि ब्रह्म के लीलामय अवतारों का संकेत करके कवि ने उस अनादि व अनंत ब्रह्म के साकार रूप में अवतरण को भी स्वीकार किया है।[5]

---

1. अक्षरः सच्चिदानंदो महो अज उदात्तम : ।
   निर्विकारो निराकारो निरामय उदीरितः ।।
   आ. रा. 8/5/270

2. अलिंगो रूप एवासावेकत्व गणनात्परः ।
   मायया लिंग रूपीव दृश्येक इत्यभिधीयते ।।
   आ. रा. 8/5/271

3. पुरुषश्च प्रकृतिश्च व्यक्तो हंकार एव च ।
   बहुलिंगानि प्रोक्तानि लक्षणानि विशेष्य च ।।
   आ. रा. 8/5/272

4. आसीदेकं पुरा तत्वं तस्मिन्मायानियोगतः ।
   कामोबहुधा भवामि भवेयमिति तादृशम् ।।
   आ. रा. 8/5/262

5. मत्स्यकूर्मवराहादि रूपधारिणाम व्ययम् ।
   आ. रा. 4/1/34

आनन्द रामायणकार ने श्री राम को साकार ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया है। योगीजन अपने चित्त को राम में ही रमाते हैं, इसीलिये उनका राम नाम सार्थक हुआ है।[1]

राम के इसी परमानंद रूप रस के संसार के सभी जीव जीवन धारण किए हुए हैं। इस रस मय पद को प्राप्तकर जीव आनंदमय हो जाता है।[2]

राम मय होने से ही यह जगत चैतन्य है, किन्तु राम को चैतन्य करने वाला कोई नहीं है। वे स्वयं सच्चिदानंद स्वरूप हैं।[3]

उस परब्रह्म राम की सत्ता समस्त विश्व में है। यह असत् जगत भी उनकी सत्ता से ही सद्वत् प्रतीत होता है।[4]

इसी परम तत्व में जगत के समस्त प्राणी अंत में लीन होते हैं तथा सृष्टि के आदि में इसी से ही प्रादुर्भूत होते हैं।[5]

दिव्यज्योतिर्मय ब्रह्म के अवतार के हेतु की ओर संकेत करते हुए कवि ने यह स्वीकार किया है कि वह परमात्मा अपनी माया से वशीभूत होकर धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष इन पुरुषार्थ चतुष्टय का साधन करने के लिए ही संसार में अवतार धारण करता है।[6]

---

1. रामेति लोकरमणाद्रमन्ते योगिनो मनो।
   आ॰ रा॰ 8/4/170
2. इमं रसमयं लब्ध्वा सर्वेत्यानंदिनो जिवाः ।
   आ॰ रा॰ 8/4/171
3. चिदात्मायेन विश्वेषु सर्वं चेतयते जगत् ।
   नं स चेतयते कश्चित्स राम इति कीर्त्यते।।
   आ॰ रा॰ 8/4/172
4. सत्तायेनाखिलं विश्वं स देवेति प्रतीयते ।
   असत्सत्ताप्रदः साक्षाद्राम इत्यभिधीयते।।
   आ॰ रा॰ 8/4/173
5. लीयन्ते यत्र भूतानि निर्गच्छन्ति यतः पुनः ।
   आ॰ रा॰ 8/4/175
6. दिव्यज्योतिः परमात्मायं स्वमायावशतां गतः ।
   धर्मार्थकाममोक्षार्थं चतुष्पुरुषार्थं प्रतिष्ठवान् ।।
   आ॰ रा॰ 8/4/74

आनन्द रामायणकार ने ब्रह्म के सभी गुण श्री राम में निहित करके उन्हें एक मात्र परब्रह्म माना है।[1]

श्री राम को नर रूप धारी जगदीश्वर तथा निर्गुण सगुणात्मक कहकर कवि ने अपनी श्रद्धा पूर्ण प्रणति उनको समर्पित की है।[2]

परमेश्वर, पुराणपुरुष तथा परात्पर विष्णु स्वरूप श्री राम ही जगत की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय के कारण स्वरूप हैं।[3]

इस प्रकार एक मात्र परब्रह्म स्वरूप श्री राम को सम्यक रूप से जान लेने पर जीव समस्त संतापों से रहित हो जाता है। ब्रह्म ज्ञान प्राप्त हो जाने पर कर्म-अकर्म तथा पाप-पुण्य कुछ भी शेष नहीं रह जाता।[4]

इस प्रकार आनंद रामायणकार ने ब्रह्मज्ञान में कर्म के विलीनत्व को स्वीकार किया है।

---

1. परब्रह्म महिमा येषः तद्धामेति न संशयः ।

   आ॰ रा॰ 8/4/196

2. ...... त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं
   रघुनंदनं निर्गुणं सगुणात्मकम् ।

   आ॰ रा॰ 9/6/39

3. राम राम महाबाहो जाने त्वां परमेश्वरम् ।
   पुराणपुरुषं विष्णुं जगत्सर्गलयोद्भवम् ।।

   आ॰ रा॰ 1/3/361 से 362 तक

4. न एव इति ज्ञातारं पापं पुण्यं कृताकृते ।
   न संतापयतस्त्वेवं सम्यक् सर्वं प्रकीर्तितम् ।।

   आ॰ रा॰ 8/4/195

जीव-

आनन्द रामायणकार ने जीवात्मा और परमात्मा को अंश-अंशी के रूप में स्वीकार किया है तथा जीव की बहुलता को ईश्वरीय लीला विस्तार में सहयोगी माना है। जीव की चौरासी लक्ष स्थितियों को स्वीकार कर कवि ने उनको ईश्वर मय स्थिति को भी मान्यता प्रदान की है। सत्, रज तथा तम की स्थिति के अनुसार जीव अपनी वृत्तियों का रूप निर्मित करता है। जीव को निज कृत कर्मों के अनुसार सुख-दुख का भागी होना पड़ता है। स्वयं में जीवात्मा ब्रह्म की ही भाँति माया मुक्त है, किन्तु जगत के विभिन्न क्रिया कलापों के योग से उसे मायावी बनने को विवश होना पड़ता है। माया का यह आच्छादन सर्वथा असत्य एवं भ्रममूलक है। अतः इस भ्रम को अलग करके देखने पर जीव की मायामुक्त स्थिति स्पष्ट होती है। शरीर का योग पाकर जीव विभिन्न धारणाओं के बंधन में आता है। शरीर का बंधन टूटते ही पुनः वह परम तत्व परमात्मा में लीन हो जाता है। शरीर बद्ध होने पर जीव दस इन्द्रियों, मन तथा बुद्धि से नवीन सम्पर्क अर्जित करता है। शरीर से मुक्ति मिलने पर वह पुनः इन सम्पर्कों को विसर्जित कर देता है।

आनन्द रामायणकार के उक्त जीव विषयक दार्शनिक विवेचन का सोद्धरण प्रस्तुतीकरण निम्नवत है -

जीव ब्रह्म का ही अंश है। अतः वह ब्रह्म की ही भाँति शाश्वत तथा चिरन्तन है। शरीर नाशवान है तथा इस नाशवान शरीर में जीव की पृथक सत्ता है। यह जीव नाशवान शरीर में अपनी सत्ता को स्थापित करके अनेक प्रकार के रूप धारण करता है।[1]

---

1. देहस्त्वेवात्र कथ्यते देहस्तु नश्वरः स्मृतः ।
देहाद्भिन्नास्ति काप्यन्या सा हि स्यात्सनेकधा ।
धरामि सर्वदा रूपाणि सा वा हि वेत्ति वेधि च ॥

आ॰रा॰8/2/110 व 111

जिस प्रकार ब्रह्म साकार रूप में मत्स्य आदि अनेक अवतार धारण कर पृथ्वी पर अवतरित होता है, उसी प्रकार जीव भी समय समय पर अनेक प्रकार के रूप धारण करके जगत में आवागमन बनाये रखता है।[1]

ग्रन्थकार ने "जीवो ब्रह्मैव केवलम्" के सिद्धान्त का समर्थन किया है। जिस प्रकार गंगा का जल गंगा के प्रवाह में स्थित रहकर गंगाजल रहता है तथा घड़े में आकर भी गंगा जल ही रहता है उसी प्रकार ब्रह्म और जीव भी वारि तथा वीचि की भाँति अभिन्न है।[2]

आनन्द रामायणकार ने ब्रह्म तथा जीव में अंतर को भी स्वीकार किया है। उन्होंने "परवश जीव स्ववश भगवंता" के सिद्धान्त का समर्थन किया है। इस प्रकार वे जीव को ब्रह्म की एक कला के रूप में स्वीकार करते हैं।[3]

जीव की माया मुक्त स्थिति का निरूपण भी ग्रन्थकार ने प्रस्तुत किया है। माया मुक्त जीवात्मा किसी में आसक्त नहीं होता है। जिस प्रकार कमल पत्र जल में रहकर भी जल का स्पर्श नहीं करता उसी प्रकार अमल, नित्य तथा परमानंद स्वरूप आत्मा भी माया से निर्लिप्त रहती है।[4]

---

1. नानारूपाणि सो ध्यात्र मत्स्यादीनि दधाति हि ।
   तथा नाना स्वरूपाणि धार्यन्ते आपि वै यथा ॥
   आ.रा. 8/2/112-113

2. चिन्मात्रे मैव भवेद् स्थित यथा गंगास्थो घटे ।
   एकैवास्त्यम तद्वत् चिन्मुरोवात्मस्मि हि ॥
   आ.रा. 8/2/115

3. स्ववशो नित्य महाविष्णुस्त्वहं विष्णुवशा सदा ।
   अतो विष्णोः कला चाहं तत्वमेव न संशयः ॥
   आ.रा. 8/2/114

4. यथा पद्मं न स्पृशति जलं मायां तथा मनः ।
   आत्मा नित्यो न स्पृशति परमानंद विग्रहः ॥
   आ.रा. 1/5/111-112

देहाभिमानी जीव ईश्वर द्वारा प्रदत्त सुख-दुख रूपी कर्मफल भोग के भागी होते हैं।[1]

उस चैतन्य चन्द्र स्वरूप परब्रह्म की सर्वश्रेष्ठ षोडश कलाएँ विशुद्ध जीवात्मा में विद्यमान रहती हैं।[2]

जीव कर्मानुसार अनेक योनियों को धारण करता है। इन समस्त योनियों में मानव योनि सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि अन्य योनि के जीव आत्म तत्व को नहीं जान पाते हैं।[3]

जीव नित्य तथा निर्मल है, किन्तु देहासक्ति ही उसके बन्धन का कारण हो जाती है क्योंकि कारण संज्ञक देह में ही अविद्या, काम, कर्म, भोक्ता तथा भोग के स्थान हैं।[4]

वस्तुतः विशुद्ध जीवात्मा निष्काम होता है किन्तु कारण संज्ञक देह में आसक्त होने पर वह बंधन में आ जाता है क्योंकि कारणात्मा में अविद्या की प्रधानता है।[5]

---

1. देहाभिमानिनो जीवाः फल भोगाय पक्षिणः ।
यथाकर्म सुखं दुःखं खादन्ति त्वीश्वरार्पितम् ॥
आ. रा. 8/4/84

2. तस्य चैतन्यचन्द्रस्य षोडशैताः कलाः पराः ।
विद्यास्तास्त्व दारभूतान् घटादीन्विद्धमानिह ॥
आ. रा. 8/4/75

3. नान्याभियोनिभिर्ज्ञातुं शक्यते ह्यात्मनः पदम् ।
आ. रा. 8/4/154

4. अविद्याकामकर्माणि भोक्तृभोगौ सुसुप्तिका ।
अदृष्टानि तु ज्ञेयानि देहे कारणसंज्ञके ॥
आ. रा. 8/4/156

5. अविद्यया युक्ततो न विद्यते कारणात्मना ।
वस्तु तत्तु न कामो न कामनाया कुतोर्जितम् ॥
आ. रा. 8/4/160

आनन्द रामायणकार ने जीव की त्रिगुणात्मकता को भी स्वीकार किया है। सत्व, रज तथा तम को उन्होंने जीव के लक्षण रूप में माना है। दस इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि को भी ग्रन्थकार ने जीव के चिन्ह रूप में इंगित किया है।[1]

इस प्रकार आनन्द रामायण में जीव का दार्शनिक विवेचन द्वैत मत तथा अद्वैत मत दोनों ही सिद्धान्तों के अनुसार प्रस्तुत हुआ है।

माया-

न होते हुए भी अस्तित्व के आभास से मन को विक्षुब्ध करने वाला तत्व माया के नाम से अभिहित कियागया है। आनन्द रामायणकार ने इस माया में आभासित सत्यता को ईश्वर की सत्यता का ही प्रेरित रूप माना है। इसीलिए उन्होंने ईश्वरीय सृष्टि के विस्तृत असत्य परिवार को माया जन्य माना है। ईश्वर स्वयं माया मय होकर लीला मय होता है। सत् रज तथा तम् तीनों ही माया के प्रभाव से सक्रिय होते हैं। मन की स्थिति को विचलित करके उसमें विभिन्न विकारों की प्रवृत्ति माया की प्रेरणा से ही होती है। इस प्रकार ईश्वरीय शक्ति के रूप में माया असीम और अतुलित प्रभाव से सम्पन्न है। बड़ी बड़ी शक्तियाँ माया की शक्ति के समक्ष नत - मस्तक मस्तक हैं। माया से मुक्ति के बिना सच्चिदानंद की सम्प्राप्ति संभव नहीं है। जीवात्मा माया के समस्त सीतों से आबद्ध है। ईश्वर की अनुग्रह वृत्ति जीवात्मा को माया के जटिल बंधन से मुक्त कराने में सक्षम है। अतः माया ईश्वर के द्वारा शासित, अनित्य, असत्य, सृष्टि के संचालन का हेतु एवं जीवात्मा के बंधन के रूप में आनन्द रामायण में वर्णित हुई है। इससे मुक्ति पाने में ही जीवात्मा की सफलता एवं कृतार्थता अवलम्बित है।

आनन्द रामायण में उक्त माया विषयक दार्शनिक विवेचन

---

1. सत्वं रजस्तम इति चतुर्लिंगानि चात्मनः ।
 दशेन्द्रियाणि च मनोबुद्धिर्लिंगकं स्मृतम् ॥
 आ॰रा॰8/5/273 - 274

का सोद्धरण प्रस्तुतीकरण निम्नवत है -

आनन्द रामायणकार ने माया को असत्य स्वीकार कियाहै। यह माया अवास्तविक होते हुए भी तद्विचार के अभाव के कारण वास्तविक जैसी प्रतीत होती है। माया जड़ स्वभाव वाली तथा भ्रान्ति वशात् आत्मा को आच्छादित करने वाली है। यह मृगमरीचिका तथा आकाश की नीलिमा की तरह ही मिथ्या है।[1]

माया जीव में विकार उत्पन्न करके उसे बन्धन में डाल देती है। इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने माया को मोह इत्यादि मनोविकारों की जननी कहा है। इस मायाकृत मोह को दूर करने में भगवत्कृपा की अपेक्षा को भी ग्रन्थकार ने स्वीकार किया है।[2]

आनन्द रामायणकार ने दृश्यमान जगत को मायावी माना है। मानस में वर्णित "गो गोचर जहं लगि मन जाई" की भांति ही आनन्द रामायण ने भी माया को इसी रूप में परिभाषित किया है।[3]

माया ईश्वर की सहचरी है। ईश्वर ने अपनी माया के योग से ही विश्व के निर्माण प्रभुओं को ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के नाम से अभि-हित कर रखा है।[4]

---

1. ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।
   तद्विद्यादात्मनो मायां यथा भासो यथा तमः ॥
   आ॰ रा॰ 2/2/60

2. तद्रामवचनं श्रुत्वा गतमायामनो नृपः ।
   तद्रामचरितैर्मग्नः रोमाञ्चितवपुर्धरः ॥
   आ॰ रा॰ 1/5/120

3. सर्वं यद्दृश्यते चेदं मायेयं तव राघव ॥
   आ॰ रा॰ 8/2/96

4. माया योगेन विश्वात्मकनिर्माणं
   ब्रह्मविष्ण्वीशसंज्ञकम् ॥
   आ॰ रा॰ 8/4/133

आनन्द रामायणकार ने ईश्वर की अवतारणा में माया की प्रेरणा को स्वीकार किया है। वह चिज्ज्योतिर्मय परमात्मा अपनी माया के वशीभूत होकर ही धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का साधन करने के लिए संसार में अवतरित होता है।[1]

इसीलिए ग्रन्थकार ने परब्रह्म राम को तुलसी की भाँति ही "मायामानुष रूपिणम्" कहकर अपनी प्रणति निवेदित की है।[2]

माया त्रिगुणात्मिका है। इस माया के योग से ही ईश्वर द्वारा सृष्टि का विस्तार सम्पन्न होता है। चौरासी लक्ष योनि के जीव मात्र में माया के गुण समाविष्ट होकर उसे उसी प्रकार विचित्र सा बना देते हैं जैसे किसी कपड़े पर अनेक रंग चढ़ा देने पर उसका रंग विचित्र प्रकार का हो जाता है।[3]

सृष्टि के पहले केवल एक तत्व ब्रह्म था। माया के योग से ही उसमें अनेक प्रकार की कामनाएँ उत्पन्न हुईं। तब उस अकेले ब्रह्म ने मायावश अपनी इच्छानुसार अनेक रूप बना लिए। इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने सृष्टि विस्तार में माया की भूमिका को स्वीकार किया है।[4]

---

1. चिज्ज्योतिः परमात्मायं स्वमायावशतां गतः ।
   धर्मार्थकाममोक्षार्थं कुद्भुवारिधिं प्रविष्टवान् ॥
   आ॰ रा॰ 8/4/74

2. मायया नरवेषस्य मम उपहासकारणम् ।
   मनसैव च मां नित्यं भज भावेन सादरम् ॥
   आ॰ रा॰ 1/5/122-123

3. गुणास्तेषु प्रपुष्टौ यथा चित्रपटो भवेत् ।
   आ॰ रा॰ 8/5/261

4. आसीदेकं पुरा सत्यं तस्मिन्मायानियोगतः ।
   इन्द्रो मायाभिरिति च स्वधा बहुधैति हि ॥
   आ॰ रा॰ 8/5/262-263

जगत-

विभिन्न मायावी तत्वों से अन्वित, राग द्वेष के विकारों से जटिल समस्त दृश्य-प्रसार जगत के नाम से अभिहित है। आनन्द रामायणकार ने जगत के व्यष्टि तत्व पिण्ड की दार्शनिक विवेचना प्रस्तुत की है। पिण्ड के अंतर्गत विभिन्न कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों, नाड़ियों एवं मन, बुद्धि, चित्त व जीव आदि की मीमांसा ग्रन्थ के अंतर्गत प्राप्त होती है। नाशवान पिण्डों से अन्वित यह जगत भी विनाशी तथा अनित्य है। विनाशी होने के कारण जगत तथा जगत के समस्त सम्बन्ध भी असत्य हैं किन्तु असत्य होते हुए भी ईश्वर की व्याप्ति से जगत में सत्यता आभासित होती है। इस अनित्य जगत के सारे कार्य व्यापार भी अनित्य है। इस कार्य व्यापारों का सीधा सम्बन्ध शरीर से है क्यों कि शरीर भी अनित्य तत्व है। आत्म तत्व जगत से भिन्न है। जगत के जटिल जाल में जीवात्मा तभी तक आबद्ध है, जब तक उसके अंतराल में अहं की स्थिति है। अहं से मुक्त होने पर जगत का तिरोभाव हो जाता है। अहं मुक्त विरक्त जीव जगत की मिथ्या स्थिति से पूर्णतः अवगत हो जाते हैं। जगत उनके लिए शून्य एवं अस्तित्व विहीन तत्व हो जाता है। तभी वे ब्रह्मानंद में लीन हो पाते हैं। अहं मुक्त प्राणी ही मिथ्या जगत से हटकर ब्रह्म के सत्य को आत्मसात कर पाता है।

आनन्द रामायणकार के उक्त जगत सम्बन्धी दार्शनिक विवेचन का सोदाहरण प्रस्तुतीकरण निम्नवत् है।

आनन्द रामायणकार ने इस जगत को मिथ्या स्वीकार किया है। उनके मतानुसार जगत माया जन्य है। अतएव यह असत् जगत सत् सा प्रतीत होता है। जिस प्रकार सीपी में रजत, रेती में जल, रज्जु में सर्प तथा मृगमरीचिका में सलिल आभासित होता है उसी प्रकार यह जगत भी आत्मा में मिथ्या भासित होता है। अज्ञान वश जीवात्मा इस मिथ्याभास को नित्य तथा शाश्वत मान लेता है।[1]

---

1. नश्वरं भाति वै तत् विश्वं मायोद्भवं नृप। आ.रा. 1/5/107
यथा शुक्तौ रौप्यभासः काचभूम्यां जलस्य च।। 109 तक

यह अज्ञान ही दुःख का कारण है। अतः ग्रन्थकार ने संसार को दुःखदायक माना है।[1]

जगत के समस्त सम्बन्ध भी अतात्विक हैं। माता, पिता, भ्राता पुत्र एवं कलत्र आदि सांसारिक सम्बन्ध अनित्य हैं। तात्विक दृष्टि से देखने पर यह अखिल ही विश्व है ब्रह्ममय है।[2]

उक्त समस्त उपाधियाँ शरीर की है तथा शरीर संसारी है। शरीर नाशवान होने से यह जगत भी अनित्य तथा नाशवान है।[3]

इसीलिए समस्त सांसारिक सुख-दुःख शरीर से ही सम्बन्धित है, आत्मा से नहीं। ग्रन्थकार ने शरीर को समस्त भोगों का आश्रय स्वीकार किया है। शरीर अनित्य है अतः संसार के सुख दुःख भी अनित्य तथा अशाश्वत हैं।[4]

आनन्द रामायण कार ने पिण्ड दर्शन का तात्विक विवेचन किया है। उन्होंने मुख तथा कान इत्यादि को द्वार तथा दाँत इत्यादि को इन द्वारों के रक्षक रूप में वर्णित किया है। पलक, ओष्ठ इत्यादि कपाट हैं। प्राण रूपी राजदूत इस शरीर रूपी नगरी में भ्रमण करते रहते हैं। कवि ने आत्मा को इस नगरी का राजा तथा इन्द्रिय आदि को नगर निवासी कहा है।[5]

---

1. तदा किं क्षेममस्त्यत्र संसारे दुःख दायके। आ. रा. 8/2/94
2. असत्यं वा सत्यं वाऽस्तु देहो वाऽस्ति रंगवत् ।
   कः पुनः कस्य वा भ्राता सर्वं ब्रह्म न संशयः।।
   आ. रा. 8/2/95
3. मानुषी राक्षसी चैतानि नामानि तानि च ।
   देहस्यैवात्र कल्पितो देहस्तु नश्वरः स्मृतः ।।
   आ. रा. 8/2/110
4. सुखं दुःखं तु देहाय न मे किंचिद्धूत्तम ।
   तिष्ठत्वयं वा पततु देहो भोगालयः प्रभो ।।
   आ. रा. 8/2/141, 142
5. अयोध्यैवं त्वयि देहस्तत्र द्वाराणि वै नव ।
   आत्मा क्षेत्रस्तत्र राजा जीवश्चेन्द्रिय देवता।।
   आ. रा. 8/2/38 से 39

देह नगरी के ये दुर्बल नागरिक काल कवलित हो जाते हैं क्योंकि वे मोह निशा पर्यंत भ्रान्ति-निद्रा में निमग्न रहते हैं। इस प्रकार आनन्द रामायणकार ने तुलसी की भाँति जगत को मोह निशा कहकर उसे स्वप्नवत मिथ्या स्वीकार किया है।[1]

आनन्द रामायणकार ने इस असत् जगत को सद्वत आभासित होने का कारण उसमें ईश्वर की व्याप्ति माना है। ईश्वर की प्रविष्टि से ही समस्त जगत चैतन्य है तथा सत्य सा प्रतीत होता है।[2]

संसार की सभी वस्तुएं उस पर ब्रह्म के प्रकाश से ही प्रकाशित हैं। इस प्रकार आनंद रामायणकार "जगत प्रकाश्य प्रकाशक राम्" के समर्थक हैं।[3]

संसार जीव के अन्तराल में स्थित अहम् तत्व ही जगत का मूल है। जब तक यह अहंभाव जीव में विद्यमान है, तभी तक संसार का प्रसार है। "अहं" ग्रन्थि के छूटते ही न संसार रहता है और न उसका आश्रय ही रह जाता है। इस अहम् की हानि जगत को उसी प्रकार तिरोहित कर देती है जिस प्रकार निद्रा के नष्ट होने पर स्वप्न भी नष्ट हो जाता है।[4]

---

1. मोह एव निशा ज्ञेया निद्रा भ्रांतिस्तुकल्पते ।
   नेयं भ्रान्तिः समीचीना मर्त्या मुह्यन्ति येनते।।

   आ. रा. 8/2/36

2. विशता येन विश्वेषु सर्वं चेतयते जगत् ।
   असतस्ता प्रदः साक्षाद्राम इत्यभिधीयते।।

   आ. रा. 8/4/172, 173

3. प्रविष्टं दीप्यते यत्तेन विश्वं विभेदते ।

   आ. रा. 8/4/83

4. यावदहंकृतो भावस्तावत्संसार आश्रयः ।
   छिन्ने हमिति हृद्ग्रन्थौ न संसारस्तदाश्रयः ।
   गते तेन स्वयं याति स्वप्नो निद्रागमो यथा ।।

   आ. रा. 8/5/265, 266

मोक्ष, व मोक्ष के साधन –

जगत के त्रिगुणात्मक तत्वों के प्रति निर्लिप्त एवं आत्म ज्ञान की अनुभूति से जो ब्रह्मानुभूति की उपलब्धि होती है, उस सर्वोच्च स्थिति पर जीवात्मा की पहुंच ही मोक्ष है। आनन्द रामायणकार ने आत्म ज्ञान को मोक्ष का प्रधान साधन माना है क्योंकि आत्म ज्ञान होने पर ही देह जन्य अहम् से छुटकारा मिलता है। इस निवृत्ति के पश्चात ही विनाशी व त्रिगुणाभिभूत दैहिक तत्वों के प्रति अनासक्ति की जागृति होती है। तभी जीवात्मा जगत के समस्त जड़ चेतन वर्ग में परम तत्व की अनुभूति करती हुई अपने को ब्रह्ममय तथा ब्रह्म को निजमय अनुभव करता है। इस स्थिति में समस्त सांसारिक भोग उसके लिए नगण्य और निष्प्रभ हो जाते हैं। वह सद् और असद् सभी कर्मों से छुटकारा पा जाता है। ज्ञान के आलोक तक ले जाने वाले शास्त्र अनावश्यक हो जाते हैं। वह अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है। उसकी यह प्राप्ति ही जीवन मुक्ति है और यह मुक्ति ही जीवात्मा की सर्वोच्च उपलब्धि है। इस स्थिति तक पहुंचने में उसे सर्वप्रथम सद्गुरु का मार्ग निर्देश, तत्पश्चात् आसक्तिक लौकिक संकर्मों का परित्याग एवं परम तत्व परमात्मा के प्रति हार्दिक भक्ति भाव का निवेदन अपेक्षित है। तत्पश्चात स्वतः आत्मज्ञान दृढ़ हो जाता है और ब्रह्मानुभूति की स्थिति उसे सहज सुलभ हो जाती है। वह समस्त लौकिक बन्धनों से परे परम तत्व की परम ज्योति में लीन हो जाता है।

आनन्द रामायणकार के उक्त मोक्ष विषयक दार्शनिक विवेचन का सोद्धरण प्रस्तुतीकरण निम्नवत है –

आनन्द रामायणकार ने संसार के प्रति आसक्ति को ही बन्धन का कारण मानाहै। पत्नी पुत्र भ्राता तथा अपने शरीर के प्रति जीव में जब ममता बुद्धि जागृत हो जाती है तो वह इस ममता के पाश में फंसकर अनेक बार जन्म लेता तथा मरता है।[1]

1. मे शरीरमिदं कांतं मे मिथ्यामस्ये परम् । आ.रा. 8/2/87 से
या रति मे मे स्थिति सा स्वतंत्र्योत्थ मामता।। 89 तक

इस ममता बुद्धि का त्याग ही मोक्ष है। संसार से सर्वथा अनासक्त रहकर ही जीव इस परम स्थिति को प्राप्त कर पाता है। जब तक जीव में देहासक्ति है तभी तक उसका संसार से सम्बन्ध रहता है। इस आसक्ति के समाप्त होने पर वह " जीवो ब्रह्मैव केवलम् " की उच्चतम सीमा पर प्रतिष्ठित हो जाता है। यह आसक्ति भगवद् कृपा से ही छूट पाती है।[1]

देह भक्ति के समाप्त होने पर यह संसार असार तथा दुख दायक अनुभव होने लगता है। जीव को ब्रह्म से अपने वास्तविक सम्बन्ध का ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। वह अपने स्वरूप को यथा तथ्य समझकर मुक्त हो जाता है।[2]

आनन्द रामायणकार ने अम्बा सुमित्रा की जीवन मुक्ति में इसी आत्म स्वरूप के ज्ञान को कारण बताया है। उन्हें यह यथार्थ बोध हो गया था कि समस्त सांसारिक उपाधियाँ तो शरीर की ही हैं, आत्मा तो परमात्मा का ही अभिन्न स्वरूप है। ब्रह्म तथा जीव के इस ऐक्य का सम्यक ज्ञान प्राप्त कर वे मोक्ष को प्राप्त कर सकीं।[3]

---

1. तातां वाक्योपदेशेन प्रसादात्तव राघव ।
   मैमे बुद्धिर्गता मत्तासत्वतो मुक्ता स्म्यहंत्विह ।।

   आ० रा० 8/2/93

2. अस्त्यर्थं या मयं याहु देहो पारिततैमेवत् ।
   × × ×
   अहमेव परं ब्रह्म मत्तो ब्रह्म परं न हि ।।

   आ० रा० 8/2/ 95 व 96

3. एवं विवेच्य मया प्रोक्तं का हं केति विचारतः ।
   जीव मुक्ता सुमित्रा सा बभूव मुक्तनिर्भरा ।।

   आ० रा० 8/2/122, 123

अम्बा कौशल्या के भी मोक्ष का कारण कवि ने देहाभिमान से मुक्ति को ही माना है। देह बुद्धि के नष्ट होने पर उन्हें इस यथार्थ ज्ञान का अनुभव होने लगा कि ब्रह्म तथा जीव का सम्बन्ध "जिमि घट कोटि एक रवि छाहीं" की तरह है। इस प्रकार वे स्व को ब्रह्म मय जानकर जीवन मुक्त हो गयीं।[1]

यह दिव्य तात्विक ज्ञान सहस्रों बार जन्म लेने के पश्चात प्राप्त होता है। देहाभिमानी जीव कर्मफल का हेतु बनकर बन्धन में फँसा रहता है। उस परम प्रभु की असीम अनुकम्पा होने पर ही वह अपनी आत्मा में स्थित राम के रूप को जानकर मोक्ष पद को प्राप्त होता है।[2]

आनन्द रामायण कार ने सन्यास के द्वारा समस्त भावनाओं को छोड़कर दृश्यमान संसार को ब्रह्म से अभिन्न देखने को भी भव मुक्ति का साधन माना है।[3]

मानसकार द्वारा वर्णित "जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि गई" का निरूपण आनंद रामायण में भी प्राप्त होता है। यह "अहं" की ग्रन्थि यद्यपि मृषा है। तथापि इससे छुटकारा पाना अति दुष्कर है। इस ग्रन्थि के भिन्न होते ही न संसार रहता है और न ही उसका आश्रय रहता है। इस प्रकार जीव मोक्ष पद को प्राप्त हो जाता है।[4]

---

1. यथा कुम्भैरविर्भिन्नो दृश्यते न स्वरूपतः ।
   कौशल्यामाह मातस्त्वं मुक्ता स्यद न संशयः ॥
   आ.रा. 8/2/143-144

2. कश्चिज्जन्म सहस्रेषु ज्ञानवान जायते यदा ।
   तदात्मस्थं रामरूपं ज्ञात्वा मों क्षोभयत्यम् ॥
   आ.रा. 8/4/85

3. उपसंहृत्य बुद्ध्या सन्यस्य ब्रह्मणि चिद्घने ।
   पश्य त्वं सर्व भावेन मुच्यसे भव संकटात् ॥
   आ.रा. 1/5/113 व 114

4. भिन्ने हृदिति हृद्ग्रन्थौ न संसारस्तदाश्रयः ।
   गतो लेवास्यं च याति स्वप्नो निद्राक्षयो यथा ॥
   आ.रा. 8/5/266

इस ग्रन्थि से निवृत्त होने के लिए ग्रन्थकार ने सद्गुरु प्रदत्त ज्ञान की महती आवश्यकता पर बल दिया है। सद्गुरु ज्ञान से प्रबुद्ध होकर मुमुक्षु अपने जगत स्वरूप चित्त को ब्रह्मभाव से देखकर मुक्त हो जाता है।[1]

राम चरित मानस की ही भाँति आनंद रामायण में भी ज्ञान के साथ साथ भक्ति को भी मोक्ष के सरल साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। बिना भक्ति के ज्ञान शुद्ध नहीं हो पाता तथा शुद्ध ज्ञान के अभाव में मुक्ति असंभव है। यद्यपि भक्ति से ओत प्रोत प्राणी मुक्ति की कामना नहीं करते वे अनेक बार संसार में जन्म लेकर उस परम प्रभु की दासता में ही परमानंद का अनुभव करते हैं, किन्तु ज्ञान के शुद्ध हो जाने पर उनकी मुक्ति हो जाती है।[2]

ज्ञान की जागृति से अभिभूत ब्रह्मानंद की अनुभूति में निमग्न होने पर समस्त शास्त्रों की अपेक्षा शून्य हो जाती है। इस ज्ञान की प्राप्ति में सांसारिक विषय बहुत बड़े बाधक हैं। अतः मुमुक्षु प्राणी को सर्वप्रथम इनका परित्याग आवश्यक है।[3]

---

1. आश्रयेत्सद्गुरुं साक्षाद् ब्रह्मभूतं निरामयम् ।
   तेन प्रबोधितः शिष्यात्मानं संसारात्मनि ।।

   आ॰ रा॰ 8/5/ 267,268

2. आचार्य दत्तया सम्यक् परमोपासनं गतः ।
   x x x
   बोधादूर्ध्वं पुनस्तस्य न कार्यं विद्यते भवे ।।

   आ॰ रा॰ 8/4/92, 93

3. सेनान्यो विषयाः प्रोक्ता मुमुक्षुस्तान् विवर्जयेत् ।

   आ॰ रा॰ 8/5/29।

यदि सद्गुरु कृपा से वह दिव्य ज्ञान प्राप्त हो गया तो फिर किसी अन्य ज्ञान की आवश्यकता नहीं रह जाती ।[1]

ज्ञान की इस स्थिति पर पहुंचने के पश्चात ही जीवात्मा को मोक्ष सुख की सीमा पर प्रतिष्ठित होने में सक्षम हो पाता है।

साम्य व वैषम्य -

विचार के नेत्रों से यथार्थ का सम्यक परिवीक्षण दर्शन कहलाता है। यह दर्शन जगत् की अस्थिरता तथा सार्वभौम सत्ता की चिरन्तनता का विवेचन होता है। मनीषियों ने विनाशी होते हुए भी जगत के प्रति सामता तथा अविनाशी होते हुए भी ब्रह्म के प्रति पलायन की प्रवृत्ति में हमारी मन स्थिति को भ्रमित करने वाले तत्व के रूप में माया को स्वीकार किया है। इस प्रकार दर्शन जीवात्मा और परमात्मा के मध्य में पड़ने वाले जगत और जगत में बांधने वाली माया के विविध रूपों का अनुशीलन है।

मानसकार तथा आनन्द रामायणकार दोनों ही इस सम्बन्ध में अपने समान विचार प्रस्तुत करते हैं। दोनों ईश्वर की सत्यता और जगत की असत्यता तथा ब्रह्मलीनता में जीवात्मा की शांति को एकमत से स्वीकार करते हैं। माया के विविध उपद्रवों एवं प्रलोभनों का सप्रमाण वर्णन दोनों मनीषियों ने किया है। इस प्रकार दोनों ही ग्रन्थकारों का यह मन्तव्य है कि जीवात्मा के लिए मायाजन्य विनाशी जगत की सारी आसक्तियों से विरक्त होकर चिन्मय अविनाशी ब्रह्म में लीन होना ही श्रेयस्कर है। इस कल्याणमय स्थिति को ही उन्होंने मोक्ष कहा है। इस स्थिति को प्राप्त कर लेने पर मायावी जगत के जटिल बन्धन स्वतः निष्क्रिय हो जाते हैं। दोनों तत्व वेत्ता कवियों

---

1. किं बहूक्तेन विधिना समार्प्यां शास्त्रस्वद्गतम् ।

आ.रा. 8/5/292

ने इस सम्बन्ध में वेदान्त की दार्शनिक विवेचना को स्वीकार किया है। ब्रह्म के सतत् सान्निध्य की उपलब्धि के लिए साधक को ज्ञान और भक्ति का आश्रय ग्रहण करने की आवश्यकता पर दोनों ही कवियों ने बल दिया है, किन्तु ज्ञान तथा भक्ति दोनों में ब्रह्म की सानुकूलता प्राप्त करने के लिए भक्ति को अधिक उचित सम्बन्ध स्वीकार किया गया है।

इस प्रकार दार्शनिक क्षेत्र में दोनों ही कवि कंधे से कंधा मिलाकर चलते हुए प्रस्तुत हुए हैं। उनकी दार्शनिक विचारधारा में किंचित मात्र भी वैषम्य नहीं है।

-x-x-x-x-x- समाप्त -x-x-x-x-x-

xxxxx

उपसंहार

साहित्यकार की कृति बहुजन हिताय तथा बहुजन सुखाय के लक्ष्य से ही अभिप्रेरित होती है। इस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए साहित्यकार अपने रचना कार्य में जिस मार्ग से आगे बढ़ता है; वह मार्ग सत्यम्, शिवम् तथा सुन्दरम् के पुष्पास्तरणों से सुसज्जित रहता है। साहित्यकार की कृति इस मार्ग को पार करके अपने अभीष्ट लक्ष्य पर पहुंच जाती है। राम चरित मानस तथा आनन्द रामायण दोनों का सिंहावलोकन जब इस सिद्धान्त को दृष्टिगत रखकर किया जाता है तब हम दोनों ग्रन्थों को निर्दिष्ट पंथ पर गतिमान और अन्त में अभीष्ट लक्ष्य पर पहुंचा हुआ पाते हैं, किन्तु मार्गास्तरण के आनुपातिक अन्तर से गन्तव्य लक्ष्य के रूप तथा मात्रा में अन्तर हो जाना स्वाभाविक सा है। दोनों ग्रन्थों के सम्यक् आलोडन से प्रत्येक पहलू को दृष्टिगत रखते हुए हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुंचते हैं :-

1. <u>कथा शिल्प सम्बन्धी निष्कर्ष</u> -

दोनों ही ग्रन्थ राम-कथा से संबंधित हैं, किन्तु आनन्द - रामायणकार हमें केवल कथा को रोचक बनाने के कार्य में दत्त चित्त अनुभव होते हैं। वे इस लोक रुचि को तथा उसकी विभिन्नता को इतना महत्व दे देते हैं कि कथा का लोकहित साधक रूप क्षीण सा अनुभव होने लगता है। उदाहरणार्थ -उन्होंने राम कथा के साथ अनेकानेक ऐसी कथाएं योजित कर दी हैं जिनसे राम के महत्व की कोई पुष्टि नहीं होती है। वे कथायें केवल लोकरंजन मात्र की हेतु बनकर रह गयी हैं। मानसकार इस दोष से पूर्ण मुक्त हैं। उनकी राम कथा आज लोक जीवन में इस प्रकार समाहित हो गयी है कि भारतीय लोक जीवन का प्रत्येक पहलू उससे प्रभावित है।

2. <u>चरित्र चित्रण सम्बन्धी निष्कर्ष</u> -

ग्रन्थकार लोक चरित्र में नूतन शक्ति और शाश्वत सत् का संचार करने के लिए ही अपने ग्रन्थ का प्रणयन करता है। इस परिमाप

में यदि ग्रन्थकार अपने ग्रन्थ को पूर्ण पाता है तो वह स्वयं कृतार्थ होता है तथा लोक को भी कृतार्थ करता है। मानस तथा आनन्द - रामायण दोनों में विभिन्न व्यक्तित्वों की चारित्रिक विशेषतायें अपने अपने ढंग से अंकित हुई हैं। आनन्द रामायणकार ने चरित्र में चमत्कार और लोकरंजक तत्वों को समाहित करने में अपने को कृत कार्य माना है, किन्तु वस्तुतः इससे चरित्रगत विशेषता केवल थोड़ी देर के मनो विनोद का विषय बनकर रह जाती है। लोक हृदय में स्थायी प्रभाव छोड़ने की शक्ति उसमें नहीं रहती है। मानसकार ने इस संदर्भ में भी अपने को पूर्ण सतर्क रखा है। उसके चरित्र लोक जीवन को स्थायी प्रभाव देने में सक्षम हैं।

3. प्रकृति चित्रण सम्बंधी निष्कर्ष -

विस्तीर्ण विश्व में प्रकृति का वैभव सर्वत्र अपनी छटा से मानव मन को विमुग्ध करता है। कवि और चित्रकार दोनों अपने-अपने ढंग से इसे मूर्त रूप प्रदान करते हैं। चितेरे का चित्र जिस विशिष्ट भाव के निमित्त निर्मित होता है, केवल उसी भाव का उत्तेजन उसका कार्य होता है, किन्तु कवि की लेखिनी प्रकृति का जो चित्र अंकित करती है वह मानव जगत की विभिन्न भावनाओं से अभियुक्त रहता है। आनन्द रामायणकार तथा मानसकार दोनों ने अपने काव्य-ग्रन्थों में प्रकृति- चित्रण को सम्यक् स्थान दिया है, किन्तु तुलसी का मानस अपने राम को निवेदित भक्ति काव्य के रूप में मान्य है। अतः कवि ने प्रकृति की ओर उतनी ही दृष्टि रखी है जितनी राम भक्ति के लिए साधक है।

जैसे – श्रीराम के आवास स्थल प्राकृतिक सुषमा से स्वतः सम्पन्न चित्रित दिखाये गये हैं। और राम से वियुक्त स्थलों में प्रकृति भी मलिन रूप में चित्रित हुई है। अतः प्रकृति चित्रण से भी राम का महत्व प्रतिपादित हो मानसकार की यह अभीप्सा विभिन्न स्थलों पर स्पष्ट है।

आनंद रामायणकार इस क्षेत्र में प्रकृति के स्वतंत्र वर्णन की ओर भी प्रवृत्त दिखाई देते हैं। विभिन्न स्थानों का प्राकृतिक सौन्दर्य ही

उन स्थानों की महिमा का साधक है- इस तथ्य को स्पष्ट किया है। विभिन्न स्थानों की भौगोलिक चर्चा में भी उन्होंने प्राकृतिक चित्रों का शृंगार सजाया है।

4. <u>रस विवेचन सम्बन्धी निष्कर्ष -</u>

मानसकार और आनन्द रामायणकार दोनों ने ही अपने काव्य ग्रन्थ में रसों को सम्यक् स्थान दिया है, किन्तु सरसता के साथ राम के महत्व को जोड़ने में जितने सफल गोस्वामी जी है, आनन्द रामायणकार उतने पीछे हैं। चाहे शृंगार हो करुण, चाहे वीर हो या शान्त, तुलसी इन रसों की परिपक्वता इसी तथ्य निरूपण में मानते हैं कि वे विशिष्ट रस राम के प्रति भावोद्रेक में सहायक बनें। इसी कारण तुलसी के राम सौन्दर्य, शौर्य, करुणा और शांति के निधान बन सके हैं। भाव की रूपात्मकता होने के कारण तुलसी का रस निरूपण स्वतः ही उच्च कोटि का हो गया है।

आनन्द रामायणकार रामत्व को गौण तथा केवल रस निरूपण को मुख्य मानकर आगे बढ़े हैं। इसीलिए उनका रस निरूपण रीति कालीन कवियों की तरह बिखरा हुआ, दैहिक तथा ऐन्द्रिक हो गया है।

5. <u>अलंकार निरूपण सम्बन्धी निष्कर्ष -</u>

शब्द और अर्थ की रमणीयता प्रतिपादित करने के लिए कवि विभिन्न अलंकारों का सहयोग लेता है। शब्द के सौष्ठव को निखार करने के लिए भावानुसार भाषा के प्रसाद, ओज और माधुर्य गुण मय रूपों को वह सुसज्जित करता है तथा विभिन्न शब्द शक्तियों के प्रसंगानुकूल योग से भाषा को सशक्त बनाता है। वर्णसाम्य, शब्द साम्य, शब्द पुनरुक्ति तथा अनेकार्थी शब्दों के प्रयोग से वह शब्द गत रमणीयता को प्रतिपादित करता है। इसी प्रकार विभिन्न साम्य मूलक एवं वैषम्य मूलक उपमानों के प्रयोग से वह अर्थगत रमणीयता को प्रतिपादित करताहै। इन शब्दगत तथा अर्थगत अलंकारों का मुख्य अभिप्राय यही है कि काव्य का सुन्दरम् तत्व विकसित हो। इस तत्व के विकास में स्वाभाविकता न्यूनत्व होती है, किन्तु कभी-कभी

कवि केवल शब्दगत और अर्थगत रमणीयता के प्रतिपादन में ही अपने काव्य की सफलता मान लेता है। अतः वह अस्वाभाविक और कृत्रिम ढंग से इस रमणीयता को लाने का प्रयास करता है। यह कृत्रिम रमणीयता हमारे मन को रमाने में सक्षम नहीं हो पाती। जब हम मानसकार तथा आनन्द रामायणकार दोनों को उक्त विवेचन के आधार पर परखते हैं तब यह स्पष्ट हो जाता है कि मानसकार ने अलंकारों को स्वाभाविकता के छवि में ढाला है। इसीलिए मानस का एक-एक शब्द और शब्द के अंतराल में निहित एक -एक अर्थ अंतःकरण की वृत्तियों को रमाने की अप्रतिम शक्ति रखता है। आनन्द रामायण में अलंकारों के प्रयोग अलंकारिता आरोपित करने के लिये हुये हैं। अतः इस क्षेत्र में भी तुलसी का काव्य आगे है।

6. भक्ति विवेचन सम्बंधी निष्कर्ष -

आनन्द रामायण तथा राम चरित मानस दोनों ही भक्ति काव्य हैं। राम भक्ति का प्राधान्य दोनों ही ग्रन्थों में विद्यमान है, आनन्द रामायण में उसका अंश मात्र भी देखने को नहीं मिलता। मानसकार की पूरी आस्था रामभक्ति में है तथा इस भक्ति भाव को लोक व्यापी बनाने के लिये ही उन्होंने इस कथा -ग्रन्थ का प्रणयन किया है। आराध्य राम की लोक कल्याणकारिणी भक्ति लोक मान्य हो सके, मानस में इसका स्तुत्य प्रयास हुआ है। यही कारण है कि मानस का एक-एक पात्र अधम खग गृद्ध तथा काग से लेकर पशु प्रवृत्ति वाले वानर व भालु, निम्नवर्गीय गुह व शबरी, उदात्त भाव वाले भरत व लक्ष्मण, अतुलित बल धाम भक्त प्रवर हनुमान, एवं समस्त छोटे -बड़े वानर यहाँ तक कि माता कौशल्या, पिता, दशरथ तथा गुरु वशिष्ठ भी राम भक्ति के याचकों के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। स्पष्ट है कि राम भक्ति की अतुलनीय महिमा का प्रतिपादन ही मानसकार का ध्येय रहा है। आनन्द रामायणकार इस क्षेत्र में केवल अपनी सीमा के अन्तर्गत ही भक्ति का निदर्शन कर सके हैं।

७. दार्शनिक विवेचन सम्बंधी निष्कर्ष :

मानसकार तथा आनन्द रामायणकार दोनों काव्य के साधक होने के साथ-साथ उच्च कोटि के दार्शनिक भी थे। उनके ग्रन्थों में ब्रह्म, जीव, माया, जगत तथा मोक्ष का अपने-अपने ढंग से विशद विवेचन हुआ है। दोनों ही दार्शनिकों का विवेचन वेदान्त से मिश्रित किन्तु मौलिक उद्भूति के पुट से सम्पन्न है। इन दार्शनिक तथ्यों के विवेचन में भी मानसकार ने हमारी मनोवृत्तियों को रामत्व के प्रति समर्पण का संदेश दिया है। यद्यपि दोनों मनीषी दार्शनिक विवेचन के सम्बंध में समान रूप से सफल कहे जा सकते हैं, किन्तु विवेचन को इस ढंग से प्रस्तुत करना कि हमारा मानसिक रुझान रामत्व को समर्पित हो, तुलसी के मानस में अधिक सटीक और व्यापक रूप में मिलता है।

उपर्युक्त विवरणों से यह तथ्य स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि दोनों मनीषी कवि अपने काव्य-ग्रन्थों में राम कथा को ऐसे स्तर पर स्थिर कर गये हैं जहाँ से वह अपना विशद और व्यापक आलोक लोक जीवन में व्याप्त करने में सहज सक्षम हो गयी है। किन्तु चाहे कवि के रूप में देखा जाय या भक्त के रूप में अथवा दार्श-निक के रूप में — तुलसी का मानस लोक मानस को जितनी गहराई से अपनी गंभीरता में निमग्न कर गया है, आनन्द रामायणकार में वह प्रभाव शालिनी क्षमता अप्राप्त है। अतः दोनों ग्रन्थ श्रद्धास्पद हैं, दोनों मनीषी वन्दनीय हैं किन्तु मानसकार तथा मानस दोनों लोकमान्य और चिरअभिनंदनीय हैं।

सहायक - ग्रन्थ

1. "बाल्मीकि और तुलसी:"
   (साहित्यिक मूल्यांकन)

   - डा० राम प्रकाश अग्रवाल

   प्रकाशन प्रतिष्ठान, मेरठ।

2. "तुलसीदास"

   - डा० माता प्रसाद गुप्त

   हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग।

3. "काव्य-शास्त्र"

   - डा० भगीरथ मिश्र

   पंचम संस्करण

   विश्व विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

4. "मानस-मंथन" (द्वितीय-रत्न)

   - पं० राम किंकर उपाध्याय

   प्रकाशक - तुलसी तत्वानुसंधान केन्द्र, कानपुर।

5. "मानस-प्रवचन" (प्रथम तथा चतुर्थ पुष्प)

   - पं० रामकिंकर उपाध्याय

   प्रकाशक- बिरला अकादमी आफ आर्ट एण्ड कल्चर, कलकत्ता।

6. "रामायण-प्रवचन"

-पू० श्री मोरारी बापू

मानस प्रकाशन,

मानस मंदिर, नई दिल्ली - 5

7. "भारतीय दर्शन"

- डॉ० राधाकृष्णन

8. कल्याण रामायणांक

वर्ष 46/सं०-1

गीताप्रेस ,गोरखपुर।

9. गोस्वामी तुलसीदासः दर्शन और भक्ति

- डॉ० विश्वम्भर दयालु अवस्थी

10. "शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त" (प्रथम भाग)

- - श्री गोविन्द त्रिगुणायत